MAPA-203

वित्तीय प्रशासन

FINANCIAL ADMINISTRATION

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई-मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्या शाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
प्रो0 एम0 एम0 सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
डॉ0 ए0के0 रुस्तगी, रीडर, राजनीति विज्ञान जे0एस0पी0जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश	डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

पाठ्यक्रम संकलन और सम्पादन

डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर)
लोक प्रशासन विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 अंजु पारीक लोक प्रशासन विभाग, एस0 जी0 पारीक पी0जी0 कालेज, जयपुर	1, 2, 3, 4
डॉ0 मनीषा माथुर, लोक प्रशासन विभाग, कनोरिया पी0 जी0 महिला महाविद्यालय, जयपुर, राजस्थान	5, 6, 7,8, 9, 10, 23, 24, 25, 26
डॉ0 नंदिता कौशल, लोक प्रशासन विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	17, 18, 19, 20, 21, 22
डॉ0 गगन सिंह, वाणिज्य विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	11, 12, 13, 16
डॉ0 शालिनी चौधरी, अर्थशास्त्र विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	14, 15

प्रकाशन वर्ष- 2021

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण- 2021

प्रकाशक निदेशालय- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

प्रकाशन से पूर्व की प्रति।

अनुक्रम

खण्ड-1 वित्तीय प्रशासनः आधार और उद्देश्य	
1.वित्तीय प्रशासन की प्रकृति और कार्यक्षेत्र	1 – 11
2.वित्तीय प्रशासन के उद्देश्य और सिद्धान्त	12 – 27
3. मिश्रित अर्थव्यवस्था	28 – 43
4. केन्द्र राज्य वित्तीय संबंध	44 – 58
खण्ड-2 बजट प्रक्रिया और बजट व्यवस्था-1	
5. राजकोषीय नीति, समता और सामाजिक न्याय	59 – 75
6. सरकारी बजट प्रक्रियाः सिद्धान्त और कार्य	76 – 86
7. भारतीय बजट व्यवस्था	87 – 101
खण्ड-3 बजट प्रक्रिया और बजट व्यवस्था-1	
8. सरकारी व्यय का वर्गीकरण	102 – 109
9. सार्वजनिक व्यय सिद्धान्त एवं विकास	110 – 121
10. निष्पादन बजट प्रणाली, शून्य आधारित बजट प्रणाली	122 – 138
खण्ड-4 साधन संगठन	
11. राजस्व के स्रोतः कर एवं करों के अतिरिक्त आय	139 – 159
12. घाटे का वित्तीयन	160 – 170
13. सार्वजनिक ऋण प्रबन्धन एवं भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका	171 – 191
खण्ड-5 सार्वजनिक निधियों का निवेश एंव विनिवेश	
14. वित्तीय मूल्यांकन	192 – 203
15. आर्थिक और सामाजिक मूल्यांकन	204 – 218
16. भारत में विनिवेश उद्देश्य एंव चुनौतियां	219 – 230
खण्ड-6 विधायी, वित्तीय और कार्यकारी नियंत्रण	
17. विधायी नियंत्रण	231 – 242
18. वित्तीय समितियों की व्यवस्था	243 – 255
19. कार्यकारी नियंत्रण	256 – 265
खण्ड-7 लेखा एवं अंकेक्षण	
20. भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली	266 – 276
21. भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली	277 – 287
22. लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की भूमिका	288 – 298
खण्ड-8 सार्वजनिक उपक्रमों एवमं स्थानीय शासन का वित्तीय प्रशासन	
23. सार्वजनिक उपक्रमों का वित्तीय प्रशासन	299 – 308
24. सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता एवं जबाव देही	309 – 320

25. शहरी शासन का वित्तीय प्रशासन	321 – 332
26. ग्रामीण शासन का वित्तीय प्रशासन	333 – 343

ईकाई- 1 वित्तीय प्रशासन की प्रकृति तथा कार्यक्षेत्र

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 वित्तीय प्रशासन: अर्थ
1.3 सार्वजनिक वित्त तथा व्यक्तिगत वित्त में अंतर
1.4 वित्तीय प्रशासन: महत्व
1.5 वित्तीय प्रशासन की प्रकृति
1.6 वित्तीय प्रशासन का कार्यक्षेत्र
1.7 वित्तीय प्रशासन के अवयव
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

'वित्त' प्रशासन का आधार है। किसी भी प्रशासन की सफलता उचित वित्तीय व्यवस्था पर ही आश्रित है। सुव्यवस्थित वित्त अच्छे प्रशासन की नींव है शरीर में रक्त का जो महत्व है, वही वित्त का सरकार के कार्यो में है वित्त प्रत्येक संगठन के जीवन रक्त के सदृश है। किसी भी कार्यालय, उद्योग या उद्यम के क्रियान्वयन हेतु कर्मचारी वर्ग तथा पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है जिसे केवल धन के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। व्यवस्था के क्रियान्वयन की कुशलता तथा व्यवस्था की देखभाल वित्तीय व्यवस्था की प्रभावशीलता पर निर्भर करती है, क्योंकि प्रत्येक प्रशासनिक अधिनियम के वित्तीय परिणाम हो सकते है। वित्त और प्रशासन में अन्योन्यश्रित सम्बन्ध है। जैसा कि प्रो. एल. डी व्हाईट का मानना है कि ''प्रशासन और वित्त को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, वित्त प्रत्येक प्रशासनिक कार्य का आर्थिक पहलू होता है जो उससे वैसे ही अपृथक्करणीय होता है। जैसे मनुष्य और उसकी छाया।''

लोक प्रशासन के मुख्य पहलू के रूप में वित्तीय प्रशासन उतना ही प्राचीन है, जितना समस्त विश्व की संगठित सरकारें। अपने मौलिक रूप में यह मध्यकालीन युग तक कुछ सीमित कार्यों को ही सम्पादित करता था। पूर्व आधुनिक काल में इसका अस्तित्व कार्यपालिका के ऊपर विधायी नियंत्रण की सरंचना में ही सीमित था। औद्योगिक क्रान्ति के द्वारा स्वतंत्र सामाजिक-आर्थिक शक्तियों ने वित्त प्रशासन को नया अर्थ तथा गतिशीलता प्रदान की। बदलते हुए संदर्भ में नियोजित विकास तथा सामाजिक परिवर्तन की बदलती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने की उम्मीद की गई।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सार्वजनिक वित्त के अवयवों तथा उसके प्रशासन के बारे में जान पायेंगे।

- वित्तीय प्रशासन के विकास में विभिन्न स्तरों की व्याख्या कर पायेंगे।
- वित्तीय प्रशासन के बढते हुए कार्यक्षेत्र का वर्णन कर पायेंगे।
- वित्तीय प्रशासन के प्रभाव को समझ पायेंगे।

1.2 वित्तीय प्रशासन: अर्थ

'वित्तीय प्रशासन' दो शब्दों से मिलकर बना है, 'वित्त और प्रशासन' वित्त का शाब्दिक अर्थ है धन संसाधन और प्रशासन शब्द का तात्पर्य जागरूक उद्देश्य की खोज में सामूहिक मानव प्रयास का संगठन तथा प्रबन्ध। 'वित्तीय प्रशासन' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है, इसमें वे सब प्रक्रियायें सम्मिलित की जाती हैं जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक सेवाओं पर व्यय करने के लिए आवश्यक धनराशि एकत्र करने, उसे सुरक्षित रखने, खर्च करने और उनका उचित लेखा-जोखा रखने से रहता है। वित्त के बिना सरकार अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल नहीं हो सकती, चाहे यह कृषि विभाग, रेलवे, सड़क, यातायात, निगम, प्रारंभिक चिकित्सा केन्द्र, म्युनिसिपल बोर्ड हो या परिवार की दिन-प्रतिदिन की क्रियाएं। सभी धन की उपलब्धता पर ही निर्भर करती है प्रशासन के लिये वित्त की इतनी अधिक महत्ता होने के कारण वित्त के प्रशासन का अध्ययन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। जो सरकार वित्तीय प्रशासन की एक संतोषजनक व्यवस्था का निर्माण कर लेती है वह अपने कार्यों का प्रबन्ध कुशलता के साथ करने की दिशा में काफी आगे बढ जाती है। इस प्रकार ''वित्तीय प्रशासन, जो कि एक जैसी व्यवस्था तथा रीतियों का निर्माण करता है जिनके द्वारा लोक सेवाओं के संचालन के लिए धन प्राप्त किया जाता है, व्यय किया जाता है और उसका लेखा रखा जाता है, आधुनिक सरकार का हृदय माना जाता है।''

डब्ल्यू. एफ. विलोबी के अनुसार, ''एक दक्ष शासन की समस्या में अन्तर्निहित विविध तत्वों में वित्तीय प्रशासन से अधिक महत्वपूर्ण कोई दूसरा तत्व नहीं है।''

टास्क फोर्स हूवर कमीशन के शब्दों में, ''वित्त आधुनिक शासन के अन्तः स्थल तक पहुंच गया है।''

प्रो. गेस्टन गेज के अनुसार, ''वित्तीय प्रशासन सरकारी संगठन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध सार्वजनिक कोषों के संग्रहण, संरक्षण तथा वितरण में सार्वजनिक आय व सार्वजनिक व्यय के समायोजनों से सार्वजनिक ऋणों के प्रबन्ध से और वित्तीय मामलों में सामान्य नियंत्रण से होता है।''

यद्यपि यह परिभाषा वित्तीय प्रबन्धन के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं को दर्शाती है, लेकिन वित्त प्रशासन के व्यापक कार्यक्षेत्र को दर्शाने में असफल रही है शायद इस सीमा का अनुभव करने के बाद जी. एस. लाल लिखते है कि, ''वित्त प्रशासन राज्य के वित्तीय प्रबन्ध के समस्त पहलुओं से सम्बन्धित है जबकि लोक प्रशासन लोक मामलों तथा लोकहित से अधिक सम्बद्ध है वित्त प्रशासन की सीमाएं बढ रही है, इसलिए वित्त प्रशासन की व्यापक परिभाषा की आवश्यकता है।''

संक्षेप में वित्त प्रशासन के अन्तर्गत राजकीय आय का संचय, संरक्षण और वितरण, आय तथा व्यय का समायोजन, राजकीय ऋणों की व्यवस्था, राज्य के वित्तीय मामलों का सामान्य नियंत्रण आदि का समावेश होता है ये राजनीतिक समुदाय के सदस्यों के विकास तथा जीवन के लिए आवश्यक होती है।

1.3 सार्वजनिक वित्त तथा व्यक्तिगत वित्त में अंतर

वित्तीय कार्य एक व्यापक प्रक्रिया है जो सार्वजनिक तथा निजी दोनों संगठनों में सामान्य रूप से पायी जाती है, लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि जो सिद्धान्त या नियम निजी वित्त में लागू होते है वही सामान्य रूप से सार्वजनिक वित्त में भी लागू होगें। सार्वजनिक वित्त तथा निजी वित्त में अंतर इस प्रकार स्पष्ट प्रतीत होता है-

क्र.सं.	आधार	सार्वजनिक वित्त	व्यक्तिगत वित्त
1	उद्देश्य	सार्वजनिक वित्त का व्यापक एवं विस्तृत उद्देश्य होता है। इसका मुख्य उद्देश्य समाज का अधिकतम कल्याण करना होता है	व्यक्तिगत वित्त का उद्देश्य व्यक्ति या परिवार के हितों तक सीमित होता है इसका उपयोग पूर्णतया व्यक्तिगत एवं पारिवारिक हितों के लिए किया जाता है।
2	आय व्यय का समायोजन	इसमें व्यय की आवश्यकताओं के अनुरूप आय बढाने का प्रयास किया जाता है।	आय अनुमान के अनुरूप ही व्यय करने का प्रयास किया जाता है।
3	अवधि	इसमें आय-व्यय की एक निश्चित अवधि होती है। जैसे वार्षिक बजट (1 अप्रेल से 31 मार्च तक)	इसमें आयव्यय की कोई निश्चित अवधि - नहीं होती। व्यवहार में मासिक आय से व्यय का समायोजन करने का प्रयास किया जाता है।
4	आय प्राप्ति के साधन	सरकार के आय प्राप्ति के साधन व्यापक एवं विविध होते है जैसे कर -, चुंगी, ऋण, फीस, शुल्क आदि।	इसमें आय के निश्चित एवं सीमित स्रोत होते है जैसे व्यक्ति का वेतन -, मजदूरी, लाभ आदि।
5	गोपनीयता	आय-व्यय आंकडों का बजट के रूप में प्रतिवर्ष प्रकाशन एवं संसद में विचार-विमर्श होता है। इसमें गोपनीयता नहीं रहती।	व्यक्ति अपनी आय को अपने परिवार एवं स्वयं तक सीमित रखता है इसमें गोपनीयता रहती है।
6	घाटा व बचत	सामान्य तौर पर कल्याणकारी सरकार घाटे का बजट बनाकर जन-कल्याण, बिना करभार के करने का प्रयास करती है	व्यक्तिगत या पारिवारिक आय-व्यय ढांचे में बचत करना विवेकपूर्ण तथा दूरदर्शितापूर्ण माना जाता है एवं व्यक्ति इसके लिए प्रयासरत भी रहते है घाटे के बजट का कोई स्थान नहीं होता है
7	सुरक्षा व्यय	सार्वजनिक वित्त में देश के सुरक्षा व्यय का महत्वपूर्ण स्थान है।	निजी वित्त में सुरक्षा के नाम पर कोई व्यय नहीं होता है

1.4 वित्तीय प्रशासन: महत्व

अद्योगिक क्रान्ति के बाद तक वित्त प्रशासन की महत्ता को नहीं समझा गया था। अद्योगिक क्रान्ति के बाद जब सामाजिक जीवन बहुत जटिल हो गया तो सरकार की भूमिका अधिक व्यापक हो गयी। कल्याणकारी राज्य की संकल्पना ने राज्य के कार्यक्षेत्र में अधिकाधिक वृद्धि की। सरकार ने उन नए क्षेत्रों में प्रवेश किया जो राज्य के कार्यक्षेत्र से बाहर रखे गये थे। इस प्रकार बदलते हुए संदर्भ में वित्त प्रशासन ने बढते हुए सार्वजनिक व्यय को पूरा करने के लिए संसाधन की उत्पत्ति के नए तरीकों तथा साधनों को ढूंढने में अधिक महत्ता प्राप्त की। फैलिक्स ए. नीग्रो ने वित्तीय प्रशासन के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा था कि, ''वित्तीय प्रशासन आज अत्यन्त ही महत्व की वस्तु है, क्योंकि सरकारी सेवाओं पर व्यय की जाने वाली धनराशि में अत्यधिक वृद्धि हो गयी है। सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रत्येक कार्य के लिए द्रव्य की आवश्यकता है और वह इतने अधिक कार्य करती है जिससे यह

अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि वित्तीय प्रशासन के सम्बन्ध में ठीक सिद्धान्त तथा प्रविधियां प्रयोग में लायी जायें।'' यद्यपि दृढ वित्तीय व्यवस्था का शासन के लिए बहुत महत्व है। राजस्व, निर्धन नागरिक से भी प्राप्त किया जाता है, इसलिए सरकार का नैतिक कर्तव्य है कि वह उस धन को कुशलता तथा मितव्ययिता से व्यय करें। अकुशल वित्तीय प्रबंध के कारण शासन जनता पर अपना प्रभाव नहीं डाल पाता परिणामस्वरूप शासन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। प्रजातंत्र में ठोस वित्तीय व्यवस्था के पक्ष में निश्चित भावना होनी चाहिए। इसके अभाव में अपव्यय तथा अन्य बुरी बातों का दोष जनता प्रजातंत्र पर ही मढ देती है और परिणाम यह होता है कि जनता ऐसे प्रजातंत्र से ही घृणा करने लगती है। इस प्रकार का वित्तीय प्रशासन स्वयं प्रजातंत्र के भविष्य पर तुषारापात कर देता है।

विश्वव्यापी आर्थिक मंदी (1929-33) ने सरकारों की तटस्थ आर्थिक दृष्टिकोण की कमजोरी को उजागर कर दिया था। इसने आय तथा रोजगार एवं समानता तथा सामाजिक न्याय के स्थायित्व के मांग की भूख को और बढ़ा दिया था। केनेसियन परिप्रेक्ष्य पर आधारित राज्य ने राष्ट्रीय आय तथा रोजगार को बढाने में सक्रिय तथा सकारात्मक भूमिका निभायी। इसने एकता तथा समानता को बनाए रखने का कार्य भी संभाला। सरकार की राजकोषीय नीति लोगों के सामाजिक-आर्थिक जीवन को प्रभावित करने का शक्तिशाली हथियार बन गयी। रक्षा तथा प्रशासकीय व्यय अपनी गैर-उत्पादकता का लेबिल खो चुके थे तथा आय एवं रोजगार के स्तर को बढाने का नया उत्तरदायित्व सामने आ गया था। वित्त प्रशासन को राज्य के इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रभावशाली नीतियों के निर्धारण की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। इन्हें वित्तीय संसाधन को लोक उद्देश्यों में परिवर्तित करने के लिए कहा गया था तथा विभाजित न्याय द्वारा बहुत सी नीतियों में सुधार लाया गया। लोकतंत्र के लोकप्रिय सामाजिक संस्था के रूप में उदय के साथ लोक निधि पर संसदीय नियंत्रण की संकल्पना को सार्वभौमिक मान्यता मिली। ''बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं'' सिद्धान्त, जिसका अर्थ है, ''बिना संसदीय स्वीकृति के कोई सार्वजनिक व्यय नहीं।'' आधुनिक राजनीतिक समुदायों की अग्रणी नीति बन गयी। वित्तीय व्यवस्था को साधारण आदमी के समझने योग्य बनाने तथा व्यवस्थित वित्तीय प्रक्रिया विकसित करने की तुरन्त आवश्यकता महसूस की गई। इस प्रयत्न में आवश्यक कला की विशिष्टता का भी ध्यान रखा गया। वित्त प्रशासन 'लोकप्रिय सम्प्रभुता' को सामाजिक यथार्थ बनाने में आधुनिक सरकारों का हथियार बन गयी है। नियोजित विकास की संकल्पना ने विकास योजना तथा परियोजना के निर्धारण एवं कार्यान्वयन में लोक प्रशासकों को सक्रिय तथा गतिशील भूमिका निभाने का अधिकार दिया। इस परियोजना के क्रियान्वयन में समय तथा लागत अधिक महत्वपूर्ण हो गये। वित्त प्रशासन की संकल्पना निधि के आवण्टन पर नियंत्रण से, विभिन्न परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों में बदल गयी।

इस चुनौती का सामना करने हेतु निष्पादक बजट तथा दूसरें सम्बन्धित बजट में सुधार कर वित्त प्रशासन की सराहनीय उपलब्धियों को प्रदर्शित किया गया। करदाता अतिरिक्त बोझ को संभालने में असमर्थ है या कर देना नहीं चाहते है इस असंमजस की स्थिति में सार्वजनिक व्ययों को सावधानीपूर्वक वरीयता दिये जाने की आवश्यकता है संक्षेप में वित्त प्रशासन आधुनिक समय में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

1.5 वित्तीय प्रशासन की प्रकृति

वित्त प्रशासन की प्रकृति को दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से समझा जा सकता है- 1. परम्परागत दृष्टिकोण और 2. आधुनिक दृष्टिकोण।

1. **परम्परागत दृष्टिकोण-** इस दृष्टिकोण को मानने वालों का विचार है कि वित्तीय प्रशासन उत्पति, विनियोजन तथा वित्तीय संसाधनों की खोज से सम्पादित क्रियाओं का योग है जो लोक संगठनों को जीवित रखने तथा उनके विकास के लिए आवश्यक होता है। वे इस बात पर बल देते है कि किसी भी लोक प्रशासन में एक प्रशासनिक ढांचा होता है, जो धन के आदान-प्रदान को व्यवस्थित करने के साथ-

साथ इसे नियंत्रित और व्यवस्थित भी करता है इस व्यवस्था के कारण इन कोषों का सही और उत्पादक उपयोग हो पाता है। व्यवस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में इस दृष्टिकोण पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सहभागिता व्यवस्था का ही एक रूप है। लोक वित्तीय संगठनों को कुशल ढंग से चलाने के लिए वित्तीय सहायता देना वित्तीय प्रशासन का उत्तरदायित्व है। इसका कार्य है लोक संगठनों में समस्त वित्तीय क्रियाओं को नियोजित करना, कार्यक्रम बनाना, संगठन एवं निर्देश देना जिससे लोकनीति का उचित अनुपालन हो सके। इस व्यवस्था के भागीदारों को वित्तीय प्रबंधक समझा जाता है तथा वे वित्तीय प्रकृति के प्रबंधात्मक कार्यो को सम्पादित करते है यह दृष्टिकोण लोक वित्त के विशेषज्ञ सेलिगमैन के दृष्टिकोण को दर्शाता है। सार्वजनिक वित्त के शुद्ध सिद्धान्त की केन्द्रीय धारणा यह है कि सार्वजनिक वित्त को सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण की समस्याओं को वस्तुनिष्ठ ढंग से सम्पादित करना एवं सत्तारूढ राजनैतिक दलों के दृष्टिकोण के सम्बन्ध में बताना चाहिए। वित्तीय प्रशासन के विशेषज्ञ प्रो. गेस्टन इस दृष्टिकोण को मानते है। वे मूल्य की तटस्थता में विश्वास रखते हैं। उदाहरण के लिए ''वित्तीय प्रशासन सरकारी संगठनों का वह भाग है जो लोक निधि का संग्रह, सुरक्षा तथा आवंटन को दर्शाता है तो उसके विचार में यही दृष्टिकोण दृष्टि गोचर प्रतीत होता है।''

2. **आधुनिक दृष्टिकोण-** आधुनिक दृष्टिकोण वित्तीय प्रशासन को सार्वजनिक निधि बढाने तथा व्यय करने के साधन के बजाय लोक संगठनों की सम्पूर्ण प्रबंधकीय प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग मानता है। इसके अन्तर्गत लोक प्रशासन में सम्मिलित समस्त व्यक्तियों की समस्त क्रियाएं आती है। इसका कारण है कि लगभग प्रत्येक लोक अधिकारी निर्णय लेता है जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम वित्तीय पहलू से भी सम्बद्ध होता है यह परम्परागत सिद्धान्त के मूल्य तटस्थता के दृष्टिकोण को नकारता है। इसमें सार्वजनिक वित्त के तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को शामिल किया गया, जैसे- सामाजिक आर्थिक सिद्धान्त, जिसके अग्रदूत वैगनर, एजवर्थ तथा पिगोड है। केनेसियन परिप्रेक्ष्य के प्रकार्यात्मक सिद्धान्त तथा आधुनिक सार्वजनिक वित्त विशेषज्ञों के कार्यात्मक दृष्टिकोण। इनके दृष्टिकोण के अनुसार वित्त प्रशासन की निम्नांकित भूमिकाएं हैं-

- समानता लाने वाली भूमिका- इस भूमिका के अन्तर्गत वित्त प्रशासन धन सम्बन्धी असमानताओं को दूर करने का प्रयास करता है। राजकोषीय नीतियों के द्वारा आय को सम्पन्न वर्ग से निर्धन को हस्तान्तरित करने का प्रयास करता है।
- प्रकार्यात्मक भूमिका- सामान्य परिस्थितियों में अर्थव्यवस्था स्वयं कार्य नहीं कर सकती है इस भूमिका के अन्तर्गत, वित्त प्रशासन कराधान, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण के द्वारा अर्थव्यवस्था के उचित कार्यान्वयन का प्रयास करता है यह उच्च आर्थिक विकास तथा पूर्ण रोजगार बनाए रखने के लिए नीति उपकरणों को विकसित करता है।
- कार्यात्मक भूमिका- इस भूमिका के अन्तर्गत वित्त प्रशासन उन नीतियों का अध्ययन करता है जो निवेश के तीव्र प्रवाह को आसान तथा तीव्रता से बढने और राष्ट्रीय आय के विस्तार को बढाने के लिए सही आवंटन करता है।
- स्थायित्व सम्बन्धी भूमिका- इस भूमिका के अन्तर्गत वित्त प्रशासन का उद्देश्य है राजकोषीय तथा वित्त नीतियों द्वारा मूल्य स्तर एवं मुद्रास्फीति की प्रवृति में स्थायित्व को बनाए रखा जाए।
- सहभागी भूमिका- इस दृष्टिकोण के अनुसार वित्त प्रशासन समुदाय के सामाजिक कल्याण को बढाने के उद्देश्य से राज्य को लोक तथा निजी उत्पादनकर्ता के रूप में लाने के लिए नीतियों का निर्धारण

तथा कार्यान्वयन करता है यह राज्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भागीदारी द्वारा आर्थिक विकास को बढाने का प्रयास भी करता है

इस प्रकार वित्त प्रशासन साध्य तथा साधन के मामले में विकल्प का ढांचा प्रदान करता है जो राज्य की प्रकृति, चरित्र तथा इसके वैचारिक मूल्यों के आधार को दर्शाता है उदाहरण के लिए समाजवादी देशों में वित्त प्रशासन लोकतांत्रिक देशों से भिन्न होते है। इस प्रकार वित्त प्रशासन की आत्मा भी भिन्न-भिन्न सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न होती है।

1.6 वित्तीय प्रशासन का कार्यक्षेत्र

वित्त प्रशासन उन क्रियाओं से निर्मित है, जिनका उद्देश्य सरकारी गतिविधियों को धन उपलब्ध कराना तथा इस धन का वैद्य तथा कुशल उपयोग सुनिश्चित बनाना है गेस्टन गेज की परिभाषा से स्पष्ट होता है कि सरकारी संगठन निम्नांकित चार पहलुओं को संभालते है। यहीं वित्त प्रशासन का निर्माण भी करते हैं।

1. लोक निधियों का संग्रह, रक्षा तथा आवंटन।
2. लोक राजस्वों तथा व्यय का समन्वय।
3. राज्य की तरफ से ऋण संचालन का प्रबन्ध।
4. सरकार के वित्तीय मामले का सामान्य नियंत्रण।

आधुनिक सरकारों में उपरोक्त समस्त पहलुओं को वित्त विभाग तथा इसके सहायक अभिकरण देखते है। यद्यपि वित्त विभाग को आधुनिक सरकार के केन्द्रीय वित्त अभिकरणों के रूप में देखा जाता है तथापि इसे वित्त प्रशासन से नहीं जोड़ा जा सकता है। इसकी भूमिका वित्त प्रशासन की अपेक्षा वित्त प्रबन्ध से सम्बन्धित होती है। वित्त प्रबन्धक के रूप में यह सरकार के आर्थिक निर्णय निर्धारण में सहयोग देने वाले उपकरणों तथा तकनीकों का विवेचन करता है। वास्तव में ये प्रक्रियाएं वित्त प्रशासन का आवश्यक अंग है। वित्त प्रशासन का कार्यक्षेत्र इन प्रक्रियाओं द्वारा सुझाए गए कार्यो से अधिक वृहद है। लोक प्रशासन के कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि वित्त प्रशासन विधायी वित्त नियंत्रण में सन्निहित वित्त प्रक्रियाओं तथा संस्थाओं को दर्शाता है। उनका मानना है कि वित्त प्रशासन के कार्यक्षेत्र में अनुमानों की तैयारी, निधियों का विनियोजन, व्यय नियंत्रण, लेखांकन, लेखा परीक्षण, प्रतिवेदन, समीक्षा आदि सम्मिलित है। अतः लोकतांत्रिक संदर्भ में इस दृष्टिकोण को अधिक मान्यता मिल सकती है क्योंकि ये व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका के उत्तरदायित्व को बताता है। परन्तु आधुनिक लोकतंत्र के अनुभव से पता चलता है कि कार्यक्रम की वांछनीय मात्रा क्षेत्र तथा निर्देशन के निर्धारण तथा प्रशासकीय अभिकरणों के आवश्यकतानुसार वित्तीय संसाधनों से सम्बन्धित निर्णय में विधायी संलग्नता दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। यह सर्वविदित तथ्य है कि कार्यपालिका पर प्रभावी नियंत्रण बनाए रखने के लिए व्यवस्थापिका के साधारण सदस्य के पास सारी सूचनाएं नहीं होती है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण की अधिक उपयोगिता नहीं है। सरकार के वित्तीय पहलुओं पर विधायी नियंत्रण वित्त प्रशासन के कार्यक्षेत्र को पूरी तरह से नहीं दर्शाता है। दूसरा दृष्टिकोण वित्त प्रशासन के कार्यक्षेत्र को स्पष्ट करने के क्रम में बजट की अनिवार्यता पर बल देता है। उनके विचार में वित्त प्रशासन का कार्यक्षेत्र-बजट की तैयारी, बजट बनाना तथा बजट निष्पादन तक ही सीमित है। यद्यपि बजट वित्त प्रशासन का प्राण है फिर भी कुछ संचालन जो बजट की तैयारी के पहले किया जाता है वह भी बहुत महत्वपूर्ण है। नियोजन प्रक्रिया को वित्त प्रशासन के आवश्यक अंग के रूप में सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

अन्तिम विश्लेषण में एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, जिससे कि उपर्युक्त सभी दृष्टिकोणों को लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया जा सके। इस प्रकार के दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप वित्त प्रशासन के निम्नांकित पहलू घनिष्ठ क्षेत्र के रूप में उभरते हैं-

1. **वित्तीय नियोजन-** संकुचित अर्थ में बजट को नियोजन के रूप में समझा जा सकता है, क्योंकि इसका आधारभूत उद्देश्य है सरकार से उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, नीतियों के निर्धारण तथा कार्यान्वयन को बढाना। लेकिन वृहद अर्थों में नियोजन सरकारी नीतियों के सम्पूर्ण क्षेत्रों से सम्बन्धित है। यह नीतियों में अन्र्तसम्बन्धों की अवधारणा तथा समय संरचना की मांग करता है। यह नीति को दीर्घकालीन आर्थिक परिणामों के संदर्भ में देखता है। अतः समन्वय, नियोजन तथा बजट बनाने की आवश्यकता है। नियोजन निष्पादक बजट पद्धति इस दिशा में एक प्रयास है। इस स्तर पर वित्त प्रशासन को वित्त के स्त्रोतों तथा रूपों, पूर्वानुमानित व्यय की आवश्यकताओं, वांछनीय निधि विस्तार, निदर्शन आदि को ध्यान में रखना चाहिये।
2. **बजट बनाना-** यह वित्त प्रशासन का एक मुख्य यंत्र है। बजट प्रणाली एक साधन है जिसके माध्यम से वित्त प्रशासन को विशेष रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। इसलिये एक अच्छे वित्त प्रशासन की प्रणाली की विशेषताओं के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है वह समूचे रूप से बजट प्रणाली पर भी लागू होता है। वास्तव में किसी देश की अर्थव्यवस्था उसकी सरकार की बजटीय क्रियाओं से बहुत अधिक प्रभावित होती है। सरकारी बजट बनाना इन मुख्य प्रक्रियाओं में से एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोक साधनों का नियोजन किया जाता है तथा उन पर नियंत्रण किया जाता है। यह बजट के माध्यम से ही है कि सरकारी कार्यक्रमों को नागरिकों की सेवाओं में बढते क्रम से प्रस्तुत किया जाता है जिससे उनका भौतिक तथा नैतिक स्तर उच्च होता है। सरकार अपना कार्य बजट की सहायता से तथा बजट द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर रह कर ही करती है। इसमें महत्वपूर्ण पहलुओं, जैसे- राजकोषीय नीति, समानता तथा सामाजिक न्याय जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों का निर्धारण तथा परीक्षण किया जाता है। यह बजट व्यवस्था की शुद्धता से सम्बन्धित सिद्धान्तों एवं व्यवहारों का विवेचन करता है। इसका सम्बन्ध बजट की संचालित प्रक्रियाओं से भी है।
3. **बजट अधिनियम तथा कार्यान्वयन-** बजट की तैयारी के बाद अर्थात् वार्षिक राजस्व तथा व्यय के विषय में अनुमान लगाने के उपरान्त इसे कानूनी स्वीकृति प्राप्त करनी होती है। सर्वप्रथम बजट कार्यकारिणी द्वारा स्वीकार किया जाता है जो इसे विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत करती है जिससे कि इसे कानूनी दस्तावेज बनाया जा सके। बजट तैयार करने तथा इसके प्रस्तुत करने में कार्यकारिणी का केन्द्रीभूत दायित्व विधानमण्डल द्वारा बजट को अधिकृत करने में सुगमता प्रदान करता है तथा इस कार्य के पुर्नावलोकन तथा नीति सम्बन्धी मनन पर ध्यान केन्द्रित करने के योग्य बनाता है। कार्यकारी सरकार द्वारा तैयार एवं प्रस्तुत किए गए बजट का विधानसभा द्वारा पुनर्निरीक्षण मुख्य अवसर तो प्रदान नहीं करता बल्कि यह एक अति महत्वपूर्ण अवसर होता है जब प्रशासनिक कृत्यों की विशेषता तथा गुणवत्ता का परीक्षण किया जा सकता है। बजट का कार्यान्वयन कार्यकारी सरकार का दायित्व है तथा इस प्रकार कार्यकारी सरकार में शक्तियों का विभाजन बजट के कार्यान्वयन की कार्यप्रणाली को निर्धारित करता है। यह कार्यकारिणी का उत्तरदायित्व है कि वह राजस्व/कर तथा बिना कर आय एकत्रित करने के लिए समुचित तंत्र तथा कार्यप्रणाली के नियमों का निर्माण करें।
4. **संसाधनों का संगठन-** करों का आरोपण, दरों तथा करों का संग्रह आदि को संसाधन संगठन करने के प्रयास से सम्बन्धित माना जाता है। सरकार की बढ़ती हुई वचनबद्धता के कारण बजट सम्बन्धी घाटा सरकारी वित्त की सामान्य विशेषता बन गयी है। इस संदर्भ में घाटे की वित्तीय व्यवस्था की महत्ता बढ गयी है लेकिन यदि घाटे की वित्तीय व्यवस्था का स्वतंत्र रूप में प्रयोग करें तो यह राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए खतरनाक समस्या सिद्ध हो सकती है तथा असंयत स्फीति का कारण बन सकती है। सरकार जिन दूसरी चुनौतियों का सामना कर रही है वह है कर की चोरी तथा समानान्तर अर्थ व्यवस्था का विकास।

अतः सार्वजनिक ऋण भी राज्य संसाधन का एक महत्वपूर्ण तत्व है। ऋण उगाही का उपयोग केवल पूंजीगत वित्तीय व्यवस्था के लिए ही करना चाहिए। इस प्रकार आधुनिक वित्तीय प्रशासकों को संसाधन जुटाने के प्रयास के समस्त आयामों से पूर्ण रूप से परिचित होना चाहिए।

5. **कर प्रशासन-** एक समय ऐसा था जब कराधान को एक बुराई समझा जाता था, किन्तु अब यह एक सामाजिक आवश्यकता है। राज्य की प्रकृति तथा गतिविधियों में परिवर्तन के कारण तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के उत्पन्न हो जाने के कारण, लोगों को सेवाएं उपलब्ध करवाने के लिए उनकी प्रतिदिन बढ रही मांगो की पूर्ति के लिए तथा आधुनिक राष्ट्र/राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कराधान अपरिहार्य हो गया है। तथापि केवल कर लगाना ही यथेष्ट नहीं है वरन् वास्तविक बोझ तो इसके एकत्र करने पर पड़ता है। प्रत्येक समाज में कर चोरी तथा कर न देने की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य समस्याएं भी उत्पन्न हो सकती है, जैसा कि कर नियमों में जटिलता, लोगों के सहयोग में कमी, आर्थिक-सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याएं, कर अधिकारियों का दृष्टिकोण, कराधान प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता इत्यादि। इसके लिए प्रशिक्षित, दक्ष तथा ईमानदार पदाधिकारियों के एक विशाल कर प्रशासन तंत्र की आवश्यकता है। कर प्रशासन उस तंत्र के एक भाग के रूप में कार्य करता है जो कि राजस्व नीति तथा वार्षिक बजटों के कार्यान्वयन की दिशा में कार्य करता है।
6. **निवेश सम्बन्धी निर्णय-** पूंजीगत व्यय के वित्तीय तथा सामाजिक आर्थिक मूल्यांकन को परियोजना मूल्यांकन के नाम से जाना जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र में भारी पूंजी लगायी जा रही है। अतः वित्तीय प्रशासकों को परियोजना मूल्यांकन की संकल्पना, तकनीक तथा पद्धति से पूरी तरह अवगत होना आवश्यक है।
7. **लोक लेखों का प्रतिपादन-** वित्तीय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पक्ष सरकारी लेखों को जारी रखना है। विभिन्न प्रकार के संगठन ऐसे है जो सरकारी वित्तीय क्रियाओं को जारी रखने में रूचि रखते है अर्थात् करदाता, विधानसभा तथा निदेशक अधिकारी। करदाता सरकार को उत्तरदायी ठहराने में रूचि रखता है। विधानसभा की आंशिक रूचि उत्तरदायित्व लागू करने में होती है तथा आंशिक रूचि भविष्य की नीति निर्माण के लिए सूचना एकत्रित करने में होती है। निदेशक अधिकारी, अधीक्षण तथा नियंत्रण की आवश्यकता से प्रभावित होते है। इन सब तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए सरकार को लेखों की तैयारी करनी होती है तथा उनका प्रतिपादन करना होता है। लेखा विधि सरकारी एजेन्सियों की एक रोजमर्रा क्रिया है किन्तु यह अति महत्वपूर्ण है, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र के प्रतिवेदन में कहा गया हैं कि सरकारी लेखे बजट बनाने तथा अपनाने की प्रक्रिया को सरल बनाने में सहायक होने चाहिये। उन्हें प्रोग्राम के नियोजन, प्रशासन तथा नियंत्रण का लाभप्रद उपकरण होना चाहिए तथा साथ ही सरकार के आर्थिक कार्यक्रम के निर्माण करने तथा मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक सूचना को व्यक्त करना चाहिए।
8. **अंकेक्षण-** किसी भी वित्तीय प्रशासन का यह एक अभिन्न अंग है। लोक वित्त के संसदीय नियंत्रण का यह एक अपरिहार्य भाग है। यह लेखों के स्वतंत्र परीक्षण से सम्बन्धित है अथवा वित्तीय स्थिति के विवरण की सत्यता तथा किसी संगठन में सम्पूर्ण वित्तीय लेन-देन की जांच से सम्बन्धित है। चार्ल्स वर्थ के अनुसार, ''अंकेक्षण का अर्थ वह प्रक्रिया है, जिससे यह जानकारी प्राप्त की जाती है कि प्रशासन ने धन का उपयोग वैधानिक निर्देशों के अनुसार किया है, जिसके द्वारा धन विनियोजित किया गया था।'' अंकेक्षण के महत्व को निम्नलिखित शब्दों में विस्तृत रूप से कहा गया है- ''अंकेक्षण, न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधानपालिका के समान लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक है। इसका मूलभूत प्रयोजन इस बात को सुनिश्चित बनाना है कि सरकारी कोष का व्यय करते समय प्रत्येक प्रकार की वित्तीय परम्परा का पालन किया गया है नियम तथा उपबन्ध, जो कि व्यय से सम्बन्धित है उनका ध्यान रखा गया

है, व्यय उसी मद पर किया गया है जिसके लिए संसद ने इसका विनियोजन किया था। अंकेक्षण कार्यकारिणी तथा संसद के मध्य एक महत्वपूर्ण कडी उपलब्ध करता है तथा उसी सीमा तक क्रियाओं की व्याख्या करता है जहां तक कि पूर्वोक्त की निम्न पर वित्तीय वहन शक्ति होती है।'' अंकेक्षण की चार स्थितियां हैं-

- विनियोजित अंकेक्षण (Appropriation Audit)- सरकार लेखों से सम्बन्धित यह प्राथमिक तथा परम्परागत अंकेक्षण का कार्य है। इसका उद्देश्य इस बात की जानकारी प्राप्त करना है कि जो धन सरकार द्वारा व्यय किया गया है क्या वह उन्हीं सीमाओं के भीतर किया गया है जो संसद ने अनुदान करते समय निर्धारित की थी।
- नियामक अंकेक्षण (Regulatory Audit)- यह इस बात से सम्बन्धित है कि सम्पूर्ण नियमों तथा अधिनियमों का पालन किया गया है अथवा नहीं।
- मर्यादा अंकेक्षण (Propriety Audit)- इसे उच्चतर अंकेक्षण भी कहा जाता है। यह व्यय की औपचारिकता से आगे इसकी बुद्धिमता, निष्ठा तथा आर्थिकता का ध्यान रखता है।
- कुशल अंकेक्षण (efficient Audit)- इस प्रकार का अंकेक्षण हाल ही की उपज है तथा इसके महत्व तथा निहितार्थों पर अभी वाद-विवाद, विश्लेषण को परिभाषित किया जा रहा है।

उपर्युक्त वित्तीय प्रशासन के क्षेत्रों के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण विषय क्षेत्र है, संघ-राज्यीय वित्तीय सम्बन्ध। एक संघ में संघीय सरकार को ऐसे कार्य सौंपे जाते है जो कि सम्पूर्ण देश से सम्बन्धित होते है। प्रायः समस्त संघो में सुरक्षा, विदेशी मामले, संचार रेल विभाग आदि केन्द्रीय विषय होते हैं। वे समस्त कार्य, जो राज्य को प्रभावित करते है तथा वे कार्य जिनमें बड़े स्तर पर अन्तः राज्यीय समन्वय की आवश्यकता है, वे संघीय सरकार के पास होते है। प्रादेशिक अथवा राज्य सरकार को वही मामले सौंपे जाते हैं जो कि स्थानीय अथवा मूलभूत विशेषता के होते है। इसके साथ ही संघ सरकार तथा राज्यों के मध्य साधनों के विभाजन की व्यवस्था भी होनी चाहिए यद्यपि यह एक सरल कार्य नहीं है। राज्यों के कार्य कम होते है तथा कमोवेश स्थानीय प्रकृति के होते है तथापि राज्यों की संघ सरकार पर अधिक से अधिक साधनों के निर्धारण की मांग बढती ही रहती है। इस प्रकार किसी देश के वित्तीय प्रशासन में वित्तीय साधनों का विकास तथा केन्द्र एवं राज्यों में समन्वय एक जटिल क्षेत्र होता है।

1.7 वित्तीय प्रशासन के अवयव

सार्वजनिक वित्त के विशेषज्ञों ने वित्त प्रशासन के तीन अवयवों का उल्लेख किया है वे निम्न प्रकार से हैं- 1. सार्वजनिक राजस्व, 2. सार्वजनिक व्यय और 3. सार्वजनिक ऋण।

वित्त प्रशासन लोक वित्त से सम्बन्धित है तथा राज्य, वित्त के उपर्युक्त तथा कुशल प्रशासन के सिद्धान्तों एवं व्यवहारों को दर्शाता है, अतः वित्त प्रशासन के चिन्तकों ने वित्त प्रशासन के कार्यक्षेत्र में निम्न प्रशासकीय पहलुओं को भी सम्मिलित किया है - 1. मानव तत्व, 2. कार्य तथा संरचना तथा 3. व्यवस्था एवं कार्यविधि।

1. **मानव तत्व-** मानव तत्व में वे लोग शामिल होते हैं जिनकी संलग्नता योगदान, प्रलोभन या प्रेरणा द्वारा निर्धारित होती है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपना धन या समर्थन तभी देना चाहता है जब उसे उम्मीद होती है कि उसके त्याग एवं सहयोग का उसे उचित इनाम मिलेगा। कोई भी सार्वजनिक संगठन इस समझ की उपेक्षा आसानी से नहीं कर सकता।
2. **कार्य तथा संरचना-** कार्य तथा सरंचना संगठनात्मक प्रक्रियाओं को दर्शाते हैं। जैसे- विभागीय प्रक्रियाएं एवं एकीकृत क्रियाएं जिनके स्त्रोतों द्वारा संगठन को उपविभागों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध के लिए प्रावधान के साथ निर्माण किया जाता है।

3. **व्यवस्था एवं कार्यविधि-** व्यवस्था एवं कार्यविधि ऐसे उपकरण है जो कार्य तथा संरचना से व्यक्ति को जोड़ते हैं। ये तीनों तत्व संगठनात्मक परिणामों को उत्पन्न करने के लिए एक दूसरे के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

प्रशासन के तत्वों पर कोई भी बहस तब तक पूरी नहीं होगी जब तक कि उस परिवेश की बात न करें जो तत्वों के सार, चरित्र तथा योग्यताओं को प्रभावित करते है। वित्त प्रशासन दो परिवेशों से घिरा हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति ऊपरी व्यवस्था से परिचित होता है, जिसे सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक परिवेश के रूप में जाना जाता है। इसी माहौल में वित्तीय प्रशासन कार्य करता है। एक मध्यवर्ती उपव्यवस्था है जिसके अन्तर्गत वित्त प्रशासन द्वारा अनुसरण किए गए उद्देश्य, वित्त प्रशासन की संस्कृति में प्रदर्शित नियम, मूल्य, विश्वास तथा व्यवहार एवं वित्त प्रशासन द्वारा उपयोग की गयी तकनीक की प्रकृति आदि आते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. वित्तीय प्रशासन किन दो शब्दों से मिलकर बना है?
2. ''एक दक्ष शासन की समस्या में अन्तर्निहित विधिक तत्वों में वित्तीय प्रशासन से अधिक महत्वपूर्ण कोई दूसरा तत्व नहीं है।'' यह कथन किसका है?
3. वित्त प्रशासन की प्रकृति के दो दृष्किोण बताईये।
4. सार्वजनिक वित्त के विशेषज्ञों ने वित्त प्रशासन के कितने अवयवों का उल्लेख किया है?

1.8 सारांश

सभी समाजों में लोक प्रशासकीय व्यवस्था की अपनी वित्तीय प्रशासकीय व्यवस्था है। वर्तमान समाज में वित्त प्रशासन मानव कल्याण के हित के लिए अनेक भूमिकाएं निभाता है। लोक वित्त तथा निजी वित्त में काफी समानता है लेकिन कुछ अन्तर भी है। अपने विकास के दौरान वित्त प्रशासन ने अपनी गतिशीलता सिद्ध कर दी है और समाजार्थिक मांगों की बदलती अपेक्षाओं के अनुसार अपने को बदला है। हाल ही में वित्त प्रशासन ने समाज के साध्य तथा साधनों के मामले में विकल्प प्रदान करने की भूमिका अपने हाथों में ले ली है। जैसा कि हम बता चुके है कि इसका कार्यक्षेत्र दिन-प्रतिदिन बढ रहा है। वर्तमान समाज में यह बहुत से गतिशील पहलुओं जैसे वित्तीय नियोजन, बजट, संसाधन को संगठित करना तथा इसमें निवेश करना, लोक व्यय नियंत्रण आदि से सम्बद्ध है। अतः वित्तीय प्रशासन कुशल तथा प्रवीण होना चाहिए और उसे इस प्रकार कार्य करना चाहिए कि जिससे धन का जरा भी अपव्यय न हो।

1.9 शब्दावली

घाटे की वित्तिय व्यवस्था- यह वित्त के स्त्रो तों को दर्शाता हैं। इसमें करेन्सी नोट छापकर या उद्यम के द्धारा आय की अपेक्षा व्यय की अधिकता जानबूझकर बढ़ायी जाती है।

राजकोषीय नीति- लोक नीति जिसमें कुछ सार्वजनिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कराधान, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण का आरोपण किया जाता है।

विश्वव्यापी मंदी- विश्वव्यापी मंदी सन् 1929 में शुरू हुई तथा सन् 1935 तक बनी रही। उस समय की विशेष ता थी अर्थ में कमी, आम बेरोजगारी आदि।

निष्पादक बजट- इसे सामान्यतः कार्यो, कार्यरूपों, निष्पादन इकाई जैसी क्रियाओं, परियोजनाओं आदि के संदर्भ में सार्वजनिक व्ययों को प्रस्तुत करने की व्यवस्था के रूप में समझा जाता है जो मुख्य रूप से सरकारी उत्पाद तथा उसकी लागत को दर्शाता है।

नियोजन कार्यक्रम बजट व्यवस्था- यह कार्यक्रमों से उचित विकल्प का प्रयोग करके बजट में निधियों के उचित आवंटन की एक तकनीक है जो सीमित संसाधन के लिए प्रतिस्पर्धा रहती है यह असंख्य उपलब्ध विकल्पों में से सर्वक्षेष्ठ कार्यक्रम के चुनाव पर जोर देती है जिसे संसाधन की दी हुई मात्रा के अनुसार कार्यान्वित किया जाता है। शून्य आधार बजट- यह एक संचालित, नियोजित तथा बजट प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक प्रबंधक को अपने सम्पूर्ण प्रस्तावित बजट का विस्तार से स्पष्टीकरण देना होता है। यह प्रत्येक प्रबन्धक से स्पष्टीकरण की मांग करता है कि कोई भी धन क्यों खर्च होना चाहिए। इसके माध्यम से इस तथ्य पर भी ध्यान दिया जाता है कि कार्य को और अच्छे रूप से कैसे सम्पादित किया जाए।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वित्त और प्रशासन, **2.** डब्लू0 एफ0 विलोबी, **3.** परम्परागत और आधुनिक दृष्टिकोण, **4.** 3 प्रकार के

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बर्कहेड, जेसे, 1956 गवर्मेन्ट बजेटिंग, जॉन विली एण्ड सन्सः न्यूयार्क।
2. ग्रीब्स, हेराल्ड, एम. 1958 फाइनान्सिंग गवर्मेन्ट, फिफ्थ एडिशन, हेनरी कोल्ट एण्ड कम्पनीः न्यूयार्क।
3. लाल, जी. एस., 1976 पब्लिक फाइनान्स एण्ड फाइनान्सियल एडमिनिस्टेªशन इन इन्डिया, कपूरः नई दिल्ली।
4. प्रेमचन्द ए, 1963, कन्ट्रोल ऑफ पब्लिक एक्सपेन्डिचर इन इन्डिया, एलाइड पब्लिशर्सः नई दिल्ली।
5. सुन्दरम् के.पी.एम., 1974. इन्डियन पब्लिक फाईनान्स एण्ड फाइनान्सियल एडमिनिस्टेªशन, सल्तान चन्द एण्ड सन्स: नई दिल्ली।

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लाल, जी. एस., 1976 पब्लिक फाइनान्स एण्ड फाइनान्सियल एडमिनिस्टेªशन इन इन्डिया, कपूरः नई दिल्ली।
2. प्रेमचन्द ए, 1963, कन्ट्रोल ऑफ पब्लिक एक्सपेन्डिचर इन इन्डिया, एलाइड पब्लिशर्सः नई दिल्ली।
3. सुन्दरम् के.पी.एम., 1974. इन्डियन पब्लिक फाईनान्स एण्ड फाइनान्सियल एडमिनिस्टेªशन, सल्तान चन्द एण्ड सन्स: नई दिल्ली।

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वित्तीय प्रशासन के अर्थ की व्याख्या करते सार्वजनिक वित्त तथा निजि वित्त में अन्तर बताईये।
2. वित्तीय प्रशासन का अध्ययन वर्तमान समय में क्यों महत्वपूर्ण हो गया है?
3. वित्त प्रशासन के कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में परम्परागत दृष्टिकोण और व्यापक दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिये।

इकाई- 2 वित्तीय प्रशासन के उद्देश्य और सिद्धान्त

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 वित्त प्रशासन का इतिहास
2.3 वित्तीय प्रशासन: उद्देश्य
2.4 वित्तीय प्रशासन के सिद्धान्त
2.5 भारत का वित्तीय प्रशासन
  2.5.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
  2.5.2 नये उभरते रूझान
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने वित्त प्रशासन की प्रकृति एवं क्षेत्र के विषय में जाना। वित्त के बिना प्रशासन की अपनी कोई भूमिका नहीं हो सकती। 'वित्त' प्रशासन की धमनियों में रक्त की तरह है और वित्त के बिना प्रशासन का शरीर मृतप्राय ही है। वित्तीय प्रशासन के परम्परागत पक्ष को मानने वाले कहते हैं कि वित्तीय प्रशासन उत्पत्ति, विनियोजन तथा वित्तीय संसाधनों की खोज से सम्पादित क्रियाओं का योग है जो लोक संगठनों को जीवित रखने तथा उनके विकास के लिए आवश्यक होता है वे इस बात पर बल देते हैं कि किसी भी लोक प्रशासन में एक प्रशासनिक ढांचा होता है, जो धन के आदान-प्रदान को व्यवस्थित करने के साथ-साथ इसे नियंत्रित और व्यवस्थित भी करता है इस व्यवस्था के कारण इन कोषों का सही और उत्पादक उपयोग हो पाता है। आधुनिक पक्ष के समर्थक, वित्तीय प्रशासन को सार्वजनिक निधि बढाने तथा व्यय करने के साधन के बजाय लोक संगठनों की सम्पूर्ण प्रबंधकीय प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग मानते हैं।
शासन या सरकार को अपने कार्यों के सम्पादन के लिए जितनी आवश्यकता प्रशासन की है, उससे कहीं अधिक आवश्यकता वित्त की है।
इस इकाई में आप वित्तीय प्रशासन के उद्देश्य और सिद्धान्तों के बारे में

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- वित्त प्रशासन के इतिहास के संबंध में जान पायेंगे।
- वित्तीय प्रशासन के उद्देश्य और सिद्धान्तों की चर्चा कर पायेंगे।
- भारत में वित्तीय प्रशासन के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।

2.2 वित्त प्रशासन का इतिहास

प्राचीन भारत में चार शताब्दी ईसा पूर्व चाणक्य (कौटिल्य) ने सर्वप्रथम लोकोक्ति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था। कौटिल्य ने आय तथा व्यय का वर्गीकरण किया था। भूमिकर आय का मुख्य साधन था। कौटिल्य के अनुसार भूमिकर कुल उत्पादन का 1/6 से 1/10 तक रखा जाना चाहिये। प्राचीन भारतीय वित्त प्रशासन में 'घाटे के बजट' का कोई अस्तित्व नहीं था। ब्रिटिश पूर्व भारत में केवल 'मुहम्मद बिन तुगलक' ने 1330 ई. में घाटे की अर्थव्यवस्था को अपनाया था।

मुगलकाल में प्रत्यक्ष करों में भूराजस्व आयकर आदि सम्मिलित थे। अप्रत्यक्ष करों में सीमा शुल्क, बिक्री, चुंगी, आबकारी आदि सम्मिलित थे। गैर-कर आय मुस्लिम वित्तीय प्रशासन की महत्वपूर्ण विशेषता थी। राजस्व प्रशासन में आधारभूत ढांचे का निर्माण शेरशाह सूरी ने किया था। उसके दीवान राजा टोडरमल ने भूराजस्व को निर्धारित तथा एकत्रित करने की नियमावली का निर्माण किया था। यद्यपि मुगलों की भू-राजस्व पद्धति रैयतवाड़ी थी, तथापि मुगलों ने भू-राजस्व के लिए एक मध्यवर्ती सम्बन्ध पद्धति की भी व्यवस्था की थी, जिसको बाद में सन् 1793 में लार्ड कार्नबालिस ने स्थायी बन्दोबस्त में परिवर्तित किया।

1. **ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन वित्त-** कम्पनी के वित्तीय प्रशासन की शुरूआत सन् 1765 (बक्सर की लडाई) के पश्चात् हुई। भारत के वित्त पर कम्पनी का पूर्ण स्वामित्व था तथा भारत से प्राप्त धन कम्पनी की व्यापारिक आय मानी जाती थी। ब्रिटिश संसद अत्यधिक भ्रष्टाचार होने पर ही कम्पनी के प्रशासन में हस्तक्षेप करती थी तथा समय-समय पर सुधार अधिनियम पारित करती थी।

   गर्वनर जनरल की अधिकारिता केवल बंगाल तक होती थी। युद्ध के समय गवर्नर जनरल प्रान्तों के उपलब्ध धन का उपयोग कर सकता था अन्यथा प्रान्तीय वित्त पर प्रान्त के गवर्नर का स्वामित्व होता था। सन् 1833 के अधिनियम के द्वारा यह व्यापारिक कम्पनी एक प्रशासकीय तंत्र के रूप में परिवर्तित हो गयी तथा भारतीय वित्त का केन्द्रीकरण कर दिया गया। किसी भी प्रान्तीय सरकार का गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति के बिना किसी नये पद का सृजन करने अथवा नये वेतन, भत्ते देने की शक्ति नहीं थी। वित्त सचिव को सन् 1854 में भारत का महालेखाकार बनाया गया।

2. **ब्रिटिश शासन के अधीन वित्त प्रशासन-** राज्य सचिव (सेक्रेटरी ऑफ स्टेट-इन कौंसिल) वित्तीय पद्धति के मुख्य नियंत्रक थे। गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल केवल प्रदत्त वित्तीय अधिकारों का प्रयोग करते थे तथा वित्त विभाग भारतीय वित्त का संरक्षक होता था। मुख्य नियंत्रक के पास लेखा तथा लेखा परीक्षा का दोहरा उत्तरदायित्व था। अंग्रेजों ने भारत में वित्तीय पद्धति को ब्रिटिश वित्तीय पद्धति के अनुसार ढाला। सन् 1877 में लार्ड लिटन ने वित्तीय विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध में दूसरा महत्वपूर्ण कदम उठाया। भू-राजस्व, आबकारी, स्टाम्प, सामान्य प्रशासन, लेखन सामग्री, कानून तथा न्याय एवं कर राजस्व केन्द्र से प्रान्तों को हस्तान्तरित कर दिये गये।

   सन् 1882 में लार्ड रिपन ने आय तथा व्यय की तीन- शाही, विभाजित, प्रान्तीय श्रेणियां बनायी। शाही विकेन्द्रीकरण आयोग ने निम्न मुख्य सिफारिशें दी -

   - गवर्नर जनरल को प्रान्तों को दिये गये राजस्व में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।
   - प्रान्तों की आवश्यकताओं के अनुसार ही राजस्व का बंटवारा करना चाहिए।
   - अवशिष्ट राजस्व के कुछ मुख्य शीर्षों में से राजस्व निश्चित अंश के रूप में केन्द्र द्वारा लिया जाना चाहिए। उपर्युक्त प्रस्तावों को सन् 1912 में भारत सरकार ने अपना लिया। इसके अनुसार राजस्व का वितरण प्रान्तों में राजस्व के स्थान पर प्रान्तों की आवश्यकताओं पर आधारित किया गया।

सन् 1919 के अधिनियम ने विकेन्द्रीकरण तथा उत्तरदायित्वो को दो भागों में विभक्त किया, जिसमें केन्द्र को 47 विषय तथा प्रान्तों को 52 विषय दिये गये जो विषय स्पष्ट न हो उस पर गवर्नर जनरल इन कौंसिल का निर्णय सर्वोपरि माना गया।

इस व्यवस्था से केन्द्र के वित्त में घाटा अपेक्षित था, जिसे लार्ड मैस्टन अधिनिर्णय के द्वारा पूरा करने की व्यवस्था की गयी। सन् 1936 में सर आटो निम्यर अधिनिर्णय द्वारा केन्द्र तथा प्रान्तों में वित्तीय स्त्रोतों का विभाजन किया गया। भारत सरकार के सन् 1935 के अधिनियम ने भारतीय वित्त प्रशासन के प्रजातंत्रीय मार्ग को प्रशस्त किया।

3. **स्वतंत्रता पश्चात वित्त प्रशासन-** स्वतंत्रता के पश्चात् वित्तीय क्षेत्र में सबसे पहली समस्या देशी रियासतों के वित्तीय एकीकरण की थी। इस समस्या के समाधान के लिए अक्टूबर 1948 को वी.टी. कृष्णमाचारी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। 1 अप्रैल 1950 को सभी देशी रियासतों में वित्तीय एकीकरण की प्रक्रिया सम्पन्न हुई। जम्मू तथा कश्मीर के साथ एकीकरण 14 मई 1954 को हुआ। भारतीय संविधान में कर लगाने, उन्हें उगाने तथा उनसे एकत्रित धन को वितरित करने की उचित व्यवस्था की गयी है। सन् 1968-69 से परम्परागत या रूढिवादी बजट के स्थान पर निष्पादक बजट को भारत सरकार तथा अन्य बहुत से राज्यों ने अपनाया। स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक आर्थिक लाभ और लागत विश्लेषण के आधार पर निर्णय लेने की व्यवस्था की गयी। वित्तीय सुधारों में एक महत्वपूर्ण कदम के तहत सन् 1976 में भारत सरकार के लेखांकन को लेखा परीक्षण से अलग कर दिया गया।

आधुनिक युग के आरंभिक चरण में बाजार की शक्तियों के निष्पक्ष क्रियाकलाप को सुनिश्चित करने में, सरकारों ने निर्णायक की भूमिका निभाई थी। सरकारों का एकमात्र उद्देश्य था- मूलभूत सामाजिक आर्थिक ढांचे तथा सुविधासम्पन्न हित समूहों की उन शत्रुतापूर्ण ताकतों से सुरक्षा करना जो कि भीतर और बाहर से व्यवस्था को खतरा पैदा कर रही हो। यहां अपने मूल लक्ष्य के रूप में वित्तीय प्रशासन द्वारा सार्वजनिक व्यय पर न्यूनतम ध्यान दिया गया। सरकार के सीमा क्षेत्र में विनियोजनकारी एवं जनकल्याणकारी कार्यो को शामिल किये जाने के साथ ही, वित्तीय प्रशासन की कार्यमूलक भूमिका को, स्त्रोत एकत्रित करने तथा उनके उत्पादन परिनियोजन की दृष्टि से सुस्पष्ट किया गया।

इसका उद्देश्य, सरकार के लक्ष्यों को अधिकतम संभव कार्यकुशल तथा न्यूनतम व्यय के साथ हासिल करना था। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि राज्य के लक्ष्यों के बारे में कोई सार्वभौमिक समझौता मौजूद (विद्यमान) नहीं है। उदाहरण के रूप में हिटलर जैसी कोई निरंकुश सरकार बुनियादी मानव आवश्यकताओं पर ’सैन्य-बल’ को वरीयता दे सकती है जबकि सामाजिक आर्थिक समता के लिए प्रतिबद्ध कोई कल्याणकारी राज्य, हथियारों की होड (प्रतिस्पर्द्धा) के मुकाबले अपने नागरिकों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने को वरीयता देने की कामना कर सकता है। इसलिये शायद कोई यह सोच सकता है कि कार्यकुशलता तथा मितव्ययिता के अलावा लक्ष्यों का कोई निश्चित विन्यास संभव नहीं हो सकता, जिसे वित्तीय प्रशासन का कोई विद्यार्थी दृष्टिगत कर सके। किन्तु यदि समूचे विश्व के सरकारों के अनुभवों को देखा जाये तो पूरे विश्व में वित्तीय प्रशासन द्वारा अपनाए गए कुछ सामान्य लक्ष्यों की दृष्टि से विचार करना संभव है। इस तरह का प्रयास शायद वित्तीय प्रशासन के किसी विद्यार्थी द्वारा समाधान के संदर्भ में लक्ष्यों का विन्यास प्रस्तुत करने में सहायक न भी हो, किन्तु लक्ष्यों को कैसा होना चाहिए, इस पर उस विद्यार्थी के स्वयं के विचार बनाने में, निश्चित रूप से सहायक होगा।

2.3 वित्तीय प्रशासन: उद्देश्य

वित्तीय प्रशासन शब्द वस्तुतः बहुत ही व्यापक है, जिसमें अनेक क्रियाएं सम्मिलित हैं। उदाहरण के तौर पर विकसित देशों में बाजार की रोनक ने वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र का विस्तार करने का मार्ग प्रशस्त किया है, जो कि

घाटे के बजट, असीमित सार्वजनिक कर्ज तथा घाटे की अर्थव्यवस्था के लक्षणों से पहचानी जाती है। इसी तरह, विकासशील देशों में जहां सरकार ने विकास के लिए सुसाध्यकर्ता (अच्छे कार्यकर्ता) की भूमिका को अपना लिया हैं, वहां राजकोषीय नीतियां तथा प्रशासन, स्थायित्व, विकास, आत्मनिर्भरता, आय तथा धन की व्यक्तियों के बीच असमानता को कम करने तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास जैसे अनेक उद्देश्यों के विन्यास को प्रतिबिंबित करते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि ये देश उसी तरह के कार्य-उपकरणों का भी प्रयोग करते हैं। हालांकि राज्य के मामलों के प्रबन्धन में, राजनैतिक विचारधाराओं अथवा आर्थिक सिद्धान्तों का निर्णायक महत्व होता है फिर भी वित्तीय प्रशासन के कुछ बुनियादी उद्देश्य है जो राजनैतिक आर्थिक आवश्यकताओं से ऊपर रहते हैं। ये निम्नांकित हैं-

1. **घरेलू सार्वजनिक वित्त का प्रबंधन-** व्यक्ति के घरेलू मामलों की ही तरह, सार्वजनिक प्राधिकारी भी मानवीय आवश्यकताओं को संतोषप्रद ढंग से पूरा करने के लिए चिन्तित रहते हैं। उनकी प्रमुख समस्या है कि किस प्रकार निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सीमित साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग सुनिश्चित किया जाए। इसलिए वे वित्तीय प्रबंधक स्त्रोतों के इकट्ठा किये जाने तथा जनता की बढती आंकाक्षाओं के अनुरूप उनके तर्कसंगत परिनियोजन पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं।
2. **परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों का क्रियान्वयन-** वित्तीय प्रशासन में स्वागत योग्य घटना विकास, परियोजना निर्माण, मूल्य निर्धारण तथा क्रियान्वयन के माध्यम से अनुकूलतम सार्वजनिक निवेश सम्बन्धी निर्णयों को सुनिश्चित करने से सम्बन्ध रखता है। केन्द्र बिन्दु व्यय को नियंत्रित करने से बदलकर, निर्धारित समय सीमा तथा व्यय की उच्चतम सीमा के भीतर परियोजनाओं को क्रियान्वित करने पर केन्द्रित हो गया है।
3. **सार्वजनिक मामलों तथा सामाजिक सेवाओं का प्रावधान-** चूंकि सार्वजनिक मामलों तथा सामाजिक सेवाओं से मिलने वाले लाभ सभी को समान रूप से उपलब्ध रहते हैं और इनके लिए सार्वजनिक खजाने में किसी के व्यक्तिगत योगदान का भेदभाव नहीं कया जाता अतः इन मामलों की आपूर्ति के लिए कोई भी व्यक्ति भुगतान करने को प्रभावित नहीं करेगा। सार्वजनिक उद्यान जैसे सार्वजनिक स्थानों तथा लोक स्वास्थ्य सफाई जैसी सामाजिक सेवाएं निजी क्षेत्र के लिए नहीं छोड़ी जा सकती है जो कि जनता की सेवा के बजाय मुनाफा कमाने से ही अनुप्रेरित रहता है। अतः इन सेवाओं के लिए बजटीय सहायता, राजकोषीय नीति निर्धारकों के लिए एक चिन्ता का विषय बन जाती है।
4. **प्रगति, रोजगार तथा मूल्य स्थायित्व-** आधुनिक, सरकारों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सामाजिक रूप से वांछित आर्थिक प्रगति दर, उच्च रोजगार, मूल्यों के स्थायित्व के समुचित स्तर तथा एक सकारात्मक भुगतान संतुलन की स्थिति प्राप्त करने पर ध्यान केन्द्रित करे। इन उद्देश्यों की प्राप्ति स्वचालित ढंग से ही नहीं हो जाती वरन् इसके लिए सार्वजनिक पदाधिकारियों द्वारा नीतिगत पहल करना जरूरी होता है।
5. **पूंजी निर्माण-** किसी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति, काफी सीमा तक बढती हुई बचत द्वारा पूंजी निर्माण पर निर्भर करती है। राज्य की उत्पीड़न करने की शक्ति कितनी ही अधिक क्यों न हो, वह इस उद्देश्य को हासिल नहीं कर सकती। इस उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु, विवेकपूर्ण करारोपण तथा आर्थिक नीति यंत्रों जैसे प्राप्त वित्तीय एवं राजकोषीय उपाय करने होगें।
6. **कोषों का उत्पादक परियोजन-** अविकसित देशों की एक प्रमुख समस्या है, निवेशकारी कोषों को प्रतिस्पर्धापूर्ण परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों के बीच आवंटन करना। उद्यमियों द्वारा राष्ट्रीय हितों के लिए आवश्यक निवेशों की बजाय 'खतरा-रहित' एवं 'तुरन्त फल देने वाले' निवेशों को वरीयता दी जा सकती है। निवेशकारी कोषों के वांछित मदों में प्रवाह को सुनिश्चित करने के लिए, योजना-आयोग सार्वजनिक तथा साथ ही साथ निजी क्षेत्र के लिए विभिन्न प्रकार के निवेशों से सम्बन्धित प्राथमिकताओं के बारे में

दिशा-निर्देश तय करता है। वित्त मंत्रालय सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र, दोनों ही में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं पर कायम रहने को सुनिश्चित करने का कार्य करता है।

7. **संसदीय प्रक्रिया के सहज प्रवाह में सहायता-** सम्पूर्ण विश्व में प्रतिनिधिपूर्ण सरकारों का मूल सिद्धान्त, प्रतिनिधि संस्थाओं की सर्वोच्चता तथा सरकार की कार्यपालक शाखा पर उनका नियंत्रण है। इसका सबसे अधिक महत्वपूर्ण आयाम है- सार्वजनिक कोषों के इस्तेमाल पर विधानमण्डल का नियंत्रण। वित्तीय प्रशासन अपनी बजट प्रक्रिया तथा लेखा परीक्षा कार्यों के माध्यम से कार्यपालिका पर विधानमंडलीय इकाई की श्रेष्ठता को संभव एवं सुनिश्चित करता है।
8. **समता तथा समानता की प्राप्ति-** आय तथा सम्पदा का वितरण, उत्पादन के कारकों तथा मूल्य कारक के बाजार क्रियाविधि के द्वारा, वितरण किए जाने पर निर्भर करता है। यह उत्तराधिकार तथा साथ ही व्यक्तिगत धन की क्षमता के द्वारा सम्पत्ति के अधिकारों के प्रसारण पर भी निर्भर करता है। इस तरह का वितरण, समाज द्वारा मानी जाने वाली 'निष्पक्ष' या 'न्यायपूर्ण' वितरण व्यवस्था के अनुरूप शायद न भी रहे। हालांकि समता की प्राप्ति, वर्गीय टकरावों तथा बड़े स्तर पर हिंसा का अवसर प्रदान किये बिना ही एक विकास प्रक्रिया के माध्यम से की जानी चाहिए। आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण में एक प्रगतिशील कटौती की जानी चाहिए। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक क्षेत्र में समान अवसर देकर ही नई असमानताओं को फैलने से रोका जा सकता है। प्रगतिशील करारोपण, अनुदानों, आर्थिक राहतों आदि जैसी अपनी राजकोषीय नीतियों के द्वारा वित्तीय प्रशासन सम्पदा एवं अवसरों में उच्चतर समता कायम करने का वातावरण उत्पन्न कर सकता है। इसके अतिरिक्त पिफनर द्वारा बताये गये वित्तीय प्रशासन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं-
   - बजट तैयार करना अर्थात सरकार के आय व्यय का अनुमान लगाना।
   - बजट के लिए व्यवस्थापिका की अनुमति प्राप्त करना।
   - बजट अर्थात् आय-व्यय सम्बन्धी क्रियाओं को क्रियान्वित करना।
   - वित्त का राजकोष द्वारा प्रबन्ध अर्थात बजट सम्बन्धी समस्त प्रक्रियाओं के संबंध में संशोधन के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह करना।
   - विधायी उत्तरदायित्व अर्थात् बजट सम्बन्धी समस्त प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में संसद के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह करना।

संक्षेप में वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत राजकीय आय का संचय, संरक्षण और वितरण, आय तथा व्यय का समायोजन, राजकीय ऋणों की व्यवस्था, राज्य के वित्तीय मामलों का सामान्य नियंत्रण आदि का समावेश होता है। इन उद्देश्यों का प्रभाव, वांछित दिशा में सामाजिक आर्थिक रूपान्तरण लाए जाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

2.4 वित्तीय प्रशासन के सिद्धान्त

20वीं शताब्दी के आरम्भ में एडम स्मिथ जैसे विद्वान, वित्तीय प्रशासन को वित्त विज्ञान का एक अवयव मानते थे। कुछ समकालीन लेखकों के अनुसार वित्तीय प्रशासन एक राजकोषीय विज्ञान है। चूंकि राजकोष सरकारी तंत्र (व्यवस्था) का एक हिस्सा होता है, अतः वित्तीय प्रशासन राज्य की प्रकृति, चरित्र तथा संभावनाओं को प्रतिबिम्बित करता है। यही नहीं, वित्तीय प्रशासन वास्तविक समस्याओं से सम्बन्ध रखता है और इसलिए, इसके उद्देश्य तथा साधन अर्थव्यवस्था की प्रकार पर निर्भर करते है। इस सांस्कृतिक विशिष्टता के कारण इस दावे को स्वीकार करना बहुत कठिन है कि वित्तीय प्रशासन एक विज्ञान है और इसी अहसास के परिणामस्वरूप यह जानना जरूरी है कि किसी निश्चित समय में किसी देश के लिये वित्तीय प्रशासन के तरीके, राष्ट्रीय नीति के लक्ष्यों तथा

विद्यमान सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक वास्तविकताओं पर निर्भर रहते हैं। इन सीमाओं के कारण ही हिक्स जैसे कुछ अर्थशास्त्रियों ने लोक वित्त को एक कला के रूप में मान्यता दी। इन परिस्थितियों में वित्तीय प्रशासन के सिद्धान्तों की दृष्टि से विचार करना कठिन हो गया। हालांकि, यदि वित्तीय प्रशासन की उत्पति तथा इसके प्रशासनिक रूपरेखा पर, व्यापक राष्ट्रीय तथा अनुप्रस्थ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के द्वारा अध्ययन किया जाये तो प्रयोजनात्मक अवधारणाओं के रूप में कुछ आम दिशा-निर्देशों को प्राप्त करना संभव है। इसी संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण वित्तीय सिद्धान्तों को निम्नांकित रूप में सूचीबद्ध किया जा सकता है-

1. **जनहित, जनता की पसंद एवं लोकनीति की प्राथमिकता का सिद्धान्त-** प्रो. एडम ने अपनी कृति 'वित्त विज्ञान' में कहा है कि वित्त विज्ञान राज्य की आवश्यकताओं तथा उनकी आपूर्ति के साधनों को तय करता है, अतः राजकोषीय नीति को राज्य की सम्पत्ति को क्षति नहीं पहुंचानी चाहिए। उन्होंने इस कथन की राजकोषीय नीति एवं प्रशासन का एक महत्वपूर्ण स्वयंसिद्ध तथ्य माना है। उनके अनुसार 'राज्य की सम्पत्ति उदीयमान निजी उद्योग के तहत ही निर्मित होती है।' किन्तु राज्य की सम्पत्ति की इस अवधारणा में भारी फेरबदल हुए और वर्तमान में जनहित ही है जिसे राज्य की गतिविधि की स्थली तथा साथ ही साथ उसका केन्द्र बिन्दु माना जा सकता है। जनहित की परिभाषा विभिन्न तरीकों से की जा सकती है। जैसे- सामान्य कल्याण, समकालीन एवं अनुवर्ती पीढियों का आम जीवन स्तर, सामाजिक मूल्यों का सामूहिक अहसास, अधिकार एवं सुविधाएं आदि। राजकोषीय नीति व प्रशासन के लिए उन गतिविधियों पर ध्यान केन्द्रित करना अनिवार्य है जो लोकनीतियों में अभिव्यक्त हुए जनहित तथा जनसंतोष को पूरा करने में, एक निश्चित एवं न्यायसंगत योगदान करती है। यह अहसास करना अत्यन्त आवश्यक है कि राजकोषीय नीति से, लोकनीतियों में परिभाषित किए गए आम उद्देश्यों को ही प्राप्त करने में सहायता देने की अपेक्षा की जाती है। जनता की पसंद के बारे में स्पष्टता होनी चाहिए। कुछ लोगों ने जनता की पसंद को गलत ढंग से पहचान करते हुए इसे अधिकतम संख्या अथवा निजी तथा सामूहिक के हितों का समुच्चय माना है। जनता की पंसद वह है जो आम जीवन को समेटकर चलती है तथा जिसका सभी के द्वारा साझा किया जाता है।
2. **राजनैतिक दिशा एवं नियंत्रण का सिद्धान्त-** प्रत्येक समाज का एक राजनैतिक-वैधानिक ढांचा होता है जो सार्वजनिक तथा निजी सभी प्रकार की मानवीय गतिविधि को नियंत्रित करता है। यह ढांचा, सम्बद्ध देश के मूलभूत कानूनों तथा उन विद्यमान रीतियों, रिवाजों व परम्पराओं में स्थापित रहता है, जिनके द्वारा राजनैतिक सिद्धान्तों एवं विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है। लोक प्रशासन की एक उपव्यवस्था के तौर पर (रूप में), वित्तीय प्रशासन को समाज की संवैधानिक प्रक्रिया के जरिए (द्वारा) अभिव्यक्त हुए इन राजनैतिक विचारों एवं सिद्धान्तों के अनुरूप होना चाहिए। पुनः उस विशेष समाज के राजनैतिक ढांचे के साथ अपना सामंजस्य कायम करना चाहिए, जिससे वह सम्बद्ध हो। आधुनिक युग में, जनतांत्रिक विचारों एवं सिद्धान्तों ने पूर्वकालीन सम्पूर्ण ढांचो तथा सिद्धान्तों का स्थान ग्रहण कर लिया है। इसलिये, वित्तीय प्रशासन की प्रणाली का गठन एवं संचालन इस तरीके से किया जाना चाहिए जिससे विधानमण्डल द्वारा, विनियोजन अधिनियम वित्त अधिनियम तथा सार्वजनिक एवं वित्तीय दोनों तरह के अन्य नीतिगत प्रावधानों के द्वारा, अभिव्यक्त हुई इच्छा का अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके। कार्यपालक सरकार के वित्तीय प्रशासन पर अपने नियंत्रण को सुनिश्चित करने हेतु, विधान मण्डल, एक स्वतंत्र लेखा परीक्षा के माध्यम से, वित्तीय कार्यों की समीक्षा करता है।
3. **अनुरूपता का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि वित्तीय प्रशासन के उद्देश्यों एवं कार्यों तथा इन उद्देश्यों को हासिल करने के लिए आवश्यक मानव एवं भौतिक संसाधनों के बीच एक अनौपचारिक रिश्ता होना चाहिए। अर्थात् कार्यों की किस्में उन्हें संभालने के लिए आवश्यक कार्मिकों तथा इस उद्देश्य

के लिए जरूरी भौतिक सुविधाओं के बीच एक तर्कसंगत आपसी अंतर्सम्बन्ध रहना चाहिए। इस सिद्धान्त का सारतत्व यह है कि उद्देश्यों तथा कार्यों को कार्मिकों की भर्ती तथा वित्तीय संगठन को समृद्ध करने का आधार प्रदान करना चाहिए।

4. **प्रभावशाली नियंत्रण-** यह आवश्यक है कि वित्त की प्रत्येक अवस्था पर कठोर नियंत्रण रहे। यह नियंत्रण कार्यपालिका और व्यवस्थापिका दोनों की ही ओर से होना चाहिए। यह उचित है कि नियंत्रण यथासंभव सरल हो।
5. **संगठन एवं प्रबन्धन की एकता का सिद्धान्त-** पी.जे.जे. पिन्टो, जो वित्तीय प्रशासन के विषय पर एक सुप्रसिद्ध भारतीय हैं, ने इस सिद्धान्त को महत्व प्रदान किया। उन्होंने केन्द्रीकरण को कार्यकुशलता से जोडा। इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि इसे सर्वोच्च नौकरशाही द्वारा प्रत्येक मामूली मुद्दे के केन्द्रीयकरण के अर्थों में नहीं समझा जाना चाहिए। उनके अनुसार इसके मायने यह है कि विभिन्न वित्तीय तथा गैर-वित्तीय निकायों के कार्यों के बीच समन्वय रहे और सरकार के शीर्षस्थ अधिकारियों द्वारा इसका उच्चतम मूल्यांकन किया जाए।

   इस कथन का मतलब केन्द्रीकृत निर्णय प्रक्रिया तथा विकेन्द्रीकृत क्रियान्वयन नहीं है। विकासशील देशों के अनुभव ने केन्द्रीकृत निर्णय प्रक्रिया की अपर्याप्तता को उजागर कर दिया है। अब समय की मांग है कि केन्द्रीकृत दिशा निर्देशन हो तथा विकेन्द्रीकृत निर्णय प्रक्रिया एवं निर्णय क्रियान्वयन किया जाए। प्रशासनिक वित्तीय नियंत्रण की अवधारणा ने परिणामों के प्रबंधन की अवधारणा का मार्ग प्रशस्त किया है। इस परिवर्तित पृष्ठभूमि में, इस सिद्धान्त को, केन्द्रीकृत मार्गदर्शन, जिसके द्वारा अधिकतम उत्पादन तथा साथ ही अधिकतम उपयोगिता को सुनिश्चित करने की दृष्टि से, विकेन्द्रीकृत निर्णय-प्रक्रिया को सुलभ बनाया जा सके, के अर्थों में समझा जाना चाहिए। राष्ट्रीय योजना की अवधारणा एक अच्छा उदाहरण है।
6. **व्यवस्थापिका की इच्छानुसार कार्य निर्वहन-** वित्त मामलों में व्यवस्थापिका की इच्छानुसार काम किया जाना चाहिए, क्योंकि वही जन-इच्छा की प्रतिनिधि होती है अर्थात् व्यवस्थापिका देश की जनता की इच्छाओं, भावनाओं, अपेक्षाओं और आंकाक्षाओं की प्रतीक होती है। अतः कार्यपालिका का यह कर्तव्य है कि वह व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित वित्त की प्राप्ति और व्यय की योजना बनाए। आज की बजट प्रणाली इसी सिद्धान्त का अनुपालन करती है।
7. **स्थायित्व एवं संतुलन का सिद्धान्त-** तकनीकी दक्षता, वित्तीय प्रशासन का प्रमुख लक्षण है और इसलिए अकुशल तथा गैर-प्रशिक्षित कार्मिकों द्वारा इसका संचालन नहीं किया जा सकता। इस लक्ष्य से गंभीर समस्याएं सामने आ जाती है और तब जबकि विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित कार्मिकों का अभाव हो। इसलिए, यह सिद्धान्त वित्तीय संगठनों से, प्रभावोत्पादकता व कार्यकुशलता पर गंभीर प्रभाव पडे बिना विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित कार्मिकों की क्षति-पूर्ति करने की क्षमता विकसित करने की मांग करता है। इस उद्देश्य से मानव संसाधनो के विकास के एक श्रेष्ठ कार्यक्रम सहित प्रभावी जन-शक्ति नियोजन की आवश्यकता है।
8. **सरलता एवं लचीलेपन का सिद्धान्त-** किसी भी प्रजातांत्रिक युग में, मतदाता समूची सत्ता के स्त्रोत की तरह कार्य करते हैं। संसद सहित अन्य सभी प्रजातांत्रिक संस्थाएं, मतदाताओं से ही अपना प्राधिकार ग्रहण करती हैं। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक हैं कि वित्तीय-प्रणाली तथा इसके निर्माताओं को इस प्रकार से सरल होना चाहिए (जिससे) जो कि वे साधारण लोगों की समाज में आ सके। पीजेजे पिण्टों के अनुसार, यदि इस सिद्धान्त को विधिवत लागू किया जाय जो इससे लागत में कमी लाई जा सकती है। लचीलेपन के सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि वित्तीय संगठन को, काम के प्रवाह, मानव संरचना तथा

भौतिक सुविधाओं के उतार-चढाव के साथ स्वयं का सामंजस्य बैठाने की क्षमता विकसित करनी चाहिए।

9. **आचार, अनुशासन एवं नियमितता का सिद्धान्त-** आचार के सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि सार्वजनिक वित्तीय संगठन के अधिकारियों को सदाचार का व्यवहार करना चाहिये और जनता के सामने उच्च आचार स्तर तथा काम के तरीके की छवि प्रस्तुत करनी चाहिए। जैसे आयकर अधिकारी स्वयं सदाचार का उदाहरण प्रस्तुत करके, कर चोरी रोकने में काफी प्रभावी हो सकते है। अनुशासन के सिद्धान्त से तात्पर्य यह है कि सार्वजनिक वित्तीय संगठन में कार्यरत, प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उद्देश्यों, नियम-कानूनों, नीतियों, प्रक्रियाओं तथा कार्यक्रमों की अनुपालना की जानी चाहिये। दृढ वित्तीय अनुशासन के बिना कोई भी संगठन प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकता। कार्यरत प्रशासकों को, ऐसे थोपे गए अनुशासन की आदत पड गई है जिससे वांछित परिणाम नहीं प्राप्त हो सकते। इसके लिए स्वयंसेवी अथवा स्वयं अनुशासन की आवश्यकता है। नियमितता का सिद्धान्त से अभिप्राय यह है कि वित्तीय संगठन सहित कोई भी सार्वजनिक संगठन मध्यांतरों के साथ रूक-रूक कर संचालित होने से गुजारा नहीं चला सकता। अतः यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि प्रशासनिक कार्यभार एक निरंतर प्रक्रिया है।
10. **सार्वजनिक ट्रस्ट एवं जवाबदेही का सिद्धान्त-** वित्तीय प्रशासन द्वारा सार्वजनिक ट्रस्ट के रूप में जनता के धन की वसूली एवं वितरण किया जाता है, किन्तु यह काफी कठिन होता है और निजी हित के लिए इन कोषों का दुरूपयोग किये जाने की संभावना रहती है। इसीलिये वित्तीय प्रशासन को राजनैतिक वैधानिक प्रशासनिक, सांगठनिक, व्यावसायिक नैतिक तथा आंकाक्षागत आदि जैसे अनेक स्तरों पर, कोषों के समुचित उपयोग के लिए सार्वजनिक रूप से उत्तरदायी बनाना होगा।

2.5 भारत का वित्तीय प्रशासन

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तथा उभरते रूझानों के आधार पर भारत में वित्तीय प्रशासन की प्रणाली का वर्णन इस प्रकार हैं -

2.5.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

एक प्रचलन के रूप में, वित्तीय प्रशासन भारत के लिए कोई नई बात नहीं है। रामायण में संतुलित बजट तैयार करने के बारे में उल्लेख मिलता हैं। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तक पुराने अतीत, में वित्तीय प्रशासन विकास की उन्नत अवस्था में पहुंच गया था। कौटिल्य का अर्थशास्त्र वित्तीय प्रशासन पर एक शोध-प्रबंध था। इसके अन्तर्गत लोक-वित्त तथा वित्तीय प्रशासन के अनेकों स्वस्थ सिद्धांत मौजूद थे। मौर्यकाल में प्रशासन द्वारा अपने राजकोषीय कार्य इन्हीं सिद्धांतो के अनुरूप संपादित किए जाते थे। भू-राजस्व, राजस्व का प्रमुख स्त्रोत था तथा यह भूमि उपजों पर आधारित था। सोना, पशुओं आदि जैसी वस्तुओं पर भी कर लगाए जाते थे। लोक निर्माण कार्यों से प्राप्त आय गैर कर राजस्व का प्रमुख स्त्रोत था। जनता से उधार लेने तथा घाटे की अर्थव्यवस्था जैसी चीजों के बारे में कोई जानता तक नहीं था। उस समय एक भलीभांति संगठित वित्तीय संरचना मौजूद थी जिसके तहत महासंग्रहकार, महा-खजांची तथा महालेखाकार के कार्यालय शामिल थे। राजकोषीय निर्णय राजसी सनक तथा ठाट-बाट से प्रभावित रहते थे और वित्तीय जवाबदेही की कोई स्वस्थ प्रणाली मौजूद नहीं थी। गुप्तकाल में करीब करीब इससे मिलती जुलती वित्तीय प्रशासन की प्रणाली कायम रहीं। मुगलकाल में एक व्यापक एवं सुव्यवस्थित वित्तीय प्रणाली देखी गई। भू-राजस्व का राजस्व के प्रमुख स्त्रोत के रूप में होना जारी रहा।

अकबर के दरबार में कार्यरत एक कुलीन व्यक्ति, राजा टोडरमल ने इसे सुव्यवस्थित किया तथा एक नियम पुस्तक के रूप में राजस्व प्रशासन के सिद्धांतो का प्रवर्तन किया, जिसे आगे चलकर अंग्रेजों द्वारा अपना लिया गया।

उन्होंने भूमि के मसलों में बिचौलियो के संबंध कायम किए। जजिया, आयकर, संपत्ति कर इत्यादि, अन्य प्रत्यक्ष करों का अंश थे। अप्रत्यक्ष करों में सीमा शुल्क, बिक्री कर, चुंगी तथा उत्पादक शुल्क शामिल थे। सार्वजनिक कोषों के संग्रह, देखभाल तथा संवितरण के लिए सरकारी तथा गैर सरकारी खजानों का एक तंत्र मौजूद था।

यद्यपि, उपरोक्त विरासत ने भारत के राजकोषीय इतिहास पर अपने पद चिन्हों की अमिट छाप छोड़ी है फिर भी आधुनिक वित्तीय प्रणाली की शुरूआत ब्रिटिश शासन के दौरान हुई। इस काल में वित्तीय प्रशासन विकास के अनेक विशिष्ट चरणों से होकर गुजरा। भारत के वित्तीय प्रशासन के इतिहास को मोटे तौर पर निम्नलिखित चार विशिष्ट चरणों में विभाजित किया जा सकता है-

1. **प्रथम काल (1765 से 1858) संरचना का निर्माण तथा उसका सुदृढीकरण-** 1765 में दीवानी अधिकारों का अधिग्रहण ब्रिटिश भारत के वित्तीय प्रशासन की स्थापना का प्रतीक है। सभी शक्तियां ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंप दी गई और इन्हें कम्पनी द्वारा नियंत्रक बोर्ड के जरिए लागू किया जाता था। भारत से प्राप्त राजस्व को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वाणिज्यिक कमाई माना जाता था। ब्रिटिश सरकार, विभिन्न विनियोजन अधिनियमों में यथाउपबंधित, अप्रत्यक्ष तरीकों के जरिए ही कम्पनी प्रशासन पर प्रभाव डाल सकती थी। सार्वजनिक वित्त का अधीक्षण एवं नियंत्रण, गर्वनर के नेतृत्व में प्रत्येक प्रेसीडेन्सी में, अलग से सौंपा गया था। नियंत्रक बोर्ड से खासतौर पर अनुमति प्राप्त किए बिना भारत का गर्वनर जनरल इन कोषों का इस्तेमाल नहीं कर सकता था, हालांकि युद्ध के दौरान वह इन कोषों का उपयोग कर सकता था। 1833 में, कम्पनी प्रशासन में भारी अव्यवस्था के चलते, ब्रिटिश संसद ने कार्यवाही शुरू की। 1833 के भारत सरकार अधिनियम के तहत, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत पर स्वयं शासन करने का अधिकार खो दिया। इसके पास रखी संपत्ति को सम्राट के लिए ट्रस्ट के रूप में छोडा गया। अधिनियम ने अधीक्षण नियंत्रणकारी सत्ता भारत के गर्वनर जनरल को सौंप दी। गवर्नरों को भी अपनी सता से हाथ धोना पडा क्योंकि गवर्नर जनरल से मंजूरी प्राप्त किए बिना वे न तो किसी नए पद की स्थापना कर सकते थे न ही कोई अनुदान, वेतन, भत्ता, अथवा उपदान ही दे सकते थे। भारत सरकार के वित्त सचिव को, प्राक्कलन तैयार करने, उपायो तथा साधनों का प्रावधान, ऋणों पर बातचीत, तथा लेखे का पर्यवेक्षण आदि जैसे वित्तीय कार्यों के संचालन एवं समन्वय का दायित्व सौंपा गया। उसे नये व्यय सम्बन्धी तमाम प्रस्तावों की समीक्षा करनी होती थी।

   बंगाल का महालेखाकार, भारत का महालेखाकार बन गया तथा उसे वित्त सचिव के समक्ष वित्तीय विवरणियां तथा लेखे प्रस्तुत करने का दायित्व सौंपा गया। लेखापरीक्षा के लिए कोई प्राधिकारी नहीं रखा गया, क्योंकि यह प्रान्तों के पास बनी रही।

   वित्त तथा लेखे के एक संयोग के जरिए वित्त सचिव के हाथ मजबूत करने की दृष्टि से उसे 1854 में भारत का महालेखाकार बना दिया गया। यह व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल पायी। 1857 में, लार्ड कैनिंग द्वारा शुरू किए गए सुधारों के तहत, वित्त सचिव को केवल वित्त का कार्यभार सौंपा गया। भारत के महालेखाकार को जिसने वित्त सचिव के लेखा संबंधी कार्यभार ग्रहण किया था, लेखापरीक्षा का दायित्व सौंपा गया।

   वित्तीय प्रशासन के सुदृढीकरण की प्रक्रिया 1858 में शुरू हुई। 1858 के अधिनियम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की औपचारिक सत्ता समाप्त कर दी। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय वित्त व्यवस्था का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया। अधिनियम के तहत, भारत के लिए एक सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स का प्रावधान किया गया, उसकी मदद के लिए काउंसिल ऑफ इण्डिया का गठन किया गया। ब्रिटिश मंत्रिमण्डल में मिनिस्टर ऑफ स्टेटस हुआ करता था और भारतीय वित्तीय एवं प्रशासनिक मामलो के लिए उत्तरदायी होता था। उसकी पूर्वस्वीकृति के बिना भारतीय वित्त में से किसी तरह का विनियोजन नहीं

किया जा सकता था। गवर्नर जनरल को सौंपे हुए वित्तीय प्राधिकार प्राप्त थे। भारत का सैक्रेटरी ऑफ स्टेटस बजट की स्वीकृति आचार संहिताओं तथा कार्यकारी आदेशों में यथा-अभिव्यक्त नियमों तथा कानूनों की एक प्रणाली के द्वारा व्यय का नियंत्रण आदि जैसे उपायों द्वारा भारतीय वित्त का नियंत्रण करता था। उसके अधीनस्थ एक वित्तीय समिति तथा वित्त सचिव रहता था, जो एक सलाहकार के रूप में वित्त विभाग के भारतीय कार्यालय का प्रमुख होता था। काउंसिल ऑफ इण्डिया, जिससे चौकीदार की भूमिका की अपेक्षा की गई थी, अपनी भूमिका निभाने में असफल रही क्योंकि उसके पास एक 'निरंकुश' सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स को नियंत्रित करने का कोई साधन मौजूद न था। समय के अभाव, रूचि के अभाव तथा भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास आदि जैसे अनेक कारणों से भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के ऊपर संसदीय नियंत्रण भी काफी ढीला-ढाला था। सैक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इण्डिया वस्तुतः सता का प्रमुख केन्द्र बन गया। किन्तु स्थानीय परिस्थिति से अनभिज्ञता प्रभावी संचार व्यवस्था के अभाव, भौगोलिक कारकों (दूरियों) इत्यादि जैसी सीमाओं के चलते, वह प्रभावी नियंत्रण कायम करने की स्थिति में नहीं था। उसके पास भारत के गवर्नर जनरल के महत्वपूर्ण वित्तीय प्राधिकार सौंपने के अलावा कोई अन्य विकल्प था ही नहीं, गवर्नर जनरल ही भारतीय वित्तीय गतिविधियों का असली कर्ताधर्ता बन गया। भारत में उसे नियंत्रित करने वाली कोई सत्ता मौजूद न थी, क्योंकि विधान परिषद को वित्तीय मामलों की परीक्षा करने का कोई अधिकार नहीं था। प्रान्तों की केन्द्र पर अत्यधिक निर्भरता का युग, जो 1833 में शुरू हुआ था। 1858 के भारत सरकार अधिनियम के तहत भी जारी रहा। भारत के गवर्नर जनरल की तुलना में महालेखाकार की निम्नतर हैसियत जैसे की तैसे रही।

वित्त विभाग की अध्यक्षता तथा निर्देशन वित्त सदस्य को करना होता था। भारतीय वित्त के संदर्भ में वह अनेक कर्तव्यों का निर्वाह करता था। वह वार्षिक वित्तीय विवरण तैयार करता था, वित्त व्यवस्था को स्वस्थ रखना, सुनिश्चित करने के लिए आय-व्यय की प्रगति पर निगरानी रखता था, धन संबंधी व्यवस्था का पर्यवेक्षण एवं प्रशासन करता था, तथा प्रान्तीय वित्त विभागों का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण करता था। वित्त सचिव के नेतृत्व में वित्त विभाग को यह सुनिश्चित करना होता था कि भारत के लिए सैक्रेटरी ऑफ स्टे्टस द्वारा लागू प्रतिबंधो पर अमल किया जा रहा है तथा नियम कानूनों का पालन हो रहा है। इसके पास दोहरी शक्ति थी अर्थात् बजटपूर्ण छानबीन तथा व्यय की मूंजरी।

2. **द्वितीय काल (1860 से 1919) प्रणालियों तथा प्रक्रियाओं का विकास-** गवर्नर जनरल को महसूस हुआ कि वित्तीय समस्याओं का अकेले सामना करना असंभव है। 1859 में, उसके अनुरोध पर, कार्यकारिणी परिषद में उसकी मदद के लिए वित्त सदस्य का पद स्थापित किया गया। विल्सन पहला वित्त सदस्य था। उस समय तक बजट निर्माण की प्रणाली नहीं थी क्योंकि कानून में इसका कोई प्रावधान नहीं था। हालांकि कानून उससे यह मांग नहीं करता था फिर भी विल्सन ने 18 फरवरी 1860 को विधान परिषद में पहला बजट प्रस्तुत किया यद्यपि उसके बजट पर परिषद ने बहस नहीं की, किन्तु उसकी प्रस्तुति ने वित्तीय मुद्दे पर खासी दिलचस्पी पैदा की। इसने एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिया जिससे जब भी कोई वित्तीय मकसद सामने आता तो परिषद में बजट पेश होता और उस पर विस्तृत चर्चा होती। 1861-62 से वार्षिक बजट प्रणाली की स्थापना हुई। 1892 के परिषद अधिनियम ने गवर्नर जनरल आफ इण्डिया इन काउंसिल को विधान परिषद में बजट पर बहस को अधिकृत करते हुए नियम बनाने के लिए अधिकृत किया जिनके तहत बजट प्रस्तावों को उलट देने का अधिकार नहीं दिया गया। लेकिन सदस्यों को कोई प्रस्ताव पेश करने की स्वतंत्रता नहीं थी। सार्वजनिक कोष पर लोकप्रिय नियंत्रण कायम करने के लिए सदन के भीतर तथा बाहर लगातार आन्दोलन जारी रहा। 1895 तथा 1896 के अपने वार्षिक अधिवेशनों में कांग्रेस द्वारा संपूर्ण बजट व्यवस्था की मांग करते हुए प्रस्ताव पारित किए गए। 1909 का अधिनियम,

बजटीय विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था, किन्तु इससे सीमित लाभ ही मिल सके क्योंकि ये प्रस्ताव सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं थे। 1919 के अधिनियम ने बजट की विधानमंडलों द्वारा स्वीकृति की आधुनिक प्रणाली की शुरूआत की। विधानमंडलों को मंजूरी देने अथवा मंजूरी देने से इंकार करने अथवा उल्लिखित धनराशि में कटौती करने के लिए अधिकृत किया गया। किन्तु इस प्रणाली में दो खामियां थी। पहली यह कि सरकार लोकप्रिय जनमत को ठुकरा सकती थी और दूसरी यह कि बजट के आधे से भी अधिक मामलों पर मतदान नहीं कराया जा सकता था। 1935 के अधिनियम ने भी इस प्रणाली में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया।

3. **तृतीय काल (1919 से 1947) लोकतांत्रिकरण तथा विकेन्द्रीकरण-** 1909 तक केन्द्रीय विधानमंडल शक्तिशाली नौकरशाही तले दबा हुआ था। 1909 के मिण्टो-मार्ले सुधारों ने केन्द्रीय विधानमण्डल में निर्वाचित तत्वों के सीमित प्रवेश का इरादा बनाया। किन्तु 1919 के अधिनियम के तहत, प्रान्तीय विधानमंडलों में गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत हो गया तथा केन्द्रीय विधानमंडल का विस्तार किया गया और उसे अधिक लोकप्रिय प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाया गया। इस अधिनियम ने प्रांतीय सरकारों में अधिकतम लोकप्रिय प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया। इसने प्रान्तीय सरकारों में दोहरी शासन व्यवस्था की परिकल्पना भी की जिसके तहत प्रान्तीय स्वायतत्ता की प्रक्रिया 1937 में पूरी हुई जबकि 1935 के भारत सरकार अधिनियम के तहत लोकप्रिय सरकारों का गठन हुआ, केन्द्र में दोहरी शासन प्रणाली 1935 के अधिनियमों के तहत शुरू की गई जिसके अनुसार वायसराय की कार्यकारी परिषद के लोकप्रिय ढंग से निर्वाचित सदस्यों के मात्र 20 प्रतिशत व्यय रखे जाने का प्रावधान किया गया। लेकिन गवर्नर जनरल द्वारा उपभोग की जा रही विशेष शक्तियों ने लोकप्रिय भागीदारी को धक्का पहुंचाया।
4. **चतुर्थ काल (1950 से आज तक) विकासात्मक रूझान-** स्वतंत्रता ने वित्तीय प्रशासन की राजनैतिक पृष्ठभूमि में मौलिक परिवर्तन ला दिया। कार्यपालिका द्वारा विधायिका के प्रति जवाबदेही के सिद्धान्त को औपचारिक मान्यता प्रदान की गई। बजटीय तथा अन्य प्रणालियों एवं प्रक्रियाओं को इस सिद्धांत का पालन तथा क्रियान्वयन करने के अनुरूप ढाला गया, विधानमंडलीय समितियां सार्वजनिक कोषों के स्वरूप, विवरण, वैधानिक तथा निरतंरता में सक्रिय रूचि लेने लगे। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक एक संवैधानिक प्राधिकारी बन गया, जिस पर विधानमंडलीय समितियों को सहायता देने की भी जिम्मेदारी थी। वित्तीय प्रशासन ने धीरे-धीरे अपना केन्द्र बिन्दु स्थायित्व से हटाकर कल्याण, विकास तथा समता पर केन्द्रित किया। 1974 में नियोजन तथा बजट प्रक्रिया को मिलाकर निष्पादन बजट प्रणाली शुरू की गई। जिसने वित्तीय प्रक्रिया को परिणाम उन्मुखी बना दिया। वित्तीय नियंत्रण की प्रणाली को मूलतः पुनर्गठित किया गया जिससे कि इस योजना को क्रियान्वयन का एक औजार बनाया जा सके। परिणामस्वरूप 1955, 1958, 1962, 1968 तथा 1975 की योजनाओं जैसी अनेक प्रतिनिधित्व की योजनाओं के द्वारा व्यय करने वाले विभागों को महत्वपूर्ण शक्तियां सौंपी गई। वित्तीय नियंत्रण का दायित्व भी दृढता के साथ करने वाले विभागों पर निश्चित किया गया। इसे दो साधनों से प्राप्त किया जाना था। पहली, एकीकृत वित्तीय सलाह की योजना थी तथा दूसरी थी लेखापरीक्षा तथा खातों को पृथक किया जाना।

   विकासात्मक व्यय की बढती वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु, बजट स्रोत जुटाने का एक और औजार बन गया। परिणामस्वरूप, कर संरचना को तर्कसंगत बनाने के लिए अनेक कदम उठाये गये। काल्डोर के कर-प्रस्ताव, वांचू समिति रिपोर्ट, झा समिति रिपोर्ट आदि, इन कदमों के उदाहरण है। घाटे की अर्थव्यवस्था एक नियमित लक्षण बन गई क्योंकि सरकार को विकास की गति में तेजी लाने के लिए दबाव का सामना करना पड रहा था।

बैंकिग प्रणाली का राष्ट्रीयकरण, राष्ट्रीय कोषों के विकासात्मक गतिविधियों की ओर प्रवाह का एक औजार माना गया था। विकास एवं समता के ध्येयों को आगे बढाने में सार्वजनिक क्षेत्र ने उल्लेखनीय महत्व प्राप्त कर लिया। कुछ अवांछित परिणाम भी सामने आए। तेजी से बढती मुद्रास्फीति, भुगतान संतुलन का सिकुड़ना, सार्वजनिक क्षेत्रों से नकारात्मक परिणामों में वृद्धि सार्वजनिक बचतों में कमी तथा स्रोत आधार का सिकुड़ना इत्यादि का वित्तीय प्रशासन पर अंततः इस तरह बुरा प्रभाव हुआ कि सरकार को इन प्रवृतियों को सुधारने के लिए कदम उठाने पडे।

निष्कर्ष के रूप में प्रथम काल के दौरान मूलतः वित्तीय संगठन के निर्माण पर बल दिया गया जिसका उद्देश्य सैक्रेटरी ऑफ स्टेट्स तथा गवर्नर जनरल के रूप में नियंत्रण तथा निर्देशन के केन्द्रों का निर्माण करना था। द्वितीय काल को एक स्वस्थ बजट प्रणाली की उत्पति तथा उसके प्रयोग के प्रयास के लक्षणों से पहचाना जा सकता है। तृतीय काल में स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रतिक्रियाएं देखने को मिली और अनेक परिणाम के रूप में धीरे-धीरे लोकप्रिय तत्वों को शामिल करने के प्रयास हुए। इससे सता का विकेन्द्रीकरण तथा संघीय संरचना का निर्माण भी देखा गया। अंतिम चरण जनता तथा उसकी भलाई एवं विकास की तरफ झुकाव के लक्षण से पहचाना जा सकता है।

2.5.2 नये उभरते रूझान

नये उभरते प्रतिमानों को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

1. **राजकोषीय घाटे का विनियोजन एवं नियंत्रण-** भारत में विकासात्मक प्रयासों की खास विशेषता यह रही हैं कि यहां उपलब्ध स्रोतों से कहीं अधिक निवेश का प्रयास होता रहा है। इस अंतर को अनुकूल भुगतान संतुलन तथा विदेशी धन-प्रेषणों द्वारा दूर किया जाना चाहिए था। किन्तु भारतीय नीति-निर्धारकों ने मुद्रा प्रसार की असीमित खुराकों पर साख कायम करके इस अंतर को मिटाने की कोशिश की। घाटे की वित्त व्यवस्था को करारोपण समेत स्रोत जुटाने के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया गया। घाटे की वित्त व्यवस्था की वार्षिक औसत दर में वर्ष दर वर्ष वृद्धि होती गई। यह धारणयोग्य सुरक्षित सीमा से कहीं आगे निकल गई जो कि कथित तौर पर उपभोक्ता मामलों की आपूर्ति की वृद्धि दर, अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण के स्तर तथा उत्पादन एवं वितरण पर नियंत्रण की सीमा, द्वारा निर्धारित होती है। इस ताबड़तोड़ घाटे की वित्त व्यवस्था के परिणाम के तौर पर साठ के दशक के मध्य से ही मुद्रास्फीति की ऊंची दर, अर्थव्यवस्था का प्रमुख लक्षण बन गई है। इसने भुगतान संतुलन की समस्या पैदा कर दी है। जुलाई 1991 में, यह परिस्थिति एक आर्थिक संकट में बदल गई।

   इस संकट को हल करने के लिए सरकार को अनेक उपाय करने पडे। प्रमुख लक्ष्य था राजकोषीय घाटे पर नियंत्रण करना।
2. **गैर-विकासात्मक व्यय में कटौती-** भारतीय स्रोत का एक बड़ा हिस्सा गैर-विकासात्मक व्ययों में व्यर्थ चला जाता है जो कि एक गैर-उत्पादक प्रवाह है। गैर-विकासात्मक व्यय में भारी वृद्धि हुई है। इस व्यय का एक बड़ा हिस्सा फिजूलखर्ची, अक्षमता तथा निष्फल लोक-नीतियों एवं गतिविधियों से जुडा हुआ है। लोक-नीति ने व्यय को कम करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। बचतों का अधिकांश भाग, आर्थिक राहतों, रक्षा-व्यय, सार्वजनिक उद्यमों के स्रोतों के अंतरण, चालू एवं पूंजी व्यय, में कटौतियां करके, प्राप्त किया जाना है। सरकार ने घोषणा की है कि वित्त-वर्ष की बकाया अवधि के दौरान, अनुपूरक विनियोजनों के जरिए, व्यय में कोई वृद्धि नहीं की जाएगी, जब तक कि इस तरह के प्रस्तावों के साथ समान रूप से कहीं अन्यत्र बचत के सुझाव न दिए गए हो।

3. **शून्य-आधारित परिप्रेक्ष्य का विकास-** भारत में बजटीय निर्णयों का प्रमुख लक्षण वृद्धिकारी दृष्टिकोण रहा है। हालांकि समूचे स्तर पर शून्य आधारित बजट प्रणाली की स्थापना का प्रयास नहीं किया गया हैं, पिछले करीब 5 वर्षों के दौरान विकसित हुई व्यय-नीति ने, इस नई बजटीय अवधारणा के मूलभूत आधार-वाक्य पर ध्यान केन्द्रित किया। यह मांग की गई है कि सरकारी व्यय के किसी भी क्षेत्र को छानबीन से परे नहीं रखा जाना चाहिए।
4. **आकस्मिकता दृष्टिकोण का प्रयोग-** आकस्मिकता दृष्टिकोण सार्वजनिक संगठन की सभी उप-प्रणालियों, जिनमें पर्यावरण की उच्चतर-प्रणाली भी शामिल हैं, के विश्लेषण एवं समझ पर बल देता है जिससे कि लोक-नीतियों तथा प्रशासनिक कार्यवाहियों को विशिष्ट परिस्थितियों तथा पृष्ठभूमियों की मांगों के अनुरूप ढाला तथा समन्वित किया जा सके। यह किसी लोक-प्रशासक को एक संपूर्ण समस्या का व्यावहारिक हल ढूंढने में सक्षम बनाता है। हाल के आर्थिक संकट का सामना करने हेतु सरकार के दृष्टिकोण में इस आधुनिकतम सिद्धान्त के मूल तत्व प्रतिबिंबित हुए है। उदाहरण के रूप में यद्यपि घाटे के वित्त व्यवस्था की तरफ सरकार के पास राजनैतिक सत्ता तथा बुनियादी रूझान मौजूद हैं, किन्तु वह इसके विपरीत फैसले लेने के लिए बाध्य है। ऐसा परिस्थितियों के दबाव के कारण हुआ। इसी तरह, आत्म-निर्भरता तथा सामाजिक बराबरी की अवधारणाएं अब सरकार की मुख्य चिन्ताएं नहीं रही हैं, जैसा कि विदेशी भागीदारी जिसमें अप्रवासी भारतीय पर विशेष बल दिया गया है, कि तरफ खुले-दरवाजे वाली नीति से स्पष्ट हो जाता हैं। इसी तरह के अन्य लोक नीतिगत निर्णय भी लिए गए हैं जो अर्थव्यवस्था को बाजार-क्रियाविधि की तरफ मोडने के प्रयास है।
5. **सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर कम किया जाना-** भारत में, सार्वजनिक उद्यमों के लिए तर्क का आधार इस उक्ति पर आधारित रहा है, कि राष्ट्रीय लक्ष्यों के प्राप्ति के लिए राज्य का स्वामित्व जरूरी है। इस मूल्यगत निर्णय के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर राष्ट्रीयकरण किया गया था। सार्वजनिक उद्यमों की बडी संख्या में लगातार बढते घाटों, राजकोषीय घाटे में कमी लाने हेतु स्रोतों की आवश्यकता, सार्वजनिक उद्यमों के निजीकरण की तरफ विश्वव्यापी रूझान, इन सभी ने मिलकर सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति सरकार की नीति में परिवर्तन ला दिया। सरकार की नई उद्योग नीति ने इस विचारधारा का अंत कर दिया। सार्वजनिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र की समता-भागीदारी को बढावा देने की सरकार की मुहिम, इस नये दृष्टिकोण को प्रदर्शित करने वाला उल्लेखनीय नीतिगत उपाय है।
6. **सार्वजनिक मामलों तथा सेवाओं की गैर-नौकरशाही आपूर्ति-** सरकार सार्वजनिक मामलों तथा सेवाओं को प्रतिस्पर्धापूर्ण ढंग से प्रदान करने की दृष्टि से विचार कर रही है ताकि सार्वजनिक इजारेदारी के गड्ढे में गिरने से बचा जा सके। उदाहरण के बतौर, सरकार ऊर्जा उत्पादन एवं वितरण, इलेक्ट्रोनिक प्रचार माध्यम तथा दूर-संचार, सडक निर्माण इत्यादि के क्षेत्र में निजी-क्षेत्र को शामिल करने के बारे में गंभीरता से विचार कर रही है।
7. **विकास योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता हेतु विकेन्द्रीकृत दायित्व पर बल-** योजना बनाने तथा साथ ही योजना के लिए वित्त जुटाने का दायित्व संघीय सरकार पर रहा है। राज्य सरकारे अपने बजटीय प्रावधानों द्वारा समर्थित योजनाओं की बजाय, केन्द्र द्वारा प्रसारित योजनाओं को ही लागू कर सकी है। राज्यों में इस तरह की प्रवृति के चलते स्रोत जुटाने के काम के प्रति उदासीनता का भाव रहा है। यह लक्षण, राज्य सरकारों द्वारा लोकप्रिय उपायों पर बढते हुए जोर से स्पष्ट हो जाता हैं।
8. **नियंत्रणहीनता तथा उदारीकरण की ओर-** संघीय सरकार बाजार-क्रियाविधि को पूरी स्वतंत्रता प्रदान करने का प्रयास कर रही है जिससे उद्यमशील व्यापारी व्यक्तियों की उत्पादन क्षमता को अधिकाधिक बढाया जा सके और इस तरह मुक्त बाजार-अर्थव्यवस्था की तरफ बढ रही है। निजी क्षेत्र तथा विदेशी

प्रत्यक्ष निवेश की उचित आवश्यकताओं के अनुरूप उद्योग-नीति में अनुकूल संशोधन कर लिए गए है। व्यापार नीति तथा वाणिज्य नीति में भी इसी तरह के परिवर्तन किए गए है।

लोगों में यह आशंका बढ रही हैं कि आय तथा संपत्ति की असमानताएं बढकर भारी आघात पहुंचा सकती है और समाज के गरीब तथा कमजोर तबके भारी उपेक्षा का शिकार होकर उन्हीं के हाल पर छोड दिए जा सकते है। इस दुर्भाग्यपूर्ण रूझान की क्षतिपूर्ति काफी हद तक सामाजिक सेवाओं तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर व्यय में बढोतरी के जरिए की जा सकती है। इसके प्रमाण मिल रहे हैं कि सरकार, सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत बनाने तथा अन्य तरीकों से, इस तरह की नीतिगत पहल कर रही है जिनसे यह सुनिश्चित हो जाये कि प्रगति को समता की कुर्बानी देकर, हासिल न किया गया हो।

निष्कर्षतः इन नये रूझानों का आशय बाजार की शक्तियों को नौकरशाही नियंत्रण से मुक्त करना है। ये रूझान कम विकसित देशों की जरूरतों के काफी अनुकूल पाए गए है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में अंग्रेजों से पूर्व किस शासक ने घाटे की अर्थव्यवस्था को अपनाया?
2. किस ब्रिटिश गवर्नर द्वारा आय तथा व्यय की तीन श्रेणियां बनाई गई?
3. लेखांकन को लेखा परीक्षण से कब अलग किया गया?
4. वित्तीय प्रशासनको वित्त विज्ञान का एक अवयव किसने माना?
5. 'वित्त विज्ञान' किसकी रचना है?
6. 'संगठन एवं प्रबन्धन की एकता का सिद्धान्त' किस भारतीय विद्वान ने दिया?
7. किस ब्रिटिश गवर्नर द्वारा वित्त सचिव को केवल वित्त का कार्यभार सौंपा गया?
8. भारत में वित्तीय प्रशासन के सुदृढीकरण की प्रक्रिया कब प्रारम्भ हुई?
9. नियोजन तथा बजट प्रक्रिया को मिलाकर 'निष्पादन बजट प्रणाली'कब शुरू की गयी?

2.6 सारांश

न्यूनतम सार्वजनिक व्यय सरकार का मुख्य उद्देश्य रहता था। धीरे-धीरे वित्तीय प्रशासन की कार्यमूलक भूमिका में परिवर्तन आया। इसे स्त्रोतों के एकत्रीकरण तथा उनके उत्पादक विनियोजन की दृष्टि से देखा जाने लगा। यद्यपि, वित्तीय प्रशासन से किसी निर्दिष्ट समय की लोकनीतियों में स्पष्ट किए गए आम उद्देश्यों को पूरा करने में, सहायता करने की अपेक्षा की जाती है फिर भी कुछ ऐसे मूलभूत उद्देश्य होते हैं, जिन्हें लेकर वित्तीय प्रशासक चलते हैं, जैसा कि विकसित तथा विकासशील देशों के अनुभव से स्पष्ट है। सांस्कृतिक विशिष्टता के कारण, वित्तीय प्रशासन के सार्वभौमिक सिद्धान्त तय कर पाना संभव नहीं है। हालांकि, अन्योन्य-राष्ट्रीय तथा अन्योन्य-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के हमारे, अनुभव के आधार पर, मोटे तौर पर दिशा-निर्देशों के रूप में हम कुछ सिद्धान्त निश्चित कर सकते है। इनके अंतर्गत, लोक नीति तथा राजनैतिक दिशा व नियंत्रण की सर्वोच्चता, संगठन तथा प्रबंधन की एकता, उद्देश्यों, कार्यों तथा स्त्रोतों के बीच अनुरूपता, स्थायित्व, सरलता, संतुलन तथा लचीलापन, इत्यादि शामिल है। भारत में वित्तीय प्रशासन ई.पू. चौथी सदी तक एक विकसित अवस्था तक पहुंच गया था। भारत के राजकोषीय इतिहास में इतना कुछ है कि हम उस पर सहज ही गर्व कर सकते है। वित्तीय प्रशासन की आधुनिक प्रणाली को स्थापित करने की शुरूआत ब्रिटिशकाल के दौरान हुई। 1765 से 1858 के बीच के काल में वित्तीय प्रशासन की एक स्वस्थ संरचना निर्मित करने के अनेक उपाय किए गए। वित्तीय बजट प्रस्तुत करने वाला पहला व्यक्ति विल्सन था, जिसे आगे चलकर परिष्कृत किया गया। 1919 तक हमारे पास खासी विकसित वित्त-व्यवस्था तथा प्रक्रियाएं विकसित हो गई थी। देश के वित्तीय इतिहास में लोकतांत्रिकरण तथा विकासात्मक रूझान मील का पत्थर बन गए।

भुगतान संतुलन की प्रतिकूल स्थिति तथा तेजी से बढती मुद्रा-स्फीति के चलते सरकार को 1919 में अत्यंत मूलभूत कदम उठाने पडे। इनके अंतर्गत, राजकोषीय घाटे पर नियंत्रण, नौकरशाही नियंत्रण में कटौती, स्रोत जुटाने के जटिल विकल्प, सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर में कमी, तथा परिचायक नियोजन, आदि शामिल है। इस बात की संभावना हैं तथा आशा है कि बाजार-अर्थव्यवस्था की दिशा में चलने तथा विश्व-अर्थव्यवस्था के साथ एकता स्थापित करने से, शायद आर्थिक समृद्धि के एक युग का सूत्रपात हो सकता है। हालांकि, गंभीर आशंकाएं भी मौजूद है। मूल्यों को पीछे लाने में सरकार की अक्षमता ऐसी ही चिन्ता का विषय है।

2.7 शब्दावली

भुगतान संतुलन- यह एक प्रकार का आय-विवरण है जिसमें किसी देश के व्यक्तियों, फर्मो, सरकारी इकाइयों तथा अन्य सभी देशों के व्यक्तियों, फर्मो तथा सरकारी इकाइयों के बीच हुए समस्त लेन देन का विवरण दर्ज किया जाता है। यह देशवासियों तथा शेष विश्व के बीच हुए लेनदेन का रिकॉर्ड प्रदर्शित करता है जिसमें भुगतानों को देश की मुद्रा में अभिव्यक्त किया जाता है।

दीवानी अधिकार- 1765 में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बंगाल तथा उड़ीसा में टैक्स वसूलने के लिए सुरक्षित अधिकार।

दोहरी शासन प्रणाली- यह मोटेव्यू चेम्सफोर्ड अधिनियम, 1919 के तहत् प्रान्तों के स्तर पर शुरू की गई द्विस्तरीय सरकार है इसके तहत समूचे प्रशासन को 'आरक्षित विषयों' (पाषदों द्वारा नियंत्रित) तथा अनारक्षित विषयों (मंत्रियों द्वारा) में विभाजित कर दिया गया था।

उत्पादन के कारक- किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए आवश्यक स्रोत अर्थात भूमि, श्रम तथा पूंजी।

मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था- एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसका नियोजन नियंत्रण सरकार द्वार नहीं किया जाता । यह एक प्रतिस्पर्धायुक्त अर्थव्यवस्था है। उत्पादन के कारकों का निजी स्वामित्व रहता है तथा निजी उघमों की पहल कदमी से उत्पादन होता है।

एकीकृत वित्तीय सलाह- यह प्रणाली 1975-76 में भारतीय वित्त व्यवस्था में लागू की गई थी जिसमें सम्बद्ध प्रशासनिक मंत्रालय में कार्यरत वित्तीय सलाहकार को प्रशासनिक मंत्रालय के साथ-साथ वित्त मंत्रालय के प्रति भी उत्तरदायी बनाया गया था। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि वित्तीय सलाहकार को प्रशासनिक मंत्रालय से जुड़कर बड़े स्तर पर विकासात्मक गतिविधियों में भाग लेने तथा साथ ही वित्त मंत्रालय आम दिशा- निर्देशों के तहत् कार्य करने में सक्षम बनाया जा सके।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मुहम्मद बिन तुगलग, **2.** लार्ड रिपन, **3.** सन् 1976, **4.** प्रो0 एडम स्मिथ, **5.** प्रो0 एडम स्मिथ, **6.** पी0 जे0जे0 पिन्टो, **7.** लार्ड कैनिंग, **8.** सन् 1858, **9.** सन् 1974

2.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. एडमस, एच.सी. वित्त का विज्ञान, हैनरी होल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क।
2. भार्गव, आर.एन. भारतीय लोक वित्त, बी.डी. भार्गव एण्ड संसः चंदौसी।
3. लाल जी. एस. भारत में लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन, एच. पी. कपूर: नई दिल्ली।
4. पिन्टो, जे.जे. भारत का वित्तीय प्रशासन व्यवस्था, न्यू बुक कम्पनीः बम्बई।
5. भावराज एम. जे. भारत का वित्तीय प्रशासन, सुल्तान चन्द एण्ड संसः नई दिल्ली।

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भार्गव, आर.एन. भारतीय लोक वित्त, बी.डी. भार्गव एण्ड संसः चंदौसी।
2. लाल जी. एस. भारत में लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन, एच. पी. कपूर: नई दिल्ली।
3. पिन्टो, जे.जे. भारत का वित्तीय प्रशासन व्यवस्था, न्यू बुक कम्पनीः बम्बई।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकासशील देशों की राजकोषीय नीतियों में प्रति बिम्बत होने वाले लक्ष्य क्या हैं?
2. वित्तीय प्रशासन की वे कौनसी मूलभूत चितांए हैं, जो राजनैतिक, आर्थिक अनिवार्यताओं से भी उपर रहती है?
3. वित्तीय प्रशासन के प्रमुख सिद्वान्त क्या है?
4. 1950 के पश्चात् किस प्रकार वित्तीय प्रशासन ने एक नया मोड़ लिया? वर्णन कीजिये।
5. भारत के वित्तीय प्रशासन में उभरते रूझानों की व्याख्या कीजिये।

इकाई- 3 मिश्रित अर्थव्यवस्था

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था: अवधारणा तथा प्रमुख लक्षण

3.2.1 पूंजीवाद

3.2.3 समाजवाद

3.3.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षण

3.3 भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की उत्पति

3.3.1 1956 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव

3.3.2 1977 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव

3.3.3 1980 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव

3.3.4 1991 की नई औद्योगिक नीति प्रस्ताव

3.4 भारत में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र

3.4.1 निजी क्षेत्र

3.4.2 सार्वजनिक क्षेत्र

3.5 मिश्रित अर्थव्यवस्था: आधुनिक रूझान तथा मूल्यांकन

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

देश की स्वतंत्रता के समय देश का अद्योगिक आधार बहुत दुर्बल था। जनसंख्या के बढते हुए दबाव की पृष्ठभूमि में आर्थिक स्थायित्व के लम्बे समय तथा उसके पश्चात् द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारतीय अर्थव्यवस्था को और भी दुर्बल बना दिया। देश के विभाजन ने लाखों लोगों को बेघर कर दिया और आर्थिक जीवन को अव्यवस्थित कर दिया। फलतः सन् 1951 से राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन का मार्ग अपनाया गया जिसमें आर्थिक और सामाजिक जीवन के सभी पहलू सम्मिलित थे। भारत का विकास सम्बन्धी अनुभव जटिल रूप से, भारत द्वारा अपनी नियोजन प्रक्रिया की शुरूआत के समय से ही मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाने के निर्णय के साथ जुडा हुआ है। भारत के लिए क्या मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा का चुनाव करना सही था, इस प्रश्न पर सामाजिक वैज्ञानिकों के बीच सहमति न तो पहले कभी थी और न ही आज है। एक तरफ भारी उद्योगों की तरफ झुकाव, अपर्याप्त स्त्रोत आवंटन, विश्व पृष्ठभूमि में भारतीय अर्थव्यवस्था की गैर स्पर्धापूर्ण प्रकृति आदि के कारणों से मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाये जाने के इस निर्णय को खोजा गया है। दूसरी तरफ, वामपंथी अर्थशास्त्री, मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे को अपनाये जाने को 'राज्य के साथ सीधे गठबंधन सहित पूंजी के शासन को न्याय संगत बनाने की युक्ति से थोडा ही अधिक कुछ' के रूप में देखते आए है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे से एक स्वयंसिद्ध तथ्य मानते है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था,

निहित स्वार्थों के पक्ष में काफी हद तक झुके हुए एक समझौते से अधिक कुछ भी नहीं है। साथ ही जिस तरह से भारतीय संस्कृति का उद्भव हुआ है, उसमें केन्द्रीय स्तर पर नियोजित अर्थव्यवस्था, जिसमें राज्य सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन का वाहक बन सके, भी देश के लिए उतना ही असंभव मॉडल है। इसलिए मिश्रित अर्थव्यवस्था का अनुसरण ही एकमात्र व्यवहारिक कारक रहा है।

हालांकि 50 के दशक में जो कुछ उपयोगी था वह 2019 में भी उपयोगी बना रहे, यह आवश्यक नहीं है। विश्व का राजनैतिक आर्थिक नक्शा बदल चुका है, और उसे पहचानना भी कठिन है। सार्वजनिक क्षेत्र के खराब प्रदर्शन को देखते ही यह प्रतीत होता है कि परिव्ययी एवं आक्रमणशील राज्य ने भी अपनी प्रासंगिकता खो दी है। इस इकाई में हम इसी मुद्दे पर चर्चा करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- मिश्रित अर्थव्यवस्था, पूंजीवाद तथा समाजवाद की मूल अवधारणाओं तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षणों के संबंध में जान पायेंगे।
- विभिन्न अद्योगिक नीतिगत प्रस्तावों की जांच करने के क्रम में भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति के बारे में समझ पायेंगे।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिकाओं की व्याख्या कर पायेंगे।
- भारत में हाल ही में प्रारंभ किए गए नीतिगत परिवर्तनों पर चर्चा तथा उनके महत्व का मूल्यांकन करने में सक्षमता पर समझ बढा पायेंगे।

3.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था: अवधारणा तथा प्रमुख लक्षण

मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जो अलग-अलग बाजार एवं आर्थिक योजनाओं का मिश्रण हैं जिसमें निजी क्षेत्र और राज्य, अर्थव्यवस्था का निर्देशन करते है, या फिर एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें सार्वजनिक स्वामित्व तथा निजी स्वामित्व का मिश्रण हो, या जिसमें आर्थिक हस्तक्षेपवाद का मिश्रण, मुक्त बाजारों के सहित हो। अधिकांश मिश्रित अर्थव्यवस्था बाजार अर्थव्यवस्था है जो प्रबल विनियामक निरीक्षण एवं सार्वजनिक वस्तुओं के सरकारी प्रावधान के आधार पर चलते है। सामान्य रूप से मिश्रित अर्थव्यवस्था उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व की विशेषता है। आर्थिक समन्वय के लिए बाजारों का प्रभुत्व, लाभ प्राप्ति करने वाले उद्यम एवं पूंजी का संचय, आर्थिक गतिविधियों के सबसे महत्वपूर्ण संचालक शक्ति है। लेकिन एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के विपरीत, सरकार समाज कल्याण को बढावा देने की हस्तक्षेप करने में एक भूमिका निभा रहा है, के साथ-साथ आर्थिक विवशता और वित्तीय संकट और बेरोजगारी की ओर पूंजीवाद की प्रवृति प्रतिक्रिया करने के लिए डिजाईन किया गया राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के माध्यम से अर्थव्यवस्था पर अप्रत्यक्ष व्यापक आर्थिक प्रभाव भी कर रहा है अर्थात मिश्रित अर्थव्यवस्था का अभिप्राय है सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के बीच अन्तर तथा सद्भाव कायम करना। इसके तहत बाजार क्रियाविधि को स्वतंत्र संचालन की इजाजत (स्वीकृति) नहीं दी जाती, तथा सरकार निजी क्षेत्र में हस्तक्षेप अथवा नियंत्रण इस तरह से जारी रखती है जिससे दोनों क्षेत्र एक दूसरे को सुदृढ बनाने लगे। मिश्रित अर्थव्यवस्था दो बिल्कुल विरोधी विचारधाराओं में समझौते का परिणाम है- इनमें से एक विचारधारा अहस्तक्षेपवादी पूंजीवाद के सिद्धान्त का समर्थन करती है और दूसरी इस बात में प्रबल विश्वास रखती है कि समग्र अर्थव्यवस्था के उत्पादन के साधनों का समाजीकरण होना चाहिए और इनका नियंत्रण राज्य द्वारा किया जाना चाहिए। एक मिश्रित अर्थव्यवस्था व्यक्तिगत पहलकदमी तथा सामाजिक ध्येयों के बीच यथासंभव

संतुलन का प्रतिनिधित्व करती है। नियोजन तथा बाजार क्रियाविधि को इस तरह से संभावित किया जाता है कि उनमें से प्रत्येक का इस्तेमाल (प्रयोग) अर्थव्यवस्था के लिए सबसे अधिक उपयोगी लक्ष्यों को प्राप्त करने में किया जा सके। दोनों ही क्षेत्रों की राष्ट्रीय लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं के प्रति वचनबद्वता रहती है।

कुछ लोग क्षेत्रों के स्वामित्व का उपयोग उनके वर्गीकरण के लिए करते है। सहकारी संगठनों से मिलकर बनी कोई प्रणाली, सहकारी राष्ट्रकुल कहलाएगी। संयुक्त क्षेत्र संगठनों की एक प्रणाली एक अन्य प्रकार की मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रदान करती है। कोई प्रणाली, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र दोनों मौजूद हो, पारम्परिक तरह की मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलाती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी उद्यम और इसके परिणामस्वरूप निजी हित एवं लाभ प्रेरणा पर बल को उचित समझा जाता है।

यह मिश्रित अर्थव्यवस्था तदर्थ अथवा एक व्यवस्थित प्रकार की हो सकती है जो कि अर्थव्यवस्था के मूलभूत क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र की पैठ की सीमा पर निर्भर करता है। एक अन्य सोच यह हो सकती है कि दोनों को किस हद तक सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के नीतिगत लक्ष्यों के साथ एकबद्ध तथा सदभावपूर्ण बनाया गया है। यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था होगी जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों तथा साथ ही साथ बाजार अर्थव्यवस्था पर आधारित उत्पादन प्राथमिकताओं के एक संयोग के जरिए (द्वारा) कमजोर वर्गो के कल्याणकारी लक्ष्यों के प्रति संवेदनशील रहेगी। यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था भी हो सकती है जो कि समता, रोजगार, आत्मनिर्भरता आदि के सामाजिक लक्ष्यों पर बल देती हो। हर तरह की मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में नियोजन तथा बाजार अर्थव्यवस्था के मिश्रण का स्तर भिन्न-भिन्न रहेगा।

यू.के, अमेरिका और यूरोप के सभी स्वतंत्र देशों और आस्ट्रेलिया का महान आर्थिक विकास, निजी उद्यम द्वारा किया गया। यही कारण है कि अठारहवीं और उन्नसवीं शताब्दी के अर्थशास्त्रियों की कृतियों में मिश्रित अर्थव्यवस्था की धारणा का कोई जिक्र नहीं था, क्योंकि उन दिनों आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक मामलों में राज्य द्वारा अहस्तक्षेप (Non-Inteference) मूल मूल सिद्धान्त माने जाते थे। कई बार यह माना जाता है कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था होती है और मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा न तो सुस्पष्ट है और न ही उपयुक्त है। हालांकि यह माना जाना चाहिए कि नियोजित अर्थव्यवस्था तथा बाजार अर्थव्यवस्था की अवधारणाएं अपनी निश्चित विचारधारात्मक एवं कार्यमूलक रूपरेखाएं रखती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा इन दोनों अतिवादी स्थितियों के बीच की स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है। यह अवधारणा लचीली है और आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक मुद्दो को तय करने के इसके अपने साधन एवं तरीके है। मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा की स्पष्ट समझ हासिल करने के लिए पूंजीवाद एवं समाजवाद की विशेषताओं पर चर्चा करनी होगी।

3.2.1 पूंजीवाद

पूंजीवाद को निजी पहलकदमी पर जोर देने वाली एक ऐसी आर्थिक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया गया है जिसमें बाजार अर्थव्यवस्था केन्द्रीय भूमिका निभाती है, मुनाफा (लाभ) कमाना उद्देश्य होता है तथा उत्पादन के साधनों पर निजी व्यक्तियों तथा निगमों का स्वामित्व रहता है। पूंजीवाद के तहत खेत, कारखाने, परिवहन आदि उत्पादन के साधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण निजी व्यक्तियों तथा उद्यमों के हाथों में केन्द्रित रहता है। निजी लाभ कमाने के उद्देश्य से वे लोग जो उत्पादन के इन साधनों के मालिक होते है, इनका मन चाहा उपयोग कर सकते है। सरकार जनता की आर्थिक गतिविधियों में न्यूनतम भागीदारी करते है। सरकार, केवल रक्षा, विदेशी मामलों मुद्रा तथा सिक्कों जैसे मामले तथा सड़कों, पुलों आदि के निर्माण जैसे कुछ महत्वपूर्ण नागरिक कार्यों को देखती है, जिससे इस तरह के कार्यों को निजी व्यक्ति लाभ का सौदा न बना ले। एडम स्मिथ का यह मत था कि व्यक्तियों तथा समाज के हितों के बीच तालमेल रहना चाहिए। इस तरह आर्थिक गतिविधियों में सरकार की कोई भूमिका

नहीं है। दरअसल इस प्रकार की गतिविधियों को हाथ में लेने के लिए राज्य जन्मजात रूप से अक्षम था। राज्य उपक्रम का मतलब है समाज के स्त्रोतों का दुरूपयोग। चीजों को स्वयं अपने हिसाब से निश्चित होने की इजाजत दी जानी चाहिए तथा इसी के चलते, जनता की आर्थिक गतिविधियों का दिशा-निर्देशन करने के लिए नियोजन अथवा किसी पूर्व निर्धारित रूपरेखा की कोई आवश्यकता नहीं थी।

पूंजीवाद के अनिवार्य तत्वों का अध्ययन करते हैं-

- **निजी सम्पत्ति का अधिकार-** विभिन्न उत्पादन के साधन व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति होते है निजी व्यक्तियों द्वारा उन्हें इच्छानुसार रखा अथवा बेचा जा सकता है। इस अधिकार में ही, पुत्र-पुत्रियों अथवा अन्य को कानूनी उत्तराधिकारी होने का अधिकार भी निहित है।
- **उद्यमशीलता की स्वतंत्रता-** व्यक्ति द्वारा ऐसे किसी भी व्यापार अथवा उपक्रम को प्रारंभ करने के अधिकार पर कोई पाबन्दी नहीं है जिसके लिए उसके पास समुचित साधन उपलब्ध हो।
- **लाभ कमाने की उत्सुकता-** मुनाफा (लाभ) कमाने की ललक पूंजीवादी व्यवस्था की आत्मा है। यह लाभ ही है न कि कोई परोपकारी भावना, जो कि किसी उद्यमी को किसी आर्थिक गतिविधि में निवेश करने के लिए प्रेरित करती है।
- **प्रतिस्पर्धा-** प्रतिस्पर्धा उत्पादकों, विक्रेताओं, खरीददारों, रोजगार की तलाश करने वालों, रोजगार देने वाले स्वामियों, निवेशकर्ताओं आदि सभी के बीच जारी रहती है। लागत नियंत्रण, मूल्य कटौती, विज्ञान इत्यादि द्वारा इसे प्राप्त किया जा सकता है।
- **उपभोक्ता की भूमिका-** किसी मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं की इच्छाएं तथा प्राथमिकताएं आर्थिक गतिविधि को निर्देशित करती है। व्यवस्था में उपभोक्ता की निर्णायक भूमिका हो जाती है।
- **मूल्य व्यवस्था-** यह मूल्य क्रियाविधि ही है जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को स्वचालित, ढंग से बिना किसी केन्द्रीय निर्देशन अथवा उत्पादन उपभोग पर नियंत्रण अथवा वितरण सम्बन्धी निर्णयों के संचालित रहने को संभव बनाती है।
- **आय की असमानताएं-** व्यक्तियों के बीच सम्पत्ति का असमान वितरण आय के असमान वितरण की तरफ ले जाता है अमीर तथा गरीब की आमदनी के बीच एक चौड़ी खाई बनती चली जाती है।

चूंकि बुनियादी आर्थिक निर्णय लेने तथा विभिन्न प्रस्पिर्धापूर्ण उद्योगों के बीच उत्पादन स्त्रोतों का आवंटन करने के लिए, कोई केन्द्रीय नियोजन करने वाली सत्ता मौजूद नहीं होती, बाजार अर्थव्यवस्था मूल्य-क्रियाविधि का प्रयोग करती है जो अर्थव्यवस्था के संचालन में निर्णायक भूमिका अदा करती है। किसी भी असंतुलन का, ''मूल्य-क्रियाविधि तथा मांग पूर्ति'' अन्योन्यक्रिया के द्वारा स्वचालित ढंग से समाधन तथा सुधार कर लिया जाता है। उच्चतर क्षतिपूर्ति के माध्यम से उचित कार्यकुशलता तथा कठिन परिश्रम के लिए समुचित पुरस्कार दिए जाते है। बचत करने तथा निवेश करके वर्तमान एवं भावी पीढियों को उच्चतर आय उपलब्ध कराने के लिए भी प्रोत्साहन पुरस्कारों का प्रावधान रहता है। बाजार क्रियाविधि उद्यमियों को, उच्चतर मुनाफे हेतु जोखिम उठाने, तथा तकनीकी प्रगति को ऊपर उठाने वाली नवीनता लाने के लिए भी सक्षम बनाती है। पूंजीवाद कठोर नहीं बल्कि एक विकासमान तथा गतिशील अवधारणा है। इसने सफलतापूर्वक अनेक संकटो का सामना किया हैं और अपेक्षाकृत मजबूत होकर उनसे बाहर निकला है।

पूंजीवाद का एक बदसूरत व खौफनाक चेहरा भी है। यह समाज को, एक तरफ ऐसे लोगों जो कि अश्लीलता की हद तक अमीर होते है और आडम्बरपूर्ण उपभोग करने में लिप्त रहते है, तथा दूसरी तरफ ऐसे लोगों में जो इस धरती पर सबसे अधिक भाग्यहीन और दयनीय होते है जिन्हें दो समय का खाना भी नसीब नहीं होता, विभाजित कर देता

है। आय की असमानताओं के द्वारा जो लगातार बढती चली जाती है, प्रोत्साहन पुरस्कारों की व्यवस्था भी व्यर्थ हो जाती है। उपभोक्ता की प्रभुसत्ता एक भ्रम है। वास्तविकता यह है कि बड़े-बड़े निगम उस बाजार को नियंत्रित करते है जो उन्हीं के हितों की सेवा करता है और यहां तक कि 'उपभोक्ता को भी वे अपनी आवश्यकता के अनुरूप ढाल लेते है।' पूंजीवाद द्वारा समाज पर थोपे गये बोझ की सामाजिक कीमत मुद्रास्फीति, बेरोजगारी तथा अत्यधिक उतार-चढाव की शक्ल में चुकानी पड़ती है। प्रो. गैलब्रैथ पूंजीवाद की निरर्थकता का सारांश इस तरह बताते है कि, ''बहुत कुछ ऐसा है जिसे बाजार उपयोगी ढंग से प्रोत्साहित एवं पूरा कर सकता है, चूंकि यह किसी व्यक्ति को अंतरिक्ष में नहीं पहुंचा सकता, इसी तरह वहां जहां पहले इस्पात बनाने की मामूली क्षमता रही हो या क्षमता हो ही नहीं, यह तत्काल इस्पात का कारखाना पैदा नहीं कर सकता। ना ही यह तुरन्त (तत्काल) कोई एकीकृत अद्योगिक उद्यम निर्मित कर सकता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि कोई भी इस बात से आश्वस्त नहीं रह सकता कि यह उन देशों में ऐसा करेगा जहां विकास पिछडा हुआ है और जहां न केवल विकास की आवश्यकता है अपितु एक अतिआवश्यक मांग भी है कि वैसा तुरन्त होना चाहिए। बाजार पर विश्वास करना, इस अप्रत्याशित जोखिम को उठाना है कि कुछ भी नहीं हो पाएगा अथवा बहुत थोड़ा ही कुछ होगा।''

3.2.2 समाजवाद

समाज का एक ऐसा आर्थिक संगठन है जिसमें उत्पादन के भौतिक साधनों पर सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व रहता है, एक सामान्य आर्थिक योजना के तहत इस तरह के समाजवादी नियोजित उत्पादन के परिणामों का समाज के सभी सदस्य समान अधिकारों के आधार पर लाभ प्राप्त करने के योग्य (पात्र) होते हैं। इसके विपरीत, लोकतांत्रिक, समाजवाद कम से कम सामरिक महत्व रखने वाले उत्पादन के भौतिक साधनों पर समाज के स्वामित्व, जबकि साथ ही साथ उपभोग तथा व्यवसाय, दोनों के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता दिए जाने की विलक्षणता से पहचाना जाता है।

समाजवाद के लक्षण/विशेषताऐं

- समाजवादी समाज का सर्वप्रथम उद्देश्य निर्धनता समाप्त करना और राष्ट्रीय न्यूनतम की व्यवस्था करना।
- समाजवादी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य आय और सम्पत्ति की असमानताएं कम करना।
- समाजवादी अर्थव्यवस्था का एक उद्देश्य सबको समान अवसर प्रदान करना।
- सार्वजनिक और सहकारी क्षेत्र के विस्तार में आस्था किन्तु समग्र राष्ट्रीयकरण में आस्था न होना।
- समाजवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण और एकाधिकारी प्रवृतियों को पनपने से रोकने का प्रयास किया जाना।
- समाजवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक निर्णय करने की मूल कसौटी निजी लाभ नहीं अपितु सामाजिक लाभ होती है।
- वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की सम्पन्नता के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों में आस्था।

लोकतांत्रिक समाजवाद, जो कि समाजवाद का अपेक्षाकृत नरम स्वरूप है, पूंजीवाद के साथ, निजी क्षेत्र के अस्तित्व, आय की असमानता, उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों की स्वतंत्रता तथा मूल्य क्रियाविधि का अस्तित्व आदि समानताएं रखता है। समाजवाद, पूर्णरोजगार, उच्च प्रगतिदर श्रम की प्रतिष्ठा तथा श्रमिकों के शोषण की अनुपस्थिति, अपेक्षाकृत समान आधार पर आय तथा धन का वितरण तथा पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था के साथ जुडी हानियों से मुक्ति आदि सुनिश्चित करता है।

इन गुणों के विपरीत, यह व्यवस्था कार्यकुशलता तथा उद्यमशीलता में गिरावट का मार्ग प्रशस्त करती है, तथा कठिन परिश्रम तथा पहलकदमी के लिए प्रोत्साहन पुरस्कार का अभाव होता है। इसमें अत्यधिक विचाराधारात्मक दृढ़ता होती है जो कि परिणामों के परवाह किए बिना आर्थिक निर्णय प्रक्रिया में व्याप्त रहती है। सत्ता का राज्य के हाथों में केन्द्रीकरण हो जाता है जो कि निवेश उत्पादन, वितरण तथा उपभोग से सम्बन्धित सभी निर्णय करता है। यह नौकरशाही, लालफीताशाही तथा प्रशासन की एक अत्यन्त बोझिल एवं महंगी प्रणाली के तरफ ले जाता है जो जनता का कोई भला नहीं कर सकती। स्रोतों का आवंटन मनमाने ढंग से किया जाता है क्योंकि इसके लिए कोई तर्काधार अथवा व्यवहारिक मूल्य प्रणाली नहीं होती जो कि प्रायः आवंटन निर्णयों का मार्गदर्शन करती है। प्रतिस्पर्द्धा के अभाव के चलते उत्पादन अकुशल तथा महंगा होता है और प्रायः विशेष रूप से उपभोक्ता वस्तुओं की कमी रहती है।

3.2.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षण

पूंजीवाद तथा समाजवाद की दो अतिवादी अवधारणाओं की व्याख्या कर लेने के बाद, मिश्रित अर्थव्यवस्था को कार्यमूलक आधारों पर परिभाषित करना संभव है। एक मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षण निम्न हैं-

1. बाजार अर्थव्यवस्था तथा नियोजन क्रियाविधि के बीच एक संतुलन।
2. सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के बीच सुस्पष्ट विभाजन रेखा जिससे कि मूलभूत क्षेत्र तथा सामरिक क्षेत्र र्निअपवाद रूप से सार्वजनिक क्षेत्र में ही रहे।
3. निजी क्षेत्र में, जबकि लाभ कमाने की प्रकृति निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती है, सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश के लिए आर्थिक स्थिरता मानदण्ड, सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण पर आधारित रहता है।
4. सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र के बीच उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का इस तरह से निर्णय किया जाता है कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक प्रोत्साहनों एवं विभागीय तथा आम हितों के बीच एक संतुलन बना रहे।
5. इसमें व्यवसाय सम्बन्धी स्वतंत्रता तथा उपभोक्ता की पसंद की स्वतंत्रता होती है।
6. आर्थिक सत्ता के अनुचित केन्द्रीकरण तथा इजारेदारी व नियंत्रित व्यापार प्रचलनों की रोकथाम के लिए सरकार हस्तक्षेप करती है।
7. सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों इत्यादि द्वारा समाज के कमजोर वर्गों के उपभोग के स्तरों तथा लक्ष्यों का ध्यान रखने का प्रयास करती है।
8. समता, रोजगार, संतुलित क्षेत्रीय विकास, परिवार कल्याण के सामाजिक लक्ष्यों पर बल दिया जाता है।
9. समाजवाद की सैद्धान्तिक कठोरताओं से बचा जाता है और प्रायः आर्थिक प्रगति को बढाने के लिए निर्णय प्रक्रियाओं में एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है।
10. मिश्रित अर्थव्यवस्था केवल एक आर्थिक अवधारणा नहीं है अपितु व्यक्तियों के अधिकारों का सार्वजनिक कानून और व्यवस्था तथा नैतिकता की आवश्यकताओं के अनुरूप सम्मान तथा संरक्षण किया जाता है।
11. निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों का सह-अस्तित्व।
12. प्रशासित मूल्य।
13. आर्थिक नियोजन।

प्रत्येक देश को केवल इसलिए मिश्रित अर्थव्यवस्था की संज्ञा दे देना गलत है कि उस व्यवस्था में पूंजीवाद तथा समाजवाद के कुछ लक्षण विद्यमान है। इस परीक्षा के आधार पर, संयुक्त राज्य अमेरिका पूंजीवादी देश है तथा पूर्व सोवियत संघ व चीन को समाजवादी देशों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। केवल मिश्रित अर्थव्यवस्था के

कुछ लक्षणों का उपस्थित रहना पर्याप्त नहीं है। ये उनकी प्रमुख विशेषताएं नहीं है। भारत, फ्रांस, आस्ट्रिया, स्वीडन, नार्वे तथा इजराईल आदि देशों में मिश्रित अर्थव्यवस्थाएं है। किसी भी मिश्रित अर्थव्यवस्था में संरचनागत लक्षण होने चाहिए तथा उसे सामाजिक जनवादी विचारधारा का अनुसरण करना चाहिये। विकेन्द्रीकृत समाजवादी बाजार पर अधिक बल देने वाले देश, आवंटन सम्बन्धी पहलू को देखते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था की तरफ लगभग अग्रसर हुए है अथवा उसकी दिशा में बढ रहे है। सम्पत्ति व आय के समतावादी वितरण पर अधिक जोर देने वाले पूंजीवादी देश (जापान, ताईवान, सिंगापुर तथा दक्षिण कोरिया) दूसरी ओर से मिश्रित अर्थव्यवस्था की तरफ बढ रहे है।

इस तरह, यद्यपि मिश्रित अर्थव्यवस्था पूंजीवाद तथा समाजवाद का एक मिश्रित रूप है, फिर भी इसकी अपनी पृथक पहचान है। शुद्ध पंजूीवाद तथा शुद्ध समाजवाद की अतिवादी आर्थिक प्रणालियों के दुर्गुणों से मिश्रित अर्थव्यवस्था में बचा जाता है। यह एक बीच का रास्ता प्रस्तुत करती है।

3.3 भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की उत्पति

स्वतंत्र प्राप्ति के पूर्व भारत में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था थी, क्योंकि देश में ब्रिटिश सरकार की व्यापारिक नीतियां पूर्णरूपेण लागू थी। ब्रिटिश सरकार की व्यापारिक नीतियों पूर्णरूपेण पूंजीवादी थी व इसमें व्यापारिक गतिविधियों (पूंजी का) का वर्चस्व था। साथ ही ब्रिटेन ने जब-जब अपनी आर्थिक एवं व्यापारिक नीतियों में परिवर्तन किया तब-तब भारत को भी अपनी आर्थिक एवं व्यापारिक नीतियों में उसी के अनुरूप परिवर्तन करने के लिए विवश होना पडा, परन्तु स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात देश की अर्थव्यवस्था को तीव्र गति से विकसित करने की अत्यधिक आवश्यकता थी। अतः देश में सर्वप्रथम 6 अप्रैल 1948 को प्रथम अद्योगिक नीति के लागू होने से ही मिश्रित अर्थव्यवस्था की शुरूआत हुई। मिश्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से जहां एक ओर व्यक्तिगत स्वतंत्रता को स्थान मिलता है, वहीं दूसरी ओर सरकारी नियंत्रण भी बना रहता है। भारत, मिश्रित अर्थव्यवस्था के लक्ष्य को अपनाकर समस्त नियोजन प्रक्रिया सम्पन्न कर रहा है। हमारे देश की पंचवर्षीय योजनाएं देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था का उल्लेखनीय उदाहरण है। इन योजनाओं में सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों को पर्याप्त स्थान दिया गया है। देश में जहां एक ओर सरकार सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार कर रही है, वहीं दूसरी ओर निजी क्षेत्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता व विकास को पर्याप्त स्थान दिया जा रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय से ही भारतीय नीति निर्धारकों ने तय किया कि राज्य को न केवल अधिरचनागत सुविधाएं तथा सामाजिक ऊपरी व्ययों को उपलब्ध कराने का दायित्व ग्रहण करना चाहिए बल्कि प्रत्यक्ष उन्नति के कार्यो को भी अपने हाथ में लेना चाहिए। इस बात का मान्यता दी गई कि सरकार को अद्योगिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करना चाहिए और तदनुसार मूलभूत एवं सामरिक उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए निर्धारित किया गया। इस तथ्य को भी स्वीकार किया गया कि देश के आर्थिक विकास का कार्यभार इतना अधिक व्यापक है कि अधिकतम प्रगति के लिए निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र, दोनों ही की पहलकदमी को इसमें जोड़ना होगा। मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा का विकास किया गया जिससे निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों ही प्रगति की प्रक्रिया में योगदान कर सके। यह विचार किया गया कि कृषि, संगठित उद्योगों, लघु उद्योग इकाइयों, व्यापार तथा निर्माण के क्षेत्रों में व्यक्तिगत उद्यमशीलता तथा पहलकदमी परिवर्तन का सबसे अच्छा उत्प्रेरक रहेगी। 1956 के अद्योगिक नीति प्रस्ताव की घोषणा के साथ ही, मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा को एक निश्चित स्वरूप एवं नीतिगत दिशा प्रदान की गई।

3.3.1 1956 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव

भारत की प्रथम अद्योगिक नीति 1948 के पश्चात् देश में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिनके कारण एक नयी अद्योगिक नीति की आवश्यकता महसूस होने लगी। नवीन अद्योगिक नीति की आवश्यकता के सम्बन्ध में

तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने संसद में कहा था कि 'प्रथम अद्योगिक नीति की घोषणा के बाद इन आठ वर्षों में भारत में काफी अद्योगिक विकास तथा परिवर्तन हुए है।' भारत का नया संविधान बना, जिसके अन्तर्गत मौलिक अधिकार और राज्य के प्रति निर्देशक सिद्धान्त घोषित किये गये है। प्रथम योजना पूर्ण हो चुकी है और सामाजिक तथा आर्थिक नीति का प्रमुख उद्देश्य समाजवादी समाज की स्थापना करना मान लिया गया हैं, अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन सभी बातों तथा आदर्शों के प्रति इंगित करते हुए एक नई अद्योगिक नीति की घोषणा की जाए।

अतः भारत की नवीन अद्योगिक नीति की घोषणा 30 अप्रैल 1956 को संसद द्वारा एक नया अद्योगिक नीति प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। इस नीति में उद्योगों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया-

1. वे उद्योग जिनके निर्माण का पूर्ण उत्तरदायित्व राज्य पर होगा।
2. वे उद्योग जिनकी नवीन इकाइयों की स्थापना साधारणतः सरकार करेगी, लेकिन निजी क्षेत्र से यह आशा की जायेगी कि वह इस प्रकार के उद्योगों के विकास में सहयोग दें।
3. शेष सभी उद्योग जिनकी स्थापना और विकास सामान्यतः निजी क्षेत्र के अधीन होगा। इस नीति में उद्योगों का वर्गीकरण तीन अनुसूचियों में किया गया है -

    - अनुसूची 'क'- इनमें 17 उद्योगों को सम्मिलित किया गया है, जिसके भावी विकास का सम्पूर्ण दायित्व सरकार पर होगा। इस अनुसूची में सम्मिलित किये गये उद्योग इस प्रकार हैं- अस्त्र-शस्त्र और सैन्य सामग्री, अणुशक्ति, लौह एवं इस्पात, भारी मशीनें, बिजली का सामान कोयला, खनिज तेल, लौह धातु तथा तांबा, मैगनीज, हीरे व सोने की खानें, सीसा एवं जस्ता आदि खनिज पदार्थ, विमान निर्माण, वायु परिवहन, रेल परिवहन, टेलीफोन तार और रेडियो उपकरण, विद्युत शक्ति का जनन और उसका वितरण। उपरोक्त समस्त उद्योग पूर्णतया सरकार के अधिकार क्षेत्र में रहेंगे।

    - अनुसूची 'ख'- इस वर्ग में वे उद्योग रखे गये है जिनके विकास में सरकार उतरोत्तर अधिक भाग लेगी। अतः सरकार इनकी नई इकाइयों की स्थापना स्वयं करेगी लेकिन निजी क्षेत्र से भी आशा की गई कि वह भी इसमें सहयोग देगा। इस वर्ग में 12 उद्योग शामिल किये गये- अन्य खनिज, एल्युमिनियम एवं अन्य अलौह धातुएं, मशीन औजार, लौह मिश्रित धातु, औजारी इस्पात, रसायन उद्योग, औषधियां, उर्वरक कृत्रिम रबर, कोयले से बनने वाले कार्बनिक रसायन, रासायनिक घोल, सडक परिवहन एवं समुद्री परिवहन। इस वर्ग को मिश्रित क्षेत्र की संज्ञा दी जा सकती है।

    - अनुसूची 'ग'- इस वर्ग में शेष समस्त उद्योगों को रखा गया है तथा जिनके विकास व स्थापना का कार्य निजी और सहकारी क्षेत्र पर छोड दिया गया, परन्तु इनके सम्बन्ध में सरकारी नियंत्रण एवं नियमन की व्यवस्था की गई। इस वर्ग को निजी क्षेत्र की संज्ञा दी जा सकती है। इन उद्योगों पर अद्योगिक उदविकास एवं विनियमन अधिनियम 1951 तथा अन्य सम्बन्धित कानून लागू रहेगें।

इन बातों के अलावा प्रस्ताव में जोर देकर कहा गया था कि निजी उद्योगों के साथ निष्पक्ष तथा भेदभाव रहित व्यवहार किया जायेगा तथा परिवहन सुविधाओं के विकास तथा वित्तीय सहायता उपलब्ध कराकर उनके विकास को प्रोत्साहन दिया जायेगा। प्रस्ताव में स्वीकार किया कि निजी क्षेत्र स्वयं देश का तीव्र अद्योगिक रण नहीं कर सकता। इसलिये, इसने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को आगे बढाने का निर्णायक तथा विस्तारित मौका प्रदान

किया। साथ ही देश के अद्योगिक ढांचे में निजी क्षेत्र को एक महत्वपूर्ण स्थान सुनिश्चित किया गया। प्रस्ताव ने ग्रामीण, कुटीर तथा लघु उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका को भी स्वीकार किया।

3.3.2 1977 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव

23 दिसम्बर 1977 के नए उद्योग नीति प्रस्ताव ने 1956 के प्रस्ताव की इस आधार पर कड़ी आलोचना की, कि ''बेरोजगारी में वृद्धि हो गयी, ग्राम तथा नगर में असमानता की खाई चौडी हो गई और वास्तविक निवेश की दर अवरूद्ध हो गयी, अद्योगिक उत्पादन की दर औसत 3.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ नहीं पायी। अद्योगिक रूग्णता का आयात विस्तृत हो गया और मुख्य उद्योगों पर बहुत ही बुरा असर पड़ा। अद्योगिक लागतों एवं कीमतों के ढांचे में भी विकृति आयी और बड़े नगरों से दूर अद्योगिक नीति क्रिया का प्रसार बहुत ही धीमा रहा।'' आलोचना के अन्य बिन्दु थे कि अन्तर्राष्ट्रीय शक्तिशाली अद्योगिक समूहों ने संरक्षित भारतीय बाजार में घुसपैठ कर ली है तथा बड़े अद्योगिक घरानों की इजारेदारी में वृद्धि हुई है। नई नीति ने लघु उद्योगों, कुटीर एवं घरेलू उद्योगों के तीव्र विकास पर बल दिया। कुटीर उद्योगों के संरक्षण तथा सहायता हेतु कानून बनाने की भी घोषणा की गई। आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को रोकने हेतु इस नीति में बड़े अद्योगिक घरानों को नए उद्योगों की स्थापना तथा पुराने उद्योगों के विस्तार के क्रम में प्रतिबन्धित किया गया था। भारतीय उद्योगों के विकास के लिए यथासंभव भारतीय तकनीक प्रयुक्त की जाएगी तथा जिस क्षेत्र में भारतीय तकनीक उपलब्ध न होगी उसी में विदेशी तकनीक को ग्रहण किया जायेगा। गांवों तथा लघु उद्योगों को उच्चतर महत्व प्रदान करने तथा साथ ही साथ बड़े अद्योगिक घरानों में असुरक्षा की भावना पैदा करने के अलावा, नई नीति की कोई खास उपलब्धियां नहीं हो सकी।

3.3.3 1980 की औद्योगिक नीति प्रस्ताव

1980 की अद्योगिक नीति के प्रस्ताव में यह कहा गया कि, ''1956 की अद्योगिक नीतिगत उद्घोषणा हमारे देश में मूल्यों को प्रतिबिम्बित करती है तथा सकारात्मक लचीलेपन के गुणों को उसने निष्कर्ष के रूप में प्रदर्शित किया है। इस प्रस्ताव की दृष्टि से, देश में आर्थिक अधिरचना की मीनारों को खड़ा करने का कार्यभार सार्वजनिक क्षेत्र को, उसकी बेहतर विश्वसनीयता के कारण, सौंपा गया, क्योंकि आर्थिक विकास के लिए परियोजनाओं में अत्यधिक निवेशों की आवश्यकता थी और उनके निर्माण कार्यों की अवधि भी लम्बी थी। इसलिए 1956 का प्रस्ताव इस वक्तव्य का आधार प्रदान करता है। नीति के तहत स्थापित उत्पादन क्षमता का अधिकतम उपयोग करना, उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि करना, अद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों को प्राथमिकता देकर क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करना, सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति विश्वास जागृत करना, आर्थिक संघवाद को प्रोत्साहित करना तथा सभी के सहयोग से स्वावलम्बी, गतिशील, बहुआयामी तथा आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास करना, आदि को वरीयता दी गई।

3.3.4 1991 की नई औद्योगिक नीति

24 जुलाई 1991 को एक नई अद्योगिक नीति की घोषणा इसलिए की गई, क्योंकि उस समय देश घोर आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा था और सरकार के पास बहुत सारे विकल्प नहीं थे। बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप एक ऐसी व्यावहारिक आर्थिक नीति का निर्माण तथा क्रियान्वयन करना था जो अर्थव्यवस्था को एक सार्थक दिशा दे सके। अद्योगिक उदारीकरण की दिशा में बनी यह नीति खुली, उदार तथा क्रान्तिकारी नीति कहलाई। इस नीति में अर्थव्यवस्था में खुलापन लाने, विदेशी सहयोग तथा भागीदारी को बढावा देने, सार्वजनिक क्षेत्र को प्रतिस्पर्द्धा के योग्य बनाने, पिछड़े क्षेत्रों का अद्योगिक विकास करने निजी क्षेत्र को अद्योगिक स्वतंत्रता प्रदान करने, आदि को वरीयता दी गई।

3.4 भारत में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र

आईये भारत में निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र की विस्तार से चर्चा करते हैं-

3.4.1 निजी क्षेत्र

आजादी से पहले रेल और डाक-तार आदि कुछ सरकार के विभागीय प्रतिष्ठानों को छोड़ कर अद्योगिक क्षेत्र में और साथ ही पूरी अर्थव्यवस्था पर निजी क्षेत्र का ही वर्चस्व था। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार का तो मानो निजी क्षेत्र के साथ गठबन्धन ही हो गया था। आजादी के मिलने और देश में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जाने पर यह स्थिति बदल गयी। सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपना उद्देश्य बनाया। भारत द्वारा अपनाई गई मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा में निजी क्षेत्र के तत्काल राष्ट्रीयकरण के विचार को खारिज करना, अन्तर्निहित है। पुनः इसमें, एक नियंत्रित निजी क्षेत्र तथा तेजी से विस्तृत होता सार्वजनिक क्षेत्र, एक नियंत्रित निजी क्षेत्र तथा तेजी से विस्तृत होता सार्वजनिक क्षेत्र, विशेष रूप से इस्पात, इंजीनियरिंग, खाद्य ऊर्जा तथा परिवहन जैसे मूलभूत तथा भारी उद्योगों का विचार निहित है। निजी क्षेत्र, कृषि तथा उससे जुडी गतिविधियों, खुदरा तथा अधिकांश थोक व्यापार में, कुटीर, ग्रामीण तथा लघु उद्योगों तथा कपडा, जूट सीमेन्ट, चीनी, रेडियो रिसीवर जैसे अधिकांश उपभोक्ता मामलों तथा अन्य ढेर सारे उपभोक्ता मामलों के उद्योगों में प्रमुखता रखता है। इंजीनियरिंग, रसायन, इलेक्ट्रानिकी, आदि जैसे अनेक पूंजीगत उद्योग भी निजी क्षेत्र में है। सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार-विकास के बावजूद आर्थिक जीवन पर अभी निजी क्षेत्र का ही प्रभुत्व है। लगभग 80 (अस्सी) प्रतिशत आर्थिक कार्यकलाप इसी क्षेत्र के अन्तर्गत आते है। अद्योगिक क्षेत्र में भी जहां इन दोनों के सापेक्ष योगदान के बारे में बड़ा विवाद रहा है, निजी क्षेत्र अपना अधिक महत्व बनाए हुए है।

भारत में निजी क्षेत्र को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- संगठित क्षेत्र और असंगठित क्षेत्र।

संगठित क्षेत्र का आधुनिकीकरण हो चुका है, वह उत्पादन के पूंजी सघन उपाय अपनाता है और पूंजी बाजारों एवं बैकों तक उसकी आसान पहुंच है। यह संचार के आधुनिक तरीकों का उपयोग करता है तथा अपनी आवश्यकता के अनुसार मांग की जोड़-तोड़ करने के लिए सभी तरीके अपनाता है। इस क्षेत्र की सभी गतिविधियों का उद्देश्य लाभ कमाना है। इस क्षेत्र के लिए नियोजन का प्रमुख तरीका अर्थव्यवस्था को इस तरह संगठित करना है, ताकि उत्पादकों का पर्याप्त सुविधाएं व निवेश प्राप्त हो सके तथा वे नियोजित उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु अपनी गतिविधियों को अत्यन्त लाभकारी बना सके। अपेक्षाकृत अधिक जोखिम वाले तथा लम्बी अवधि में निर्मित होने वाली परियोजनाओं तथा अधिरचनाओं को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया है।

तीव्र गति से अद्योगिक रण करने की अपनी इच्छा के चलते भारत ऐसे अनेक उद्योगों का विकास करना चाहता था, जो विदेशों से प्रतिस्पर्द्धा का सामना नहीं कर सकते। विदेशी मुद्रा की कमी तथा उसे संचित करने की आवश्यकता के चलते आयातों पर नियंत्रण करना पड़ा। तुलनात्मक लाभ की परवाह किये बिना आयात-प्रतिस्थापन को बढावा दिया गया। अपने उत्पादन के लिए आयात की आवश्यकता वाले उद्योगों को इसी शर्त पर मंजूरी दी गई कि वे यथाशीघ्र आयातित वस्तुओं का घरेलू उत्पादन शुरू कर देगें और इस संदर्भ में लागतों पर शायद ही कोई विचार किया गया हो। प्रो. डी.टी. लक्कडवाला के अनुसार, ''कभी-कभी आवश्यकता से अधिक लाईसेन्स दे दिये जाते थे, किन्तु ऐसी स्थिति में जब यह मालूम पड़ता था कि अधिक उत्पादन हो गया है तो नए लाईसेंस जारी करना तब तक के लिए रोक दिया जाता था जब तक कि मांग, आपूर्ति से आगे न निकल जावें। उत्पादन के लिए आयात की पूर्ण आवश्यकताओं, तकनीक का आयात, विदेशी पूंजी तथा गठबन्धन आदि सभी मुश्किल से ही स्वीकृत किये जाते थे, ताकि संगठित क्षेत्र में हो रहा उत्पादन ऊंचा मुनाफा देता रहे। लाभ, यद्यपि प्रायः लेखा बहियों में प्रदर्शित आंकडों से कहीं ऊंचे होते थे। मूल्य एवं वितरण नियंत्रणों ने प्रायः केवल उत्पादन

तथा लाभ को भूमिगत करने तथा अपेक्षाकृत कम नियंत्रण वाले प्रवाहों में उत्पादन को स्थानान्तरित करने में ही योगदान दिया। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था भ्रष्टाचार तथा कालेधन में जकड़नी शुरू हो गई तथा नौकरशाही व राजनैतिक तंत्र बड़े प्रतिभूति समूह बन गए।''

असंगठित निजी क्षेत्र विशाल क्षेत्र में फैला हुआ है और उस पर नीतिगत हस्तक्षेपों को लागू करना मुश्किल रहा है। दूसरी बात यह भी है कि जागरूकता, शिक्षा व प्रशिक्षण की कमी तथा उत्प्रेरक संस्थाओं के अभाव के कारण, यह क्षेत्र बराबर असंगठित क्षेत्र से प्रतियोगिता करता है और उसका अनुपूरक बन जाता है। इन अंतर्सम्बन्धों को व्यवस्थित करना कठिन रहा है। असंगठित क्षेत्र प्रायः एक निम्न तकनीक निम्न वेतन क्षेत्र रहा है तथा प्रायः व्यापार, ऋण इत्यादि के मामले में इसका शोषण होता रहा है। इस क्षेत्र को उपयोगी बनाने के लिए मूलभूत नीतिगत बदलाव की आवश्यकता है।

3.4.2 सार्वजनिक क्षेत्र

सभी तरह के उद्योगों का द्रुतगति से विकास करने और निजी क्षेत्र द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था में उद्योग स्थापित किये जाने तथा उनका संचालन संभव बनाने के लिए यह आवश्यक था कि देश में समुचित आधारिक संरचना की व्यवस्था कर ली जाए। विकसित देशों में रेले, सडकें, बन्दरगाह, जल, शिक्षा-प्रशिक्षण की सुविधाएं उद्योगपतियों को स्वतः प्राप्त होती है। ये सुविधाएं भी ऐसे उद्यम है जिन्हें साधारणतः निजी क्षेत्र अपने हाथ में नहीं ले सकता। इनमें से अनेक तो लोक-कल्याण से जुडी सेवाएं है और उन्हें सामाजिक कारणों से निजी क्षेत्र की दया पर छोडा नहीं जा सकता। स्वतंत्रता से पूर्व, भारत में सार्वजनिक क्षेत्र जैसी कोई चीज व्यवहारतः विद्यमान नहीं थी। रेलवे डाकतार, टेलीग्राफ, गोला बारूद, कारखाने तथा अन्य कुछ चुनिंदा उद्योग ही सार्वजनिक क्षेत्र के तहत आते थे। यहां तक कि सार्वजनिक क्षेत्र की धारणा तथा कार्य की योजना भी अद्योगिक नीति 1948 और 1956 के प्रस्तावों में सम्मिलित की गई। इसी प्रकार संविधान में सम्मिलित राज्य नीति के निर्देशालय नियम भी चाहते हैं कि राज्य सुनिश्चित करे कि समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व एवं नियंत्रण को इस प्रकार वितरित किया जाये कि वह साझे भले में सहायक हो ताकि आर्थिक व्यवस्था का परिणाम धन का केन्द्रीकरण न हो तथा उत्पादन के साधन साझे निर्धारक हो। केवल यह विचार कि उत्पादन को निजी पूंजीवादियों के हाथों से स्थानान्तरित करके सार्वजनिक स्वामित्व में लाना चाहिये, कम से कम उतना पुराना है जितना कि मार्क्सवादी सिद्धान्त। सार्वजनिक क्षेत्र को सौंपे गये प्रमुख लक्षण निम्न हैं-

1. अद्योगिक संरचना में अंतर को समाप्त करके तीव्र आर्थिक विकास का संवर्धन करना।
2. अर्थव्यवस्था की वृद्धि के लिए संरचनात्मक सुविधाओं को बढाना।
3. देश के विकास के लिए युक्ति अनुसार महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियां आरम्भ करना, ताकि निजी क्षेत्र के लिए छोड दिये जाने पर राष्ट्रीय भावना का लक्ष्य न बिगड़ जाये।
4. संतुलित क्षेत्रीय विकास का संवर्धन करना तथा प्राकृतिक साधनों एवं अन्य संरचना को कम विकसित क्षेत्रों में प्रयोग करना।
5. एकाधिकार को रोकना तथा शक्ति का कुछ हाथों में केन्द्रीकरण समाप्त करना।
6. समृद्ध एवं निर्धन के बीच का अन्तराल समाप्त करना तथा आय और सम्पत्ति में असमानताओं को कम करना।
7. भारी निवेश द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के साधन उत्पन्न करना और बढाना।
8. सार्वजनिक वित्त संस्थाओं द्वारा सामाजिक नियंत्रण तथा नियमन का अभ्यास करना।
9. विभिन्न तकनीकों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।
10. विदेश सहायता तथा विदेशी तकनीक पर निर्भरता को समाप्त करना।

11. वितरण प्रणाली, दुर्लभ आयात की गई वस्तुओं के निर्धारण को नियंत्रित करना।

12. निर्यात का संवर्धन और आयात को घटाना ताकि भुगतानों के सन्तुलन पर से दबाव कम हो।

सार्वजनिक क्षेत्र का प्रमुख योगदान, नए परिष्कृत उद्योगों का विकास, तथा मौजूदा सेवाओं को जनकल्याण की तरफ और अधिक प्रवृत करना रहा है। नई दक्षताएं निर्मित की गई तथा उद्योगों में व्यावसायिक प्रबन्धक जो कि अब तक केवल बहुराष्ट्रीय निगमों तक सीमित था, व्यापक स्तरों तक फैल गया। तीसरी योजना के समय से सार्वजनिक क्षेत्र में किए जाने वाले निवेश कुल योजना निवेशों के लगभग आधे से भी अधिक रखे गए। सामान्य सरकारी गतिविधियों तथा विभागीय उपक्रमों के अलावा, इस्पात, हैवी इलैक्ट्रीकल्स, गैर इलैक्ट्रीकल्स मशीनों मशीनी यंत्रों, इत्यादि जैसे मूलभूत तथा भारी उद्योग भी सार्वजनिक क्षेत्र में लगाए गए। ये ऐसे उद्योग थे जो लम्बे समय के बाद फलदायी होने थे तथा जोखिम भरे थे। यह सोचा गया कि आमतौर पर निजी क्षेत्र उनकी तरफ आकर्षित नहीं होगा और यदि यह तैयार हो गया तो ऐसी शर्तें रखेगा जो राष्ट्र को मंजूर नहीं हो सकती। बैंक, बीमा, तेल, कोयला तथा ऊर्जा के अपवादों को छोडकर निजी क्षेत्र की विद्यमान इकाइयों को छुआ भी नहीं गया। बड़े पैमाने पर रोजगार प्रदान नहीं कर रही बीमार अद्योगिक इकाइयों का राष्ट्रीयकरण भी किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का वित्तीय प्रदर्शन काफी निराशाजनक रहा है।

सार्वजनिक क्षेत्र के प्रदर्शन के लिए जिम्मेदार कारकों में से कुछ निम्न प्रकार हैं-

- शहरी परिवहन, कोयला खाद आदि उद्योगों के संदर्भ में सरकार की न्यायपूर्ण मूल्य नीति, उत्पादन लागत तक की गैर-वसूली के लिए पूरी तरह जिम्मेदार है। संबद्ध सार्वजनिक उपक्रमों को सक्षम नहीं माना जा सकता यद्यपि वे मुनाफा नहीं दे पाए है।
- उपक्रमों की बड़ी संख्या की प्रकृति ही ऐसी है कि उनका निर्माण पूरा होने की अवधि काफी लम्बी होती है। और इस दीर्घ अवधि तथा हस्तक्षेपकारी मुद्रास्फीति की वजह से उनकी लागत कहीं अधिक बढ जाती है।
- राजनैतिक निर्णयों के कारण अत्यधिक कार्मिकों की भर्ती किया जाना।
- क्षमता को पूरी तरह उपयोग न किया जाना।
- निवेश-निर्णयों, विक्रय मूल्यों के निर्धारण, वेतन तथा आय नीतियां, स्थान का निर्णय तथा कार्मिक-नीति के मामलों में अत्यधिक सरकारी नियंत्रण।

सार्वजनिक क्षेत्र की विफलता की जड में उपक्रमों पर थोपे गए राजनैतिक तथा नौकरशाही नियंत्रण है। जब तक सभी मामलों में सार्वजनिक क्षेत्र के व्यावसायिक प्रबंधन को वास्तविक स्वायत्तता नहीं प्रदान की जाती, (व्यापारी-निर्णय में स्वायतत्ता) तब तक सार्वजनिक क्षेत्र का शायद ही कोई भविष्य हो सके।

3.5 मिश्रित अर्थव्यवस्था- आधुनिक रूझान तथा मूल्यांकन

भारत में अद्योगिक गतिविधि में तेज गति से विस्तार होता देखा गया, जिसका श्रेय मुख्यतः अद्योगिक तथा व्यापार नीतियों में किए गए सुधारों को ही दिया जा सकता है। नई नीति के प्रावधान इस प्रकार हैं-

1. उन 18 उद्योगों को छोड़कर जिनमें सामरिक अथवा पर्यावरण संबंधी चिन्ताएं सर्वोपरि हैं अथवा जिनमें उद्योगों द्वारा अत्यंत उच्च स्तरीय आयातित अवयव के साथ माल का उत्पादन किया जाता है, अन्य सभी परियोजनाओं को लाईसेंस से मुक्त कर दिया गया। इसके साथ ही 80 प्रतिशत उद्योगों को लाईसेंस की प्रणाली से बाहर निकाल लिया गया।

2. बड़ी कम्पनियों द्वारा क्षमता बढाने अथवा विविधता लाने के लिए पूर्व स्वीकृति प्राप्त करने की आवश्यकता को समाप्त करने हेतु एम.आर.टी.पी. अधिनियम में संशोधन किया गया। इससे भारतीय फर्मो को पर्याप्त शक्ति मिलेगी ताकि वे विश्व बाजार में प्रभावी प्रतियोगिता करने में सक्षम हो सकें।
3. सभी नयी परियोजाओं के लिए चरणबद्ध उत्पादन कार्यक्रम की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया।
4. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित क्षेत्रों को कम कर दिया गया, तथा मूलभूत एवं बुनियादी उद्योगों में निजी क्षेत्र की उच्चतर भागीदारी की अनुमति दी गई। पूर्व में सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा निवेश के लिए आरक्षित 17 क्षेत्रों के स्थान पर अब केवल 8 क्षेत्र ही इसके लिए आरक्षित रखे गए है। ये आठ क्षेत्र मुख्यतः सामरिक तथा सुरक्षा से संबद्ध क्षेत्र है।
5. 10 लाख से अधिक आबादी वाले 23 शहरों को छोड़कर अन्य सभी स्थानों के लिए सरकारी स्वीकृति से छूट दे दी गई है।
6. एक राष्ट्रीय नवीनीकरण कोष की स्थापना यह सुनिश्चित करने के लिए की गई है कि तकनीकी बदलाव तथा उद्योगों के आधुनिकीकरण की कीमत मजदूरों को बलि से न चुकानी पड़े। इसका उपयोग, बीमार तथा अस्थिर उद्योगों में मजदूरों की सुरक्षा कवच तथा उनके पुनः प्रशिक्षण एवं पुनः तैनाती के लिए वित्तीय सहायता देने में किया जायेगा।

उद्योग नीतियों में सुधार के साथ-साथ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रवाह को सुलभ बनाने के लिए कदम उठाए गए। ऋण पैदा न करने वाले ये प्रवाह, निर्धारित ऋण ब्याज पर निर्भरता को कम करेंगे तथा साथ ही नई तकनीकी, विपणन दक्षता तथा आधुनिक प्रबंधन के प्रचलन भी देश में लेकर आएंगे। इस संदर्भ में निम्नलिखित उपाय किए गए-

- प्राथमिकता वाले उद्योगों की एक बडी संख्या में, विदेशी इक्विटी होल्डिंगों की सीमा 40 प्रतिशत से बढाकर 51 प्रतिशत कर दी गई।
- गैर-प्राथमिकता उद्योगों के लिए आवश्यक स्वीकृति को तेजी से प्राप्त करने हेतु विशाल अंतर्राष्ट्रीय फर्मों से समझौता वार्ता करने के लिए विदेशी निवेश प्रोत्साहन बोर्ड गठित किया गया।
- कुछ सीमाओं तक रायल्टी का भुगतान करके प्राथमिकता उद्योगों के लिए तकनीक का आयात करने की मंजूरी अपने आप मिल जाती है।
- शेष विश्व के साथ अर्थव्यवस्था को प्रतियोगितापूर्ण बनाने की दृष्टि से रूपये को आंशिक तौर पर परिवर्तनीय मुद्रा बना दिया गया। यह हमारे निर्यातों में बढोतरी करेगा और प्रभावी आयात-प्रतिस्थापन को भी प्रोत्साहन देगा।
- पूंजी शेयरों पर सरकारी नियंत्रण का प्रचलन, साथ ही प्रीमियम के निर्धारण सहित शेयरों का मूल्य तय करने का सरकारी नियंत्रण समाप्त कर दिया गया।
- आयात शुल्क को काफी हद तक कम करके तर्क संगत बना दिया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऊंचे करों की दीवारे उच्च लागत वाले गैर-प्रतियोगी भारतीय उद्योगों को चिरस्थाई न बना डाले।

इस तरह नियंत्रण ढीला किया जाना सरकारी विनियोजनकारी निकायों की भूमिका को घटा देगा। परियोजनाओं के क्रियान्वयन में होने वाले विलम्ब में काफी कमी आएगी। बढती प्रतिस्पर्धा उद्यमों पर अपनी लागत कम करने तथा गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए भारी दबाव का रास्ता तैयार करेगी। बुनियादी चरण में सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना, अर्थव्यवस्था में निर्णायक ऊंचाईयों तक पहुंचने तथा तकनीकी प्रगति की तरफ बढने की दृष्टि से की गई थी। भारतीय अद्योगिक संरचना को विविधतापूर्ण बनाने में सार्वजनिक क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान किया है।

किन्तु आन्तरिक स्त्रोतों का निर्माण पुनः विस्तार करने की दृष्टि से इसका योगदान उम्मीदों से काफी पीछे रह गया है और ऐसा कर पाने में इसकी असफलता आर्थिक प्रगति के लिए एक प्रमुख बाधा बन गई है। यह अनिवार्य है कि सार्वजनिक क्षेत्र उन लक्ष्यों को हासिल करे जो कि मूलतः उसके लिए तय किये गये थे। इसके लिए लगातार उत्पादकता एवं मुनाफे में बढोतरी की जरूरत होगी।

यदि मिश्रित अर्थव्यवस्था को एक ऐसे रास्ते के रूप में देखा जाय, जो कि पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों की बुराईयों से बचकर चलता है तो मिश्रित अर्थव्यवस्था ने उचित ढंग से देश की सेवा की है और भविष्य में भी शायद ऐसा ही करती रहेगी। उदारीकरण अथवा नियंत्रण में ढील दिए जाने के बावजूद, हम बाजार अर्थव्यवस्था की स्थिति की तरफ नहीं बढ रहे है। हुआ केवल इतना है कि हमने उस जटिल विनियनकारी ढांचे पर सवालिया निशान लगाना तथा उसे ध्वस्त करना तक शुरू कर दिया है जिसका प्रशासन एक अत्यधिक बोझ से लदी नौकरशाही द्वारा किया जा रहा था जो कि स्वयं को विकासमान प्रशासन के कार्यभारों की तरफ उन्मुख करने में विफल रही। नियंत्रण तथा विनियमन क्रियाविधियां कभी भी विकास रणनीति का अन्तरंग हिस्सा नहीं बनी क्योंकि वे स्वयं भी युद्ध अर्थव्यवस्था की बड़े पैमाने पर विरासत ही है, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने केवल सैन्य उपयोग के लिए खरीद को अधिकतम बढाने के लिए देश पर लाद दिया था। इन नियंत्रणों को हटाए जाने से अर्थव्यवस्था और अधिक स्पंदनशील एवं गतिशील ही बनेगी और वह भी उस सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य को भूले बिना, जो कि उसने अपने लिए निर्धारित किया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत ने आयोजन मार्ग कब अपनाया?
2. मिश्रित अर्थव्यवस्था क्या है?
3. पूंजीवाद का मुख्य उद्देश्य क्या है?
4. भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की शुरूआत कब हुई?
5. सन् 1991 में नई अद्योगिक नीति की घोषणा क्यों करनी पड़ी?

3.6 सारांश

मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के बीच विभाजन रेखा तथा सौहार्द कायम करना अन्तर्निहित है। इसमें बाजार क्रियाविधि का मुक्त क्रियाविधि का मुक्त क्रियाकलाप वर्जित है तथा सरकार निजी क्षेत्र में इस तरह से हस्तक्षेप अथवा विनियमन करती है जिससे कि दोनों क्षेत्र एक दूसरे को सुदृढ बनाते रहे। दोनों ही क्षेत्रों पर राष्ट्रीय लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं के प्रति वचनबद्धता रहती है। यह पूंजीवाद तथा समाजवाद की दो अतिवादी प्रणालियों के बीच का एक रास्ता है।

पूंजीवादी को एक ऐसी आर्थिक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया गया है जो एक बाजार अर्थव्यवस्था के लिए व्यक्तिगत पहलकदमी मुनाफे की हवस तथा निजी व्यक्तियों तथा निगमों द्वारा उत्पादन के साधनों के स्वामित्व पर बल देती है। दूसरी तरफ, समाजवाद, समाज का एक ऐसा आर्थिक संगठन है जिसमें एक सामान्य योजना के तहत उत्पादन के भौतिक साधन समूचे समुदाय की मिल्कियत सम्पत्ति रहते है, समाज के सभी सदस्य, समान अधिकारों के आधार पर इस तरह के समाजवादी नियोजित उत्पादन के फलों का लाभ उठाने के पात्र होते है।

भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा की उत्पत्ति इस तरह से हुई ताकि निजी व सार्वजनिक क्षेत्र, दोनों ही आर्थिक विकास की प्रक्रिया में योगदान कर सकें। 1956 के उद्योग नीति प्रस्ताव ने, उन क्षेत्रों का स्पष्ट सीमा निर्धारण करके, जिनमें प्रत्येक क्षेत्र को कार्य करना था, इसे एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया। नीति के दो औजार थे- अद्योगिक (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1951 तथा कम्पनी अधिनियम, 1956। इन दोनों अधिनियमों

ने, लाईसेंस प्रक्रिया के जरिए सरकार को भारत में प्रमुख उद्योगों के स्थान, उत्पादन तथा विस्तारण को विनियमित करने की शक्तियों से शक्ति सम्पन्न किया। 1977 तथा 1980 के उद्योग नीति प्रस्तावों ने पुनः भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था के कार्यमूलक ढांचे को परिष्कृत किया। भारत में निजी क्षेत्र राष्ट्रीय आय में लगभग 80 प्रतिशत योगदान करता है जबकि सार्वजनिक क्षेत्र शेष 20 प्रतिशत का योगदान करता है। संगठित निजी क्षेत्र का आधुनिकीकरण हो चुका है, वह पूंजी सघन है तथा वित्तीय सेवाओं तक उसकी पहुंच है। हालांकि कई सालों से निजी क्षेत्र एक उच्च-लागत क्षेत्र बना हुआ है और इसीलिए अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र के साथ गैर-प्रतिस्पर्धापूर्ण है। सार्वजनिक क्षेत्र को अर्थव्यवस्था के शीर्षस्थ स्तर पर निर्णायक नियंत्रण कायम करना था। इसके लक्ष्यों में देश की तीव्र आर्थिक प्रगति एवं अद्योगिक रण में सहायता करना, पुनः निवेश हेतु स्त्रोतों का निर्माण करना, रोजगार के अवसर पैदा करना तथा अपेक्षाकृत अधिक समतापूर्ण आय के वितरण द्वारा सामाजिक कल्याण को प्रोत्साहित करना आदि शामिल थे। सार्वजनिक क्षेत्र का प्रदर्शन, यद्यपि, काफी निराशाजनक रहा है। इसके जिम्मेदार अनेक कारणों में कुछ है- राजनैतिक दखलअंदाजी, न्यायपूर्ण मूल्यनीति, अत्यधिक श्रमशक्ति तथा क्षमता का कम उपयोग।

3.7 शब्दावली

पूंजीवाद- पूंजीवाद को एक ऐसी आर्थिक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया गया है कि व्यक्तिगत पहल कदमी बाजार अर्थव्यवस्था को केन्द्रीय मुनाफा कमाने की प्रवृति तथा उत्पादन के साधनो पर निजी व्यक्तियों तथा निगमों के स्वामित्व पर बल देती है।

ईक्विटी- यह किसी संगठन के लिए वित्त जुटाने का एकरूप है, जिसके तहत पूँजी स्टॉक को शेयरों के रूप में रखा जाता है।

औद्योगिक अधिनियम-1951- अधिनियम का मुख्य उद्देश्य भारतीय उद्योगों को इस ढंग से विकास तथा विनियमन करना है, जो कि नियोजन, समाजवादी समाज तथा अन्य सामाजिक आर्थिक निर्णय के अनुकूल हो।

बाजार अर्थव्यवस्था- एक ऐसी आर्थिक प्रणाली जिसके अन्तर्गत क्या उत्पादन किया जाय, कितना उत्पादन किया जाय तथा किसके लिए किया जाय आदि प्रश्नों को माँग तथा आपूर्ति क्रिया कलाप के जरिए एक मुक्त बाजार द्वारा तय किया जाता है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1951, **2.** अलग-अलग बाजार और आर्थिक योजनाओं का मिश्रण, **3.** लाभ कमाना, **4.** सन् 1948 में प्रथम अद्योगिक नीति लागू होने पर, **5.** देश को आर्थिक संकट से बाहर निकालने के लिए

3.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. झा, एल.के. 1980, के दशक के लिए आर्थिक रणनीतिया, एलाइडः नई दिल्ली।
2. जोशी, एम.वी. 1984, मिश्रित अर्थव्यवस्था, हिमालयः मुम्बई।
3. वाइलस, पी.जे.डी., 2015, आर्थिक संस्थाओं की तुलना, वासिल ब्लैक वैलः आक्सफोर्ड।

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. झा, एल.के. 1980, के दशक के लिए आर्थिक रणनीतिया, एलाइडः नई दिल्ली।
2. जोशी, एम.वी. 1984, मिश्रित अर्थव्यवस्था, हिमालयः मुम्बई।

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षण क्या हैं?
2. अद्योगिक नीति प्रस्तावों पर चर्चा कीजिए।
3. भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के लक्ष्य क्या हैं? सार्वजनिक क्षेत्र के खराब प्रदर्शन के लिए जिम्मेदार कारको की व्याख्या कीजिये।

इकाई- 4 केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 संविधान के तहत कार्यों तथा स्त्रोतों का विभाजन
4.3 वित्त आयोग
4.4 योजना आयोग
4.5 भारत का केन्द्रवाद: अशोक चन्द्रा विचार
4.6 केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धः एक आलोचनात्मक मूल्यांकन
4.7 केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों में सुधार हेतु सुझाव
4.8 निष्कर्ष
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास का मूल पाठ यह है कि इस विशाल देश में केवल वही शासन व्यवस्था अथवा प्रणाली बाहरी आक्रमण तथा भीतरी तोड़-फोड़ से इसकी एकता, अखण्डता तथा संप्रभुता को कायम एवं सुरक्षित रख सकती है, जो सर्वोपरि शक्तियों से सम्पन्न एक मजबूत केन्द्र सुनिश्चित करे और उसके साथ-साथ इसकी अनेकताओं के साथ भी समन्वय कर सके। भारतीय संवैधानिक इतिहास का एक अन्य लक्षण जो कि आधार स्तंभ की तरह खड़ा हुआ है, सिद्ध करता है कि, ''देश की विविधता तथा इसके आकार को देखते हुए कोई अत्यधिक केन्द्रीकृत प्रशासन असगंत होगा। इससे प्रशासनिक अक्षमता तथा स्थानीय असंतोष पैदा हो जाएगा।''
भारत में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच वित्तीय सम्बन्धों की स्थिति, गंभीर विवाद का विषय बन गई है। राज्यों द्वारा कई बार केन्द्र पर उनकी बढ़ती वित्तीय निर्भरता पर चिन्ता प्रकट की गई है। दूसरी तरफ केन्द्र को राज्यों में, जिम्मेदारी की भावना की कमी तथा वित्तीय अनुशासन एवं स्त्रोत जुटाने के मूल सिद्धान्तों के प्रति उपेक्षा भाव के दोष दिखाई पड़ते हैं। इस तरह केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध प्रायः तनावों एवं कटुता से भरे रहे हैं। पुराने अथवा नये संघो को, संघीय सरकार तथा इकाई सरकारों के बीच कार्यों एवं स्त्रोतों के स्पष्ट विभाजन, के लक्षण से पहचाना जाता है। भारतीय संविधान के निर्माता, उन टकरावों तथा समस्याओं के प्रति काफी जागरूक थे, जिनका सामना पुराने संघों को वित्तीय सम्बन्धों के क्षेत्र में करना पड़ा था। उन्हें, भारत सरकार अधिनियम, 1935 में उपबन्धित पहले से विद्यमान वित्तीय प्रणाली का एक अतिरिक्त लाभ भी मिला। संविधान में परिकल्पना की गई कि वित्त आयोग की सिफारिश पर राजकोषीय स्त्रोतों का राज्यों को हस्तान्तरण कर दिया जाएगा। हालांकि वित्त आयोग की भूमिका, मुख्यत-राजस्व हस्तांतरणों को प्रवाहत करने तक ही सीमित हो गई। नियोजित विकास के लिए पूंजी स्त्रोतों का हस्तान्तरण अब योजना आयोग की सिफारिशों पर किया जाता है। राष्ट्रीय विकास परिषद जिसके सदस्यों में अन्य लोगों के अलावा सभी राज्यों के मुख्यमंत्री भी शामिल रहते हैं, राष्ट्रीय योजनाओं की समीक्षा करती हैं, राष्ट्रीय विकास नीति के प्रश्न पर विचार करती है तथा राष्ट्रीय योजनाओं के लिए निर्धारित किये गये

लक्ष्यों व उद्देश्यों के क्रियान्वयन के उपाय सुझाती हैं। इन संस्थाओं से एक केन्द्रीकृत ढांचे के भीतर रहते हुए अत्यन्त प्रभावी भूमिका अदा करने की अपेक्षा की जाती हैं। देखा जाये तो संघात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का ही विभाजन नहीं होता, अपितु वित्तीय स्त्रोतों का भी बंटवारा होता है। वित्तीय स्त्रोतों के विभाजन को लेकर राज्यों के बीच मतभेद और तनाव उत्पन्न हो जाना स्वभाविक हैं। यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी कि संघात्मक शासन प्रणाली। इस इकाई में हम केन्द्र व राज्यों के बीच कार्यों तथा स्त्रोतों के बीच विभाजन, वित्त आयोग तथा योजना आयोग पर चर्चा एवं वित्तीय सम्बन्धों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- संघ तथा राज्यों के बीच कार्यों, स्त्रोतों तथा अन्य वित्तीय शक्तियों के विभाजन सम्बन्धी, संवैधानिक प्रावधानों के संबंध में जान पायेंगे।
- वित्त आयोग के कार्यों, संरचना और केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों के संदर्भ में इसके द्वारा निभाई गई भूमिका से अवगत हो पायेंगे।
- योजना आयोग की संरचना, सामान्य कार्यों तथा संघ से राज्यों को स्त्रोतों के अंतरण में उसकी भूमिका की जानकारी ले पायेंगे।
- वर्षों में विकसित हुए केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में सक्षम होंगे।

4.2 संविधान के तहत कार्यों तथा स्त्रोतों का विभाजन

संविधान में वर्णित उत्तरदायित्वों का निर्वाह, केन्द्र तथा राज्य तभी भली-भाँति कर सकते हैं, जब उन्हें तुलनात्मक रूप से पर्याप्त वित्तीय साधन सुलभ हो। किन्तु संघीय समस्याओं मे से वित्तीय सम्बन्धों की समस्या सर्वाधिक कठिन समस्या हैं। परिणामस्वरूप उत्तरदायित्वों के अनुपात में केन्द्र तथा राज्यों को समुचित वित्तीय साधन उपलब्ध करवा सकने के संवैधानिक प्रयासों की प्रक्रिया स्वभावतः जटिल रहती है। हमारे संविधान के अन्य पक्षों की भांति ही केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों का स्वरूप भी भारत सरकार अधिनियम, 1935 से प्रभावित है। इस संदर्भ में हमारे संविधान की यह विशेषता रही है कि वित्तीय साधनों को पूर्णतः विभक्त कर देने की अपेक्षा, संघ की दोनों इकाईयाँ केन्द्र तथा राज्यों के मध्य यथा आवश्यकता तथा यथा सम्भव समान रूप से विभाजित करने का प्रयास किया गया हैं। यही नहीं, इस दिशा में, एक सीमा तक स्वतन्त्र भारत के संविधान निर्माताओं ने 1935 अधिनियम की न्यूनताओं- प्रांतीय सरकारों के हिस्से में अति अल्प राजस्व सुलभता को दूर करने के प्रयास किया है। किसी भी संघात्मक संविधान में केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों की इतनी विस्तृत व्याख्या नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त, संघीय व्यवस्थाओं में, वित्तीय साधनों के वितरण की कठिन समस्याओं को लेकर होने वाले विवादों के संदर्भ में वित्त आयोग जैसी संस्था का संवैधानिक प्रावधान भी हमारे संविधान की एक उल्लेखनीय व्यवस्था है।

वित्तीय साधनों के विभाजन की हमारी संवैधानिक व्यवस्था को पांच भागों में विभक्त कर देखा जा सकता है-

1. आय के वे स्त्रोत जिनके संदर्भ में करारोपण कर शक्ति, कर एकत्रण का दायित्व, तथा प्राप्त आय के प्रयोग का सम्पूर्ण अधिकार केन्द्र को प्राप्त होता है।
2. आय के वे स्त्रोत जिनके संदर्भ में करारोपण की शक्ति, तथा कर-एकत्रण का दायित्व तो केन्द्र का होता है, किन्तु प्राप्त राजस्व के उपयोग में राज्य भी भागीदार होते है।

3. आय के वे स्त्रोत जिनके संदर्भ में करारोपण की शक्ति, तथा कर एकत्रण का दायित्व तो केन्द्र का होता है, किन्तु प्राप्त सम्पूर्ण आय के अधिकारी राज्य ही होते हैं।
4. आय के वे स्त्रोत जिनके करारोपण की शक्तियां ही केन्द्र के पास होती हैं। कर एकत्रण का दायित्व तथा एकत्रित धनराशि के उपयोग के अधिकार राज्यों के पास होते हैं।
5. आय के वे स्त्रोत जिनके संदर्भ में करारोपण की शक्तियां, कर एकत्रित करने का दायित्व तथा प्राप्त राशि के उपयोग के सम्पूर्ण अधिकार राज्यों को प्राप्त हैं।

करों के साझे के प्रावधानों के अतिरिक्त, संविधान की धारा-275, सामान्य उद्देश्य तथा विशिष्ट अनुदानों, दोनों का प्रावधान करती है। हालांकि किसी राज्य को अनुदान सहायता की आवश्यकता है तथा किस सीमा तक आवश्यक ता है, इस बात का निर्णय संसद पर छोड दिया गया है और यह वित्त आयोग की सिफारिश के आधार पर किया जाता है।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों की कर्ज लेने की शक्तियां संविधान की धारा-292 तथा 293 द्वारा विनियमित होती है। भारत के समेकित कोष की जमानत पर केन्द्र सरकार देश के भीतर अथवा बाहर से कर्ज ले सकती हैं किन्तु यदि संसद द्वारा इसकी कोई सीमा निर्धारित की गई हो, तो यह उसके अनुसार ही किया जा सकेगा। राज्य सरकारें केवल भारत की सीमाओं के भीतर ही केन्द्र सरकार की स्वीकृति से कर्ज ले सकती हैं। केन्द्र सरकार संसद द्वारा बनाए गए कानून की शर्तो के अनुरूप राज्य सरकारों को कर्ज दे सकती हैं।

यदि भारत का राष्ट्रपति इस बात से आश्वस्त हो कि ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है जिसमें भारत अथवा उसके किसी हिस्से में वित्तीय स्थिरता अथवा प्रतिष्ठा को खतरा पैदा हो गया है, तो संविधान की धारा- 360 के तहत, राष्ट्रपति वित्तीय आपातकाल की घोषणा कर सकता है। इन असामान्य एवं आपात परिस्थितियों में, राज्य सरकारों में राजस्व वसूली तथा वितरण केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकारों द्वारा, संसद के निर्णय के अनुसार किया जाता है।

केन्द्र तथा राज्य के बीच वित्तीय शक्तियों तथा संसाधनों का आवंटन निश्चय ही सबसे महत्वपूर्ण तथा अभी भी सबसे कठिन कार्यभार है। फैडरेशनों का राजस्व निस्संदेह बढ़ता रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे कुछ फैडरेशनों में, जहां फैडरेशन तथा राज्यों को समवर्ती करारोपण शक्तियां प्राप्त है, अनेको न्यायिक विवाद पैदा होते रहे हैं। कनाडा तथा आस्ट्रेलिया की संघीय व्यवस्थाओं में वित्तीय सम्बन्ध अनिश्चय तथा शंका के कारण बने हैं। इसका मूल कारण वहाँ, आय के एक ही स्त्रोत पर दोनों इकाईयाँ केन्द्र तथा राज्य द्वारा करारोपण का संवैधानिक अधिकार रहा हैं। इस संदर्भ में, वित्तीय साधनों की विभाजन समस्या का अमेरिकी स्वरूप भी इन्हीं कारणों से समस्याग्रस्त रहा है।

इसलिये वित्तीय सम्बन्धों का दूसरा स्वरूप साधनों के विभाजन की विधि को भारतीय संविधान ने अपनाया। किन्तु इसकी भी अपनी पृथक कठिनाइयाँ हैं। भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय स्त्रोतों के आवंटन के बारे में प्रायः यह आलोचना की जाती है कि राजस्व के अधिकांश स्त्रोत केन्द्र को सौंपे गए हैं। जबकि राज्य, जिन पर महत्वपूर्ण विकासात्मक तथा कल्याणकारी कार्यों का दायित्व है, उन्हें गैर-लचीले तथा अपर्याप्त राजस्व स्त्रोत सौंपे गये हैं। केन्द्र-राज्य वित्त सम्बन्धों का यह पक्ष जहां सामयिक एवं सांदर्भिक लोचशीलता लाने का माध्यम है वहीं जटिलता का कारण भी हैं। प्राप्त आय के विभाजन की समस्या के हल का दायित्व एक सेसंवैधानिक संस्था वित्त आयोग पर हैं।

4.3 वित्त आयोग

वित्त आयोग तथा योजना आयोग दो ऐसे महत्वपूर्ण निकाय हैं, जिनके माध्यम से केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय हस्तान्तरण प्रभावी बनाए जाते हैं। केन्द्र तथा राज्यों के बीच स्त्रोतों के आवंटन में, राजस्व के लचीले स्त्रोत

केन्द्र को सौंपे गए हैं। यह तथ्य कि, संविधान आयकर प्राप्तियों की बाध्यकारी साझेदारी तथा संघीय उत्पादन कर की अनुज्ञात्मक साझेदारी का प्रावधान करता हैं, स्वयं ही राज्यों के राजस्व स्त्रोतों की अपर्याप्तता की ध्वनित स्वीकृति है। हालांकि, संविधान राज्य के हिस्से को स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं करता। इसीलिए, सविधान द्वारा इस मकसद (उद्देश्य) के लिए सांविधिक रूप से वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया हैं। निम्न सदंर्भो में वित्त आयोग राष्ट्रपति को अपनी सिफारिशे प्रस्तुत करता है-

1. संघ तथा राज्यों के बीच साझा किये जाने वाले करों की कुल प्राप्तियों का वितरण तथा इस तरह की प्राप्तियों के हिस्सों का राज्यों के बीच आवंटन।
2. वे सिद्धांत जो कि संघीय अनुदान सहायता के राजस्व का राज्यों को भुगतान करने का आधार प्रदान करता है।
3. संघ तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों से जुड़ा कोई भी अन्य मामला।

वित्त आयोग एक अर्ध-न्यायिक निकाय है तथा यह केन्द्र तथा राज्यों से स्वतंत्र रूप में काम करता है। प्रत्येक वित्त आयोग के निश्चित संदर्भ शर्तो को केन्द्रीय वित्त मंत्रालय तैयार करता है। इस मामले में राज्य सरकारों से सलाह नहीं ली जाती। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे समय पर विभिन्न राज्यों के बीच, जो कि भिन्न-भिन्न विचारों वाले विभिन्नराजनैतिक दलो द्वारा शासित रहते है, किसी सर्वसम्मत दृष्टिकोण तक पहुंचने में आने वाली व्यावहारिक समस्याओं ने शायद राज्य सरकारों से सलाह-मशविरा करने के काम को निरूत्साहित किया है।

कुछ प्रमुख फैडरेशनों में, संघीय तथा राज्य सरकारों के बीच राजस्व का बटंवारा करने की स्पष्ट रूप से निर्धारित तथा संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थागत क्रियाविधि के अभाव में, अनेकों तरह के समन्वय करने पड़ते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा कनाडा जैसे फैडरेशनों में समवर्ती करारोपण शक्तियों के कारण ''किस स्तर द्वारा किस प्रकार के करों का उपयोग, किस सीमा तक किया जाना है, इसका निर्णय, संवैधानिक प्रावधानों से अधिक, संविधि अथवा समझोते में शामिल शर्तो तथा वार्ताओं द्वारा किया गया है।'' संयुक्त राज्य अमेरिका में, कम से कम, जो कर-प्रणाली कई वर्षों के दौरान विकसित हुई है, गैर-सामंजस्यपूर्ण रूप से ही व्याख्यायित की जाती है। अन्य फैडरेशनों में भी इसी तरह की अथवा इससे भी भयानक समस्याएं विद्यमान हैं।

दूसरी तरफ, भारत में वित्त आयोग, अपनी संवैधानिक प्रतिष्ठा के कारण, एक बेमिसाल व्यवस्था बन गई है। इस प्रतिष्ठा तथा एक विशेषज्ञ निकाय होने के कारण, स्त्रोतों का हस्तान्तरण अर्थात करों का साझा तथा अनुदान राहते, राजनैतिक सौदेबाजी के सीमा क्षेत्र से हटा दी गई हैं। यधपि आयोग एक सलाहकार निकाय ही हैं, किन्तु इसकी सिफारिशों तथा उनके अनुसार की गई कार्यवाहियों को संसद के समक्ष प्रस्तुत करना होता हैं।

वित्त आयोग की स्थापना का प्रावधान हमारी संघीय व्यवस्था की मौलिक उपलब्धि है। संविधान के अनुच्छेद-280 तथा 281 में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया हैं। एम.वी. पायली के शब्दों में, इन उपबन्धों के अनुसार राष्ट्रपति संविधान लागू होनें के दो वर्षो के अन्दर और उसके प्रति पांच वर्ष पश्चात् अथवा जब वह आवश्यक समझे वित्त आयोग की स्थापना कर सकता हैं। संविधान के अनुसार वित्त आयोग का गठन योग्य सदस्यों को लेकर किया जाना चाहिए। 1951 के वित्त अधिनियम के अनुसार, ''अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे सार्वजनिक मामलों का अनुभव हो। चार सदस्यों को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किए जाने के लिए आवश्यक योग्यताओं से सम्पन्न होना चाहिए अथवा अर्थशास्त्र, वित्तीय मामलों अथवा सरकार के वित्त तथा लेखे का विशिष्ट ज्ञान होना चाहिए। इसे प्रदान किया गया संवैधानिक स्तर तथा अर्ध न्यायिक विशेषज्ञ निकाय के तौर पर इसके संचालन के कारण वित्त आयोग को संघ तथा राज्यों का उच्च सम्मान प्राप्त हुआ है।

भारत में, अब तक चौदह वित्त आयोगों का गठन किया जा चुका है और उन्होंने केन्द्र से राज्यों को राजकोषीय हस्तान्तरणों के संदर्भ में एक समान दृष्टिकोण अपनाया हैं। अपनी सिफारिशें तैयार करने में वित्त आयोगों द्वारा

कुछ सामान्य सिद्धांतों अथवा निर्णयों को ध्यान में रखा गया हैं। पहले वित्त आयोग द्वारा निम्न कुछ सिद्धांत निर्धारित किये गए-

- केन्द्र के अतिरिक्त स्त्रोंतो का हस्तान्तरण इस प्रकार से होना चाहिए ताकि केन्द्र उसे आसानी से वहन कर सके और उसके स्त्रोतों पर इसका अनुचित दबाव न पड़े। इस सन्दर्भ में देश की सुरक्षा का अर्थव्यवस्था के स्थायित्व को बनाये रखने जैसे महत्वपूर्ण मामलों में उसकी जिम्मेदारियों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।
- राज्यों के बीच स्त्रोतों के वितरण तथा अनुदान - राहतों का निर्णय करने का सिद्धांत, सभी पर एक समान ढ़ग से लागू किया जाना चाहिए।
- वितरण की योजना को राज्यों के बीच असमानताओं को कम करने के प्रयत्न करने चाहिए।

वित्त आयोग ने पुनः नोट किया: ''अनुदान राहतों की किसी व्यवस्था का उद्देश्य राज्यों द्वारा स्वंय अपने बजटों को संतुलित रखने के दायित्व को कम करना नहीं हैं अपितु वित्तीय सहायता प्रदान करने का तरीका ऐसा होना चाहिए ताकि इस भ्रम से बचा जा सके कि राज्यों को साल-दर-साल उनके बजट को संतुलन करने में मदद करने का दायित्व स्वयं केन्द्र सरकार ने ले लिया हैं।''

14वें वित्त आयोग की रिपोर्ट में कर हस्तान्तरण सम्बन्धी सिफारिश में कहा गया कि राज्यों की कर राजस्व से होने वाली शुद्ध आय में करीब 42 फीसदी की हिस्सेदारी होनी चाहिए। 13वें वित्त आयोग द्वारा करीब 32 प्रतिशत हिस्सेदारी की सिफारिश की गई थी। यह कर हस्तान्तरण में होने वाला अब तक का सबसे बड़ा बदलाव हैं। जिससे राज्यों की राजकोषीय स्वायत्ता को संरक्षित रखा जा सके और वित्त आयोग की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद राष्ट्रपति द्वारा यथा प्रस्तावित तरीके से आय पर लगे करों के मामले में केन्द्र तथा राज्यों के बीच राजकोषीय दायित्वों को आगे बढ़ाया जा सके।

संघ तथा राज्यों के बीच स्त्रोतों का हस्तान्तरण

1. **आयकर का साझा-** संविधान की धारा 270 (I), संघ तथा राज्यों के बीच आय पर लगे करों के वितरण का प्रावधान करती है। यह वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के उपरान्त राष्ट्रपति द्वारा यथा प्रस्तावित तरीके से किया जाता हैं।

   पहले वित्त आयोग ने संचित कोष में से राज्यों का हिस्सा 55 प्रतिशत निर्धारित किया था जो कि इससे पूर्व 50 प्रतिशत था। आगे चलकर, इसे दूसरे, तीसरे तथा चौथे वित्त आयोग ने बढ़ाकर क्रमश: 60 प्रतिशत, 66 प्रतिशत तथा 75 प्रतिशत कर दिया छठे तथा सातवें वित्त आयोग ने पुनः बढ़ाकर क्रमश: 80 प्रतिशत तथा 85 प्रतिशत तक कर दिया। आठवें तथा नौवें वित्त आयोग ने उसे इसी स्तर पर बरकरार रखा। किन्तु दसवें वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट में 1995-2000 की अवधि के लिए आयकर से शुद्ध प्राप्ति के 77.5 प्रतिशत को राज्यों को हस्तान्तरित करने की सिफारिश की।
2. **उत्पादन शुल्क का साझा-** यह एक अन्य कर हैं जिसकी प्राप्तियों का, संघ राज्यों के साथ साझा करता हैं। संविधान की धारा- 272 के तहत, दवाओं तथा प्रसाधन प्रदार्थो जिनका उल्लेख संघ सूची में किया गया है, को छोड़कर संघीय उत्पादन शुल्क केन्द्र द्वारा लगाए तथा वसूल किये जाते हैं, किन्तु यदि संसद कानून बनाकर इसका प्रावधान करे तो केन्द्र तथा राज्यों के बीच इनका साझा किया जा सकता हैं। राज्यों का हिस्सा लगातार बढ़ता रहा हैं। इस वृद्धि के मुख्यतः निम्न कारण हैं- कर के दायरे में लाई गई वस्तुओं की संख्या में वृद्धि। दरों में वृद्धि। मूल्यों में वृद्धि। तथा कर योग्य वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि।
3. **अनुदान राहत-** संविधान की धारा- 280 के तहत, भारत के समेकित कोष में से राज्यों के राजस्व की अनुदान.राहतों के भुगतान के विषय में, सिफारिश करने का अधिकार वित्त आयोग को दिया गया है।

राज्यों को उनके वित्तीय अंश दे देने के बाद भी संभव है, उन्हें साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हुए हो। इस कमी को पूरा करने हेतु संवैधानिक व्यवस्था है कि संसद उन राज्यों को अनुदान सहायता सुलभ करावे जिन्हें वह सहायता की आवश्यकता में अनुभव करती हो। धारा- 275 उन राज्यों को इस तरह के कोषों का भुगतान करने का प्रावधान करती हैं, जिन्हें सहायता की सख्त आवश्यकता हो। किन्तु अनुदान राहतों के सिलसिले में पैदा होने वाले विवादों का कारण यह है कि 'आवश्यकता ' शब्द की संविधान में स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई हैं। पहले वित्त आयोग ने अनुदान राहतों के लिए छः सिद्धांतों को सूचीबद्ध किया था जिनका बाद के वित्त आयोग द्वारा भिन्न-भिन्न स्तरों पर बल देते हुए अनुसरण किया गया। ये सिद्धांत हैं- बजटीय आवश्यकताएं, कर प्रयास, व्ययों में किफायत, सामाजिक सेवाओं का स्तर, विशेष बाध्यता तथा राष्ट्रीय महत्व का आम मकसद।

पहले वित्त आयोग ने जूट पैदा करने वाले राज्यों के लिए विशिष्ट अनुदानों तथा 8 राज्यों को प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए विशेष अनुदानों की सिफारिश की।

तीसरे वित्त आयोग ने योजना परिव्ययों को भी शामिल करके अनुदान राहतों के क्षेत्र को व्यापक बनाने का प्रयास किया।उसका विचार यह था कि अनुदान राहतों का कुल प्रभाव एक ऐसे क्रम में होना चाहिए जो कि राज्यों को हस्तान्तरणों से प्राप्त अतिरिक्त राशि सहित, उनकी योजनाओं की राजस्व आवश्यकताओं के 75 प्रतिशत को पूरा करता हो। इसके ठीक विपरीत चौथे वित्त आयोग ने स्वयं को गैर-नियोजित व्यय तक सीमित रखा और इस तरह केवल गैर-नियोजित अनुदानों को ही पूरा करने के लिए धारा- 275 के क्षेत्र को सीमित कर दिया। पांचवे आयोग द्वारा भी इसी तरह के विचार व्यक्य किये गए। छठे वित्त आयोग ने, सामान्य प्रशासन, न्यायिक प्रशासन, जेल, पुलिस तथा प्राथमिक शिक्षा, चिकित्सा एवं जन-स्वास्थ्य, अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों का कल्याण आदि कुछ समाज सेवाओं जैसी प्रशासनिक सेवाओं की पहचान करते हुए उन्हें निर्णायक महत्व का माना। इसने सिफारिश की कि वे राज्य जिनका इन मदों पद प्रति व्यक्ति व्यय अन्य राज्यों के औसत से कम हो, उन्हें इस फैसले के अन्तिम वर्ष तक, उस औसत तक पहुंचने में सक्षम बनाया जाना चाहिए। सम्पूर्ण योजना राजस्व के अन्तर की मात्रा का निधरिण करने के लिए इन अतिरिक्त प्रावधानों का ध्यान रखा गया।

सातवें वित्त आयोग का विचार यह था कि अनुदान राहतें सहायता का केवल अवशिष्ट माध्यम ही रहनी चाहिए और इनका उपयोग मात्र अपूर्ण राजस्व असमानताओं को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए। आठवां वित्त आयोग, सातवें आयोग के विचार से आमतौर पर सहमत था। इसलिए आगामी वित्त आयोगों द्वारा अनुदान राहतों की सिफारिश करने में, अवशिष्ट वित्तीय सहायता वाले दृष्टिकोण का अनुसरण किया गया। नौवें वित्त आयोग के दृष्टिकोण तथा कार्यप्रणाली को रेखांकित करने वाले मूल उद्देश्य निम्न प्रकार थे- केन्द्र तथा राज्यों के राजस्व घाटों को इस तरह से कम करना ताकि 31 मार्च, 1995 तक घाटा कम होकर शून्य तक अथवा अपेक्षाकृत छोटी संख्या तक पहुंच जाएं। राजकोषीय स्रोतों के वितरण में ऊर्ध्व तथा क्षितिज दोनों तरह की क्षमता, तथा स्रोतों के उपयोग में राजकोषीय अनुशासन तथा कार्यकुशलता को प्रोत्साहन।

दसवें वित्त आयोग ने इस आधार पर सिफारिश की कि- केन्द्रीय करों से कुल राजस्व प्राप्ति का भाग 26 प्रतिशत होना चाहिए तथा अतिरिक्त उत्पाद शुल्क को बुनियादी उत्पाद शुल्क के साथ जोड़कर, केन्द्र की कुल कर प्राप्तियों का 3 प्रतिशत राज्यों को सौंप देना चाहिए। ग्यारहवें वित्त आयोग ने कुछ ऐसी सिफारिश की है जो बजट घाटे का कम करती है। जैसे- कर आधार का विस्तार, खर्चों पर नियन्त्रण, सेवाओं पर कर लगाना, लागत आधारित उपयोग शुल्क, खदानों की रायल्टी में निरन्तर बदलाव,

सरकारी विभागों एवं सरकारी उद्यमों के खर्चों को कम करना आदि। पिछले वित्त आयोगों की भांति, 12 वें वित्त आयोग ने गैर-योजना राजस्व घाटे सम्बन्धी अनुदान संविधान के अनुच्छेद- 275 के आधीन 15 राज्यों को वितरित करने की सिफारिश की जिनका कुल गैर-योजना राजस्व .घाटा 2005-10 की अवधि के लिए 56,856 करोड़ रू0 आंका गया।

वित्त आयोगों ने संघीय वित्त के क्षेत्र में अपनी सीमाओं के बावजूद बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। इन सीमाओं में से कुछ निम्न प्रकार हैं- संवैधानिक सीमाएं क्योंकि इसे एक निर्धारित रूपरेखा के तहत् कार्य करना होता था। संघ द्वारा वित्त आयोग पर लादी गई बाधाएं जो कि कुछ संदर्भ शर्तों का प्रावधान करके पेश कर दी जाती है। वित्त आयोग की महत्पूर्ण सिफारिशों का संघीय सरकार द्वारा क्रियान्वित न किया जाना। वित्त आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली कार्य प्रणाली से उत्पन्न होने वाली समस्याएं। कुछ राज्यों द्वारा वित्त आयोग के कामकाज में सुधार के लिए सुझाव दिए गये हैं। सरकारिया आयोग द्वारा निम्न प्रकार से उनका सारांश प्रस्तुत किया गया है-

- वित्त आयोगों के कार्यों का विस्तार किया जाना चाहिए। इसे योजना तथा अन्य हस्तान्तरणों पर निर्णय करने तथा/अथवा संघ एवं राज्य सरकारों के वित्तीय निष्पादन की वार्षिक तौर पर बोधगम्य समीक्षा को भी अपने हाथ में लेना चाहिए।
- बढ़ती जिम्मेदारियों को देखते हुए वित्त आयोग को एक स्थाई निकाय बनाया जाना चाहिए।
- वित्त आयोग तथा योजना आयोग के बीच तालमेल में सुधार करना चाहिए ताकि राज्यों को केन्द्रीय सहायता के प्रवाह के विषय में एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाना संभव हो सके।
- इसे एक स्थाई सुव्यवस्थित सचिवालय उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जो कि अध्ययन कार्य तथा अनुवर्ती वित्त आयोगों की सुविधा के लिए कार्यमूलक निरन्तरता को जारी रख सके।

4. **केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों का प्रभाव-** आर्थिक नियोजन की तकनीक सर्वाधिकारवादी अर्थव्यवस्थाओं की देन हैं। अर्थव्यवस्था को इससे सुनिश्चित एवं निर्णायक स्वरूप मिलता है। प्रजातांत्रिक समाजवाद की और उन्मुख विकासशील अर्थव्यवस्थाएं जब अपने तीव्रतर विकास हेतु ''नियोजन तकनीक'' को अपनाती है तो इसका उनके समूचे शासनतत्रं पर व्यापक प्रभाव पड़ना अनिवार्य होता है। सम्पूर्ण सामाजिक आर्थिक परिर्वतन की सिद्धि से प्रेरित होकर योजना का प्रारम्भ चाहे केन्द्रीयकरण से करें, योजनात्मक प्रभावों को प्रत्येक संघीय इकाई हेतु वरदान का स्तर प्राप्त होना अनिवार्य है। परिवर्तित भारतीय संदर्भ में देखा जा सकता है कि योजना का मूल उद्देश्य केन्द्र के निर्णयों एवं नितियों को थोपना नहीं वरन् इकाइयों की समान विकास.क्रिया को स्थाई बनाना है। आगामी युग में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध इसी संदर्भ में सकारात्मक दिशा में विकसित हो सकेंगे।

4.4 योजना आयोग

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान से ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं का नियोजित अर्थतंत्र की और रूझान स्पष्ट रहा है। पण्डित जवाहर लाल नेहरू तो रूसी नियोजन तंत्र से अत्यधिक प्रभावित थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व नियोजन के कुछ सीमित किन्तु उल्लेखनीय प्रयास किये गये। अंग्रेजी शासन की समाप्ति के तुरन्त बाद तो, लम्बे उपनिवेशवादी शोषण के फलस्वरूप जर्जरे अर्थव्यवस्था के पुर्नजीवन हेतु, नियोजित आर्थिक विकास के माध्यम को स्वीकृति दे दी गई। संवैधानिक रूप से नियोजन समवर्ती सूची का विषय हैं। 15 मार्च, 1950 को योजना निर्माण हेतु दैनिक प्रशासकीय मामलों से पूर्णतः स्वतंत्र एक परामर्शदात्री निकाय के रूप में योजना आयोग का एक गैर संवैधानिक संस्था के रूप में गठन किया गया। इस आयोग से यह अपेक्षा की गई है कि वह राष्ट्र के उपलब्ध साधनों के

विकास एवं उनके श्रेष्ठ आवंटन का कार्य करेगा तथा इस प्रक्रिया में मौलिक अधिकारों एवं नीति-निर्देशक तत्वों के प्रकाश में अपने कार्यो का समायोजन करेगा। संक्षेप में राष्ट्रीय योजना निर्माण एवं मूल्यांकन का दायित्व आयोग को सौंपा गया, योजना निष्पादन का सम्पूर्ण पक्ष इससे पृथक ही रखा गया।

राष्ट्र की मूलभूत प्राथमिकताओं का निर्धारत तथा निर्धारित लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध साधनों का विनियोजन, सम्यक नियोजन हेतु आवश्यक होता हैं। इस प्रकार भारत जैसे विशाल राष्ट्र की एक सम्पूर्ण योजना बनाते समय केन्द्र तथा राज्य के दायित्वों की संवैधानिक पृथकता का, बाधा के रूप में उपस्थित होना अवश्यम्भावी था। इस दुविधापूर्ण स्थिति को दर्शाते हुए एच.के. परांजपे ने कहा था कि,''सामाजिक और आर्थिक आयोजनों को भारतीय संविधान की समवर्ती सूची में सम्मिलित किया गया है, किन्तु योजना से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण विषय कुल मिलाकर केन्द्र व राज्य की दोनों सूचियों में देखे जा सकते हैं।'' विकास हेतु योजना की आवश्यकता तथा समूचे राष्ट्र के लिए एक योजना बनाने के प्रयास में संविधान द्वारा खींची गई सीमा रेखाएं लाघे जाने की आवश्यकता श्री रामचन्द्रन के द्वारा भी व्यक्त की गई। मूल समस्या यह है कि ''इस प्रकार की योजनाएं किस प्रकार बनायी जायें तथा उनकी क्रियान्वित किस प्रकार की जायें कि वे राष्ट्रीय योजनाएं रह सके तथा साथ ही राज्यों की योजनाओं को भी समन्वित कर सके। इतना ही नहीं, इन उद्देश्यों की प्राप्ति एक ऐसी जनतांत्रिक व्यवस्था के माध्यम से करनी होगी, जिसमें विभिन्न दल (केन्द्र व राज्यों में) अलग-अलग समय में सत्ता में आते जाते रहते हैं।''

योजना आयोग के सामान्य कार्यों में निम्नलिखित शामिल हैं-

1. भौतिक, पूंजीगत तथा मानव संसाधनों का मूल्यांकन।
2. योजना को निर्माण उनके अत्यन्त प्रभावी एवं संतुलित उपयोग के लिए करना।
3. प्राथमिकताएं निश्चित करना तथा योजना के प्रत्येक चरण के मुताबिक स्त्रोतो का आवंटन।
4. योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए तंत्र का निर्णय।
5. प्रगति का मूल्यांकन तथा योजना लागू किये जाते समय नीतियों एवं उपायों में संशोधन के प्रस्ताव करना।
6. वर्तमान विकास नीतियों, उपायों इत्यादि पर अंतरिम एवं सहयोगी सिफारिशें करना।

प्रारम्भ से ही प्रधानमंत्री योजना आयोग का अध्यक्ष रहता आया है। उपाध्यक्ष कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति होता है जो आमतौर पर केन्द्रीय मंत्री के पद पर आसीन, एक राजनीतिज्ञ ही होता हैं। योजना मंत्री के अलावा योजना आयोग में दो प्रकार के सदस्य होते हैं। कुछ पूर्ण कालिक सदस्य होते है जो कि अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, तकनीकी विशेषज्ञों अथवा प्रशासकों, जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। इसके अतिरिक्त आयोग के कुछ सदस्य वित्त मंत्री, रक्षा मंत्री आदि जैसे केबिनेट स्तर के मंत्री होते है जो केवल आयोग की अतिआवश्यक बैठकों में भाग लेते हैं। योजना आयोग के कार्यों में सहायता करने के लिए एक विशाल सचिवालय की स्थापना की गई हैं।

योजना आयोग में कुछ सलाहकार भी होते हैं जो कि राज्यों के सम्बन्ध में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक तरफ वे योजना आयोग की राज्य योजनाओं को अन्तिम रूप देने में सहायता करते हैं तथा दूसरी तरफ, राज्यों में विभिन्न विकास कार्यक्रमों की प्रगति की समीक्षा करते हैं। वे राज्य सरकारों के साथ सम्पर्क भी बनाए रखते हैं तथा योजनाओं के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं का समाधान करने में राज्य सरकारों की सहायता भी करते हैं। इस तरह उनसे योजना आयोग तथा राज्य सरकारों के बीच एक सक्रिय संपर्क के रूप में कार्य करने की अपेक्षा की जाती हैं।

यहां विचारणीय बात यह है कि राष्ट्रीय विकास की आयोजना व्यवस्था में आवश्यक निरन्तरता को उस समय किस प्रकार जीवित रखा जायें जबकि केन्द्र एवं राज्यों में अलग.अलग दलों की, विरोधी नीति रखने वाली सरकारें सत्तारूढ़ हो और वे एक-दूसरे पर आक्षेप-प्रत्याक्षेप लगाकर एक दूसरे को कमजोर बनाने में जुटी हो। संभवतः इन्हीं प्रश्नों के संदर्भ तथा विशेषतः संघात्मक व्यवस्था होने के फलस्वरूप कोई भी हल राज्यों की समान

सहभागिता बिना, हमारी संवैधानिक व्यवस्था में औपचारिक तथा व्यावहारिक रूप मैं स्वीकार नहीं हो सकता। इसलिये योजना आयोग की सिफारिश पर राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन पर्याप्त उपयोगी कदम था। इस प्रकार राष्ट्र के सर्वोच्च राजनैतिक विचार मण्डल के रूप में अगस्त, 1952 में राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन कर दिया गया। अपने संगठनात्मक स्वरूप में यह एक संघात्मक संस्था हैं। योजना निर्माण से पूर्व, योजना निरूपण हेतु योजना निर्माण को आवश्यक दिशा निर्देश तथा योजना प्रारूप को अन्तिम स्वरूप देने से पूर्व संस्था द्वारा व्यापक विचार-विमर्श योजना प्रशासन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में राज्यों को पर्याप्त भागीदारी का अवसर प्रदान कर देता हैं। इसे (राष्ट्रीय विकास परिषद) तीन महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गए- समय-समय पर राष्ट्रीय योजना के कामकाज की समीक्षा, राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाली सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार, तथा राष्ट्रीय योजना के उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त करने के उपायों की सिफारिश।

वर्तमान में प्रधानमंत्री के अलावा जो कि इसका अध्यक्ष भी हैं, इसके सदस्यों में सभी राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री तथा संघीय मंत्रीमंडल के मंत्री, शामिल रहते हैं। परिषद की बैठक,यथाशीघ्र जब भी आवश्यकता हो तथा प्रत्येक वर्ष में कम से कम दो बार अवश्य होनी चाहिए। हालांकि, राष्ट्रीय विकास परिषद कोई संवैधानिक निकाय नहीं हैं, इसका वास्तविक गठन ही इसे एक अनोखा चरित्र प्रदान करता हैं, तथा इसकी सिफारिशों का संघ एवं राज्य सरकारों द्वारा यथोचित सम्मान किया जाता हैं। यह सम्पूर्ण नियोजन प्रक्रिया को एक राष्ट्रीय चरित्र प्रदान करती हैं।

संघ से राज्यों को किया जाने वाला स्त्रोतों का हस्तान्तरण तीन श्रेणीयों में बांटा जा सकता है-

- वित्त आयोग की सिफारिशों पर आधारित हस्तान्तरण।
- योजना आयोग द्वारा की गई सिफारिशों पर आधारित योजनाओं को लागू करने के लिए सहायता के बतौर किए जाने वाले हस्तान्तरण, जिनमें केन्द्र द्वारा प्रसारित योजनाएँ भी शामिल है।
- अल्प बचत, ऋणों, प्राकृतिक विपदाओं के लिए सहायता आदि से सम्बद्ध अन्य हस्तान्तरण, जिन्हें संघीय वित्त मंत्रालय के द्वारा दिया जाता हैं।

वित्त आयोग की सिफारिशों पर किए गए हस्तान्तरण, जिन्हें सांविधिक हस्तान्तरण भी कहा जाता हैं। सामान्यतः पांच वर्षो की अवधि के लिए निर्धारित किए जाते है। इनमें से अधिकांश हस्तान्तरण बिना शर्त किए जाते हैं तथा सम्बद्ध कर प्राप्तियों की वृद्धि के संदर्भ में, राज्य आश्वस्त रहता हैं । दूसरी श्रेणी में आने वाले हस्तान्तरणों का एक बड़ा भाग (हिस्सा), राज्य योजनाओं को लागू करने के लिए सहायता के बतौर दिया जाता हैं। योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता योजना आयोग की सिफारिशों पर आधारित होती हैं। इसके तहत् ऋण एवं अनुदान शामिल रहते हैं। तीसरी श्रेणी वाले हस्तान्तरण, संघ सरकार द्वारा विभिन्न उद्देश्यों (मकसदों) से किए जाते हैं। ये प्राकृतिक विपदाओं, सड़कों की मरम्मत, शिक्षकों के वेतन में वृद्धि इत्यादि के लिए अनुदान तथा ऋणों के रूप में दिए जाते हैं।

केन्द्रीय सहायता, क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने तथा विशेष रूप से कम विकसित राज्यों को उनकी विकासात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वित्त में वृद्धि करने का महत्वपूर्ण औजार हैं। योजना.सहायता हमेशा से राज्यों की योजनाओं के लिए निर्णायक रूप से महत्वपूर्ण रही हैं और वर्तमान में राज्य योजना परिव्ययों की लगभग 50 से 60 प्रतिशत तक केन्द्रीय सहायता से पूरा किया जाता हैं। योजना सहायता के रूप में दी जानी वाली धनराशि जो अनुदानों तथा ऋणों के रूप में दी जाती है, सदैव निर्धारित मानक के आधार पर निश्चित की गई हैं। इस सबके बावजूद, वास्तविक रूप में अपेक्षाकृत मजबूत राज्य अपने निर्धारित हिस्से से अधिक हड़पते रहे हैं। प्रायः यह आरोप लगाए गए है कि संघ से किए गए कुल हस्तान्तरणों में से कुछ ही ऐसे है जो कि वित्त आयोग की सिफारिश पर किए गए है, योजना आयोग तथा केन्द्रीय मंत्रालयों के माध्यम से किए गये हस्तान्तरण के रहे है।

प्रथमतः योजना-सहायता संघ सरकारबाध्यकारी नहीं है। दूसरा यह कि, केन्द्रीय सहायता का आवंटन राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति के पश्चात ही किया जाता हैं। जिसमें सभी मुख्यमंत्रीयों का प्रतिनिधित्व भी रहता हैं। तीसरा यह कि, केन्द्रीय सहायता (अनुदान एवं ऋण) का निर्णय निर्धारित मानको के आधार पर किया जाता हैं, जिसमें जनसंख्या प्रभुत्व मानक रहती है, राज्य का पिछड़ापन, अन्य विशेष समस्याएं, आदि भी महत्पूर्ण मानक हैं। चौथा यह कि, केन्द्र द्वारा प्रसारित योजनाओं के मामले में वित्त प्रदान करने की व्यवस्था अर्थात् केन्द्रीय सहायता विभिन्न योजनाओं में राज्यों के निजी योगदान के अनुसार निश्चित की जाती हैं और पहले से उसकी जानकारी दी जाती हैं। जैसा कि सरकारिया आयोग में कहा है, ''व्यावहारिक रूप पर कोई ऐसा त्रुटि- विहीन सूत्र निर्धारित करना संभव नहीं है जो कि केन्द्रीय हस्तान्तरणों को पूर्ण रूप में स्वचालित एवं हस्तक्षेपों से मुक्त हस्तान्तरण के आदर्शो के अनुरूप बना सकें। सम्बद्ध संस्थान में थोड़ा बहुत लचीलापन तथा व्यक्तिनिष्ठ निर्णय की गुंजाइश तो रखनी ही पड़ेगी जिससे वे विशिष्ट परिस्थितियां उत्पन्न होने पर, उनका सामना कर सके। जो चीज वास्वत में महत्वपूर्ण है वह ये कि इस कार्य में शामिल संस्थाओं को स्वच्छ तथा गैर-पक्षपाती ढ़ग से कार्य करना चाहिए और वांछित विवेकशीलता तथा क्षमता के साथ निर्णय करने चाहिए जिससे कि वे राज्यों का स्वीकार्य हो।''

वर्तमान भाजपा सरकार ने योजना आयोग के स्थान पर एक नई संस्था बनाने पर जब प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 15 अगस्त, 2014 को अपने पहले स्वतंत्रता दिवस संबोधन में कहा कि वे योजना आयोग की जगह नई संस्था बनाना चाहते हैं, तो तदुपरान्त, 1 जनवरी,2015 को उन्होंने राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्था अथवा 'नीति आयोग' के सृजन की घोषणा की और योजना आयोग की जगह नीति आयोग ने ले ली।

4.5 भारत का केन्द्रवाद: अशोक चन्द्रा विचार

भारतीय संघात्मक व्यवस्था में तीव्र केन्द्रीयकरण की प्रवृति के विकास का आरोप लगाने वाले विचारक मानते हैं कि बलपूर्वक राज्य की प्राथमिकताओं को बदलने का केन्द्रीय प्रयास, योजना आयोग के माध्यम से निरन्तर गति पाता रहा है। संभवतः अशोक चन्द्रा, नेहरू के इस विचार से सहमत नहीं लगते कि योजना आयोग ने, ''एक जरूरी कार्य का सम्पादन किया है, इसके बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते थे। हमारी संरचना संघात्मक है और इसने (योजना आयोग ने) विभिन्न राज्यों को एक साथ लाने तथा उनके लिए समाकलित नियोजन (Planning) करने का कार्य किया हैं। यदि यह (योजना आयोग) नहीं होता तो केन्द्र सरकार अपना कार्य नहीं कर सकती थी, तथा तुरन्त ही कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती कि केन्द्र सरकार ने राज्यों के अधिकारों पर अतिक्रमण किया हैं। मैं पुनः कहता हूं कि राज्य (राज्य आयोग) एक परामर्श दात्री निकाय हैं और राज्य तथा केन्द्र इससे सम्पर्क करते हैं एवं विचार-विमर्श भी। राज्यों के संदर्भ में इसके द्वारा कही गई प्रत्येक बात सोच विचार कर तथा राज्यों के साथ हुए समझौते का परिणाम है।''

इसके ठीक विपरीत अशोक चन्द्रा की तो स्पष्ट मान्यता है कि अतिप्रभावशाली राजनैतिक व्यक्तियों से युक्त होकर भी योजना आयोग से मात्र यह अपेक्षा करना कि वह एक निष्क्रिय सलाकारी भूमिका से ही सन्तुष्ट हो जायेगा, अव्यावहारिक हैं। ''क्रमशः प्रधानमंत्री के प्रोत्साहन व समर्थन द्वारा आयोग एक उच्च आर्थिक मंत्रिमंडल के रूप में उभरा, यहां तक कि उसने संवैधानिक वित्त आयोग की सत्ता को अस्वीकार कर दिया।'' इस प्रकार अशोक चन्द्रा ने तो ''सामाजिक व आर्थिक सेवाओं के विषय में योजना आयोग व राज्यों के बीच संघर्ष उत्पन्न हुआ हैं, कहते हुए राज्यों के पक्ष का समर्थन इस प्रकार खुले तथा स्पष्ट शब्दों में किया हैं। अतः राज्यों का यह अनुभव करना अस्वाभाविक नहीं है कि इन राष्ट्रीय योजनाओं द्वारा उनकी (राज्यों की) स्वायप्रता पर कुठाराघात पहुंचाया जा रहा हैं, जिनको स्वरूप देने में उनका हाथ नगण्य अथवा बिल्कुल नहीं है।'' संक्षेप में अशोक चन्द्रा ने इस मत में आस्था प्रकट की है कि योजना ने भारत में प्रजातंत्र तथा संघवाद दोनों को मात दे दी है।

विचारधारा का एक दूसरा पक्ष, भारतीय संघवाद पर योजना के विभिन्न प्रभावों को स्पष्ट करते हुए अशोक चन्दा ने केन्द्रीकृत तस्वीर प्रस्तुत करने के प्रयास में जो अतिरजंना कर डाली है। संभवतः वही स्थिति पाल. एपलबी के विश्लेषण से भी स्पष्ट है, जिनके राष्ट्रीय योजनाओं के क्रियान्वयन के संदर्भ में केन्द्र की स्थिति को दयनीय बतला कर दूसरी पराकाष्ठा को प्रस्तुत किया गया हैं। इस संदर्भ में उनके निम्नलिखित शब्दों को उद्वत करना उनके दृष्टिकोण को समझ सकने में पर्याप्त उपयोगी होगा। नयी राष्ट्रीय सरोकारों किसी भी बड़े नतीजे तथा महत्वपूर्ण राष्ट्र की तुलना में, बहुत कम ही शक्ति के आधारभूत साधन दिये गये हैं। विकास कार्यक्रमों के संदर्भ में चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि, केन्द्र के पास विकास के लगभग सम्पूर्ण क्षेत्र में ही किसी प्रकार की वास्तविक शक्तियां नहीं है, इसका (केन्द्र का) ‘स्टॅाफ’ का कार्य है बजाय ‘सूत्र’ अथवा कार्यात्मक कार्य के तथा इसकी पद्धति बहुत धीमी होती हैं व मुश्किल से ही गतिमान भी।

इसी सम्बन्ध में मोहम्मद करीम छागला का मत अधिक सन्तुलित प्रतीत होता है, ‘‘अब आप लोगों को अनुभव करना चाहिए, जैसा कि में भी महसूस करता हूं कि शायद यह अच्छा रहता यदि हमारा केन्द्र उससे कहीं अधिक शक्तिशाली होता जैसा कि वह अब हैं ऐसे बहुत से मामले हैं जहां हम महसूस करते हैं कि विभिन्न राज्यों की अलग-अलग नीतियों ने हमें भ्रमित किया है और यहां तक कि अव्यवस्था भी फैलाई है, और बहुत से मामले हैं जिनमें यह अधिक उपयुक्त होता यदि हमारी एक समन्वयात्मक नीति होती।’’

4.6 केन्द्र -राज्य वित्तीय सम्बन्ध: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारत जैसे किसी नये संघ में केन्द्र-राज्य सम्बंध काफी जटिल होते हैं। सामाजिक राजनीतिक अमेरिका, कनाडा तथा आस्टे्रलिया जैसे पुराने फैडरेशनों में, संघीय सरकार तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों को लेकर एक आम सहमति के कारण अपेक्षाकृत काफी सहज सम्बन्ध बने हुए हैं। संघ तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों के विरूद्ध आम शिकायत, स्रोत्रों के बंटवारे को लेकर है।

वर्तमान में योजना हेतु केन्द्रीय सहायता के दो संभावित स्वरूप हैं- उन परियोजनाओं के लिए सहायता जो केन्द्र द्वारा समर्थित हो तथा उन परियोजनाओं के लिए सहायता जो केन्द्र द्वारा आरम्भ की जाती हो। इस आलोचना को आगे बढ़ाते हुए, यह माना जा रहा है कि केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित तथा वसूल किये जाने वाले करों का अपर्याप्त हस्तान्तरण किया जा रहा हैं, और इस प्रकार, अपनी जिम्मेदारी के क्षेत्र में, राज्य की गतिविधियों के लिए उपलब्ध वित्त को कम किया जा रहा है। किन्तु इस सम्बन्ध में कठिनाई यह है कि केन्द्र द्वारा सहायता दिये जाने का कोई एक सरलीकृत स्वरूप नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में अस्पष्टता स्वाभाविक है जो कि सम्बन्धों को अस्वस्थ स्वरूप ही प्रदान करता है।

राज्यों की शिकायत है कि आमतौर पर संघ के पास काफी लचीले कर है जबकि गैर-लचीले कर, राज्यों के लिए छोड़े गए हैं तथा उनके कर के आधार भी संकुचित है। उनके द्वारा लगाए जाने वाले विभिन्न करों में से केवल बिक्री-कर तथा कुछ हद तक राज्य उत्पादन शुल्क ने लचीचलेपन के कुछ लक्षण प्रदर्शित किए है। भू-राजस्व ने अपना महत्व खो दिया हैं। राज्यों तथा कुछ आलोचकों का मानना है कि संविधान द्वारा विकास कार्यो, ग्रामीण एवं सामाजिक उत्थान, सामाजिक उपरीव्ययों का निर्माण, आदि की जिम्मेदारी उन्हें सौंपी हैं इसके अतिरिक्त कानून व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व तथा सामान्य प्रशासन का व्यय बेतरतीब स्तर तक बढ़ गया है। इसलिए राजस्व तथा व्यय के बीच खाई पैदा हो गई है।

योजना तंत्र की सीमित सफलता का एक कारण योजना मूल्यांकन प्रक्रिया का तुलनात्मक रूप से शिथिल रहना भी रहा हैं। योजना मूल्यांकन संगठन के संतोषजनक कार्य के बाद भी यह स्थिति मूलतः राज्य स्तरों पर योजना मूल्यांकन प्रक्रिया की लगभग अनुपस्थिति का परिणाम था। इन हालातों में पुनर्निवेशन प्रक्रिया का शिथिल हो जाना स्वाभाविक था, फलस्वरूप राष्ट्रीय योजना का वास्तविक प्राथमिकताओं से भटक जाना सहज ही संभव

था। वित्तीय स्त्रोतों के लिए राज्यों की संघ पर भारी निर्भरता के चलते राज्यों के प्रभाव क्षेत्र, प्राधिकार तथा पहलकदमी में, स्वयं उनके संविधान द्वारा परिभाषित दायरे के तहत, लगातार कमी आती गई हैं। संभवतः इन कारणों से भी केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों में पारस्परिक अविश्वसनीयता आ गई थी।

राज्य सरकारों के केन्द सरकार तथा योजना आयोग द्वारा अनेक बार परामर्श के बाद भी अपने योजना तंत्रों को विकसित करने में कोई रूचि प्रकट नहीं की। इस कारण राज्य अपनी आवश्यक प्राथमिकताओं के आधार पर योजना बना सकने में सक्षम नहीं हो पाये। केन्द्र के साथ मिलकर सीमित संयुक्त प्रयासों द्वारा जो भी योजना बनाई गई उसे ही लागू करने का प्रयास किया गया। राज्यों का मूल उद्देश्य केन्द्र से अधिकाधिक सहायता ही लेना बना रहा । इस तरह की गलत प्राथमिकताओं पर टिकी योजनाओं की सफलता संदिग्ध हो जाती हैं। परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रों में असफलताओं का मुंह देखना पड़ा। इन परिस्थितियों में केन्द्र.राज्यों के मध्य वित्तीय मामलों को लेकर गलत संवादो का प्रारम्भ बहुत स्वाभाविक था तथा इस तरह वित्तीय सम्बन्धों का पक्ष संवेदनषीलता लेता ही रहा तथा सारा दोष केन्द्र को देने की कोषिष की जाती रही वास्तव में राज्यों ने अपने इन्हीं अनुत्तरदायी कृत्यों द्वारा ही ''केन्द्र को केवल एक चाबुकधारी कोचवान की स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया।''

विपुल वित्तीय संसाधनों में उनके हिस्से के लिए भी राज्यों को संघ पर निर्भर रहना पड़ता है। इनके तहत् बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं, विदेशी सहायता, तथा अन्तिम विकल्प के तौर पर रिजर्व बैंक द्वारा समर्थित घाटे की वित्त व्यवस्था शामिल हैं। यह कहना सही नही है कि उपरोक्त आलोचना सभी राज्यों के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती हैं।

दरअसल, सरकारिया कमीशन के अनुसार, अधिकांश राज्यों का यह मानना है कि, संविधान में परिकल्पित करारोपण के क्षेत्रों के विभाजन में कोई परिवर्तन करने की आवश्यक ता नहीं हैं। दसअसल, एक राज्य ने तो यहां तक कहा है कि किसी करारोपण के क्षेत्र का, जो कि अभी संघ के पास है, संघ से राज्यों को हस्तान्तरण, धनी राज्यों को और धनी तथा गरीब राज्यों को और ज्यादा गरीब बना देगा। कुछ वर्षों की अवधि में राज्यों के निजी स्त्रोतों तथा उनके राजस्व व्यय के बीच का अन्तर भी संघ के स्त्रोतों के हस्तान्तरण पर उनकी निर्भरता की सीमा का अचूक मापदण्ड नहीं हैं। इस अवयव में एक भिन्नता का कारण भी मौजूद है जो कि राज्य के राजस्व व्यय के स्तर पर एक वृद्धिकारी प्रभाव रखता आया हैं। राज्यों का तथाकथित स्त्रोत आधार, इसलिए उनके राजस्व व्यय के स्तर के साथ गुणात्मक रूप से सम्बन्ध नहीं माना जा सकता क्योंकि राजस्व व्यय, स्वयं भी संघ से राजस्व हस्तान्तरणों सहित राज्यों के कुल राजस्व स्त्रोतों पर निर्भर रहता हैं। एक राज्य सरकार द्वारा मात्रात्मक विश्लेषण करने के बाद, यह स्वीकार किया गया है कि राज्य के अप्रत्यक्ष कर यात्रियों तथा मालों पर बिक्रिकर, विद्युत शुल्क, स्टाम्प ड्यूटी, तथा पंजीकरण शुल्क, मूल्यों तथा आय के प्रति काफी कुछ लचीले है किन्तु उनके भू.राजस्व, तथा व्यवसायिक कर जैसे प्रत्यक्ष कर, काफी गैर-लचीले हैं। यदि अन्य फैडरेशन में राजस्व के केन्द्रीकरण तथा व्यय के विकेन्द्रीकरण के आम रूझानों का जायजा लिया जाए, तो यह कहा जा सकता है कि आमतौर पर सम्पूर्ण विश्व में संघ सरकारों का राजस्व पर अधिक तथा बढ़ता हुआ नियंत्रण मौजूद हैं। ये विशेष रूप से आस्ट्रेलिया तथा काफी हद तक संयुक्त राज्य अमेरिका पर लागू हैं। कनाडा में, हालांकि अपेक्षाकृत संतुलित स्थिति हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते है कि भारत में राजस्व के केन्द्रीकरण का स्तर, आर्थिक रूप से विकसित फैडरेषन की तुलना में, थोड़ा अधिक है। किन्तु व्यय का विकेन्द्रीकरण भारत में उन फैडरेशन से ज्यादा हैं। इसके परिणामस्वरूप, राज्य के राजस्व में संघीय हस्तान्तरणों के हिस्से की दृष्टि से केन्द्र पर निर्भरता की सीमा, अपेक्षाकृत ऊंची है। हालांकि जहां तक संवैधानिक रूप से सौपे गए करों के रूप में हस्तान्तरण किया जाता है, संघीय हस्तान्तरणों का उच्च अंश, निर्भरता का प्रतीक नहीं कहा जा सकता।

वर्तमान वित्तीय व्यवस्थाओं के संदर्भ में सुधार हेतु कुछ सुझाव-

- केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों को अपेक्षाकृत प्रभावशाली बनाने हेतु प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा वित्त प्रशासन पर अपने प्रतिवेदन में विकास बैंक के गठन का सुझाव दिया था। निश्चय ही यह सुझाव सकारात्मक परिवर्तन ला सकता है।
- केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय साधनों के असन्तुलन को दूर करने के लिए संविधान में व्यापक संशोधन किये जाने के सुझाव समय-समय पर दिये जाते रहे हैं। इस सन्दर्भ में राज्यों को अतिरिक्त वित्त सुलभ कराने हेतु अनुच्छेद- 270 के अन्तर्गत निगत.कर में संशोधन किये जाने की आवश्यकता है जिससे प्राप्त आमदनी को राज्यों के साथ अनिवार्य रूप से बांटा जा सके।
- राज्यों को अपनी संवैधानिक सीमाओं में रहते हुए स्ववित्तीय साधनों का विकास करना चाहिए।

4.8 निष्कर्ष

केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों की मूल चुनौती राज्यों की कार्यात्मक स्वायत्रता को बिना बांधा पहुंचाये योजना के माध्यम से, राष्ट्र को समग्र आर्थिक विकास के मार्ग पर ले जाने की हैं। इसीलिए संवैधानिक प्रारूपों को सांदर्भिकता प्रदान करना अनिवार्य हैं। वैसे भी परिस्थितियों के अनुरूप, संघात्मक व्यवस्था में नियोजित अर्थ-व्यवस्था की सफलता हेतु अभिष्ट अनुकूलन वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है। इसीलिए गत वर्षों में बनी योजना परम्पराओं को नवीन दिशा देना वांछनीय हैं। आवश्यक ता सामाजिक परिवर्तन और स्वस्थ परम्पराओं के विकास की है, जिससे न केवल राजनीतिक अवस्था को कहीं अधिक सक्षम व समर्थ बनाया जा सकेगा, अपितु उन्हीं के अनुकरण के फलस्वस्प ही हमारी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थायें जनकल्याणकारी एवं जनवादी बन सकेंगी।

अभ्यास प्रश्न-

1. केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंधों का स्वरूप किस अधिनियम से प्रभावित है?
2. केन्द्र तथा राज्य सरकारों की कर्ज लेने की शक्तियां संविधान के किन अनुच्छेदों द्वारा विनियमित होती हैं?
3. संविधान के किस अनुच्छेद के तहत् राष्ट्रपति वित्तीय आपातकाल की घोषणा की सकता है?
4. किन दो आयोगों के माध्यम से केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय हस्तांतरण प्रभावी बनाए जाते हैं?

4.9 सारांश

भारत राज्यों का एक संघ हैं। भारत का संविधान, जो कि 1950 में अस्तित्व में आया, संघ तथा राज्यों के बीच कार्यो तथा राजस्व स्त्रोतों के एक स्पष्ट विभाजन का, प्रावधान करता हैं। संघ तथा राज्यों के बीच करारोपण की मदों का आवंटन एक सामान्य सिद्धान्त पर आधारित है, वह यह, कि वे कर जो स्थान विशेष के हैं तथा स्थानीय उपयोग के विषय से ताल्लुक रखते हैं, राज्यों को सौंपे गए हैं। वे कर जो कि अन्तर्राज्यीय महत्व के हैं, संघ को सौंपे गए हैं। करारोपण की शक्तियों के संदर्भ में कोई समवर्ती प्रभाव क्षेत्र नहीं हैं। आयकर तथा उत्पादन शुल्क राज्यों के बीच बांटे जाते हैं। केन्द्र सरकार देश के भीतर तथा बाहर, दोनों तरह से कर्ज ले सकती है जबकि राज्य केवल देश के भीतर से ही, केन्द सरकार की अनुमति से, कर्ज ले सकते हैं।
1950 में योजना आयोग का गठन किया गया था जिसका मुख्य उद्देश्य, राष्ट्रीय संसाधनों को अत्यन्त प्रभावी उपयोग के लिए तैयार करना था। राष्ट्रीय विकास परिषद विभिन्न योजनाओं तथा नीतियों को मंजूरी देने वाली राष्ट्र की सर्वोच्च निकाय हैं। योजना आयोग, राज्य योजनाएं लागू करने हेतु सहायता के रूप में स्त्रोतों के हस्तान्तरण की सिफारिश करता है जिसमें केन्द्र द्वारा प्रसारित योजनाएं शामिल है। इस आलोचना के बावजूद कि योजना आयोग की सिफारिशें राज्यों की निर्भरता बढ़ाने वाली है, आमतौर पर यह महसूस किया गया है कि ये हस्तान्तरण काफी हद तक वस्तुनिष्ठ एवं लचीले हैं। केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों का आलोचनात्मक मूल्यांकन यह दर्शाता है कि

राज्यों को स्रोतों का पर्याप्त हस्तान्तरण किया गया है, वित्त के लिए राज्यों की केन्द्र पर भारी निर्भरता है, राज्यों पर बढ़ता हुआ कर्ज है, आदि। इसका सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए।

4.10 शब्दावली

पूंजी व्यय- यह अर्थव्यवस्था में भौतिक चरित्र की ठोस परिसम्पत्तियों के निर्माण के लिए किया जाने वाला व्यय है। जैसे- भूति, इमारत, मशीनरी इत्यादि।

केन्द्र द्वारा प्रसारित कार्यक्रम- राज्य सूची में पड़ने वाले विषयों पर केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा प्रसारित नियोजित योजनाएँ, जिन्हें राज्य सरकारों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है और अधिकांशत केन्द्र सरकार द्वारा वित्त उपलब्ध कराया जाता है।

समवर्ती सूची- व्यापार तथा उद्योग में इजारेदारिया, श्रमिक विवाद, सामाजिक विधि इत्यादि जैसे अंतर्राज्यीय प्रकृति के कार्य, केन्द्र तथा राज्य सरकारों की समवर्ती वैधानिक शक्तियों के तहत रखे गए है। समवर्ती क्षेत्र पर केन्द्र तथा राज्य सरकार के कानूनों के बीच किसी टकराव की स्थिति में, केन्द्र सरकार का कानून प्रभावी रहेगा।

राजस्व व्यय- यह सरकारी विभागों के सामान्य संचालन पर किया जाने वाला व्यय है।

सरकारिया आयोग- आर.एस. सरकारिया की अध्यक्षता में 9 जून 1983 को भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा औपचारिक रूप से गठित आयोग। आयोग का उद्देश्य केन्द्र तथा राज्यों के बीच मौजूदा व्यवस्था के कार्यो की परीक्षा करना तथा वर्तमान संवैधानिक ढांचे के भीतर, उपरोक्त व्यवस्था में परिवर्तन के लिए संवैधानिक ढांचे के भीतर, उपरोक्त व्यवस्था में परिवर्तन के लिए यथोचित सिफारिश करना है।

राज्य सूची- यह उन कार्यो तथा शक्तियों को सूचीबद्व करती है जिनके संदर्भ में किसी राज्य-विधानमण्डल को कानून बनाने की विशिष्ट शक्तियों प्राप्त है। इसके तहत कृषि, कानून एवं व्यवस्था आदि शामिल है।

संघ सूची- यह संघ को सौपे गए कार्यो के विभाजन की सूची है। जिनके संदर्भ में संसद को कानून बनाने की विशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त है। इसके अन्तर्गत रक्षा, विदेशी मामले, रेलवे इत्यादि के विषय शामिल है।

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भारत सरकार अधिनियम- 1935, **2.** अनुच्छेद- 292 और 293, **3.** अनुच्छेद- 360, **4.** वित्त आयोग और योजना आयोग

4.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, चन्द्रमौलि, शर्मा, अशोक एवं गोयल, सुरेशः राजस्थान में राज्य प्रशासन, आर.बी.एस.ए., पब्लिशर्स, जयपुर, 1990
2. कटारिया, सुरेन्द भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर-2009
3. भारत सरकार, 1988, केन्द्र- राज्य सम्बन्धों पर आयोग की रिपोर्ट, जनरल मैनेजरःनासिक।
4. थिम्मईया, जी.एच. 1986, वित्त आयोग तथा केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध आशीषः नई दिल्ली।
5. केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर सरकारिया आयोग की रिपोर्ट भाग-1,1988

4.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, चन्द्रमौलि, शर्मा, अशोक एवं गोयल, सुरेशः राजस्थान में राज्य प्रशासन, आर.बी.एस.ए., पब्लिशर्स, जयपुर, 1990
2. कटारिया, सुरेन्द भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर-2009

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. केन्द्र से राज्यों को स्त्रोतों के हस्ताक्षरण के प्रमुख स्त्रोत क्या हैं?
2. केन्द्र तथा राज्यों के बीच, संघीय वित्त पर टकराव के क्षेत्रो का उल्लेख कीजिये।
3. केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों पर एक लेख लिखिए।

इकाई- 5 राजकोषीय नीति, समता और सामाजिक न्याय

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 राजकोषीय नीति का अर्थ
5.2.1 राजकोषीय नीति की परिभाषाएं
5.2.2 राजकोषीय नीति व मौद्रिक नीति में अंतर
5.3 राजकोषीय नीति का महत्व
5.4 राजकोषीय नीति का उद्देश्य
5.5 राजकोषीय नीति के उपकरण
5.6 भारत की राजकोषीय नीति
5.7 भारत की राजकोषीय नीति के दोष
5.8 राजकोषीय नीति- समता और सामाजिक न्याय
5.9 निष्कर्ष
5.10 सारांश
5.11 शब्दावली
5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
5.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण, करारोपण, बजट घाटे, सब्सिडी और हीनार्थ प्रबंधन या घाटे की वित्त व्यवस्था से संबंधित नीतियां 'राजकोषीय नीति' कहलाती है। करारोपण, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण राजकोषीय नीति के प्रमुख घटक होते हैं। सरकार राजकोषीय नीति के द्वारा निजी क्षेत्रों के लिए संसाधनों की उपलब्धता, संसाधनों का आवंटन तथा आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका इत्यादि को प्रभावित करती है। इस नीति का संचालन सरकार वित्त मंत्रालय की सहायता से स्वयं करती है। राजकोषीय नीति के तहत अत्याधिक मुद्रास्फीति की स्थिति में कम से कम घाटे का बजट बनाने तथा कम से कम हीनार्थ प्रबंधन का सहारा लेने की नीति अपनाई जाती है, साथ ही साथ आवश्यक वस्तुओं पर से कर को समाप्त कर दिया जाता है। सब्सिडी को भी बढ़ा दिया जाता है, ताकि आधारभूत वस्तुओं तक आम जनता की पहुंच भी हो सके। जब अर्थव्यवस्था में समग्र मांग एवं व्यय की कमी के कारण मंदी जैसी स्थिति हो तब सरकार राजकोषीय नीति की सहायता से करों में कमी तथा सार्वजनिक व्ययों में वृद्धि के द्वारा समग्र मांग एवं व्यय को बढ़ाने का प्रयास करके मंदी से निकालने की कोशिश करती है। इसके विपरीत जब अर्थव्यवस्था में समग्र मांग एवं व्यय की अधिकता के कारण अभिवृद्धि की स्थिति हो तो सरकार राजकोषीय नीति के माध्यम से सार्वजनिक व्यय में कमी करके तथा करारोपण में वृद्धि करके अर्थव्यवस्था को संतुलित करने का प्रयास करती है।

अर्थशास्त्री कीन्स की पुस्तक 'द जनरल थ्योरी ऑफ एंप्लॉयमेंट एंड मनी' में प्रतिपादित विचारों में एक विचार यह भी है कि सरकार को राजकोषीय नीति का प्रयोग निर्गत और रोजगार को स्थिर करने के लिए करना चाहिए।

कीन्स के अनुसार सरकार को करों तथा व्यय में परिवर्तनों के माध्यम से राजकोषीय नीति द्वारा अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने का प्रयास करना चाहिए।

राजकोषीय नीति का आशय अर्थव्यवस्था में सरकार के आय-व्यय, ऋण आदि से होता है। परंपरावादी अर्थशास्त्री आर्थिक कार्य में राज्य के हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार सरकार के केवल तीन ही प्रमुख कार्य मान्य थे- देश में शांति व सुरक्षा, विदेशी आक्रमणों से रक्षा तथा न्याय व्यवस्था करना। परंतु सन 1930 की महामंदी ने परंपरावादी अर्थशास्त्रियों को गलत साबित कर दिया। प्रोफेसर केन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'General Theory' में लिखा कि यदि अर्थव्यवस्था को मंदी से छुटकारा दिलाना है तथा आर्थिक स्थिरता को अपनाना है तो सार्वजनिक व्यय निर्माण आदि पर व्यय करना चाहिए। वही नीति वर्तमान में राजकोषीय नीति के नाम से जानी जाती है। राजकोषीय नीति में हम सरकार के उन कार्यों का उल्लेख करते हैं, जो सरकार की प्राप्तियों तथा व्यायों को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार राजकोषीय नीति सार्वजनिक व्यय तथा करों में परिवर्तन से संबंधित होती है। इस नीति का अंतिम लक्ष्य पूर्ण रोजगार और कीमत स्तर में स्थिरता लाना है। सरकारी व्यय तथा कराधान को राजकोषीय नीति का औजार माना जाता है। इन्हीं के माध्यम से सरकार राष्ट्रीय आय, रोजगार कीमतों को प्रभावित करके राजकोषीय स्थिरता कायम रखने का प्रयत्न करती है। राजकोषीय नीति का प्रमुख साधन करारोपण होता है। राजकोषीय नीति को 'क्रियात्मक वित्त' भी कह दिया जाता है।

5.1उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राजकोषीय नीति के अर्थ एवं परिभाषाओं को समझ पाएंगे।
- राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति में अंतर को समझ पाएंगे।
- राजकोषीय नीति के महत्व उद्देश्य तथा उपकरण के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- भारत की राजकोषीय नीति एवं उसके दोष के बारे में जान पाएंगे।
- राजकोषीय नीति- समता एवं सामाजिक न्याय को विस्तार से जान पाएंगे।

5.2 राजकोषीय नीति का अर्थ

राजकोषीय नीति का असर इस सरकार की नीतियों से है जो वह खर्च, निवेश और टैक्स की दरों को लेकर बनाती है। इसका मकसद टैक्स की दरों और सार्वजनिक खर्च के बीच संतुलन बिठाना होता है ताकि महंगाई के बड़े बिना ही आर्थिक विकास सुनिश्चित हो सके। राजकोषीय विस्तार का उद्देश्य टेक्स को घटाकर और सरकारी खर्च को बढ़ाकर कुल मांग और विकास को बढ़ावा देना होता है। साधारण शब्दों में राजकोषीय नीति सरकार के संपूर्ण व्यय, आयकर, उत्पादन तथा रोजगार से संबंधित होती है। दूसरे शब्दों में, यह एक ऐसा यंत्र है जो कि अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं को नियमित करता है। राजकोषीय नीति को 'बजट नीति' उपनाम से भी संबोधित किया जाता है। राजकोषीय का अंग्रेजी पर्याय 'फिसकल' है जो कि यूनानी भाषा के शब्द, 'फिस्क' से बना है, जिसका अर्थ है, 'टोकरी' अथवा 'डलिया' जो कि सरकारी खजाने को व्यक्त करती है। प्रमुख अर्थशास्त्री लॉर्ड केन्स को राजकोषीय नीति को नया मोड़ देने का श्रेय दिया जाता है। कीन्स की पुस्तक 'General Theory' के प्रकाशन के बाद ही इस तथ्य को समझा गया कि, सरकारी आय और व्यय कार्यक्रम का प्रभाव राष्ट्रीय आय के स्तर पर पड़ सकता है। इस जानकारी के बाद ही राजस्व तथा लोक व्यय में आवश्यकता अनुसार परिवर्तन करके आर्थिक नीतियों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रयास किए जाने लगे। लोक आय तथा व्यय के ऐसे समायोजन को ही

राजकोषीय नीति का नाम दिया गया। विभिन्न विचारकों ने राजकोषीय नीति की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं जिनके आधार पर हम राजकोषीय नीति के अर्थ को समझने का प्रयास करते हैं।

5.2.1 राजकोषीय नीति की परिभाषाएं

आर्थर स्मिथिज शब्दों में, "राजकोषीय नीति वह नीति है जिसके अंतर्गत सरकार अपने व्यय एवं राजस्व कार्यक्रमों का उपयोग करके राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर वांछनीय प्रभाव डालने की कोशिश करती है तथा अवांछनीय प्रभाव से बचने का प्रयास किया जाता है।"

एम. ए. सैमुल्सन ने राजकोषीय नीति को कुछ इस प्रकार से परिभाषित करते हुए कहा कि, "तार रूप में राजकोषीय नीतियां करों तथा सरकारी व्यय के साथ-साथ स्थाई मौद्रिक नीतियों के सहयोग में कार्य करती है। इनका उद्देश्य उच्च रोजगार और बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था होता है, किंतु इसे प्राप्त करने के लिए वह कीमत प्रसार के बिना ही काम चलाते हैं।"

श्रीमती उर्मिला हिक्स के शब्दों में, "राजस्व नीति एक ऐसी नीति है जिसके हर विभिन्न तत्व अपना कार्य करते हुए फिर एक साथ मिलकर आर्थिक नीति को सुदृढ़ करते हैं।"

इसी प्रकार राजकोषीय नीति की व्याख्या करते समय जी. के. शॉ ने लोक राजस्व तथा लोक व्यय में सरकार द्वारा सोच समझकर तथा जानबूझकर किए गए परिवर्तनों पर बल दिया है तथा बताया है कि राजस्व तथा व्यय में होने वाले स्वचालित परिवर्तनों के कारण आर्थिक क्रियाओं पर जो प्रभाव पड़ते हैं उनसे इस नीति को पृथक समझना चाहिए। इस प्रकार उपरोक्त समस्त परिभाषा को पढ़ने के बाद निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि राजकोषीय नीति का अर्थ उसके उद्देश्यों एवं भूमिका के लिए वितरण पर आधारित है। अर्थव्यवस्था में सर्वोच्च उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राजकोषीय नीति व्यय, ऋण,कर, आय,हीनार्थ प्रबंधन आदि की समुचित व्यवस्था बनाए रखती है, जैसे- आर्थिक विकास, कीमत में स्थिरता, रोजगार, का, करारोपण, सार्वजनिक आय व्यय, सार्वजनिक ऋण आदि। इन सब की व्यवस्था राजकोषीय नीति में की जाती है। राजकोषीय नीति के आधार पर सरकार करारोपण करती है। सरकार यह देखती है कि,देश में लोगों की करदान क्षमता बढ़ रही है अथवा घट रही है। इन सब बातों का अनुमान लगाकर ही सरकार करों का निर्धारण करती है। व्यय नीति में भी वह निर्णय शामिल किए जाते हैं जिनका अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। राजकोषीय नीति आय, व्यय तथा ऋण के द्वारा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करती है।

5.2.2 राजकोषीय नीति व मौद्रिक नीति में अंतर

राजकोषीय नीति के बारे में विस्तार से जानने से पहले यह भी जान लेना आवश्यक है कि राजकोषीय नीति और मौद्रिक नीति में भी अंतर होता है। राजकोषीय नीति में सार्वजनिक राजस्व, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण आदि का समावेश किया जाता है। सार्वजनिक राजस्व में प्रमुखत: करों की मात्रा व प्रकार आते हैं, और सार्वजनिक व्यय में अनेक प्रकार के कर आते हैं; जैसे राजस्व- व्यय, पूंजीगत व्यय आदि। मौद्रिक नीति के द्वारा देश का केंद्रीय बैंक मुद्रा की पूर्ति तथा ब्याज की दरों, विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के लिए ऋण की राशि का आवंटन और ऋण की शर्तों आदि को प्रभावित करता है। इसके कई अस्त्र होते हैं; जैसे- भारत में रिजर्व बैंक की बैंक- दर, खुले बाजार की क्रियाएं, नकद- रिजर्व- अनुपात(CRR), वैधानिक- तरलता- अनुपात (SLR), रेपो- दर, रिवर्स रेपो-दर आदि। इन दोनों ही नीतियों को और अच्छे से समझने के लिए इन दोनों के अंतर को निम्न बिंदुओं के द्वारा जान लेना सहायक होगा-

1. मौद्रिक नीति के संबंध में केंद्रीय बैंक पूर्ण स्वतंत्र होता है, जबकि राजकोषीय नीति में सरकार कम स्वतंत्र होती है और प्रत्येक मद की राशि के लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक होती है।

2. मौद्रिक नीति का प्रत्येक क्षेत्र पर परोक्ष प्रभाव पड़ता है, जबकि राजकोषीय नीति का जनता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।
3. मौद्रिक नीति प्रायः राजनीतिक प्रभाव से मुक्त रहती है, जबकि राजकोषीय नीति राजनीतिक प्रभाव से प्रभावित होती है।
4. मौद्रिक नीति का भार या प्रभाव देश के सभी भागों में तथा सभी वर्गों पर समान रूप से पड़ता है, जबकि राजकोषीय नीति का लाभ आभार सभी पर समान नहीं होता है।
5. राजकोषीय नीति वित्त मंत्रालय द्वारा प्रशासित की जाती है, जबकि मौद्रिक नीति देश के केंद्रीय बैंक द्वारा प्रशासित की जाती है।
6. राजकोषीय नीति सरकारी राजस्व और व्यय से संबंधित है, वहीं दूसरी तरफ मौद्रिक नीति उधार और वित्तीय व्यवस्था से संबंधित होती है।

राजकोषीय नीति के अंतर्गत मुख्य रूप से चार बातों को सम्मिलित किया जाता है- सरकार की करारोपण नीति, सरकार की व्यय नीति, सरकार की ऋण नीति, सरकार की बजट नीति ।

5.3 राजकोषीय नीति का महत्व

राजकोषीय नीति में समय-समय पर अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। प्राचीन काल में यह माना जाता था कि राजकोषीय नीति केवल संकटकाल में ही सहायक हो सकती है एवं सामान्य परिस्थितियों में इसका कोई महत्व नहीं है। परंतु समय बीतने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था का स्वरूप परिवर्तित होने लगा तथा मुद्रा का आविष्कार, औद्योगिकरण, आर्थिक प्रणालियों का जन्म, जनसंख्या की वृद्धि, व्यापार चक्रों का आना, बेरोजगारी का बढ़ना, विकास व्यय तथा युद्ध व्यय में वृद्धि , मंदीकाल आदि अनेक समस्याओं ने विश्व की अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर दिया था । अतः इन समस्याओं के समाधान के लिए राजकोषीय नीति की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। 1930 की विश्वव्यापी मंदी को दूर करने की समस्या के लिए प्रोफेसर कीन्स ने भी राजकोषीय नीति की सहायता लेकर इस बात को प्रामाणिकता के साथ सिद्ध कर दिया था कि, बेरोजगारी और मंदी जैसी समस्याओं का हल किया जा सकता है।

वर्तमान संदर्भ में अल्प विकसित एवं विकासशील देशों में पूंजी निर्माण की समस्या का समाधान राजकोषीय नीति की प्रभावशीलता पर ही निर्भर करता है। ऐसे देशों में राजकोषीय नीति की भूमिका प्रावैगिक(Dynamic)होती है। राजकोषीय नीति देश के वास्तविक एवं मौद्रिक साधनों में समन्वय स्थापित करती है तथा नियोजित अर्थव्यवस्था वाले देशों पर प्रभाव डालती है। अल्पविकसित देशों में बचतों का प्रयोग अनुत्पादक दशाओं में अधिक होता है, परंतु राजकोषीय नीति कराधान, सार्वजनिक ऋणों एवं व्यय के माध्यम से बचतों को उत्पादक दिशाओं में मोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। अल्प विकसित देशों में कराधान निजी उपयोग को घटाने, पूंजी निर्माण के निष्क्रिय साधनों को सक्रिय करने, ऐच्छिक बचतों की प्रवाहहीनता को पूरा करने,विलासिता पूर्ण एवं अपव्यय पूर्ण उपभोग को घटाने, अल्प बचतों का एकीकरण करके बड़ी मात्रा में सरकारी खाते में साधनों का हस्तांतरण करने का उपयोगी एवं महत्वपूर्ण साधन है। आर्थिक विकास में अकेली मौद्रिक नीति निष्प्रभावी रहती है। इसलिए पूंजी निर्माण की दर बढ़ाने, निजी एवं सार्वजनिक निवेश का धरातल तैयार करने में राजकोषीय नीति का सहयोगी रूप में प्रयोग किया जा सकता है। राजकोषीय नीति आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने में सकारात्मक कार्य करती है तथा निवेश को सुविधाजनक बनाकर साधनों का सर्वोत्तम वितरण करने का प्रयास करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देश की अर्थव्यवस्था के संचालन में राजकोषीय नीति का एक महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान समय में बिना राजकोषीय नीति के काम नहीं चल सकता है। कार्यात्मक वित्त के रूप में राजकोषीय नीति का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है।

5.4 राजकोषीय नीति का उद्देश्य

जैसा कि आपने अब तक जाना कि राजकोषीय नीति का विकास मुख्य रूप से प्रोफेसर कीन्स के इन विचारों के साथ हुआ है कि, आर्थिक स्थिरता के लिए अकेली मौद्रिक नीति अपर्याप्त है तथा इस कमी को राजकोषीय नीति के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। किंतु कीन्स के विचार अल्प विकसित देशों की स्थिति में अपर्याप्त हैं क्योंकि विकासशील एवं अल्पविकसित देशों में बचत करने की प्रवृत्ति बढ़ाने एवं उपभोग व्यय को कम करने की आवश्यकता रहती है। इसी कारण कीन्सवादी विचारों को अल्प विकसित देशों की अर्थव्यवस्था में कम महत्व दिया जाता है। अल्प विकसित देशों में राजकोषीय नीति का उद्देश्य क्रियात्मक वित्त प्रबंधन तथा कार्यशील वित्त प्रबंधन की व्यवस्था करना है।विकसित देशों में राजकोषीय नीति का उद्देश्य उपभोग प्रवृत्ति को ऊंचे स्तर पर बनाया रखकर आर्थिक स्थिरता और पूर्ण रोजगार को प्राप्त करना होता है, परंतु इसके विपरीत अल्प विकसित देशों में पूंजी निर्माण की दर को बढ़ाकर आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए कार्य करना इसका उद्देश्य होता है। यद्यपि राजकोषीय नीति के उद्देश्य किसी राष्ट्र विकास के लिए उसकी परिस्थितियों, विकास संबंधी आवश्यकता और विकास की अवस्था के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं परंतु फिर भी सामान्य दृष्टि से अल्प विकसित एवं विकासशील देशों की राजकोषीय नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार से बताए जा सकते हैं-

1. **पूंजी निर्माण-** अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के कम होने के कारण वहां बचत भी बहुत कम होती है। जिसके फलस्वरूप विनियोग हेतु आवश्यक पूंजी का अभाव सदा बना रहता है। निम्न आय, अल्प बचत, कम विनियोग और निम्न उत्पादकता के कारण निर्धनता के दुष्चक्र (Vicious Circle of Poverty)का जन्म होने लगता है। इस दुष्चक्र को तोड़ना राजकोषीय नीति का प्रमुख उद्देश्य माना जाता है। किंतु इन देशों में आय के स्तर को देखते हुए उपभोग की प्रवृत्ति (Propensity to Consume) अधिक होती है, इसलिए राजकोषीय नीति के अंतर्गत करारोपण द्वारा चालू उपभोग को कम करके, बचत में वृद्धि करने के प्रयत्न किए जाते हैं, ताकि पूंजी निर्माण के लिए आवश्यक धनराशि प्राप्त हो सके। प्रोफेसर रागनर नर्कसे का मत है कि, "अल्प विकसित देशों में करारोपण- नीति का उद्देश्य राष्ट्रीय आय में उसी अनुपात में वृद्धि करना है जो पूंजी निर्माण में लगाया जाता है।" यदि अल्प विकसित देशों में अनावश्यक उपभोग पर करारोपण द्वारा आवश्यक रोक नहीं लगाई जाएगी तो इसके कुछ घातक परिणाम हो सकते हैं। जैसे- देश में पूंजी निर्माण का कार्य या तो अमरुद बना रहेगा या अत्यंत धीमी गति से होगा, आर्थिक विकास के फल स्वरुप होने वाली आय वृद्धि पूर्णतया उपभोग कर ली जाएगी तथा देश की मुद्रा-स्फितिक दशाएं उत्पन्न होने लगेंगी।
2. **पूर्ण रोजगार-** किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति का प्रथम उद्देश्य पूर्ण रोजगार की प्राप्ति होता है। यदि किसी कारणवश पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं आती है, तो लगभग पूर्ण रोजगार की दिशा बनाए रखनी होती है तथा बेरोजगारी का पूर्ण उन्मूलन करना होता है। इसके लिए राज्य को सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान देना पड़ता है। इस तरह से अधिक से अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे तथा अर्थव्यवस्था की कार्य क्षमता में वृद्धि होगी। यहां सार्वजनिक व्यय एवं सरकारी उपक्रम की एक मुख्य भूमिका है। एक नियोजित निवेश द्वारा न केवल आय तथा रोजगार बढ़ेंगे बल्कि कई गुना मांग भी बढ़ेगी और इस तरह अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की ओर बढ़ती जाएगी। निजी निवेश को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इसके लिए सस्ते दर पर ऋण की व्यवस्था होनी चाहिए। कुछ सूट और अनुदान भी दिए जाने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को प्रशिक्षण, ऋण तथा सामान देकर लघु उद्योग चलाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इस तरह के व्यय से एक सीमा तक बेरोजगारी की समस्या दूर हो जाएगी।

3. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि-** राजकोषीय नीति के अन्य उद्देश्यों की पूर्ति का प्रभाव राष्ट्रीय आय पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। पूंजी निर्माण, निवेश प्रोत्साहन तथा वित्तीय साधनों की वृद्धि से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। प्रोफेसर स्पेंग्लर ने इस संदर्भ में कहा कि, "ऐसे बहुत से कार्य हैं जो निजी साहसियों द्वारा किए जाने होते हैं,सरकार स्वयं उन्हें संपन्न करके साहसियों की कमी को पूरा कर सकती है।" राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने की दृष्टि से राजकोषीय नीति के अंतर्गत सदैव कुछ बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए जैसे- करारोपण द्वारा प्राप्त बचतों का तत्काल विनियोग किया जाए, सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक ऋण की अधिकांश मात्रा नए निर्माण और विकास कार्यों की ओर की जाए,देश में निजी उद्यम कर्ताओं को कर छूट द्वारा अथवा वित्तीय सहायता प्रदान करके वीडियो करने के लिए प्रेरित किया जाए। यह बात ठीक है कि अल्प विकसित देशों में नवप्रवर्तन और उद्यमियों का अभाव होता है, परंतु जैसा कि स्पेंग्लर ने कहा कि यदि राजकोषीय नीति का निर्धारण उपयुक्त उपायों को दृष्टि में रखकर किया जाए तो निश्चित है कि इसमें विनियोजन कार्य को प्रोत्साहन मिलेगा जिससे राष्ट्रीय आय में निश्चित तौर पर वृद्धि होगी।
4. **मूल्य स्थिरता-** एक अल्प विकसित देश के लिए आर्थिक विकास तथा स्थिरता दोनों ही आवश्यक होती हैं। विकासशील देशों में स्फीति(inflation) के रूप में अस्थिरता झलकती है। प्रो. नर्कसे ने यह देखा कि निवेश में महंगाई निहित है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि निवेश पर अंकुश लगाया जाए। दूसरे कई उपाय हैं, जिससे इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है। उनमें से एक उपाय शक्तिशाली राजस्व नीति भी है। विकासशील देश में यह एक विशेष बात है कि मूल्यों में वृद्धि होती है, क्योंकि सरकारी खर्चे बढ़ते रहते हैं। आय बढ़ने से मांग बढ़ती है। मांग बढ़ने से पूर्ति कम होने लगती है। इस प्रकार पूंजीगत वस्तुओं (Capital goods) तथा उपभोग की वस्तुओं (Consumer goods) में समानता नहीं रह पाती है। दोनों एक साथ नहीं चल सकते। अतः एक मध्यांतर (gap) दोनों के बीच में आ जाता है, जिसको महंगाई खाई अर्थात स्फीति खाई (inflation gap) भी कहते हैं। जैसे-जैसे मांग बढ़ती है, मूल्यों में वृद्धि होती है तथा यह मध्यांतर (gap) निरंतर बढ़ता जाता है। यदि इस प्रवृत्ति पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाता है तो महंगाई नियंत्रण से बाहर हो जाएगी।
5. वास्तव में मुद्रा स्फीति विकासशील देशों में होती है क्योंकि सरकारी खर्च, आय से अधिक होने लगता है। इससे उत्पादन, निवेश तथा पूंजी निर्माण को बल मिलता है परंतु स्फीति खाई के बढ़ने से अर्थव्यवस्था को पीछे धकेल दिया जाता है। इस अवस्था में सरकारी खर्चों में कटौती होनी चाहिए। करदाताओं तथा ऋण में वृद्धि होनी चाहिए। संक्षेप में कहा जाए तो राजस्व नीति को किसी भी तरह की हठधर्मिता छोड़नी चाहिए, ताकि अर्थव्यवस्था में किसी भी प्रकार का असंतुलन ना उत्पन्न हो। आवश्यक वस्तुओं पर पूर्ण नियंत्रण रखा जाए। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि राजस्व नीति तथा मुद्रा नीति दोनों ही आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है।
6. **आय तथा धन वितरण की विषमताओं को कम करना-** आय तथा धर्म के वितरण की समानता बनाए रखना आर्थिक विकास का केवल लक्ष्य ही नहीं वरन एक पूर्व आवश्यकता भी है। एक विकासशील अर्थव्यवस्था में आय तथा धन का सामान वितरण बहुत महत्वपूर्ण होता है। प्रायः ऐसे देशों में असमानता विद्यमान रहती है। कुछ लोगों के पास ही धन रहता है, क्योंकि निजी स्वामित्व का बोलबाला रहता है। असमानता के अतिरिक्त राजनीतिक तथा सामाजिक असंतोष इस स्थिति को और अधिक भयानक बना देते हैं। समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त असमानता को दूर करने के लिए सरकार को नई नीतियां बनानी चाहिए। सरकार को चाहिए कि अपनी राजकोषीय नीति का निर्माण कुछ इस प्रकार से करें कि धन वितरण की विषमता देश में कम से कम हो। इस दृष्टि से राजकोषीय नीति के अंतर्गत कुछ उपायों को शामिल किया जाना चाहिए जैसे- धनी वर्ग पर प्रगतिशील कर(Progressive Tax)

लगाया जाना चाहिए जिससे कि सरकार को अतिरिक्त रूप से आय प्राप्त हो सके लेकिन करों की मात्रा कम रखी जानी चाहिए। निर्धन अथवा अल्प आय वर्ग वर्करों की मात्रा कम रखी जानी चाहिए। विलासिता की वस्तुओं पर भारी मात्रा में कर लगा कर, किए जाने वाले व्यय को विनियोग के क्षेत्रों की ओर हस्तांतरित किया जाना चाहिए। सरकार को अपना अधिकांश व्यय सामाजिक सेवाओं अथवा विशेष रूप से उन मुद्दों पर करना चाहिए जिनसे निर्धनों को अधिक लाभ पहुंचता हो। राजकोषीय नीति का ढांचा इस प्रकार होना चाहिए कि अनुपार्जित आय पर यथार्थ रोक लगाई जा सके और विकास के लिए आय (Economic surplus) की उपलब्धि हो सके।

7. **आर्थिक विकास दर को गति प्रदान करना-** मुख्य रूप से किसी भी देश की राजकोषीय नीति को विकास दर में गति प्रदान करने वाला होना चाहिए। किंतु विकास की उच्च दर बिना मूल्य स्थिरता को प्राप्त नहीं हो सकती है। अतः कर, सार्वजनिक ऋण तथा वित्तीय घाटा इस प्रकार प्रयोग होना चाहिए ताकि यह उत्पादन, उपभोग तथा वितरण को प्रभावित ना करें। अर्थव्यवस्था का विकास होता की राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी हो। इस संबंध में श्रीमती हिक्स का कथन है कि, चूँकि राजस्व नीति एक आर्थिक क्रियाकलाप है, प्रत्येक देश इसे अपनाना चाहता है ताकि स्थिरता और विकास कायम रहे परंतु, इनका सापेक्षिक महत्व प्रत्येक देश में अलग है। संतुलित एवं नियमित प्रसार जहां उतार-चढ़ाव को कम करते हैं, वहीं पर रोजगार की स्थिति विकास के लिए वरदान सिद्ध होगी।
8. **संसाधनों का अनुकूलतम बंटवारा-** सार्वजनिक व्यय कार्यक्रम विभिन्न क्षेत्रों में संसाधन के बंटवारे को बुरी तरह से प्रभावित कर सकते हैं। यह सत्य है कि अल्प विकसित देशों में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम होती है। इसमें सुधार लाने हेतु सरकार सामाजिक संसाधनों को इस कार्य में ला सकती है। सार्वजनिक व्यय, अनुदान तथा प्रोत्साहन आदि संसाधनों के वितरण में अनुकूल प्रभाव ला सकते हैं। करों में छूट देने से नए उद्योगों में संसाधनों को आकृष्ट किया जा सकता है। दूसरी ओर टैक्स में वृद्धि से संसाधन को खतरा बना रहता है। इसलिए हमें अपने उपभोग तथा अनुत्पादक निवेश में कटौती करनी चाहिए ताकि संसाधनों का उचित उपयोग हो सके तथा मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति को रोका जा सके। अतः राजकोषीय नीति एक अल्प विकसित देश के लिए सुरक्षा या बचाव की नीति के रूप में उपयोगी सिद्ध होती है क्योंकि इससे आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है।
9. **आर्थिक स्थिरता-** राजकोषीय नीति ऐसी हो कि वह अंतर्राष्ट्रीय उतार-चढ़ाव का सामना करते हुए आर्थिक स्थिरता प्रदान करने की क्षमता रखती हो। व्यापार में होने वाले उतार-चढ़ाव से विकसित देशों को लाभ पहुंचता है,जबकि विकासशील देशों के लिए यह अवांछनीय है। अपने अतः आर्थिक स्थिरता लाने के लिए विक्की प्रणाली में ऐसी लचक होनी चाहिए ताकि सरकार की आय तथा व्यय एक दूसरे के पूरक बने रहें। इस तरह हम देखते हैं कि आंतरिक या बाहरी कारणों से होने वाली अस्थिरता एक सीमा तक इस नीति से नियंत्रण में आ जाती है।
10. **निवेश को प्रोत्साहन-** राजकोषीय नीति का एक अन्य उद्देश्य निजी क्षेत्र अथवा सरकारी क्षेत्र में निवेश दर को गति प्रदान करना होता है। सर्वप्रथम यह सरकारी क्षेत्र में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करता है। तत्पश्चात निजी क्षेत्र में इसका विस्तार होने लगता है। इस पर है वित्तीय नीति आर्थिक विकास की ओर कार्य करती है। अतः हमें उन्ही क्षेत्रों मंत अधिक अधिक निवेश करना चाहिए जो सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य हैं। अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु यातायात, संचार, सिंचाई, डैम, बाढ़ पर नियंत्रण, बंदरगाह औद्योगिक प्रशिक्षण, शिक्षा, स्कूल, एवं अस्पतालों पर व्यय करना चाहिए। विकास परियोजनाओं को बल मिलेगा और धीरे-धीरे निवेश में वृद्धि होती रहेगी।

5.5 राजकोषीय नीति के उपकरण

पूर्ण रोजगार की स्थिति बनाए रखने में राजकोषीय नीति की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसी स्थिति में न तो मुद्रास्फीति और ना ही महामंदी का कोई स्थान होता है। राजकोषीय नीति के विभिन्न अंगों को यदि जानना चाहे तो वह कुछ इस प्रकार से होते हैं- आइए राजकोषीय नीति के अंगो का विस्तार से विवेचन करते हैं।

1. **बजट-** जैसा कि आप जानते होंगे कि बजट किसी देश की अर्थव्यवस्था के उतार-चढ़ाव को प्रकट करता है। बजट अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे-वार्षिक बजट(Annual Budget), चक्रीय संतुलित बजट(Cycli cally Budget), पूर्णरूपेण प्रबंधित क्षति पूर्ण बजट (Fully Managed Compensatory Budget)।

   - वार्षिक बजट- वार्षिक बजट मुख्य रूप से विश्व मंदी के समय(1930) तक बहुत लोकप्रिय रहा। वार्षिक बजट के कुछ सकारात्मक पक्ष है जो इसकी लोकप्रियता को बढ़ावा देते हैं जैसे- इसमें सरकारी आय तथा व्यय संतुलित रहती है। वर्तमान गतिविधियों में धन खर्च होता है। संतुलित बजट से महंगाई या महामंदी नहीं होती है। राजनीतिक दृष्टि से यह उचित है। पूर्ण रोजगार की संभावनाएं हैं। इसमें कर अधिक होता है। इससे आय में वृद्धि होती है तथा व्यय में कमी आती है।
   - परंतु इस सिद्धांत में के भी कई तरह के प्रतिरोध है जैसे- यह कहा जाता है की वार्षिक संतुलित बजट कुछ उदासीन प्रकृति का होता है तथा पूर्ण रोजगार की प्राप्ति की बात भी नहीं मानी जा सकती है। साथ ही कुछ अर्थशास्त्रियों का यह कहना है कि वार्षिक संतुलित बजट में कर -भार कम होता है।
   - चक्रीय संतुलित बजट- चक्रीय संतुलित बजट स्वीडिश बजट (Swedish Budget) भी कहा जाता है। ऐसे बजट में होने के कारण सार्वजनिक ऋण को वापस लेने का प्रयास किया जाता है परंतु विक्रांति (Recession) के समय घाटे का बजट किस प्रकार बनाया जाता है ताकि मुद्रास्फीति के समय जो धन फालतू था वह वित्तीय घाटे के साथ संतुलित हो सके। इस प्रकार सक्रिय संतुलित बजट व्यापार में स्थिरता प्रदान करता है। इस बजट को भी अनुकूल माध्यम जाने के पीछे अनेक कारण हैं। जैसे- इस बजट में सरकार अपनी आवश्यकतानुसार अपने वित्त को अनुकूल बना सकती है, यह नीति प्रत्येक प्रकार के समय के लिए अनुकूल होती है तथा साथ ही यह स्थिरता प्रदान करती है, किंतु इस बात की कोई गारंटी नहीं है होती है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति आएगी।
   - पूर्णरूपेण प्रबंधित क्षति पूर्ण बजट- इस तरह के बजट के अंतर्गत टैक्स में सोच विचार कर अनुकूलता प्रदान की जाती है। व्यय, राजस्व,सार्वजनिक ऋण आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है ताकि पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त हो सके। ऐसी स्थिति में महंगाई में वृद्धि की संभावना कम रहती है। इस प्रकार के बजट का मुख्य उद्देश्य बजट में संतुलन लाना होता है। पूर्ण रोजगार और मूल्यों में स्थिरता पर पूर्ण बल दिया जाता है। और इस प्रकार के बजट को अपनाने से सार्वजनिक ऋण तथा ब्याज की अदायगी आदि की समस्या भी समाप्त हो जाती है। इसे हम कार्यात्मक वित्त भी कहते हैं। इस प्रकार के बजट की भी आलोचकों द्वारा कुछ आलोचना की गई है। आलोचकों का यह मत है कि बेरोजगारी के विरुद्ध से गारंटी मिलनी चाहिए क्योंकि बेरोजगारी के विरुद्ध कदम उठाने में अर्थव्यवस्था में महंगाई का बहुत दबाव पड़ता है। इस नीति को जटिल भी बताया गया है और कहा गया कि इससे राजनीतिक अनिश्चितता पैदा होंगी क्योंकि उपयुक्त वित्तीय सुधार के क्रियान्वयन में विलंब पैदा होता है। देश को लंबे समय में ऋण का भारी बोझ उठाना पड़ेगा यह कहकर भी इसकी आलोचना की जाती है।

2. **कर नीति-** करनी थी एक ऐसा शक्तिशाली औजार है जिसके द्वारा आय, उपभोग तथा निवेश में परिवर्तन लाना संभव है। ऐसी कर नीति जो महामंदी के काल में उपयुक्त है, सरकार की व्यय करने योग्य आय में वृद्धि करती है। उपभोग और निवेश को प्रोत्साहित करती है। इस स्पष्ट तहत कर में कमी पर लोगों के लिए निवेश तथा उपभोग की क्षमता बढ़ जाएगी। मांग में वृद्धि होगी। ऐसी अवस्था में यह सुझाव दिया जाता है कि आबकारी कर, बिक्री कर तथा आयात कर को कम किया जाए। ऐसा करने से उपभोग को बल मिलेगा। और कुछ अर्थशास्त्रियों का ऐसा मानना है कि ऐसा करने से अर्थव्यवस्था में विरोधाभास वाली स्थिति भी उत्पन्न नहीं होगी। निस्संदेह से आय में वृद्धि होगी, पर निवेश पर इसका प्रभाव और निश्चित ही रहेगा। प्रोफेसर कालेकी के अनुसार, यदि सामान्य स्थिति में गिरावट आ रही है तो कर में कमी भी उद्यमी को यह प्रोत्साहन नहीं कर पाएगी कि वह निवेश के संबंध में अपना निर्णय बदल दे। अतः कालेकी ने कर में कमी वाली नीति के विरुद्ध विचार व्यक्त किया है। यहां एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि किस सीमा तक बेरोजगारी को कम किया जाए, जिससे कर में कमी उपभोग, निवेश तथा व्यय को प्रोत्साहित किया जा सके। दूसरी और मुद्रास्फीति विरोधी करनी थी ऐसी होनी चाहिए जो स्फीति से उत्पन्न खाई को कम करें।
3. **सरकारी व्यय-** आर्थिक क्रियाकलापों में सरकारी हस्तक्षेप के कारण सरकारी व्यय वित्त विभाग के लिए एक औजार के रूप में सामने आया है। सरकारी व्यय में कमी करने से उतार-चढ़ाव की तुलना में आर्थिक क्रियाकलापों पर सीधा प्रभाव पड़ सकता है। सरकारी व्यय के बढ़ने से आय पर कई तरह के प्रभाव पड़ते हैं। सरकारी व्यय की कमी से अधिक क्रियाशीलता मंद पड़ जाती है। मुद्रास्फीति काल में अधिकाधिक वैसे आर्थिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। निजी खर्च तथा निवेश दोनों में बहुत वृद्धि हो जाती है। ऐसी अवस्था में सरकार को अपने व्यय को घटाना चाहिए। दूसरे शब्दों में कुछ कार्यक्रमों पर रोक लगा देनी चाहिए तथा अन्य को बिल्कुल छोड़ देना चाहिए परंतु जो व्यय उत्पादकता दे रहे हैं, उन्हें रखना पड़ेगा क्योंकि ऐसा ना करने से बोझ और ज्यादा बढ़ेगा। अनुत्पादक चीजों पर रोक लगा देने से अर्थव्यवस्था पर बोझ कम पड़ेगा परंतु ऐसा निर्णय लेना आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों कारणों से कठिन होता है। महामंदी के समय में सरकारी व्यय की महत्वता बढ़ जाती है। अर्थव्यवस्था में गतिशीलता आती है। मांग में कमी होने के कारण निजी खर्च एवं निवेश में भी कमी आती है। सरकारी खर्च में थोड़ी बढ़ोतरी से महामंदी का कुप्रभाव कुछ सीमा तक ठीक किया जा सकता है। महामंदी का सामना करने के लिए एक अन्य ढंग कर कटौती भी होता है। प्रोफेसर एल. जी. रीनॉल्ड के अनुसार,कर में कटौती सरकारी खर्च बढ़ाने से कहीं अच्छा है।
4. **सरकारी कार्य-** प्रोफेसर कीन्स अपने सिद्धांत में कहा है कि महामंदी पर काबू पाने हेतु 'सरकारी कार्य' कार्यक्रम एक अच्छा उपाय है। इसमें दो तरह के व्यय आते हैं- सरकारी खर्च एवं भुगतान का हस्तांतरण। प्रोफ़ेसर जे. एम. क्लार्क के शब्दों में टिकाऊ सामान, स्थाई ढांचा इत्यादि का सरकार उत्पादन करती है। सरकारी कार्य जैसे सड़क निर्माण, रेल निर्माण, विद्यालय, पार्क, हवाई पट्टी, डाक विभाग, अस्पताल, सिंचाई हेतु नहर आदि पर खर्च होता है। सरकारी ऋण पर ब्याज देना, अनुदान देना, पेंशन, रिलीफ भुगतान, बीमा योजना, सामाजिक सुरक्षा लाभ आदि पर खर्च को भुगतान हस्तांतरण (Transfer of Payment) कहते हैं। इस प्रकार के कार्यक्रम में लॉर्ड कीन्स का दृढ़ विश्वास था। उन्होंने तो यहां तक कह दिया कि अनुत्पादक कार्य जैसे गड्ढा खोदना और उसे ढक देना भी अनिवार्य है। जब कभी सरकार को लगे की महामंदी या स्फीति के चिन्ह दिखाई देने लगे तो राजकीय सरकारों के समक्ष कुछ कार्य तैयार होने चाहिए ताकि लोगों को उसमें लगाया जा सके। इस ढंग से अर्थव्यवस्था का विकास होगा। ऐसे कार्यों को महामंदी रोकने वाला(Anti Depression Device) कहा जाता है। इस प्रकार के कार्यों के कई

लाभ होते हैं जैसे- इन कार्यों में बेरोजगार युवकों को रोजगार मिल जाता है, लोगों की क्रय शक्ति बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है, सामाजिक दृष्टि से उपयोगी वस्तुओं का निर्माण बढ़ता है। जैसे- सड़क, नहर, बिजली घर, इमारतें, सिंचाई के साधन, प्रशिक्षण केंद्र आदि। इस प्रकार यह तो स्पष्ट है की सरकारी कार्यों से अर्थव्यवस्था में सुधार होता है, फिर भी इसमें कुछ गतिरोध उत्पन्न करने वाले तत्व भी होते हैं। ऋण या महामंदी के उचित अनुमान पर ही सार्वजनिक कार्य निर्भर करता है, परंतु उचित अनुमान लगाना कठिन है। उचित अनुमान की अनुपस्थिति में यह कहना भी कठिन होता है कि सार्वजनिक कार्य के लिए सही समय क्या है। इसके साथ ही सार्वजनिक कार्य एक दीर्घकालीन कार्यक्रम है। अतः इसको कभी भी शुरू नहीं किया जा सकता है। संसाधनों का अभाव भी एक ऐसा तत्व होता है, जिसके कारण सार्वजनिक कार्य आरंभ करना कठिन होता है। सभी बेरोजगारों को रोजगार के साधन जुटाना भी असंभव है। मूल्य में गिरावट रोजगार पर गहरा प्रभाव डालती है जिससे बेरोजगारी में वृद्धि हो जाती है। ऐसी स्थिति में सार्वजनिक कार्यक्रम की कार्यकुशलता धीमी पड़ जाती है। सार्वजनिक कार्यक्रमों को ऋण लेकर ही चलाना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप देश पर बोझ पड़ता है। भारी उद्योगों में मूल्यों के प्रतिकूल होने से भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। कभी-कभी सार्वजनिक कार्य के तहत शुरू किया गया निर्माण कार्य निजी निवेशकों के साथ स्पर्धा में आ जाता है, जिसके फलस्वरूप निजी क्षेत्र को इस प्रतियोगिता से बाहर जाना पड़ता है।

5. **सार्वजनिक ऋण-** महामंदी या मुद्रास्फीति की रोकथाम के लिए सार्वजनिक ऋण मुख्य भूमिका निभाता है। इससे अर्थव्यवस्था में स्थिरता आती है तथा पूर्ण रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं। ऋण प्राप्त करने के बहुत से तरीके होते हैं जैसे- गैर सार्वजनिक संस्थाओं से ऋण लेना, बैंकों से ऋण लेना, ट्रेजरी से ऋण लेना, नोट की छपाई आदि।

5.6 भारत की राजकोषीय नीति

जैसा कि आपने अब तक जाना कि राजकोषीय नीति का संबंध सरकार की कराधान और व्यय के फैसलों से होता है। राजकोषीय नीति के भागों के बारे में भी आपने जाना कि, राजकोषीय नीति के कई भाग होते हैं, जैसे- कर नीति, व्यय नीति, विनिवेश रणनीतियां और ऋण आदि। राजकोषीय नीति किसी भी देश के समग्र आर्थिक ढांचे का एक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। राजकोषीय नीति, आर्थिक आंकड़ों और प्रभावों तथा मौद्रिक नीति को भी प्रभावित करती है। जब सरकार अपने खर्च की तुलना में अधिक आय प्राप्त करती है तो इसे अधिशेष के रूप में जाना जाता है। जब सरकार अपनी आमदनी से ज्यादा खर्च करती है तो इसे घाटे की स्थिति कहा जाता है। इसी अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिए सरकार घरेलू या विदेशी स्रोतों से ऋण भी लेती है, बॉन्ड जारी करती है तथा नई मुद्रा को स्फीति करती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना हुई। सन 1951 से देश में आर्थिक नियोजन को अपनाया गया। तीव्र आर्थिक विकास, जन-कल्याण, समाजवादी समाज की रचना, सामाजिक न्याय, समानता आदि आर्थिक नियोजन के उद्देश्य रखे गए। उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजकोषीय नीति का सहारा लिया गया। भारत की राजकोषीय नीति योजनाओं के उद्देश्यों के अनुरूप बनाई गई है। भारत की राजकोषीय नीति के वृहद उद्देश्यों के अंतर्गत संतुलित एवं तीव्र विकास, कल्याणकारी राज्य की स्थापना और समाजवादी धन के समाज की रचना करना क्या भी शामिल है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्न राजकोषीय नीतियां अपनायी गई-

1. ग्रामीण आधार संरचना पर पूंजीगत व्यय में वृद्धि करना ताकि कृषि और ग्रामीण विकास को बढ़ाया जा सके।
2. पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रयास करना।

3. सार्वजनिक क्षेत्र की घाटे में चल रही कार्यों में विनिवेश की प्रक्रिया जारी रखना।
4. राजकोषीय घाटे को निकट भविष्य में यथासंभव सुनने करना।
5. राजकोषीय घाटे को संघ और राज्य के लिए कम करना।
6. महत्वहीन वस्तुओं पर दी जा रही सब्सिडी को कम करना एवं वैसे छुपी हुई सब्सिडी भी घटाना जो समर्थ लोगों को अधिक लाभ पहुंचा रही है।
7. भुगतान संतुलन की स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रयास करना।

मोटे तौर पर भारत की राजकोषीय नीति के हमेशा दो प्रमुख उद्देश्य रहे हैं- पहला, अर्थव्यवस्था के विकास के प्रदर्शन में सुधार करना और दूसरा, लोगों के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना।

5.7 भारत की राजकोषीय नीति के दोष

भारत की राजकोषीय नीति में निम्नलिखित दोष हैं-

1. **अव्यवस्थित कर प्रणाली-** भारत की करारोपण नीति किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं बनाई गई है। यह परंपरागत नीति है तथा समयानुसार इसमें परिवर्तन किए गए हैं, जिसके कारण विभिन्न कर ना तो एक दूसरे के पूरक हैं और ना ही उनमें कोई समन्वय ही पाया जाता है। देश की कर नीति में केवल सामयिक आवश्यकताओं का ही ध्यान रखा गया है।
2. **लोचशीलता का अभाव-** भारतीय कर नीति अधिक लोचपूर्ण नहीं है। लोचता के अभाव में इन में संशोधन व वृद्धि करना कठिन है, इसलिए सरकार को इनसे आय भी उतनी अधिक नहीं हो पाती है।
3. **केंद्र व राज्य सरकारों में समन्वय का अभाव-** कर नीति में केंद्रीय व राज्य सरकारों के बीच समन्वय पर ध्यान नहीं दिया जाता है। राजकोषीय नीति में राज्यों के उत्तरदायित्व बढ़ा दिए गए हैं परंतु आय के साधनों में विशेष वृद्धि नहीं की गई है। राज्य को करों से जो आय प्राप्त हो रही है वह अपर्याप्त है।
4. **अत्यधिक सुरक्षा तथा प्रशासनिक व्यय-** भारत में राजकोषीय नीति में व्यय नीति भी दोषपूर्ण है। भारत में सुरक्षा तथा प्रशासन पर बहुत अधिक है। सुरक्षा पर किए जाने वाले व्यय से नहीं बचा जा सकता, क्योंकि देश की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए यह अत्यधिक आवश्यक है। यद्यपि सरकार समय-समय पर प्रशासनिक व्यय में कटौती की घोषणा कर दी है किंतु इसका वास्तविक प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ता है। आंतरिक व्यवस्था, आतंकवाद, सांप्रदायिक हिंसा आदि के कारण की प्रशासनिक व्यय में बढ़ोतरी हुई है।
5. **अप्रत्यक्ष करों की अधिकता-** भारतीय करों में अप्रत्यक्ष करों की अधिकता है। प्रत्यक्ष करों से अपेक्षाकृत कम आय प्राप्त होती है। अप्रत्यक्ष करों से कीमतों में भी वृद्धि होती है।
6. **हीनार्थ प्रबंधन-** भारत में आए की कमी को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था अपनाई गई है। विकासशील अर्थव्यवस्था में घाटे की व्यवस्था को हटाना संभव नहीं है, क्योंकि आज की कमी को जब लेकर भी पूरा नहीं किया जा सकता है तो हीनार्थ प्रबंधन आवश्यक हो जाता है। कर देय क्षमता कम होने के कारण अधिक कर भी नहीं लगाए जा सकते हैं। किंतु भारत में हीनार्थ प्रबंधन बहुत ही अधिक किया गया है जिसके परिणाम स्वरूप देश में मुद्रा प्रसार की स्थिति उत्पन्न हो गई है एवं वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई है। इसका देश पर बुरा प्रभाव पड़ा है।
7. **कुशलता का अभाव-** भारतीय कर प्रणाली में कुशलता का अभाव है। इस कारण करूं की भारी मात्रा में चोरी होती है। करों में चोरी होने के कारण काले धन में वृद्धि हुई है। काले धन से देखकर अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा है। साथ ही अत्यधिक एवं विविध कर लगाने के बाद भी सरकार को पर्याप्त आए नहीं हो रही है।

8. **राष्ट्रीय आय में कम अंशदान-** करों से प्राप्त आय का कोई राष्ट्रीय आय में योगदान बहुत कम है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक राष्ट्रीय आय में बहुत वृद्धि हुई है लेकिन राष्ट्रीय आयकरों से प्राप्त आय का योगदान नहीं पढ़ पाया है।
9. **सार्वजनिक आय का अपव्यय-** भारत में सार्वजनिक आय का बड़ी मात्रा में अपव्यय हो रहा है। इसका मुख्य कारण सरकारी विभागों में व्याप्त अकुशलता, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी तथा लालफीताशाही है। साथ ही आवश्यकता से अधिक कर्मचारी होने से अनावश्यक प्रशासनिक व्यय भी बढ़े हैं। विकास परियोजनाओं को भी राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रारंभ किया जाता है, उनकी आर्थिक जीवन क्षमता नहीं देखी जाती है। इससे एक तरफ सरकार को भारी व्यय करने पड़ते हैं, तो दूसरी तरफ जनता को इनका पूरा लाभ नहीं मिल पाता है।
10. **निम्न बचत दर-** भारत की राजकोषीय नीति का एक दोष यह है कि है बचतों को प्रोत्साहित करने में सफल नहीं रही है । परिणाम स्वरूप भारत में बचत दर अन्य देशों की तुलना में नीची है।

5.8 राजकोषीय नीति- समता और सामाजिक न्याय

लोक कल्याणकारी राज्य अपने कुछ सुनिश्चित कर महत्वपूर्ण लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में निरंतर प्रयास करता रहता है। इसकी महत्वपूर्ण लक्ष्यों में से एक महत्वपूर्ण लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन लाना भी होता है। सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य सामाजिक न्याय की स्थापना होता है। लोक कल्याणकारी राज्य के मानवाधिकारों की लोकप्रियता के कारण ही सामाजिक न्याय की अवधारणा का लोकतांत्रिक व्यवस्था में विकास हुआ। जैसा कि आप समझ सकते हैं कि, सामाजिक न्याय की अवधारणा में दो शब्द शामिल है- समाज तथा न्याय। सामाजिक स्तर पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच असमानता, अन्याय, शोषण तथा असहयोग की समाप्ति करना और मानवीय गरिमा की स्थापना करना ही सामाजिक न्याय कहलाता है। यह अवधारणा 'न्याय' के बहुत सारे पक्षों तथा समाज के कारकों से अंतर संबंधित है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो बहुत प्राचीन काल से ही न्याय की अवधारणा 'राज्य के दर्शन तथा कार्यकरण' से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित रही है। उस समय राज्य नामक संस्था का निर्माण ही न्याय की स्थापना तथा व्यक्ति के कल्याण के लिए किया जाता था। प्लेटो ने न्याय की परिभाषा देते हुए कहा था- "न्याय प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उच्च कर्तव्य का पालन है, जो उसके प्राकृतिक गुणों तथा सामाजिक स्थिति के अनुकूल हो। नागरिक को अपने धर्म की चेतना तथा सार्वजनिक जीवन में उसकी अभिव्यंजना ही राज्य का न्याय है।" न्याय के विविध रूपों में प्राकृतिक न्याय, नैतिक न्याय, राजनीतिक न्याय, सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय तथा कानूनी न्याय सम्मिलित है। सामाजिक न्याय के अंतर्गत यह कहा जाता है कि सभी व्यक्ति जन्म से एक समान है और सभी में मानवीय गरिमा तथा गौरव का भाव विद्यमान है। किसी एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व का साधन मात्र नहीं समझा जा सकता है। धर्म, वंश, प्रजाति, जाति, लिंग, तथा अन्य आधारों पर व्यक्ति और व्यक्ति के बीच भेद करना सामाजिक न्याय के विरुद्ध माना जाता है। अर्नेस्ट बार्कर ने अपनी पुस्तक में प्लेटो के विचारों को वर्णित करते हुए सामाजिक न्याय की परिभाषा कुछ इस प्रकार से दी है- "सामाजिक न्याय की परिभाषा उस समाज के सिद्धांत के रूप में दी जा सकती है, जिसमें उत्पादक, सैनिक एवं शासक विभिन्न प्रकार के लोग रहते हैं, जो पारस्परिक आवश्यकता की भावना से बंधे होते हैं, तथा एक समाज में दूसरों से अलग होकर भी अपने कार्यों पर लगे रहकर एक ऐसी समष्टि का निर्माण करते हैं जो पूर्ण होती है, क्योंकि वह पूरे मानव मस्तिष्क का उत्पादन तथा प्रतिबिंब होती है। इस प्रकार के समाज का सिद्धांत होने के कारण इसके अंतर्गत जनता के उक्त वर्गों द्वारा उनके लिए निर्धारित जन विशिष्ट कार्यों का संपादन निहित है, जिनको करने के लिए अपनी क्षमता एवं समाज को उन्हें प्रदत स्थान के कारण वे प्राकृतिक रूप से उपयुक्त होते हैं।" इसी प्रकार अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा में कहा गया है- "सभी मनुष्य, स्वतंत्र तथा समान उत्पन्न हुए हैं..... तथा उन्हें पूर्ण

मानवीय गरिमा तथा स्वतंत्रता से जीने का अधिकार है।" जे.एस. मिल सहित और भी बहुत से विचारकों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता का पूर्ण समर्थन किया है तथा व्यक्ति के जीवन में राज्य के हस्तक्षेप को अनावश्यक माना है। वस्तुतः सामाजिक न्याय तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अवधारणा एक समान प्रतीत होती हैं। किंतु इन दोनों के बीच थोड़ा सा अंतर भी है। आज ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे हम पूर्ण व्यक्तिगत कह सके तथा जिसका प्रभाव समाज की व्यवस्था पर ना पड़ता हो। इसीलिए सामाजिक व्यवस्था के निर्माण हेतु व्यक्ति की स्वतंत्रता पर किंचित प्रतिबंध भी लगाया जा सकता है। इसी प्रकार बार्कर मानते हैं कि न्याय का अंतिम लक्ष्य स्वतंत्रता, समानता तथा भाईचारे को बढ़ाना है। न्याय में व्यक्ति को साध्य तथा राज्य को साधन माना जाता है। स्वतंत्रता तथा न्याय के सिद्धांत प्रत्यक्षत: मेल नहीं खाते हैं। न्याय के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर नियंत्रण आवश्यक हो जाता है। व्यक्ति द्वारा संपत्ति का संग्रहण भी सामाजिक न्याय तथा समाजवाद के विरुद्ध है। इससे पूंजीवाद को बढ़ावा मिलता है तथा समानता एवं अराजकता को बल मिलता है। जहां तक धार्मिक स्वतंत्रता का प्रश्न है यह भी सांप्रदायिकता तथा अशांति को जन्म दे सकती है। अतः व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सामाजिक न्याय को एक समान नहीं माना जा सकता है।

सामाजिक न्याय की अवधारणा के बारे में कहा जा सकता है कि,यह व्यक्ति की स्वतंत्रता में विश्वास तो करती है। किंतु सामाजिक संदर्भों को भी ध्यान में रखती है तथा मानवीय गरिमा, गौरव तथा अधिकारों की रक्षा करना इसका मुख्य उद्देश्य होता है। लोकतंत्र तथा लोक कल्याणकारी राज्य में सामाजिक न्याय की अवधारणा तेजी से पनपी है। इस प्रकार समाज सुधार तथा सामाजिक परिवर्तन सामाजिक न्याय की अवधारणा के सहगामी पक्ष हैं। भारत में संघीय अर्थों में आरक्षण को सामाजिक न्याय का पर्याय मान लिया जाता है जबकि व्यापक अर्थों में सामाजिक न्याय का संबंध मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक तत्व, सामाजिक नीति, सामाजिक विधान, सामाजिक नियोजन आदि से है। सामाजिक न्याय का उद्देश्य लिंग,वर्ण, जाति, शक्ति ,स्थिति और धन के आधार पर असमानता को दूर करना है। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की अवधारणा निहित है। भारतीय संविधान के निर्माता के पास एक नया सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का सपना था, जिसकी आत्मा सामाजिक न्याय थी। अंबेडकर भारतीय संविधान के मूल शिल्पकार थे। वे भारतीय समाज के पैटर्न और समस्याओं और विवादित भूतों के बारे में पूरी तरह से अवगत थे। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय परिभाषित नहीं है। यह एक संबंधित अवधारणा है जो समय और परिस्थितियों, लोगों और उनके पिछड़ेपन, से निर्मित है। सामाजिक न्याय हालांकि संविधान में परिभाषित नहीं है, परंतु प्रस्तावना, राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत और मूल अधिकार स्पष्ट रूप से सामाजिक न्याय के दर्शन को दर्शाते हैं। भारतीय संविधान में मूलभूत अधिकार किसी अन्य संविधान में विधेयक अधिकारों से अधिक व्यापक है, क्योंकि भारत एक विषम समाज है, इसमें धर्म और संस्कृति और सामाजिक स्थितियों की विविधता है। उनका उद्देश्य ना केवल नागरिकता की सुरक्षा और गुणवत्ता प्रदान करना है, बल्कि नागरिकता, न्याय और निष्पक्षता के विशिष्ट मानकों को भी प्रदान करना है।

- भारतीय संविधान में निहित मौलिक अधिकार निम्न है-
- कानून के समक्ष समानता की गारंटी देना और कानून का समान संरक्षण(अनुच्छेद- 14)
- धर्म, वंश जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव पर प्रतिबंध (अनुच्छेद- 15)
- सार्वजनिक रोजगार के मामलों में समान अवसर (अनुच्छेद- 16)
- अस्पृश्यता का उन्मूलन (अनुच्छेद- 17)
- इंसानों को खरीदना और बेचना और श्रमिकों को जबरदस्ती काम पर लगाने पर प्रतिबंध (अनुच्छेद- 23)

हमारे समाज में सामाजिक असमानता, सामाजिक कलंक और सामाजिक असमर्थता को समाप्त करने के अंबेडकर के प्रयास, इन प्रावधानों में प्रकट हुए। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अंबेडकर और हमारे संविधान के अन्य संस्थापकों ने इस बात पर बल दिया कि संविधान का उद्देश्य एक समतावादी समाज स्थापित करना था जहां अधिकारों की गारंटी केवल कुछ लोगों को ही नहीं बल्कि सभी को दी गई थी। वे दृढ़ विश्वास करते थे कि समान अवसर का अधिकार का कोई अर्थ नहीं है, जब तक कि समाज में व्यापक और समानता है कम नहीं हो जाती। राजनीतिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की है जब भूख के डर से लोगों की विशाल संख्या को कुछ लोगों की इच्छा पर मजबूर होना पड़ता है। निजी संपत्ति का अधिकार उन लोगों के लिए निरर्थक है जिनके सिर पर कोई छत नहीं है। अवकाश का अधिकार या किसी पेसे को चुनने की स्वतंत्रता का बेरोजगार व्यक्ति के लिए कोई अर्थ नहीं है। यह सारे संवैधानिक प्रयास राजनीतिक और नागरिक अधिकारों के बीच तथा दूसरी और सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के बीच का व्यक्तिगत अधिकार और सामाजिक न्याय की मांगों के बीच संतुलन बनाने की कोशिश करता है।

राजकोषीय नीति के संदर्भ में यदि सामाजिक न्याय की बात की जाए तो दीर्घकालिक राजकोषीय नीति के अनुसार राजकोषीय नीति का मुख्य योगदान एक प्रभावी कार्यक्रम द्वारा साधनों को एकत्रित करके उनका उपयोग गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों तथा उन सामाजिक एवं आर्थिक सेवाओं को सुधार करना है, जिन पर गरीबों की ज्यादा निर्भरता होती है। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम तथा सामाजिक सेवाओं को वित्त प्रदान करने की जिम्मेदारी सरकार की ही होती है। अतः राजकोषीय नीति का निर्माण कुछ इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि सरकार के पास उन सामाजिक खर्चो के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध हों जिनसे गरीबों को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त होता है। समाज में असमानता की दृष्टि से देखा जाए तो विकसित देशों की तुलना में अविकसित देशों में संपत्ति तथा आय का वितरण अधिक असमानता लिए हुए होता है। भारत भी इस प्रकृति का अपवाद नहीं है। यही कारण रहा कि भारत में योजना के प्रारंभ से ही बजट नीति का एक उद्देश्य यह भी रहा है कि इस असमानता को कम किया जाए और इसके लिए आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण में कमी; आय की असमानता में कमी; आय तथा उपभोक्ता व्यय की असमानता में कमी तथा निरपेक्ष निर्धनता(Absolute Poverty) में कमी या उसके उन्मूलन के लिए प्रयत्न किए गए। आय की असमानता को कम करने के लिए राजकोषीय नीति के संदर्भ में प्रत्यक्ष करों के अधिक उपयोग की बात कही गई है। भारतीय कर सुधार पर अपनी रिपोर्ट में काल्डर ने इस पहलू पर विशेष बल दिया था। उनका कहना था कि भारत की वर्तमान (1950 के दशक की) प्रत्यक्ष कर व्यवस्था और अकुशल एवं असमान दोनों ही है।इसलिए भारत सरकार ने काल्डर सिफारिशों के अनुसार एक समन्वित कर व्यवस्था विकसित करने के प्रयास के अंतर्गत आयकर, पूंजी लाभ कर, उत्तराधिकार कर, संपत्ति कर, उपहार कर तथा व्यय कर को वित्तीय योजना काल में लगाया था। इसके बावजूद आय की असमानता में कोई कमी नहीं हुई। इसके कई कारण रहे हैं जैसे बहुत कम व्यक्तियों द्वारा आयकर का भुगतान, बड़े पैमाने पर कर चोरी, प्रत्यक्ष करों कि प्रभावी दरों का निम्न होना आदि। इन सभी कारणों से कुल कर-राजस्व में प्रत्यक्ष करों का हिस्सा घटता चला गया। आय की असमानताओं को कम करने के लिए प्रगतिशील कर-व्यवस्था अत्यधिक आवश्यक है। परंतु यह भी सत्य है कि केवल प्रगतिशील कर व्यवस्था ही असमानता के समाधान के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि सभी कर उनको हटा भी लिया जाए तो भी निर्धनों की दशा में विशेष सुधार की गुंजाइश नहीं है। इसका कारण यह है कि भारत में निर्धनों पर शायद ही कोई प्रत्यक्ष कर लगा हुआ है। इसलिए आय और उपभोग की असमानता की समस्या के समाधान के लिए लोक व्यय पर अधिक निर्भर करना पड़ेगा। इसके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, निर्धनता निवारण, आदि पर विशेष ध्यान देना होगा। इस दिशा में पांचवी योजना काल से विशेष स्थान दिया गया। जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक न्याय की दिशा में भारतीय नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। इसके बाद की योजनाओं में भी निर्धनों की संख्या में कोई विशेष कमी नहीं हुई है। निर्धनता रेखा के नीचे जनसंख्या का प्रतिशत अभी काफी होता है तथा समग्र घरेलू उत्पत्ति की

वार्षिक दर में तेजी के बावजूद निर्धनता की दर में गिरावट उसी के अनुकूल नहीं हुई है। चूँकि जनसंख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है,निर्धनों के निरपेक्ष में थोड़ी ही कमी संभव हो सकी। मानव विकास के संकेतक हो। जैसे- शिक्षा एवं साक्षरता, मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में लगातार सुधार हुए हैं, किंतु, आंकड़े यह बताते हैं कि प्रगति बहुत धीमी है और अनेक एशियाई देशों की तुलना में भारत अभी भी बहुत पिछड़ा हुआ है।

5.9 निष्कर्ष

राजकोषीय नीति द्वारा क्षमता तथा सामाजिक न्याय न्याय के उद्देश्यों को पूरा किया जा रहा है। अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थायित्व की स्थापना होने के बाद संरचनात्मक सुधारों के परिणाम आने लग जाएंगे। जिसके बाद गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों और रोजगार के नए अवसर प्रदान करने के लिए परिस्थितियों काफी अनुकूल हो जाएंगी। भारत में सामाजिक न्याय की दिशा में भारतीय नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। योजनाओं में भी निर्धनों की संख्या में कोई विशेष कमी तो नहीं हुई है। निर्धनता रेखा के नीचे जनसंख्या का प्रतिशत अभी भी काफी होता है तथा समग्र घरेलू उत्पत्ति की वार्षिक दर में तेजी के बावजूद निर्धनता की दर में गिरावट उसके अनुकूल नहीं हुई है।

अभ्यास प्रश्न-

1. राजकोषीय नीति से आप क्या समझते हैं?
2. राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति में दो अंतर बताइए।
3. राजकोषीय नीति के महत्व को समझाइए।
4. भारत की राजकोषीय नीति के दो दोष बताइए।
5. सामाजिक न्याय का अर्थ बताइए।

5.10 सारांश

राजकोषीय नीति का आशय अर्थव्यवस्था में सरकार की आय-व्यय, ऋण आदि से होता है। राजकोषीय नीति में सरकार के उन कार्यों का उल्लेख किया जाता है, जो सरकार की प्राप्ति हो तथा खर्चों को प्रभावित करते हैं। राजकोषीय नीति सार्वजनिक व्यय तथा करों में परिवर्तन से संबंधित होती है। इस नीति का अंतिम लक्ष्य पूर्ण रोजगार और कीमत स्तर में स्थिरता लाना होता है। मौद्रिक नीति तथा राजकोषीय नीति में भी अंतर होता है। मौद्रिक नीति के द्वारा देश का केंद्रीय बैंक मुद्रा की पूर्ति तथा ब्याज की दरों, विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के लिए ऋण की राशि का आवंटन और ऋण की शर्तों आदि को प्रभावित करता है। जबकि राजकोषीय नीति में सार्वजनिक राजस्व, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण आदि का समावेश किया जाता है। अल्प विकसित एवं विकासशील देशों में पूंजी निर्माण की समस्या का समाधान राजकोषीय नीति की प्रभावशीलता पर निर्भर करता है। पूंजी निर्माण, पूर्ण रोजगार, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, मूल्य स्थिरता, आर्थिक विकास दर को गति प्रदान करना आदि राजकोषीय नीति के प्रमुख उद्देश्य माने जाते हैं। राजकोषीय नीति के कुछ प्रमुख उपकरण भी होते हैं जिसमें बजट, कर नीति, सरकारी व्यय, राजकीय कार्य, सार्वजनिक ऋण आदि शामिल होते हैं। भारत में सन् 1951 से देश में आर्थिक नियोजन को अपनाया गया। तीव्र विकास, जनकल्याण, समाजवादी समाज की रचना, सामाजिक न्याय, समानता आदि आर्थिक नियोजन के उद्देश्य रखे गए। इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राजकोषीय नीति का सहारा लिया गया। भारत की राजकोषीय नीति में कई दोस्त भी विद्यमान है जिसमें अव्यवस्थित कर प्रणाली, लोच शीलता का अभाव, अप्रत्यक्ष करों की अधिकता, कुशलता का अभाव, निम्न बचत दर, सरकारी आय का अपव्यय आदि शामिल है। सामाजिक न्याय की अवधारणा के बारे में यह कहा जा सकता है कि, यह व्यक्ति की

स्वतंत्रता में विश्वास तो करती है किंतु सामाजिक संदर्भों को भी ध्यान में रखती है तथा मानवीय गरिमा, गौरव तथा अधिक मुख्य उद्देश्य होता है। भारत में संघीय अर्थों में आरक्षण को सामाजिक न्याय का पर्याय मान लिया जाता है जबकि व्यापक अर्थों में सामाजिक न्याय का संबंध मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक तत्व, सामाजिक नीति, सामाजिक विधान, सामाजिक नियोजन आदि से है। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय परिभाषित नहीं है। राजकोषीय नीति के संदर्भ में सामाजिक न्याय दीर्घकालिक राजकोषीय नीति के अनुसार राजकोषीय नीति का मुख्य योगदान एक प्रभावी कार्यक्रम द्वारा साधनों को एकत्रित करके उनका उपयोग गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम तथा उन सामाजिक एवं आर्थिक सेवाओं को सुधार करना है, जिन पर गरीबों की निर्भरता अधिक रहती है।

5.11 शब्दावली

बजट घाटा- जब सरकार का कुल खर्च हुई आमदनी से ज्यादा होता है तो उसे बजट घाटा कहते हैं।

सामाजिक विधान- सामाजिक विधान का संबंध व्यक्ति एवं समूह के कल्याण की वृद्धि तथा सामाजिक क्रियाकलापों के प्रभावपूर्ण एवं निर्बाध रूप से संचालन से होता है।

हीनार्थ प्रबंधन- जब सरकार का बजट जाति का होता है, अर्थात कम होती है ज्यादा होता है तो इसके आदित्य को केंद्रीय बैंक से ऋण लेकर अतिरिक्त पत्र मुद्रा निर्गमित कर पूरा किया जाता है,तू यह व्यवस्था घाटे की वित्त व्यवस्था अथवा हीनार्थ प्रबंधन कहलाती है।

मुद्रा प्रसार/मुद्रास्फीति- यदि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के कारण मूल्य स्तर में वृद्धि होती है, तो स्थित को मुद्रा प्रसार/ मुद्रास्फीति कहा जा सकता है।

अधिशे- अतिरिक्त, शेष, बकाया।

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. राजकोषीय नीति सरकार के संपूर्ण व्यय, आयकर, उत्पादन तथा रोजगार से संबंधित होती है। **2.** (A) मौद्रिक नीति के संबंध में केंद्रीय बैंक पूर्ण स्वतंत्र होता है, जबकि राजकोषीय नीति में सरकार कम स्वतंत्र होती है और प्रत्येक मद की राशि के लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक होती है। (B) मौद्रिक नीति का प्रत्येक क्षेत्र पर परोक्ष प्रभाव पड़ता है जबकि राजकोषीय नीति का जनता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। **3.** राजकोषीय नीति देश के वास्तविक एवं मौद्रिक साधनों में समन्वय स्थापित करती है तथा नियोजित अर्थव्यवस्था वाले देशों पर प्रभाव डालती है। **4.** अव्यवस्थित कर प्रणाली, लोचशीलता का अभाव। **5.** सामाजिक स्तर पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच असमानता, अन्याय, शोषण तथा असहयोग की समाप्ति करना और मानवीय गरिमा की स्थापना करना ही सामाजिक न्याय कहलाता है।

5.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, एम. के.2009. लोक वित्त के सिद्धांत तथा भारतीय लोक वित्त; साहित्य भवन पब्लिकेशन: आगरा।
2. लेखी, आर. के.2009, लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स: नई दिल्ली।
3. वशिष्ठ, पारीक, 2015-16, लोक वित्त; आर. बी.डी. पब्लिशिंग हाउस: जयपुर।

5.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कटारिया, सुरेंद्र. 2006. भारतीय लोक प्रशासन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस: नई दिल्ली।
2. हजेला, टी. एन. 1995. राजस्व के सिद्धांत; कोणार्क पब्लिशर्स: नई दिल्ली।

5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजकोषीय नीति के उद्देश्यों की विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. भारत की राजकोषीय नीति के दोषों का वर्णन कीजिए।
3. राजकोषीय नीति- समता और सामाजिक न्याय पर एक निबंध लिखिए।

इकाई- 6 भारतीय बजट प्रक्रिया सिद्धान्त और कार्य

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 बजट की अवधारणा
6.2.1 बजट का अर्थ
6.2.2 बजट की परिभाषाएं
6.2.3 बजट की विशेषताएं
6.3 बजट के सिद्धांत
6.3.1 बजट के कार्यपालिका से संबंधित सिद्धांत
6.3.2 व्यवस्थापिका से संबंधित सिद्धांत
6.3.3 अन्य सिद्धांत
6.4 विकासशील देशों में बचत की भूमिका
6.5 बजट के कार्य
6.6 निष्कर्ष
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
6.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

'वित्त' प्रशासन का जीवन रक्त है, दोनों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। वित्त के अभाव में सरकार बिल्कुल उसी प्रकार से काम नहीं कर सकती है जिस प्रकार से बिना पेट्रोल के कार नहीं चल सकती है। या दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रशासकीय इंजन का ईंधन वित्त होता है। पहले का परिचालन दूसरे के बिना असंभव है। लॉयड जॉर्ज ने एक बार कहा था कि, जिसको शासन कहते हैं, वह वास्तव में वित्त है। सरकारी ही नहीं सभी उद्यम विथ पर ही निर्भर होते हैं। कौटिल्य ने इस संदर्भ में ठीक ही कहा है, ''सभी उद्यम वित्त पर निर्भर हैं। अतः कोषागार पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।'' प्रत्येक योजना के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है। अच्छी से अच्छी नीति और योजना भी विफल हो जाती है यदि उससे संबंधित कर्मचारी कर्मचारियों के लिए अच्छे वेतन तथा आवश्यक पदार्थों के लिए पर्याप्त धनराशि का प्रबंध ना हो। दृढ़ वित्तीय व्यवस्था ही शासन के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। राजस्व आम नागरिक से भी प्राप्त किया जा सकता है। अतः सरकार का यह कर्तव्य होता है कि वह उस धन को कुशलता तथा मितव्ययिता से व्यय करें। प्रजातंत्र में ठोस वित्तीय व्यवस्था के पक्ष में निश्चित भावना होनी चाहिए। इसके अभाव में अपव्यय तथा अन्य बुरी बातों का दो जनता प्रजातंत्र पर ही मढ़ देती है और परिणाम यह होता है कि जनता ऐसे प्रजातंत्र से ही घृणा करने लगती है। इसके अतिरिक्त एक और बात जिसके कारण वित्तीय प्रशासन का आज महत्व बहुत बढ़ गया है वह है, आधुनिक समय में शासकीय कार्यों में असाधारण वृद्धि। इस असाधारण वृद्धि के कारण ही वित्तीय प्रशासन संबंधी उत्तम सिद्धांतों, उपकरणों एवं

पद्धति का विकास किया जाना और सरकार द्वारा उसका पालन किया जाना नितांत आवश्यक हो गया है। वित्तीय प्रशासन बड़े निकट से जनता के सामाजिक-आर्थिक आचरण को प्रभावित करता है। टास्क फोर्स, हूवर कमीशन के शब्दों में, "वित्त आधुनिक शासन के अंतः स्थल तक पहुंच गया है। बजट सार्वजनिक नीति के नट और बोल्ट हैं। वित्तीय प्रशासन में वे समस्त क्रियाएं शामिल होती हैं जो लोक सेवाओं पर व्यय हेतु आवश्यक धनराशि की प्राप्ति, व्यय तथा लेखांकन से संबंध रखती हैं। यह क्रियाएं एक नियंत्रण श्रंखला के रूप में कार्य करती हैं तथा कार्यपालिका, विधान मंडल, वित्त मंत्रालय जैसे अभिकरणों द्वारा संपादित होती हैं।''

6.1 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- बजट का अर्थ, परिभाषाएं एवं उसकी विशेषताओं को समझ पायेंगे।
- आम बजट के विभिन्न सिद्धांतों को जान पाएंगे।
- विकासशील देशों में बजट की भूमिका तथा बजट के विभिन्न कार्यों को भलीभांति समझ पाएंगे।

6.2 बजट की अवधारणा

बजट संबंधी प्रक्रिया को प्रशासन का केंद्र बिंदु माना जाता है, क्योंकि राज्य कोष का नियंत्रण समन्वय का सर्वाधिक शक्तिशाली साधन है। समस्त सरकारी कार्यों का क्षेत्र एवं स्वरूप विभिन्न बड़े कार्यों के लिए निश्चित धनराशि के आधार पर निर्धारित किया जाता है। निष्पादित प्रबंध तथा विधाएं नियंत्रण का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण होने के साथ ही बजट वित्तीय प्रशासन का प्रधान उत्पादन भी है। 'बजट' शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'बाजते' (Bougette) से हुई है, जिसका अर्थ है चमड़े का थैला या झोला, जिसमें से ब्रिटेन का राजकोष महामात्र (Chancellor of the Exchequer), शासन की आगामी वर्ष की वित्तीय योजना के कागजात संसद के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु, निकाला करता था। सन 1773 में ब्रिटेन में हाउस ऑफ कॉमंस में जब वित्त मंत्री सर रॉबर्ट वॉल्पोल ने अपनी वित्तीय योजना संसद में प्रस्तुत की तब किसी ने व्यंग के रूप में कह दिया कि, "वित्त मंत्री ने अपने बजट खोला है।" तब से सरकार के आय-व्यय के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। इससे पूर्व मध्यकालीन इंग्लैंड में प्रारंभिक बजट के दस्तावेज Doomsday Book या Domesday Book (कयामत पुस्तक) कहलाते थे। सम्राट विलियम (सन 1086) द्वारा प्रचलित इस दस्तावेज में भूमि एवं संपत्ति का विवरण होता था। वर्तमान में 'बजट' शब्द वित्तीय कागजात का निर्देश करता है, ना कि झोला इत्यादि का।

बजट प्रणाली का विकास उत्तर-मध्य युग में हुआ था। इस काल में इंग्लैंड तथा यूरोप में स्वेच्छाचारी शासन पद्धति पाई जाती थी। बजट राजस्व तथा व्यय का विवरण होता था, परंतु वह राजा का व्यक्तिगत विषय तथा राजकीय रहस्य माना जाता था। इसका कारण यह था कि राजस्व राजा की अपनी ही भू-संपदा से प्राप्त होता था। परंतु युद्ध काल में करों का सहारा लेना आवश्यक हो जाता था। परिणाम स्वरुप, ऐसे समय में अमीरों को राजस्व साधनों पर, विशेषता युद्ध पर, अपने विचार तथा प्रतिक्रिया प्रकट करने का अवसर राजा द्वारा प्रदान किया जाता था। "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं" के सिद्धांत को 1688 की क्रांति के समय की मान्यता प्राप्त हुई थी। किंतु उस समय सभी प्रशासकीय व संसदीय नियंत्रण के अधीन नहीं थे। वित्त पर पूर्ण विधाई नियंत्रण तो इसी शताब्दी में स्थापित हुआ है। इस प्रकार, वित्तीय निर्देशन तथा नियंत्रण के केंद्रीय उपकरण के रूप में बजट की अवधारणा अपेक्षाकृत नवीन है।

बजट प्रणाली कुशल राजस्व (fiscal) प्रबंध का आधार है। समाज-विज्ञान विश्व कोष के अनुसार, "बजट प्रणाली का वास्तविक महत्व इस कारण है कि यह किसी सरकार की वित्तीय मामलों के क्रमबद्ध प्रशासन की व्यवस्था

करता है।" राजस्व संबंधी प्रबंध में अनेक क्रियाओं की एक निरंतर श्रंखला रहती है, जैसे- राजस्व तथा व्यय का अनुमान, राजस्व तथा विनियोजन अधिनियम का लेखा, लेखा परीक्षण तथा प्रतिवेदन। इन क्रियाओं का संचालन किस प्रकार होता है इसका वर्णन, डब्लू. एफ. विलोबी ने कुछ इस प्रकार किया है, "पहले तो एक निश्चित समय- प्रायः एक वर्ष के लिए सरकारी प्रशासन को चलाने के लिए जिन व्ययों की आवश्यकता होती है, उनका अनुमान लगाया जाता है और इन व्ययों की पूर्ति हेतु धन के प्रबंध संबंधी प्रस्ताव होते हैं। इस अनुमान के आधार पर राजस्व तथा विनियोजन अधिनियम पारित किए जाते हैं, जो स्वीकृत कार्यो के लिए वैध अधिकार प्रदान करते हैं। इसके आधार पर विभिन्न कार्यरत विभागों द्वारा राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों के अनुसार राजस्व एवं विनियोजन लेखे खोले जाते हैं और इस प्रकार स्वीकृत द्रव्य का व्यय प्रारंभ होता है। लेखा परीक्षण तथा लेखा विभाग यह देखने के लिए इन लेखकों का परीक्षण करता है कि वे ही हैं या नहीं, वास्तविक तथ्यों से संगति रखते हैं या नहीं और विधि के सभी प्रावधानों के अनुरूप हैं या नहीं। इन सब के उपरांत इन लेखों से प्राप्त सूचनाओं का सारांश निकाला जाता है और प्रतिवेदनों के रूप में उनको प्रकाशित किया जाता है। अंत में इसके आधार पर अगले वर्ष के लिए नए अनुमान तैयार किए जाते हैं और फिर वही चक्र पुन: आरंभ हो जाता है। इस प्रक्रिया में बजट ही वह तंत्र है जिसके द्वारा एक ही समय में कई क्रियाएं पारस्परिक रूप से संबद्ध की जाती है और उनकी तुलना तथा परीक्षा की जाती है। इस प्रकार बजट राजस्व तथा विषयों का अनुमान मात्र ना होकर कुछ और अधिक होता है। यह एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा प्रस्ताव, एक प्रलेख होना चाहिए जिसके माध्यम से मुख्य कार्यपालिका, जो सरकारी प्रशासन की वास्तविक संचालन के लिए उत्तरदायी सत्ता है, धन एकत्र करने तथा विधियों को स्वीकार करने वाली सत्ता (संसद) के समक्ष इस आशय का संपूर्ण प्रतिवेदन उपस्थित करती है कि किस ढंग से उसने तथा उसके अधीनस्थों ने विगत वर्ष के दौरान प्रशासनिक कार्यों को संपन्न किया है। साथ ही साथ, वह सार्वजनिक कोषागार की वर्तमान दशा का एक विवरण भी प्रस्तुत करती है। सूचना के आधार पर कार्यपालिका आगामी वर्ष के लिए अपने कार्यक्रम बनाना प्रारंभ करती है, और ऐसे कार्यो के लिए वित्तीय प्रबंध संबंधी प्रस्ताव प्रस्तुत करती है।"

अतः बजट कार्य संबंधी योजना है। यह आगामी वित्तीय वर्ष के लिए मुख्य कार्यपालिका के कार्यक्रम को प्रतिबिंबित तथा स्पष्ट करता है। यह सरकार के राजस्व तथा व्याकरण मात्र से कहीं अधिक व्यापक वस्तु है। इसके तीन प्रमुख कार्य हैं- नियंत्रण, प्रबंधन और नियोजन।

6.2.1 बजट का अर्थ

उपरोक्त वर्णन में अपने जाना कि बजट शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'बाजते' से हुई, जिसका अर्थ है- 'चमड़े का थैला।' 'बजट' शब्द का अर्थ देश के अनुसार भी बदलता है। जो वित्तीय योजना स्वीकृति के लिए व्यवस्थापिका में प्रस्तुत की जाती है उसे भी बजट कहा जाता है और जो स्वीकृत योजना व्यवस्थापिका द्वारा पास कर ली जाती है उसे भी हम बजट का नाम देते हैं। भारत में इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी व्यय के अनुमानों के समानार्थक के रूप में किया जाता है, जबकि इंग्लैंड में यह शब्द प्रायः वित्तीय योजना के स्वरूप या कर-भाग से संबंध रखता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह शब्द संपूर्ण वित्तीय प्रक्रिया के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जिसमें बजट की तैयारी, व्यवस्थापिका द्वारा उसकी रचना, उसकी क्रियान्वित, लेखांकन, लेखा परीक्षा आदि को सम्मिलित किया जाता है। जोसेफ पोईस ने लिखा है कि, "बजट एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा इस सरकारी अभिकरण की वित्तीय नीति निर्धारित और संचालित की जाती है"

6.2.2 बजट की परिभाषाएं

आइए, अब विभिन्न विचारकों द्वारा दी गई बजट की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर बजट के अर्थ को और स्पष्ट रूप से समझते हैं-

विलोबी के अनुसार, "बजट सरकार के आय-व्यय का अनुमान मात्र नहीं है बल्कि यह एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा एक प्रस्ताव, तीनों है या इसे होना चाहिए। यह एक ऐसा लिखा पत्र है, जिसके माध्यम से कार्यपालिका, व्यवस्थापिका के सम्मुख आती है और विस्तार के साथ अति, वर्तमान और भविष्य की वित्तीय स्थितियों का प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है।"

रेने स्टार्म के शब्दों में, "बजट, एक ऐसा परिपत्र है जिसमें सार्वजनिक राजस्व और व्यय की प्रारंभिक योजना प्रस्तुत की जाती हैं।"

बेस्टाबल (Bastable)के अनुसार, "बजट का तात्पर्य इसी अवधि की वित्तीय प्रबंध से होता है; इसका छिपा हुआ अर्थ यह है कि से विधानसभा के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है।"

ग्लैडस्टोन (Gladstone) का कहना है कि, "बजट सिर्फ गणित नहीं, बल्कि हजारों तरीकों से यह व्यक्तियों की उन्नति तथा वर्गों के संबंध एवं राज्यों की शक्ति की जड़ में जाता है।"

हैरॉरॉल्ड आर. ब्रूस के शब्दों में "बजट किसी संगठन की अनुमानित आय तथा प्रस्तावित व्यय का वित्तीय वक्तव्य है जो आगामी वर्ष के लिये पहले से तैयार किया जाता है।"

विलने के अनुसार, "बजट, अनुमानित आय तथा व्यय का विवरण, आय एवं व्यय का तुलनात्मक क्षेत्र और इन सब के ऊपर यह राजस्व एकत्र करने तथा सार्वजनिक धन खर्च करने के लिए सक्षम प्राधिकारी को दिया हुआ प्राधिकार तथा निर्देश है।"

रेने गेज का कहना है कि, "आधुनिक राज्य में बजट सार्वजनिक प्राप्ति एवं खर्चो का पूर्वानुमान तथा एक अनुमान है और कुछ खर्चों को करने तथा प्राप्त क्यों को एकत्र करने का अधिकृतीकरण है।"

डिमॉक के शब्दों में "बजट एक वित्तीय योजना है जो अतीत में वित्तीय अनुभव का स्तर प्रस्तुत करता है, वर्तमान की योजना बनाता और भविष्य के एक निश्चित काल के लिए इसे आगे बढ़ाता है।"

मुनरो का कथन है कि, "बजट आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए अर्थ प्रबंधन की योजना है। उसमें एक और सभी आयोग का और दूसरी ओर सभी खर्चों का मद के अनुसार अनुमान दिया होता है।"

अतः बजट किसी वित्तीय वर्ष के संदर्भ में सरकार की अनुमानित प्राप्तियों (राजस्व या आय) और व्यय का विवरण है अर्थात बजट विधायिका को प्रस्तुत और विधायिका द्वारा स्वीकृत सरकार का वित्तीय दस्तावेज है।

6.2.3 बजट की विशेषताएं

उपरोक्त परिभाषा के अतिरिक्त भी बजट के संबंध में कुछ और ऐसे तथ्य या पहलू हैं जो महत्व रखते हैं। बजट की इन्हीं विभिन्न विशेषताओं का वर्णन कुछ इस प्रकार है-

1. बजट भावी योजना या कार्यक्रम है। अतीत के अनुभव तथा उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर इस योजना का निर्माण किया जाता है। सरकार के आर्थिक एवं सामाजिक नीति एवं विचारधारा मार्गदर्शन करती है। बजट योजना को मौद्रिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
2. बजट केवल प्रारंभिक प्रस्ताव नहीं है, बल्कि क्रिया करने की योजना है। क्योंकि बजट प्रस्तावों को विधानसभा पारित करती। अतः वे क्रियान्वयन के योग्य हो जाते हैं।
3. बजट मद, केवल अनुमान होते हैं।

4. सरकार की क्रियाओं के संबंध में बजट एक विस्तृत योजना है। इसके अंतर्गत सरकार के सभी विभागों तथा एजेंसियों की क्रियाएं शामिल होते हैं।
5. सामान्यतः बजट वार्षिक योजना होती है। कभी-कभी इसे एक साल से अधिक लंबी अवधि के लिए भी तैयार किया जाता है।
6. बजट का निर्माण कार्यकारिणी द्वारा होता है तथा इसे विधानसभा के समक्ष मतदान के लिए पेश किया जाता है। बजट में अक्सर चालू व्यय, पूंजी व्यय तथा सार्वजनिक आर्थिक उद्यमों के मध्य अंतर किया जाता है। चालू व्यय की वित्त व्यवस्था सामान्यतः कर राजस्व द्वारा होती है, जबकि लोक ऋण के द्वारा पूंजी व्यय के लिए वित्त जुटाया जाता है तथा दोनों प्रकार के व्यय को प्रथक-प्रथक दिखाया जाता है- क्रमशः राजस्व बजट तथा पूंजी बजट में।
7. जब लोक उद्यम आर्थिक उद्योगों की तरह होते हैं तथा उन्हें नियमित सरकारी विभागों के अंतर्गत रखा जाता है, उनकी आय और व्यय को सामान्य बजट के अंग के रूप में दिखाया जाता है। कभी-कभी इन उद्यमों की व्यवस्था अलग-अलग लोग निगमों के रूप में की जाती है। इस स्थिति में इन के बजट को सामान्य बजट से पृथक दिखाने की प्रथा यूरोप के देशों में तथा भारत में विद्यमान है।
8. कभी-कभी बजट पर मतदान होने तथा क्रियान्वयन के बाद संशोधन की आवश्यकता हो जाती है। ऐसा कई कारणों से हो सकता है, जैसे- लोक व्यय में अचानक वृद्धि या राजस्व में अप्रत्याशित कमी या अप्रत्याशित संकट।
9. जिस राशि का व्यय नहीं हो पाता है उसे एक ही विभाग में अभी से दूसरी अवधि में या एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानांतरित किया जा सकता है। एक ही विभाग में हस्तांतरण केवल विभागीय अध्यक्ष की मर्जी से नहीं होता है, बल्कि प्रमुख कार्यपालिका के निरीक्षण में होता है। अंतर विभागीय हस्तांतरण के लिए विधायिका की स्वीकृति आवश्यक।
10. नई क्रियाओं के उपस्थित होने या मौजूदा सेवाओं में विस्तार होने पर पूरक बजट जरूरी हो जाता है।
11. बजट में बताया जाता है कि सरकारी उपयोग के लिए दुर्लभ साधनों को किस प्रकार प्राप्त किया जाता है। यहां यह बात याद रखने योग्य है कि बजट संपूर्ण अर्थव्यवस्था की बैलेंस शीट (Balance Sheet) नहीं है, क्योंकि इसमें संपूर्ण देश की वित्तीय स्थिति का पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं किया जाता है। बजट में केवल किसी वर्ष में सरकार की आय एवं व्यय का ब्यौरा रहता है।

इस प्रकार उपरोक्त समस्त परिभाषाओं और विशेषताओं का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि, 'बजट' उन लेखों को कहते हैं जो सरकार द्वारा संसद के सम्मुख प्रतिवर्ष एक निर्धारित तिथि पर अथवा उसके पश्चात प्रस्तुत किए जाते हैं तथा जिसमें यह दिया होता है कि आने वाले वित्तीय वर्ष में सरकार का अनुमानित वह क्या होगा तथा उसी काल के मध्य आए क्या होगी। यह आय-व्यय वर्तमान लागू नियमों के अधीन होते हैं और यदि सरकार द्वारा कराधान प्रस्तावों पर विचार किया गया है तो इनके परिणाम स्वरूप बजट का प्राथमिक उद्देश्य व्यापक सूचना को प्रकट करना भी हो सकता है, ताकि सरकार की संपूर्ण वित्तीय स्थिति का परिचय मिल सके तथा जिससे संसदीय कार्यक्रमों के प्रभाव को देश की अर्थव्यवस्था पर पूर्ण तथा समुचित रूप से आंक सके।

6.3 बजट के सिद्धांत

विभिन्न देशों के लंबे अनुभव से बजट के संबंध में कुछ ऐसे सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं, ताकि बजट को अधिक सार्थक और उपयोगी बनाया जा सके। यद्यपि इनमें से कोई ऐसा सिद्धांत नहीं है जिसे अनुलंघनीय माना जा सके तथापि एक स्वस्थ बजट के लिए इनका होना उपयोगी माना जाता है। बजट के सिद्धांतों को व्यापक रूप से

निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- कार्यपालिका से संबंधित सिद्धान्त, व्यवस्थापिका से संबंधित सिद्धान्त तथा अन्य सिद्धांत।

आइए बजट के इन्ही सब सिद्धांतों को विस्तार से समझते हैं।

6.3.1 बजट के कार्यपालिका से संबंधित सिद्धांत

बजट कार्यपालिका के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय का एक मुख्य स्रोत माना जाता है। इसके द्वारा अपव्यय और पुनरावृत्ति को कम किया जा सकता है। बजट बनाते समय सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन हो जाता है और साथ ही साथ अनावश्यक क्रियाओं को समाप्त करने का आधार भी मिल जाता है। बजट से प्रशासन में अनुशासन भी आता है। इसके विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन के सभी भाग मिलकर एक साथ कार्य करते हैं।कार्यपालिका की दृष्टि से बजट को प्रभावशाली और उपयोगी बनाने के लिए जो सिद्धांत अपनाए जाते हैं वो कुछ इस प्रकार से हैं-

1. मुख्य कार्यपालिका का पर्यवेक्षण- बजट एक प्रकार से मुख्य कार्यपालिका के कार्यक्रम की रूपरेखा होता है। ऐसी स्थिति में यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि बजट पर मुख्य कार्यपालिका का सीधा पर्यवेक्षण हो।
2. कार्यपालिका का दायित्व है- मुख्य कार्यपालिका द्वारा तैयार किया गया बजट ऐसा होना चाहिए जो व्यवस्थापिका के उद्देश्यों को पूरा करता हो और साथ ही इसमें मितव्ययता का भी अनुपालन किया गया हो।
3. आवश्यक सूचना- बजट बनाते समय जो अनुमान बनाए जायें, जिन्हें व्यवस्थापिका में प्रस्तुत करके क्रियान्वित किया जाना है तो ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर संबंधित अधिकारियों के प्रतिवेदनों को आधार बनाया जाये। इन प्रतिवेदनों के माध्यम से ही बजट को उपयोगी और सार्थक बनाया जा सकता है। इनके अभाव में यह आज स्पष्ट और निराधार होगा। इससे इसकी उपयोगिता भी नष्ट हो जाएगी।
4. आवश्यक प्रसाधन- बजट की तैयारी और क्रियान्विति का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से कार्यपालिका पर ही होता है। अब इस उत्तरदायित्व या कर्तव्य को पूरा करने के लिए यह आवश्यक होता है की मुख्य कार्यपालिका को पर्याप्त प्रशासनिक उपकरण अथवा साधन प्रदान किए जाएं।
5. स्व-विवेक के अवसर- बजट के अनुमान मोटे तौर पर ही निर्धारित किए जाने चाहिए, ताकि समय के परिवर्तन के साथ-साथ मुख्य उद्देश्य प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधनों का चुनाव किया जा सके।
6. लोचशीलता- बजट के रूप में इतनी लोच शीलता भी होनी चाहिए की बदली हुई आवश्यकताओं के साथ उसमें परिवर्तन किया जा सके।
7. एक सहकारी प्रयास- बजट में कुशलता के साथ साथ सभी विभागों तथा उप विभागों का सक्रिय सहयोग भी प्राप्त करना आवश्यक होता है। बजट की रचना केवल एक केंद्रीय कार्यालय का कार्य ही नहीं होता है वरन यह एक ऐसी प्रक्रिया होती है जो संपूर्ण प्रशासकीय संग रचना का एक महत्वपूर्ण कार्य हैं।

इस प्रकार बजट निर्माण एक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस संबंध में कार्यपालिका से अत्यंत योग्यता और सजगता की अपेक्षा की जाती है।

6.3.2 व्यवस्थापिका से संबंधित सिद्धान्त

बजट के माध्यम से व्यवस्थापिका को कार्यपालिका पर नियंत्रण स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है। प्रारंभ में यह नियंत्रण केवल राजस्व के स्रोतों एवं मात्रा को बढ़ाने की दृष्टि से किया जाता था, किंतु बाद में इसमें व्यय को

भी सम्मिलित किया गया। व्यवस्थापिका का नियंत्रण यह स्पष्ट करता है कि उसकी स्वीकृति के बिना कोई घर एकत्रित नहीं किया जा सकता है और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। इसी संदर्भ में कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का समुचित नियंत्रण स्थापित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धांत विकसित किए गए हैं-

1. प्रचार- सरकारी बजट विभिन्न सोपानों में से होकर गुज़रता है। इनके प्रचार और प्रकाशन द्वारा बजट को सर्वाधिक जानकारी का विषय बना लेना चाहिए। बजट पर विचार-विमर्श करते समय व्यवस्थापिका के गुप्त अधिवेशनों की आवश्यकता नहीं है। व्यवस्थापिका का पर्याप्त प्रचार और प्रकाशन होने पर ही देश की जनता और समाचार पत्र उसके संबंध में अपनी राय प्रकट कर सकते हैं।
2. स्पष्टता- बजट यदि अस्पष्ट और उलझन पूर्ण हुआ तो निश्चय ही यह सामान्य जनता की समझ से बाहर रहेगा । बजट की सार्थकता और सफलता के लिए उसे इतना स्पष्ट होना चाहिए कि जनता इसे भली प्रकार समझ सके।
3. व्यापकता- बजट के अंतर्गत समस्त सरकारी कार्यक्रमों पर प्रकाश डालते हुए व्यय और राजस्व को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया जाना चाहिए। बजट के देखने पर यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि, सरकार द्वारा कौन-कौन से नए कर लगाए जा रहे हैं और किन-किन मदों पर सरकार द्वारा व्यय किया जाएगा। सरकार द्वारा जारी किए जाने वाले नए ऋण भी बजट में शामिल होते हैं, बजट देखने से सरकार की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति का बोध हो सकता है।
4. एकता- बजट में जो व्यय दिखाए जा रहे हैं, उन सभी की वित्तीय व्यवस्था करने के लिए सरकार को सभी प्राप्तियाँ एक सामान्य निधि में एकत्रित करनी चाहिए। राजस्व को प्रथक करना एक अच्छे बजट का लक्षण नहीं होता है।
5. नियत कालीन- बजट द्वारा सरकार को विनियोजन तथा व्यय करने का जो अधिकार दिया जाए वह है एक निश्चित समय के लिए होना चाहिए। यदि धन का उपयोग इस समय के अंतर्गत नहीं किया जाता है तो उसे प्रयोग करने का अधिकार समाप्त हो जाएगा और केवल पुनः विनियोजन करने पर ही उसे व्यय किया जा सकेगा। सामान्य रूप से बजट अनुदान वार्षिक आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। वित्त वर्ष प्रारंभ होने से पूर्व ही बजट की मदें स्वीकार कर ली जाती है।
6. निश्चितता- बजट की विभिन्न मदें तथा अनुमान यथा संभव निश्चित एवं परिशुद्ध होने चाहिए। बजट के अनुमान पर्याप्त सूचनाओं पर आधारित हो, ठीक हो, व्यवस्थित हो और मूल्यांकन करने की दृष्टि से उपयुक्त हो। तथ्यों को गोपनीय रखकर या राजस्व का कम अनुमान लगाकर बजट की परिशुद्धता को समाप्त करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए।
7. ईमानदारी- विभिन्न कार्यक्रम उसी प्रकार क्रियान्वित किया जाये जिस प्रकार उन को बजट में प्रदर्शित किया गया है, अन्यथा बजट निरर्थक हो जाता है। बजट की रचना के समय जो उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं उन्हें प्राप्त करने के लिये ईमानदार एवं कार्यकुशल प्रशासन का होना नितांत आवश्यक है।

6.3.3 अन्य सिद्धान्त

एक स्वस्थ और अच्छे बजट की रचना में कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका से सम्बन्धित सिद्धान्तों के अलावा कुछ अन्य सिद्धान्त भी अपनाये जाने चाहिये-

1. सन्तुलित बजट- बजट सन्तुलित होना चाहिये। यह अनुमानित व्यय, अनुमानित आय तथा राजस्व से अधिक नहीं होना चाहिये। यद्यपि सरकारी वित्त में अधिक लोचशीलता होती हैं, क्यूँकि अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिये आवश्यक धन का प्रबंध किया जा सकता है। तथापि इसकी भी एक सीमा होती है, जो देश लगातार इसे सीमा को पार करता रहेगा वह दीर्घकाल में दिवालिया हो जाएगा और उसकी

अर्थव्यवस्था चरमरा जाएगी। जब बजट में व्यय और राजस्व बराबर होते हैं तो इसे हम सन्तुलित बजट कहते है किन्तु जब व्यय राजस्व की अपेक्षा कम होता है तो इसे आधिक्य या बचत बजट (Surplus Budget) कहा जाएगा और यदि व्यय अनुमानित राजस्व की अपेक्षा अधिक है तो उसे घाटे का बजट कहा जाएगा। यदि कभी घाटे का बजट बन ही जाता है तो कोई चिंता की बात नहीं होती है, किंतु निरंतर ऐसा होना राज्य के स्थायित्व और वित्तीय साख के लिए खतरनाक होता है। भारत के बारे में यही बात लागू हो रही है। अनवरत रूप से पेश किए जाने वाले घाटे के बजट ओं के कारण देश की अर्थव्यवस्था को गंभीर खतरों से जूझना पड़ रहा है।

2. मिश्रित बजट- स्वस्थ बजट का एक दूसरा सिद्धांत यह है कि वह विशुद्ध ना होकर मिश्रित होना चाहिए अर्थात प्राप्तियों तथा व्यय दोनों के सभी लेनदेन पूरी तरह से दिखाए जाने चाहिए, ना कि केवल उनकी विशुद्ध स्थिति को ही। इस नियम की अवहेलना करने पर वित्तीय प्रक्रिया अस्पष्ट हो जाएगी, वित्तीय नियंत्रण प्रभावहीन बन जाएगा और लेखे अपूर्ण बन जाएंगे। उदाहरण के लिए, यदि एक विभाग के व्यय का अनुमान ₹400000 है और आय का अनुमान ₹200000 है। यदि वह विशुद्ध बजट की रचना करें तो व्यवस्थापिका से केवल ₹200000 का अनुदान चाहेगा और इस प्रकार व्यवस्थापिका को अपने आधे व्यय पर नियंत्रण रखने से वंचित कर देगा।
3. बजट के दो भाग- बजट के दो भाग किए जाने चाहिए। एक भाग में चालू है और आए होनी चाहिए तथा दूसरे भाग में पूंजीगत भुगतान और प्राप्तियां होनी चाहिए। प्रथम भाग राजस्व बजट कहलायेगा और दूसरा भाग पूंजीगत बजट कहलाएगा। यदि इस प्रकार का अंतर न किया गया तो समस्त आर्थिक चित्र धुंधला रह जाएगा। इसलिए दोनों भागों को अलग अलग रखा जाता है और अलग-अलग संतुलित किया जाता है।
4. बजट का नकदी आधार- बजट में आय और व्यय का अनुमान वर्ष की वास्तविक प्राप्ति या व्यय से संबंधित होने चाहिए। नकद बजट का काम यह है कि इसके आधार पर इस वित्तीय वर्ष के लेखों की अंतिम तैयारी वर्ष के समाप्त होते ही की जाती है। इस प्रणाली का दोष यह है कि वर्ष के लिए वित्तीय तस्वीर सही सही नहीं उभर पाती है। आगामी वर्षों में किए जाने वाले भुगतानों को हटाकर घाटे के स्थान पर वर्तमान वर्ष के बजट में अतिरेक की स्थिति दिखाई जा सकती है। यद्यपि बजट का राजस्व विभाग इस दोष से बचा रहता है, किंतु यह अंतिम लेखों की तैयारी और प्रस्तुतीकरण को विलंबित करता है। वित्तीय नियंत्रण की दृष्टि से विलंबित लेखों का अधिकतर मूल्य घट जाता है।
5. बजट तथा लेखों की समानता- बजट का एक अन्य सिद्धांत यह है कि इसका रूप लेखों के रूप से मिलता हुआ होना चाहिए। ऐसा करने से बजट की रचना में सुविधा होगी, बजट पर नियंत्रण रखा जा सकेगा और लेखों को भी ठीक प्रकार से रखा जा सकेगा। भारत में प्राक्कलन समिति द्वारा प्रस्तावित सुझावों पर विचार करने के बाद वित्त मंत्री बजट का रूप में निश्चित करता है।

6.4 विकासशील देशों में बजट की भूमिका

विकासशील देशों में बजट की भूमिका या उसके द्वारा संपादित कार्य औद्योगिक की तुलना में राशि विभिन्न काफी भिन्न प्रकृति के होते हैं। विकसित देशों में बजट के द्वारा समग्र मांग के सही स्तर को बनाए रखते हुए व्यापार सक्रिय उतार-चढ़ाव को न्यूनतम किया जा सकता है। विकासशील देशों में बेरोजगारी की प्रकृति चक्रीय नहीं होती है, बल्कि चिरकालिक(Chronic)है जो अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक अवरोध का परिणाम है। इसलिए इसका समाधान समग्र मांग में वृद्धि नहीं है, बल्कि पूंजी निर्माण तथा विनियोग के स्तर में वृद्धि है। इसलिए इन देशों में बजट विकास योजना का एक अभिन्न अंग हो जाता है।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की अपेक्षा बजट नीति (राजकोषीय नीति) की भूमिका अधिक सबल है। इन देशों में वित्तीय बाजार या तो अनुपस्थित है या अच्छी तरह विकसित नहीं है। अर्थव्यवस्था के एक बड़े भाग में मुद्रा का प्रयोग नहीं होता है। अतः मौद्रिक नीति की कार्य क्षमता घट जाती है। दूसरी ओर, सार्वजनिक क्षेत्र को आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जाती है। विकासशील देशों के समक्ष मुद्रास्फीति तथा शेष भुगतान की समस्याएं भी काफी गंभीर हैं। इन सभी मसलों पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि मौद्रिक नीति की तुलना में बजट नीति अधिक कारगर होगी।

6.5 बजट के कार्य

बजट निर्माण प्रशासकीय व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है। बजट निर्माण को यदि प्रशासकीय व्यवस्था का हृदय या प्राण कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बजट के कार्यों या भूमिका कि यदि बात की जाए तो, बजट समन्वय के एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में काम करता है। नकारात्मक रूप में यह आपको भी को कम करने की एक प्रभावशाली युक्ति भी है। ये समस्त उद्देश्य दूसरे अनेक तरीकों से प्राप्त किए जाते हैं, जैसे- अनुमानों का औचित्य, विनियोजित निधियों के प्रयोग का निरीक्षण, व्ययों की दर एवं समय निश्चित करना आदि। बजट बनाने की क्रिया व्यय के प्रति जागरूकता की भावना का संचार करती है। उसे ऐसा करना भी चाहिए, क्योंकि इस भावना को प्रशासन के सभी स्तरों, यहां तक कि प्रवर्तन स्तर(operating level) तक में प्रविष्ट करना चाहिए। सरकार जिस धनराशि को व्यय करना चाहती है उसका पूर्ण औचित्य होना चाहिए। बजट प्रक्रिया इस महत्वपूर्ण कार्य का संपादन करती है। अंत में, बजट निर्माण की प्रक्रिया नीतियों तथा कार्यक्रमों के मूल्यांकन का एक अवसर प्रदान करती है। यह हमें अनावश्यक क्रियाकलापों की सूचना देती है तथा ऐसे कार्यों को समाप्त करने का अवसर प्रदान करती है। इस अर्थ में यह पूर्व-लेखा परीक्षण है। इस प्रकार, बजट निर्माण की प्रक्रिया अनुशासन सिखाती है और अनुशासन की रूपरेखा बनाती है तथा कार्यक्रम और योजना के साथ कंधा मिलाकर चलती है।
बजट के विभिन्न कार्यों को समझने से पहले बजट के महत्व पर भी अधिक दृष्टि डालें तो अनेक विचारकों ने सरकारी प्रशासन के लिए वित्तीय प्रशासन या विद्या जिसे बजट भी कहा जा सकता है कि महत्व को अलग-अलग प्रकार से इंगित किया है- कौटिल्य ने बजट के महत्व को बताते हुए कहा कि "सारे काम वित्त पर निर्भर हैं। अतः सर्वाधिक ध्यान कोषागार पर देना चाहिए।" इसी प्रकार हूवर आयोग ने भी वित्तीय प्रशासन को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि "वित्तीय प्रशासन आधुनिक सरकार का मर्म है।" विलोबी ने भी बजट को प्रशासन का अभिन्न और अनिवार्य औजार बताया है। डिमॉक ने कहा कि "वित्तीय प्रशासन के सभी पक्षों में से बजट निर्माण सबसे ज्यादा नीति संबंधी प्रश्न उठाता है।" लॉयड जॉर्ज ने कहा कि "सरकार वित्त है।" मार्क्स ने बजट के महत्व को बताते हुए कहा कि "प्रशासन में वित्त वातावरण में ऑक्सीजन की तरह ही सर्वव्यापी है।"
इस प्रकार यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि प्रशासन के सारे काम बजट के द्वारा ही संभव होते हैं। बजट प्रशासन में हर प्रकार की प्रगति लाने और जनता को सभी प्रकार की सेवाएं, जो सरकार के द्वारा प्रदान की जानी है, को जनता को उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस पूरे विवरण के अलावा भी यदि बजट के कार्यों को बिंदुओं में प्रदर्शित किया जाए तो वह कुछ इस प्रकार से हैं-

1. **योजना का निर्माण-** बजट का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह होता है कि वह आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए सरकार की एक कार्य-योजना का निर्माण करवाता है। इस कार्य-योजना में सरकार द्वारा अपनी दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन सभी प्रकार की अवधि के लिए उद्देश्य का निर्धारण किया जाता है, प्राप्त किए जाने वाले लक्षणों को सुनिश्चित किया जाता है, तथा संसाधनों की एवं योजनाओं की प्राथमिकता का भी निर्धारण किया जाता है।

2. **उत्तरदायित्व की स्थापना-** बजट विधायिका के प्रति कार्यपालिका की विधि एवं न्यायिक उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। इसके साथ ही प्रशासनिक पद सोपान में बजट वरिष्ठों के प्रति अधीनस्थों के उत्तरदायित्व को भी सुनिश्चित करता है। उत्तरदायित्व बजट निष्पादन तथा योजना क्रियान्वयन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और यही कारण है कि यह सरकारी बजट का एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है।
3. **नियंत्रण-** प्रजातंत्र में नियंत्रण नए आयाम ग्रहण कर लेता है और बहुत सारी कठिन समस्याओं को जन्म देता है। एक पूर्णत: प्रतिनिधि सरकार का मुख्य सरोकार वित्त व्यवस्था के संचालन तथा रूपांकन में उपयुक्त परिवर्तन लाना होता है, जिससे की कार्यपालिका की व्यवस्थापिका जो कीविधायिका, जो कि राजस्व निर्धारित करने वाली तथा वित्त प्रदान करने वाला प्राधिकरण है के प्रति जवाबदेही बनी रहे। विधायी नियंत्रण का अर्थ होता है कि व्यवस्थापिका वास्तविक रूप में ना केवल औपचारिक रूप से वार्षिक बजट द्वारा नीतियों तथा कार्यक्रमों के निर्माण, उनकी समीक्षा, अनुमोदन तथा कार्यान्वयन में सम्मिलित हो सके बल्कि इसका यह भी तात्पर्य होता है कि, व्यवस्थापिका प्रभावी रूप से कार्यपालिका के निष्पादन एवं उपलब्धियों को उसके द्वारा कार्यपालिका के निर्धारित उद्देश्य एवं नीतियों से संबंधित कर सकें। व्यवस्थापिका के सदस्य ना तो सदैव प्रशासन की जटिलताओं से अवगत होते हैं और ना ही वे संक्रिया की विशालता के पैमाने को समझ सकते हैं तथा उसके लिए आवश्यक वित्त की तो कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। यही कारण है कि विधान सभाओं को कार्यपालिका पर नियंत्रण की अपनी वैधानिक शक्ति के प्रयोग हेतु सहायता के लिए विभिन्न युक्तियों का उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बजट प्रशासन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है और बजट के द्वारा ही सरकारी विभागों की विभिन्न गतिविधियों को एक योजना के अधीन लाकर उनको एक ही कृत करने का काम करता है जिसके कारण प्रशासनिक प्रबंधन एवं समन्वय आसान बन जाता है। बजट सामाजिक और आर्थिक नीति के उपकरण के तौर पर भी काम करता है जिसका कार्य- निर्धारण, वितरण और स्थिरीकरण है।

6.6 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि बजट संबंधी प्रक्रिया को प्रशासन का केंद्र बिंदु माना जाता है। बजट कार्यवाही की एक योजना है जो आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए मुख्य कार्यपालिका को प्रतिबिंबित करती है। बजट को एक ऐसे एक प्रलेख के रूप में भी जाना जा सकता है, जिसके माध्यम से मुख्य कार्यकारी, कोष एकत्र करने वाले तथा कोष स्वीकृत करने वाले प्राधिकरण के समक्ष इस बात का पूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है कि विगत पूर्ण हुए वर्ष में उसने तथा उसके अधीनस्थों ने मामलों का किस प्रकार से संचालन किया है और वर्तमान राजकोष की स्थिति क्या है। बजट विगत अनुभव के आधार पर बनाया जाता है तथा इस प्रकार की योजना तथा कार्यक्रम व्यवस्थित तथा संगठित होने चाहिए तथा कार्यान्वयन के लिए तैयार होने चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्रशासकीय इंजन का ईंधन किसे माना गया है?
2. बजट की उत्पत्ति किस शब्द से हुई है?
3. इंग्लैंड में प्रारंभिक बजट के दस्तावेज को किस नाम से पुकारा जाता था?
4. "बजट एक ऐसा परिपत्र है जिसमें सार्वजनिक राजस्व और व्यय की प्रारंभिक रोज योजना प्रस्तुत की जाती है" किसके द्वारा कहा गया?
5. बजट की किन्हीं दो सिद्धांतों का नाम लिखिए।

6.7 सारांश

बजट एक ऐसा प्रलेख है जो सरकार द्वारा संसद के सम्मुख प्रतिवर्ष एक निर्धारित तिथि पर अथवा उसके पश्चात प्रस्तुत किए जाते हैं। इन प्रलेखों में इस बात का वर्णन होता है कि, आने वाले वित्तीय वर्ष में सरकार का अनुमानित व्यय क्या होगा तथा उसी काल के मध्य सरकार की आय क्या होगी। यह आय-व्यय वर्तमान लागू नियमों के अधीन होते हैं और यदि सरकार द्वारा कराधान प्रस्तावों पर विचार किया गया है तो इनके परिणाम स्वरूप बजट का प्राथमिक उद्देश्य व्यापक सूचना को प्रकट करना भी हो सकता है, ताकि सरकार की संपूर्ण वित्तीय स्थिति का परिचय मिल सके और जिसके द्वारा संसद इन वित्तीय कार्यक्रमों के प्रभाव को देश की अर्थव्यवस्था पर पूर्ण तथा समुचित रूप से आँक सके।

6.8 शब्दावली

उत्तरदायित्व- जवाबदेही, नियतकालीन- नियत समय का, कोषागार- खजाना, भंडार, धन दौलत रखने की जगह, मितव्ययता- नियत सीमा के अंतर्गत खर्च करने की प्रक्रिया, विनियोजन- विनियोग करना, द्रव्य- धन

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वित्त को, **2.** फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'बाजते' से, **3.** Doomsday Book या Domesday Book, **4.** रेने स्टार्म, **5.** संतुलित बजट, मिश्रित बजट

6.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा,डॉ. प्रभुदत्त, 2007, प्रशासनिक सिद्धांत, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. अवस्थी, अवस्थी,2014, भारत में लोक प्रशासन,लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
3. कटारिया, सुरेंद्र, 2009, भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, नई दिल्ली।

6.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह,एस. के., 2009, लोक वित्त के सिद्धांत तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बजट के अर्थ एवं परिभाषा पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. बजट के सिद्धांतों पर एक लेख लिखिए।
3. बजट के कार्यों की व्याख्या कीजिए।

इकाई- 7 भारतीय बजट व्यवस्था

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 इकाई का उद्देश्य
7.2 भारत में संघीय वित्त व्यवस्था (बजट व्यवस्था) का विकास
7.3 वित्तीय वर्ष
7.4 आधुनिक सरकार के बजट संबंधी उत्तरदायित्व
7.5 बजट प्रक्रिया
    7.5.1 बजट का निर्माण
        7.5.1.1 बजट के अनुमान तैयार करना
        7.5.1.2 बजट अनुमानों को एकीकृत करना
        7.5.1.3 मंत्री परिषद द्वारा स्वीकृति
    7.5.2 बजट का संसद में अनुमोदन या स्वीकृति
        7.5.2.1 बजट का विधान मंडल के समक्ष प्रस्तुतीकरण
        7.5.2.2 बजट पर सामान्य चर्चा
        7.5.2.3 अनुदान माँगो पर मतदान
        7.5.2.4 मतदान
        7.5.2.5 लेखानुदान
        7.5.2.6 विनियोग विधेयक
        7.5.2.7 वित्त विधेयक
    7.5.3 बजट का क्रियान्वयन
        7.5.3.1 वित्तीय साधनों का एकत्रीकरण
        7.5.3.2 एकत्रित कोषों का संरक्षण तथा वितरण
        7.5.3.3 लेखा संधारण
7.6 निष्कर्ष
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
7.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

स्वतंत्रता के पूर्व विदेशी सरकार को भारत की आर्थिक उन्नति में कोई विशेष रूचि नहीं थी। अतः विदेशी शासन की बजट-नीति का लक्ष्य और क्षेत्र भी सीमित था। आर्थिक प्रभावों की दृष्टि से तत्कालीन बजट नीति तटस्थ थी। विदेशी सरकार की मूल्य नीति यही रही थी कि भारत के आर्थिक हितों की यथासंभव उपेक्षा की जाए और भारत पर भारी मात्रा में ऐसे सरकारी ऋण का भार डाल दिया जाए जो ब्रिटिश साम्राज्य के लिए तय किया गया था।

बजट में जनवादी शैली का नितांत अभाव था। स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार की बजट संबंधी नीति ने एक नई दिशा ग्रहण की। देश की परिस्थितियों के अनुरूप और आर्थिक विकास को गति देने के लिए राज्य सरकार ने प्रभावशाली ढंग से राजकोषीय नीति का संचालन किया। समय-समय पर बजट नीति को नए आयाम प्रदान किए गए। दृष्टिकोण और उद्देश्य बदल जाने से आर्थिक क्षेत्र में आहत तकलीफ नीति का परित्याग कर दिया गया। राष्ट्रीय सरकार ने देश की बिगड़ी हुई आर्थिक दशा को संभालने और भावी आर्थिक विकास के आधार भूमि तैयार करने की दिशा में ठोस आर्थिक नीति पर चलना शुरू कर दिया। संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों में यह व्यक्त कर दिया गया कि राज्य आर्थिक व्यवस्था का संचालन कुछ इस प्रकार से करेगा कि धन का केंद्रीकरण ना हो, उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिए दुरुपयोग ना हो, समुदाय के भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार विकसित हो जिससे कि सामूहिक हित में सर्वोत्तम धन वृद्धि हो, सभी नागरिकों को जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो आदि। संविधान के निर्देशों के अधीन राज्य सरकार ने सुनियोजित आर्थिक विकास पर आधारित समाजवादी धन के समाज और कल्याणकारी राज्य की स्थापना का आदर्श अपनाया। अब बचत नीति इस लक्ष्य को प्राप्त करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन गई है। सन 1951 से ही सरकार की नीति आर्थिक नियोजन के क्रांतिकारी रूप में प्रभावित रही है। समाजवादी समाज और कल्याणकारी राज्य के आदर्श की प्राप्ति के लिए सामाजिक एवं आर्थिक सेवाओं का विकास परियोजनाओं पर अधिकाधिक व्यय किया गया है। संघ सरकार की भांति ही राज्य सरकारों के गैर विकास तथा प्रतिरक्षा तथा नागरिक प्रशासन में भारी वृद्धि हुई है। यद्यपि सरकारी व्यय में वृद्धि का अधिकांश भाग विकास कार्यो पर खर्च किया जाता है। परंतु फिर भी 1991 के बाद देश में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई, उसका देश की अर्थव्यवस्था पर सही एवं अनुकूल प्रभाव हुआ है और वर्तमान में यही नीति जारी है।

प्रस्तुत इकाई में हम भारत में बजट व्यवस्था का संपूर्ण विवरण विस्तार के साथ जानेंगे। साथ ही यह भी जानेंगे कि भारत में बजट की संपूर्ण प्रक्रिया किस प्रकार की होती है।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में संघीय व्यवस्था के विकास को क्रमवार समझ सकेंगे।
- भारत में वित्तीय वर्ष तथा आधुनिक सरकार के बजट संबंधी उत्तरदायित्व को भी विस्तार में जान पाएंगे।
- भारत में बजट व्यवस्था के संदर्भ में बजट की संपूर्ण प्रक्रिया को विस्तार से जान पाएंगे।

7.2 भारत में संघीय वित्त व्यवस्था (बजट व्यवस्था) का विकास

जैसा कि आपने पिछले अध्याय में जाना की आधुनिक प्रशासन व्यवस्था में वित्त रक्त या ईंधन की भूमिका का निर्वहन करता है। आपने लॉयड जॉर्ज के शब्दों को भी पढ़ा जिसमें उन्होंने कहा कि "जिसे शासन कहते हैं, वह वास्तव में वित्त ही है।" अर्थात प्रशासन में वित्त की महत्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। प्रशासन की हर गतिविधि, योजना, कार्यक्रम तथा प्रक्रियाओं के कुशल संचालन के लिए वित्तीय संसाधनों की महत्वपूर्ण भूमिका एवं आवश्यकता होती है। वर्तमान शासन व्यवस्थाओं के समक्ष वित्तीय संसाधनों का प्रबंध तथा कल्याणकारी गतिविधियों का सफल संचालन सबसे जटिल कार्य है। वित्तीय स्रोतों के अभाव में शासकीय कार्य ठप पड़ जाते हैं एवं वित्तीय संसाधनों में वृद्धि करना तो अपने आप में अत्यंत मुश्किल कार्य है। यह बात सच है कि करों के रोपण से सरकार धन्य राजस्व को एकत्रित कर सकती है, परंतु करों में वृद्धि करना आम जनता में रोष उत्पन्न करता है।

संघात्मक शासन व्यवस्था होने के कारण भारत में केंद्र तथा राज्य दोनों स्तरों पर वित्तीय प्रशासन विद्यमान है। केंद्रीय स्तर पर संसद तथा राज्यों में राज्य विधानमंडल बजट को स्वीकृति प्रदान करते हैं, जबकि बजट का निर्माण तथा नियंत्रण का कार्य केंद्रीय स्तर पर वित्त मंत्रालय तथा राज्यों में राज्य वित्त विभाग के द्वारा किया जाता है।

वर्तमान में भारत में बजट से संबंधित जो व्यवस्था पाई जाती है, उसका विकास होने में बहुत लंबा समय लगा। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में जिस मौर्यकालीन प्रशासन का वर्णन किया है वह एक श्रेष्ठ बजट व्यवस्था का संदर्भ माना जाता है। दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य के शासकों की वित्तीय व्यवस्था भी मौर्य व्यवस्था से ज्यादा भिन्न नहीं थी। स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी सरकार को भारत की आर्थिक उन्नति में कोई विशेष रूचि नहीं थी। अतः उस समय शासन की बजट नीति का लक्ष्य और क्षेत्र भी सीमित था। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से शनै शनै वास्तव में भारत में वित्तीय व्यवस्था का परिवर्तन काल को देखें 1765 माना जाता है। इस में परिवर्तन लाने का मुख्य ईस्ट इंडिया कंपनी को है। 1765 में ही ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल की दीवानी मिली थी। उस समय आय का मुख्य स्रोत मालगुजारी था। इसके अतिरिक्त थोड़ी-बहुत नमक व कस्टम से भी हो जाती थी। आय में वृद्धि के उद्देश्य से ही सर्वप्रथम 1793 में लॉर्ड कॉर्नवालिस ने बंगाल तथा बिहार के कुछ भागों में स्थाई बंदोबस्त किया था, परंतु इन प्रश्नों से भी कंपनी की आय में वृद्धि नहीं हो सकी थी। कंपनी बार-बार ब्रिटिश संसद से ऋणों की मांग कर रही थी, और कंपनी के लोग मालामाल होकर भारत से इंग्लैंड जाने लगे थे। कुल मिलाकर कंपनी की दशा बड़ी सोचनीय हो चुकी थी। वह अपनी व्यवस्था अपने साधनों से नहीं कर पा रही थी। ब्रिटिश सरकार कंपनी की स्थिति का बारीकी से अध्ययन कर रही थी तथा कंपनी को ऋण देने के साथ-साथ उसके वित्तीय अधिकार में भी हस्तक्षेप करने लगी थी। इसी उद्देश्य से 'रेगुलेटिंग एक्ट' पास किया गया था। परंतु भारत के वित्तीय इतिहास में महत्वपूर्ण घटना 1833 में घटित हुई, जब 'चार्टर एक्ट' पास हुआ था। उस समय कंपनी के खर्चों में वृद्धि के दो प्रमुख कारण थे-

- **धन एकत्र करने की लालसा-** कंपनी में धीरे-धीरे स्थाई लोक प्रवेश पाने लगे थे, जिनका मुख्य उद्देश्य धन कमाना था। कर्मचारी मनमाने ढंग से भ्रष्टाचार को पनपाने लगे थे। प्रशासनिक खर्च में वृद्धि होने लगी, परंतु आय के साधन उतने नहीं बढ़ाएं जा सके और ना ही फिजूलखर्ची को रोका जा सका।
- **युद्ध-** सन् 1833 से पूर्व ईस्ट इंडिया कंपनी को देश में अनेक बार युद्ध लड़ने पड़े तथा उन्होंने अनेक राजाओं तथा महाराजा को युद्ध लड़ने के लिए सहायता दी।

इन सभी घटनाओं के कारण ब्रिटिश संसद को कंपनी की वित्तीय व्यवस्था पर धीरे-धीरे नियंत्रण करना पड़ा और 1833 'चार्टर अधिनियम' के पारित हो जाने से भारतीय वित्त व्यवस्था पर पूर्ण नियंत्रण लगा दिया गया। इस चार्टर अधिनियम के पारित हो जाने के बाद संपूर्ण आय और व्यय तथा ऋण संबंधी कार्य सरकार के नाम से होने लगे और ऋणों को भी भारत सरकार के नाम पर हस्तांतरित कर दिया गया। प्रांतीय सरकारें बिना गवर्नर जनरल की आज्ञा के नातो कर लगा सकती थी और न ही आय प्राप्त कर सकते थे। अर्थात उस समय जिस केंद्रीय वित्त व्यवस्था को अपनाया गया था वह वित्त व्यवस्था अत्यधिक नियंत्रित भी थी और उसमें अनेक दोष भी विद्यमान् थे। इसके पश्चात 1858 में भारतीय शासन ईस्ट इंडिया कम्पनी से ब्रिटिश सरकार के हाथों में आ गया। इस समय फिर से पुरानी पद्धति को अपनाया जाने लगा। सर हेनरी मेन, सर मैंसफ़ील्ड, जो काउंसिल के सदस्य थे, और उस समय के वित्त मंत्री, श्री जेम्स विलसन का विचार था कि भारत में संघीय वित्त व्यवस्था अपनायी जानी चाहिए। इस व्यवस्था में यह सोचा जाने लगा कि इसे सभी प्रांत अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुसार आय प्राप्त कर सकेंगे तथा व्यय भी करते रहेंगे। साथ ही इस व्यवस्था से प्रान्तों में मितव्ययता भी बनी रहेगी।परंतु उस समय मद्रास तथा मुंबई के गवर्नरों ने इस योजना का विरोध किया और कहा कि केंद्र तथा प्रांतों के बीच आय तथा व्यय की

मतों का विभाजन करना आसान नहीं है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि विकेंद्रीकरण से केंद्र प्रांतों पर निर्भर हो जाएगा। अतएव 1870 तक विकेंद्रित वित्त व्यवस्था का प्रारंभ नहीं हो सका। वित्त मंत्री विल्सनन, संघीय वित्त व्यवस्था को लागू करने के अनेक प्रयास किए परंतु वे सफल ना हो सके। इसके पश्चात लंबे समय तक इस दिशा में अनेक प्रयास किए गए जिसमें मेयो योजना, लॉर्ड लिटन (Lord Lytton) की योजना, लॉर्ड रिपन की योजना, 1919 और 1935 के सुधार अधिनियम आदि के द्वारा इस दिशा में कई प्रयास किए गए परंतु स्थान विफल रहे। 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ और साथ ही पाकिस्तान का भी जन्म हुआ। ऐसी दशा में आयकर के साधन में नवीन योजना की आवश्यकता पड़ी। फलतः 17 मार्च,1948 को एक नवीन योजना की घोषणा की गई, जिसमें यह सुझाव दिया गया कि आयकर का 1प्रतिशत भाग मुख्य कमिश्नर राज्यों को दिया जाए। निमिया योजना के अनुसार राज्यों को जूनिर्यात कर का 62.5 प्रतिशत भाग दिया जाता था जिसे घटाकर नवीन योजना ने 20 प्रतिशत कर दिया। और साथ ही इस नई योजना के अनुसार असम तथा उड़ीसा कोई आर्थिक सहायता देने का सुझाव दिया गया था। असम और उड़ीसा के लिए सहायता की राशि क्रमशः 18.7 लाख तथा 25 लाख रुपया और 1948-49 में क्रमशः 30 लाख और 40 लाख हो गया थी। इसके बाद प्रांतीय आयकर के भाग को निर्धारित करने के लिए श्री एन.आर. सरकार की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने प्रांतों के हित में अपने सुझाव दिए, परंतु सरकार ने उन सुझावों को स्वीकार नहीं किया। सरकार समिति के बाद भारत सरकार ने 1950 में देशमुख समिति का गठन किया था। उसके द्वारा दिए गए सुझावों को 2 वर्ष के लिए मान्य ठहराया गया, क्योंकि 2 वर्ष बाद अर्थात 1952 में भारत में वित्त आयोग की स्थापना होनी थी। देशमुख ने 1950 में सरकार के समक्ष कुछ सुझाव रखे जिसमें उन्होंने सुझाया की जूट केंद्र की आय का स्रोत होना चाहिए, तथा आयकर की कुल राशि का 50 प्रतिशत भाग प्रांतों को भी देना चाहिए। इन सभी सुझावों की प्रांतों के द्वारा कटु आलोचना की जाने लगी, क्योंकि जो सुझाव दिए गए प्रांतों के व्यापक हित के अनुकूल नहीं थे। इसके बाद देश की 600 रियासतों का विलय किया गया, जिससे देश में अनेक प्रकार की वित्तीय उथल-पुथल मच गई। वित्तीय प्रशासन को फिर से स्थापित करना था, क्योंकि अब प्राचीन परिस्थितियां नहीं रह गई थी। भारतीय संविधान के अनुसार एक वित्त आयोग की स्थापना करनी थी। सन 1948 में श्री कृष्णमाचारी की अध्यक्षता में एक 'वित्तीय जांच समिति' का जिस प्रशासनिक यंत्र नियंत्रण तथा सहयोग के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। इन सिद्धांतों में कहा गया कि केंद्र अपने प्रशासनिक यंत्र का उपयोग इन रियासतों में प्रांतों की ही भांति करेगा तथा इन रियासतों में नियंत्रण केवल उन्हीं विषयों पर होगा जिन विषयों पर यह प्रांत में था एवं केंद्र और रियासतें विभिन्न प्रांतों की भांति ही परस्पर में सहयोग करेंगी।

26 जनवरी, 1950 से भारतीय गणराज्य की स्थापना हुई। इसी दिन देश में नया संविधान भी लागू हुआ तथा केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंध निर्धारित किए गए। इसमें यह व्यवस्था कर दी गई कि भारत में राष्ट्रपति की आज्ञा से प्रत्येक 5 वर्ष के बाद एक वित्त आयोग की स्थापना की जाएगी, जिसका संबंध पंचवर्षीय योजना से था तथा जो राज्यों तथा केंद्र के बीच समय-समय पर वित्तीय संबंधों को स्थापित करेगा। भारत के संविधान में बजट शब्द कहीं भी उल्लेखित नहीं है बल्कि संविधान के अनुच्छेद-112 में यह कहा गया है कि 'राष्ट्रपति, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में संसद के दोनों सदनों के समक्ष एक वार्षिक वित्तीय विवरण रखवाएगा।' संविधान संघीय है, अतः राज्यों के अपने प्रथक प्रथक बजट होते हैं। रेलवे बजट को 1921 में सामान्य बजट से पृथक कर दिया गया था। इस व्यवस्था का पहला लाभ यह था कि रेलवे नीति में व्यापक दृष्टिकोण को अपनाने की सुविधा प्राप्त हो गई है। दूसरे, रेलवे विभाग द्वारा देश के सामान में राजस्व को एक निश्चित वार्षिक योगदान दिया जाता है, और शेष आय को देश में रेलवे के विकास के लिए ही काम में लाया जाता है। अब रेलवे बजट को भी सामान्य बजट में ही शामिल कर दिया गया है।

7.3 वित्तीय वर्ष

जैसा कि आपने पिछले अध्याय में भी जाना होगा कि 1860 में भारत में प्रथम आधुनिक बजट प्रस्तुत किया गया था। उस समय सरकार द्वारा अपनाया गया बजट 1 मई से 30 अप्रैल तक के लिए ही प्रभावी था। इसके बाद 1866 के प्रारंभिक काल में, वित्तीय वर्ष को परिवर्तित करके अप्रैल- मार्च कर दिया गया था। ऐसा इसलिए किया गया था क्योंकि यह इंग्लैंड में प्रचलित प्रथा के अनुरूप था। इस संदर्भ में प्रशासनिक सुधार समिति ने अपने वित्त एवं लेखा प्रतिवेदन में एक बार कहा था कि, ''प्रथम अप्रैल से शुरू होने वाला वित्त वर्ष हमारे राष्ट्र की नीतियों एवं आवश्यकताओं पर आधारित नहीं है। हमारी अर्थव्यवस्था अभी भी मुख्य रूप से कृषि आधारित है तथा वर्षा ऋतु पर ही निर्भर करती है।'' अतः इस संदर्भ में ऐसा कहा गया कि एक वास्तविक वित्तीय वर्ष राजस्व का सही मूल्यांकन करने के योग्य होना चाहिए तथा व्यय के समान विस्तार को सुविधाजनक बनाने वाला होना चाहिए। शताब्दियों तक, भारत के लोगों में यह रिवाज रहा कि वह अपने वित्तीय वर्ष का आरंभ दिवाली के दिन से करते थे। इस प्रथा की जड़ें उनकी जीवनशैली से जुड़ी हुई थी। व्यापारिक वर्ग तथा समाज के अन्य वर्ग दीपावली के दिन ही शुरुआत इस विचार से करते हैं कि उन्होंने गतिविधि की एक अवधि को पूरा कर लिया है तथा एक नई अवधि का शुभारंभ किया है। एक वित्तीय वर्ष को आवश्यक रूप से निम्नलिखित कार्य को निष्पादित करने में सहायता करनी चाहिए-

- राजस्व का सही अनुमान लगाना;
- व्यय के सही अनुमान लगाना;
- परियोजनाओं के संचालन को सुविधापूर्ण बनाना;
- प्रशासकों तथा व्यवस्थापक व्यवस्थापकों के लिए बजट सुविधाजनक भी होना चाहिए।

वित्तीय वर्ष क्या होना चाहिए इसका विश्लेषण करने वाले विभिन्न विशेष ज्ञों ने विभिन्न तारीखों के सुझाव दिए। प्रथम जुलाई, प्रथम, प्रथम नवंबर या प्रथम जनवरी के सुझाव दिए गए। इन सब तथ्यों के अपने-अपने कुछ लाभ हैं तो कुछ नुकसान भी हैं। कोई भी प्रस्ताव परस्पर विरोधी मापदंडों को पूरा नहीं कर सकता। इसीलिए यह तर्क दिया जाता है कि लाभ का संतुलन वर्तमान व्यवस्था को ऐसे ही बनाए रखने में। इसमें कोई भी बदलाव प्रशासनिक समस्याएं उत्पन्न कर देगा।

7.4 आधुनिक सरकार के बजट संबंधी उत्तरदायित्व

जैसा कि आपने भारत में बजट व्यवस्था के विकास से संबंधित वर्णन में जाना होगा स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत, वित्तीय प्रशासन के उद्देश्य, उद्देश्यों नीतिगत ढांचे तथा पर्यावरण में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। यद्यपि भारत सरकार अधिनियम 1935 के मूलभूत लक्षणों को अन्य क्षेत्रों के अलावा वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में भी बनाए रखा गया, फिर भी इन साधनों एवं राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के मध्य कोई असंगति नहीं थी। इन साधनों को परिवर्तित उद्देश्य के अनुसार बदला जा सकता था और ऐसा किया भी गया। जैसा कि आपने जाना की, बजट शब्द का भारतीय संविधान में कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। भारत में बजट प्रक्रिया संविधान की अनुच्छेद- 112 से 117 तक में दिए गए प्रावधानों का पालन करती है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद-112 (1) ''वार्षिक वित्तीय विवरण'' तैयार करने का उल्लेख करता है, जो आगामी वित्तीय वर्ष के लिए, ''भारत सरकार के अनुमानित आय तथा व्यय का विवरण'' है। इस विवरण में तीन प्रकार के विवरण शामिल होते हैं- राजस्व संबंधी विवरण, व्यय संबंधी विवरण तथा एक पूर्ण विवरण।

पहले सभी मंत्रालयों के लिए अनुदान की मांगें सामूहिक रूप में संसद के समक्ष प्रस्तुत की जाती थी। 1959- 60 से प्रत्येक मंत्रालय के लिए पृथक पृथक रूप में यह मांगे प्रस्तुत की जाने लगी है।

प्रत्येक मांग के 4 भाग होते हैं। प्रथम भाग में जिस सेवा के लिए वह मांग की जाती है, उस सेवा को और समग्र धन राशि के योग को प्रकट किया जाता है। दूसरे भाग में जय के विभिन्न आंकड़ों के सारांश दिए जाते हैं, जो संबंधित मंत्रालय के लिए भी नियोजित प्रमुख इकाइयों के क्रमवार व्यक्त व्यक्त करते हैं। उन मंत्रालयों को भी व्यक्त किया जाता है, जिनकी ओर से व्ययों की गणना की जाती है। तीसरे भाग में सामान्य रूप से व्यक्त धनराशि के विवरण दिए जाते हैं। चौथे भाग में मांग के नीचे एक पद-टिप्पणी मात्र होती है। भाग एक, दो एवं तीन में दिखाई गई धनराशि या कुल व्यय से संबंधित होती हैं, अतः अन्य सरकारों की तथा तदर्थ विधियों की बकाया वसूली तथा अंतर विभागीय समायोजन संबंधी बकाया मांगे मुख्य मांग में नहीं दर्शाई जाती है। संसद की सूचना हेतु इन्हें चौथे भाग में प्रदर्शित किया जाता है। किंतु व्यय कम होने की स्थिति में यह बकाया वसूली लेखों में समायोजित कर दी जाती है। संसद की स्वीकृति की दृष्टि से स्थूल धनराशि आवश्यक होती है। इन राशियों को संसद के अनुमोदन से संचित निधि के व्यय में सर्व प्रथम स्थान दिया जाता है।

सरकारी लेखे भी चार मुख्य भागों में विभाजित किए जाते हैं- राजस्व, पूंजी, ऋण तथा जमा राशि।

व्यय से संबंधित सभी अनुमानों को भी दो भागों में विभाजित किया जाता है, पहला भाग स्थायी व्ययों तथा दूसरा भाग नए व्ययों को प्रकट करता है। वित्तीय वर्ष 1962-63 से बजट तथा लेकर में कई परिवर्तन किए गए हैं। मुख्य परिवर्तन कुछ इस प्रकार से हैं-

संवैधानिक दृष्टि से राजस्व की कोई प्रत्यक्ष मांग नहीं की जा सकती है। अतः 'राजस्व पर प्रत्यक्ष मांग' वाली अनुच्छेद- की नामावली को बदल कर, 'करों, शुल्कों तथा अन्य मुख्य राजस्व संग्रह' कर दिया गया है। आय पक्ष की समांतर अनुच्छेद- की नामावली 'राजस्व के प्रधान शीर्ष' को भी बदल दिया गया है।

राज्यों के अंश का संघीय उत्पादन शुल्क में से भुगतान संघ से राज्यों को राजस्व का स्थानांतरण मात्र है, अतः यह भुगतान तथा प्राप्तियां, केंद्रीय सरकार के लेखों में 'II-Union Excise Duties' शीर्ष के अंतर्गत और 'II-Union Excise Duties' शीर्ष के अंतर्गत राज्यों के लेखों को अंकित किए जाने के तन पर 'L-Constitutions and Miscellaneous Adjustments' में प्रथक प्रथक मुख्य शीर्षों के अंतर्गत अंकित की गई हैं। शुल्क, सीमा कर, मनोरंजन कर, वाहन कर इत्यादि; जिन्हें केंद्रीय तथा राज्य सरकार एकत्र करती है और जिनकी आय स्थानीय निकायों को दी जाती है, संघीय उत्पादन शुल्क में राज्यों के हिस्से की भांति केंद्र तथा राज्य सरकार दोनों ही के लेखों में एक नए मुख्य शीर्ष हैं 'L-Constitutions and Miscellaneous Adjustments' के अंतर्गत समायोजित करने की व्यवस्था की गई है।

संघ की ओर से राज्यों के प्रति सभी और संवैधानिक अनुदान, जो अंतिम रूप में वे नहीं माने जाते बल्कि केंद्रों से राज्यों के लिए स्रोतों का केवल स्थानांतरण मात्र होते हैं, राज्यों के लेखों में मुख्य सी 'XLIX-Grants-in-aid from Central Government' के अंतर्गत समायोजित किए जाते हैं। केंद्रीय लेखों में मुख्य शीर्ष '61-Grants-in -aid to State Government' के अंतर्गत समायोजित किए जाते हैं।

राज्यों को दिए जाने वाले सभी अनुदानओं का प्रावधान वित्त मंत्रालय के नियंत्रण में 1962-63 की एक संयुक्त मांग में सम्मिलित किया गया है। नई मांगों से संबंधित अनुदान संबंधी विषयों के अनुसार प्रथक उप शीर्षों में दिखाई जाते हैं और उनके अर्थ संबंधी प्रशासकीय मंत्रालयों के खाते में रखे जाते हैं। इसी प्रकार राज्य पूंजी के अंतर्गत रखे जा सकने वाले अनुदान ओं के लिए एक पृथक संयुक्त मांग 1962-63 में प्रस्तुत की गई है।

व्यय का एक बड़ा भाग जो 'Civil Administration' शीर्ष के अंतर्गत अंकित किया जाता है, नागरिक प्रशासन पर ही व्यय नहीं किया जाता बल्कि, उसमें सामाजिक तथा विकास सेवाओं का भी प्रतिनिधित्व होता है। इस कारण इन दो प्रवर्गों के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा खींचने के लिए नागरिक प्रशासन दो प्रथम शाखा- प्रशासकीय

सेवाएं, तथा सामाजिक एवं विकास संबंधित सेवाएं, में विभक्त कर दिया गया है। सामुदायिक विकास परियोजनाओं, राष्ट्रीय प्रचार सेवा तथा स्थानीय विकास कार्य पर व्यय, जो अब तक 'Extraordinary items' शाखा के अंतर्गत अंकित किए जाते थे, अब नई शाखा- 'Social and Development Services' के अंतर्गत स्थानांतरित कर दिए गए हैं।

श्रम तथा रोजगार संबंधी संपूर्ण व्यय 1962-63 के पश्चात एक पृथक नवीन मुख्य तीर्थ '47-Labour and Employment के अंतर्गत अंकित किया जाता है। अब तक यह व्यय '47-Miscellaneous Departments' तथा '57-Miscellaneous' खाते में अंकित किया जाता था।

7.5 बजट प्रक्रिया

यह उल्लेखनीय है कि संपूर्ण देश के लिए एक ही बजट नहीं होता। संघीय संविधान होने के कारण राज्यों के अपने प्रथक प्रथक बजट भी होते हैं। वित्त मंत्रालय, जो सरकार के वित्तीय मामलों की देखभाल करता है, बजट की रचना के लिए प्रधान रूप से उत्तरदाई होता है। वित्त मंत्री राष्ट्र के कोश का संरक्षक होता है। उसका यह सर्वोपरि कर्तव्य होता है कि वह राष्ट्रीय वित्त का उपयोग समझदारी तथा कुशलता से करें। वित्त मंत्रालय राज्य के लिए आवश्यक राजस्व एकत्र करने के लिए उत्तरदाई होता है; और धनराशि निश्चित करने तथा एक सीमा तक व्ययों का स्वरूप निश्चित करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। संघीय सरकार के वित्तीय नियमों के अंतर्गत वित्त मंत्रालय को वित्तीय अधिकार प्रदान किए गए हैं। इस व्यवस्था के संबंध में भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 77(3) में उल्लेख है। यह अनुच्छेद संघ के राष्ट्रपति को संघीय सरकार के संचालन संबंधी नियम बनाने का अधिकार प्रदान करता है। वित्त मंत्रालय वार्षिक वित्तीय विवरण(बजट) तैयार करने, संसद में उसका मार्गदर्शन करने, विभिन्न विभागों द्वारा इसके क्रियान्वयन के निरीक्षण, राजस्व एकत्र करने, प्रशासकीय विभागों को वित्तीय मंत्रणा देने तथा वित्तीय नियंत्रण के लिए उत्तरदाई होता है। इन अधिकारों का उपयोग वित्त मंत्रालय ने सदैव नहीं किया। अन्य मंत्रालयों तथा विभागों पर इसका नियंत्रण धीरे-धीरे ही बड़ा है। प्रारंभ में गवर्नर जनरल की परिषद के अन्य सदस्यों ने विभागीय स्वायत्तता तथा प्रतिष्ठा के नाम पर इसका विरोध किया था। सरकार पर क्रमशः लोक नियंत्रण बढ़ने और शासन के संसदीय स्वरूप के विकास में वित्त मंत्रालय की स्थिति को शक्तिशाली बना दिया है। 1919 के मोंटफ़ोर्ड सुधारों (Montford Reforms of 1919) ने वित्त विभाग तथा अन्य विभागों पर वित्तीय मामलों के नियंत्रण की व्यवस्था की थी। विधानमंडल की लोक सेवा समिति की रचना तथा विभागों के लेखकों की लेखा परीक्षा और परिनिरीक्षण करने के लिए लेखा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति के फल स्वरुप वित्त विभाग या वित्त मंत्रालय की प्रतिष्ठा तथा शक्ति में बहुत वृद्धि हुई है।

भारत में प्रत्येक आगामी वित्तीय वर्ष के लिए (वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल को आरंभ और 31 मार्च को समाप्त होता है) बजट अनुमान की तैयारी में शासन के चार विभिन्न अंग- वित्त मंत्रालय, प्रशासन मंत्रालय, योजना विभाग(नीति आयोग) और लेखा- नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक कार्य करते हैं। सामान्यतः बजट प्रक्रिया के तीन भाग माने जाते हैं- प्रथम, बजट का निर्माण; वित्तीय, बजट की स्वीकृति या संसद में अनुमोदन तथा तृतीय, बजट का क्रियान्वयन। इन तीनों भागों में भी कुछ उपकरण सम्मिलित होते हैं। भारत में बजट व्यवस्था के संबंध में बजट की संपूर्ण प्रक्रिया को हम इन तीन चरणों में विस्तृत रूप में जानने का प्रयास करेंगे।

7.5.1 बजट का निर्माण

बजट की रचना का सारा उत्तरदायित्व वित्त मंत्रालय पर होता है, परंतु प्रशासकीय आवश्यकताओं का व्यापक ज्ञान संबंधित प्रशासकीय मंत्रालयों को ही होता है। बजट योजना की प्राथमिकताओं को स्पष्ट करने के लिए वित्त मंत्रालय को योजना से संबंधित आयोग से निरंतर निकट संपर्क बनाए रखना पड़ता है। इसमें लेखा नियंत्रक तथा

महालेखा परीक्षक का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। वही अनुमानों को तैयार करने में आवश्यक लेखन संबंधी सूचनाएं उपलब्ध कराता है।

भारत में बजट निर्माण की प्रक्रिया बहुत विस्तृत तथा गहन है, जिसमें सरकार के प्रत्येक कार्यालय का भी अपना एक विशेष योगदान होता। बजट निर्माण की पूरी प्रक्रिया के तीन चरण होते हैं- बजट के अनुमान तैयार करना, बजट अनुमानों को एकीकृत करना, मंत्री परिषद द्वारा स्वीकृति।

7.5.1.1 बजट के अनुमान तैयार करना

जैसा कि आपको अब तक की विवरण से स्पष्ट रूप से ज्ञात हो चुका होगा कि भारत में वित्तीय वर्ष का प्रारंभ 1 अप्रैल से होता है। भारत में वित्तीय वर्ष की शुरुआत के लगभग 7-8 माह पूर्व ही बजट अनुमानों की तैयारी का कार्य प्रारंभ हो जाता है। इस कार्य का श्रीगणेश वित्त मंत्रालय के द्वारा किया जाता है। वित्त मंत्रालय सभी मंत्रालयों तथा विभागों को आगामी वर्ष का बजट तैयार करने हेतु एक प्रपत्र भेजता है। नियम यह होता है कि प्रत्येक विभाग जो भी धन व्यय करता है उसे ही अपनी आवश्यकता अनुसार आगामी वर्ष के अनुमान भी तैयार करने चाहिए। 'प्रपत्र के ढांचे' वित्त मंत्रालय के द्वारा प्रदान किए जाते हैं, जिसमें अनुमान तथा अन्य आवश्यक सूचना संबंधित विभागों को भरनी पड़ती है। इस कार्य हेतु मंत्रालय के कार्यकारी विभागों के विभागाध्यक्ष अपने अधीनस्थ कार्यालयों के कार्यालय अध्यक्षों के पास सितंबर माह में बजट के अनुमान तैयार करने हेतु इस निर्धारित प्रपत्र को विश्व आते हैं। प्रत्येक कार्यालय की लेखा शाखा बजट मैनुअल में दिए गए नियमों के अनुसार अपनी अपनी इकाई के आय-व्यय आंकड़े एकत्र कर प्रपत्र में प्रस्तुत करती है। यह प्रपत्र मुख्यतः योजना तथा गैर-योजना मदों के लिए प्रथक प्रथक रूप से तैयार किए जाते हैं। इन परिपत्रों में लेखा शीर्षक, कार्मिकों के नाम, पद, वित्त, वेतन वृद्धि, संभावित आगामी व्यय, अन्य भत्तों तथा कार्यालयी व्यय आदि का वर्णन होता है। दूसरे प्रकार के प्रपत्र में कोषागार, मासिक राजस्व या नकद प्राप्ति का विवरण तथा साथ ही आय के मुख्य अनुमानों का वर्णन भी होता है। इसके पश्चात धन व्यय करने वाले अधिकारी अपने द्वारा तैयार किए हुए अनुमानों को विभाग के प्रधान के पास भेजते हैं। विभागाध्यक्ष अपनी सभी कार्यों या कार्यालयों के बजट अनुमानों को सामूहिक रूप से संकलित करते हैं और फिर अपने प्रशासनिक मंत्रालयों को प्रस्तुत करते हैं। इसके बाद इन अनुमानों को वित्त मंत्रालय के पास भेजा जाता है। विभागाध्यक्ष इन आंकड़ों को अग्र लिखित प्रारूपों में प्रस्तुत करते हैं- विनियोग के शीर्षक तथा उप-शीर्षक, गत वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय,वर्तमान वर्ष के स्वीकृत अनुमान, वर्तमान वर्ष के संशोधित अनुमान, आगामी वर्ष के बजट अनुमान तथा घटत-बढ़त का विवरण।

इस प्रकार प्रत्येक बजट में गत वर्ष, चालू वर्ष तथा आगामी वर्ष के आय तथा व्यय एवं लेन-देन का संपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

7.5.1.2 बजट अनुमानों को एकीकृत करना

सभी प्रशासनिक विभागों द्वारा भेजे गए अनुमानों को प्राप्त करने के उपरांत वित्त मंत्रालय इन अनुमानों का सूक्ष्मता से परीक्षण करता है। इस संबंध में महालेखाकार कार्यालय से भी सहायता प्राप्त की जाती है। नवंबर माह में वित्त मंत्रालय प्रत्येक विभाग के अनुमानों के परीक्षण के समय मुख्यतः मितव्ययता, सरकार की नीति, नियमों तथा कार्य कुशलता आदि बातों को ध्यान में रखता है। इस उपकरण के अंतर्गत वित्त मंत्रालय द्वारा सभी विभागों के बजट अनुमानों को सामान्य तहत तीन भागों में विभक्त कर दिया जाता है-

1. **स्थाई प्रभार (व्यय)-** इस भाग के अंतर्गत संस्थान के वे सारे व्यय सम्मिलित किए जाते हैं जो स्थाई होते हैं, जैसे- वेतन, भत्ते, कार्यालय व्यय तथा संस्थापना इत्यादि। यह सभी ऐसे भी होते हैं जिनको विभाग के द्वारा स्थाई रूप से व्यय किया जाना होता है। संपूर्ण बजट का लगभग आधा हिस्सा सरकारी तंत्र के

रखरखाव तथा वेतन भत्तों पर ही होता है। सरकार के स्थाई व्यय को गैर-आयोजना व्यय कहा जाता है। इस गैर-आयोजना व्यय को दो भागों में बांटा जा सकता है- राजस्व व्यय तथा पूंजी व्यय।

राजस्व व्यय के अंतर्गत ब्याज का भुगतान, प्रतिरक्षा, राजस्व व्यय, बड़ी सब्सिडीयां, किसानों को ऋण राहत, डाक घटा, पुलिस पेंशन और अन्य सामान्य सेवाएं, सामाजिक सेवाएं, आर्थिक सेवाएं, राज राज्यों और संघ प्रदेश और विदेशी सरकारों को अनुदान देना भी शामिल है।

पूंजी व्यय में प्रतिरक्षा पूंजी व्यय, सार्वजनिक उद्यमों को ऋण, राज्यों, संघीय प्रदेशों और विदेशी सरकारों को ऋण आदि सभी सम्मिलित है।

2. **प्रवर्तित कार्यक्रम या योजनाएं-** इस भाग के अंतर्गत निरंतर वर्ष-दर-वर्ष चलने वाली योजनाओं का व्यय सम्मिलित होता है। वित्त मंत्रालय का व्यय विभाग प्रचलित योजनाओं की प्रगति, कुशलता तथा उपादेयता का समय समय पर मूल्यांकन करता है साथ ही यह भी देखता है कि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हो रही है अथवा नहीं।
3. **नए कार्यक्रम-** इस भाग में विभागों या सरकार के द्वारा प्रस्तावित नए कार्यक्रमों के अनुमानित व्यय का आंकलन किया जाता है। वित्त मंत्रालय का आर्थिक मामलों का विभाग, योजना से संबंधित आयोग तथा अन्य विशेषज्ञ अभी कारणों से परामर्श लेता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि नए कार्यक्रम या प्रस्ताव बजट या व्यय के बोझ को बढ़ाते हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि नए कार्यक्रमों से संबंधित खर्चों के अनुमानों का सूक्ष्म से सूक्ष्म परीक्षण किया जाए। इस क्रम में वित्त मंत्रालय संबंधित प्रशासनिक विभाग से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछता है। इन प्रश्नों के माध्यम से वित्त मंत्रालय यह जानने का प्रयास करता है कि क्या प्रस्तावित वह वास्तव में आवश्यक है? इस प्रकार के खर्चों के संबंध में अन्यत्र कोई व्यवस्था है या नहीं? इस व्यय के परिणाम स्वरूप किस-किस को धन का अभाव तुरंत अनुभव होगा? आदि।

व्यावहारिक तौर पर नए कार्यक्रम या योजना व्यय मुख्यतः निर्माण कार्य, कार्यों मशीनों तथा उपकरणों की खरीद, तथा कार्मिकों की संख्या में वृद्धि से संबंधित ही होते हैं। अतः वित्त मंत्रालय स्थाई प्रभार के बजाय इन नए प्रस्तावित व्यय पर अधिक छानबीन करना आवश्यक समझता है।

सभी विभागों के व्यय अनुमानों को एकीकृत करने के पश्चात वित्त मंत्रालय आय के स्रोतों या राजस्व प्राप्ति के संबंध में भी अपना मंथन प्रारंभ कर देता है। नए करों का प्रस्ताव तथा प्रचलित करों में वृद्धि या कमी इत्यादि का निर्णय मुख्यमंत्री परिषद के द्वारा ही किया जाता है। इसका विस्तृत ब्यौरा वित्त मंत्रालय तैयार करता है। वित्त मंत्री बजट को अंतिम रूप देने से पहले औद्योगिक, व्यापारिक तथा अन्य वित्तीय संगठनों से भी विचार-विमर्श करता है। बजट निर्माण की प्रक्रिया प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में बने एक शीर्ष समूह के द्वारा नियंत्रित की जाती है । इस समूह में वित्त मंत्री, योजना से संबंधित आयोग के उपाध्यक्ष, वित्त मंत्रालय के अधिकारी तथा आर्थिक क्षेत्र के अनेक विशेषज्ञ भी सम्मिलित होते हैं। यह समूह वित्त मंत्रालय के सलाहकारों तथा सचिवों से निरंतर संपर्क बनाए रखता है। वित्त मंत्रालय का व्यय विभाग तथा आर्थिक कार्य विभाग बजट के प्रस्तावों एवं योजनाओं पर सुझाव देते हैं जबकि दूसरी तरफ वित्त मंत्रालय की कर अनुसंधान इकाई राजस्व एकत्र के सुझाव देती है। बजट निर्माण के सारे कार्य एक संयुक्त सचिव के द्वारा समन्वित किए जाते हैं।

7.5.1.3 मंत्री परिषद द्वारा स्वीकृति

वित्त मंत्रालय द्वारा तैयार बजट अनुमानों के प्रत्येक भाग एवं मद पर मंत्रिपरिषद में विस्तृत चर्चा होती है। वित्त मंत्री प्रत्येक बिंदु पर अपनी टिप्पणी रखता है। सत्तारूढ़ राजनीतिक दल अपनी नीतियों, कार्यक्रमों, पंचवर्षीय योजना तथा जनसमस्याओं के अनुरूप बजट के आय-व्यय अनुमानों तथा नए कार्यक्रमों को वर्णित करता है। संसद में बजट प्रस्तुत करने से पूर्व उसे दो विवरण पत्रों में प्रस्तुत किया जाता है- वार्षिक वित्तीय पत्र तथा अनुदानों की मांगे।

7.5.2 बजट का संसद में अनुमोदन या स्वीकृति

यह संसदीय परंपरा का मूल सिद्धांत है कि संसद के पूर्व अनुमोदन के बिना कोई कर नहीं लगाया जा सकता है और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। बजट या 'वार्षिक वित्तीय विवरण' का संसद द्वारा पारित किया जाना बजट प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। सरकारी कार्यालयों, विभागों,वित्त मंत्रालय तथा मंत्री परिषद के हाथों से होता हुआ बजट विधानमंडल या व्यवस्थापिका में बहस एवं स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया जाता है।भारत में वर्तमान बजट पद्धति की शुरुआत प्रथम वाइसराय लॉर्ड कैनिंग के शासनकाल में हुई थी। उस समय जेम्स विलसन वित्त विशेषज्ञ हुआ करते थे। जेम्स विल्सन ने ही 18 फरवरी 1860 को वाइसराय अर्थात गवर्नर जनरल की परिषद में सबसे पहली बार बजट प्रस्तुत किया था। उस समय बजट पर बहस का प्रचलन नहीं था। यह सुविधा सन 1892 से मिली तथा सन 1935 से बजट पर मतदान होना प्रारंभ हुआ। सन् 1860 से ही भारत में अप्रैल से मार्च की बजट वर्ष या वित्तीय वर्ष प्रणाली का प्रारंभ हुआ। अधिकतर राष्ट्रमंडल देशों में बजट की यही अवधि प्रचलित है। भारत में सन 1921 से रेल बजट पृथक से प्रस्तुत होना प्रारंभ हुआ जबकि आम या सामान ने बजट सभी विभागों का सामूहिक राष्ट्रीय बजट होता है।

दोनों बजटों की प्रक्रियाएं समान होती है। और इसी प्रकार राज्य सरकारें अपना बजट पृथक से विधानसभाओं में प्रस्तुत करती हैं। बजट पारित करने संबंधी संसदीय अधिकारों का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद-112 से लेकर अनुच्छेद-117 में किया गया है।

संसद में बजट प्रस्तुतीकरण एवं उसके अनुमोदन की सात अवस्थाएं या उप-चरण होते हैं- बजट का विधान मंडल के समक्ष प्रस्तुतीकरण, बजट पर सामान्य चर्चा, अनुदान की मांगों पर मतदान, मतदान, लेखानुदान, विनियोग विधेयक तथा वित्त विधेयक।

7.5.2.1 बजट का विधान मंडल के समक्ष प्रस्तुतीकरण

स्वतंत्रता के पश्चात भारत का प्रथम आम बजट 26 नवम्बर 1947 को प्रस्तुत किया गया था। इसे प्रस्तुत करने का श्रेय उस समय के वित्त मंत्री आर के षणमुखम शेट्टी को जाता है। भारत गणराज्य का प्रथम आम बजट (1959-51) जॉन मथाई ने प्रस्तुत किया था। इसी बजट में योजना आयोग के गठन का प्रस्ताव भी किया गया था।

सामान्य तौर पर केंद्र सरकार का आम बजट फरवरी माह के अंतिम दिन वित्त मंत्री द्वारा लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। सन् 1999 तक आम बजट शाम के समय है संसद में प्रस्तुत करने की परंपरा रही थी। परंपरा से हटकर पहली बार 27 फरवरी1999 को वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने दोपहर 11 बजे बजट प्रस्तुत किया था। इस बात का पूर्व वित्त मंत्री प्रोफेसर मधु दंडवते सहित कई लोगों ने विरोध किया था। उनका ऐसा मानना था कि चौकी बजट के कुछ प्रावधान उसी रात लागू हो जाते हैं अतः व्यापारियों को गड़बड़ करने का अब अधिक समय मिल सकेगा।

बजट प्रस्तुति के समय वित्त मंत्री अपना एक भाषण भी देता है। लोक सभा में बजट भाषण समाप्त हो जाने पर बजट को राज्य सभा के समक्ष रखा जाता है। संसद में बजट पेश हो जाने के बाद संसद लेखानुदान, अनुदानों की अतिरिक्त माँगें स्वीकार करती है। लेखानुदान की अवधि नए वित्त वर्षों के दो या अधिक महीने होती है। वित्त मंत्री संसद में बजट प्रस्तुत करने के साथ साथ निम्नलिखित पाँच प्रलेख भी प्रस्तुत करता है-1. बजट प्रलेखों की कुंजी, 2. बजट संक्षेप, 3. प्राप्ति बजट, 4. व्यय बजट (खंड- II) तथा 5. वित्त विधेयक की प्रक्रियाएं समझाने वाला ज्ञापन।

बजट प्रस्तुत होते ही उस पर तुरंत चर्चा शुरू नहीं होती है। यह अवसर कुछ दिन बाद आता है, जब बजट पर सामान ने बहस होती है।

7.5.2.2 बजट पर सामान्य चर्चा

बजट प्रस्तुत होने के एक दो दिन पश्चात दोनों सदनों में बजट के प्रावधानों, नीतियों तथा पूर्व के व्ययों पर सामान्य चर्चा होती है, लेकिन इस समय कोई भी प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता है और न ही कोई मतदान हो सकता है। बजट पर चर्चा में प्राय दो-तीन दिन से एक सप्ताह तक का समय लग जाता है और अंत में वित्त मंत्री एक संक्षिप्त उत्तर भी देता है।

7.5.2.3 अनुदान माँगो पर मतदान

अगले चरण में एक एक विभाग की माँगों पर चर्चा तथा मतदान होता है। सभा का अध्यक्ष सदन के नेता से विचार विमर्श करके एक अवधि निश्चित करता है जिसमें अनुदान माँगो पर विचार विमर्श पूर्ण हो जाना चाहिए। यह अवधि सामान्यतया 26 दिन रहती है। प्रत्येक विभाग की अनुदान माँगें क्रमशः एक प्रस्ताव के रूप में लोक सभा के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है। लोक सभा ब्यौरेवार प्रत्येक वेब पर चर्चा करती है तथा विपक्षी सदस्य इस समय बजट की तीखी आलोचना करते हैं। समय प्रतीकात्मक रूप से तीन प्रकार के कटौती प्रस्ताव आ सकते हैं-

1. **नीति संबंधी कटौती प्रस्ताव-** जब भी किसी अनुदान माँग के पीछे निहित सरकारी नीति को अस्वीकृत कराने की अनुशंसा के उद्देश्य से यह माँग की जाती है तो यह नीति संबंधी कटौती प्रस्ताव कहलाता है। इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य सरकार की नीति की आलोचना करना होता है। इसमें माँग की धनराशि एक रुपया घटाने का प्रस्ताव होता है तथा नीति संबंधी मुद्दों की समीक्षात्मक आलोचना करते हुए वैकल्पिक नीति की प्रतिस्थापना करने का प्रयास किया जाता है।
2. **मितव्ययता संबंधी कटौती प्रस्ताव-** सरकारी व यह में संभावित अपव्यय याद धन के दुरुपयोग की ओर सदन का ध्यान आकर्षित करने के लिए यह माँग की जाती है कि अनुदान माँग में विशिष्ट धन राशि कम कर देनी चाहिए। यह प्रस्ताव किसी माँग, विशेष मद में कमी, उसकी पूर्ण समाप्ति यह सम्पूर्ण अनुदान में से एक मुश्त धन राशि कम करने के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं। वाद विवाद के समय केवल विचारनीय मुद्दे पर ही विचार रखने की अनुमति मिलती है।
3. **प्रतीकात्मक कटौती प्रस्ताव-** सरकार का ध्यान किसी विशेष समस्या की ओर आकर्षित करने के लिए संबंधित अनुदान माँग में से सौ रुपया की कटौती का प्रस्ताव रखा जाता है तो ऐसा प्रस्ताव प्रतीकात्मक कटौती प्रस्ताव कहलाता है।

भारत में आम तौर पर प्रतीकात्मक कटौती प्रस्ताव ही आते रहे हैं। संसदीय प्रणाली में बहुमत वाली सरकार अपने प्रस्तावित अनुदान माँगें स्वीकृत करा लेती है अत: कटौती प्रस्ताव कुछ महत्व नहीं रखते हैं। वस्तुस्थिति यही है कि वित्त मंत्री द्वारा प्रस्तुत बजट लगभग उसी रूप में स्वीकृत हो जाता है।

7.5.2.4 मतदान

अनुदान माँगो पर देर तक बहस या चर्चा हो जाने के बाद एक निर्धारित दिन शाम को पाँच बजे मतदान का कार्य प्रारंभ हो जाता है। इस प्रक्रिया में सभी विभागों की अनुदान माँगें गुजरती है, किन्तु पूरी बहस के लिए निर्धारित अंतिम दिन शेष बची सभी मार्गों पर मतदान हो जाता है चाहे उस विभाग की अनुदान माँगों पर बहस ना हुई हो। इसे गिलोटिन(Guillotine) या मुखबंद (बिना बहस) पारित प्रक्रिया कहा जाता है। भारत में प्रतिवर्ष अधिकांश अनुदान माँगें केवल मुख्य बंद पारित होती है।

इस समस्या से मुक्ति पाने हेतु भारत में 8 अप्रैल 1993 नई समिति व्यवस्था शुरू की गई जिसमें 17 विभागीय स्थायी समितियां बनायी गई हैं। सन 2004 से इन समितियों की संख्या बढ़ाकर चौबीस कर दी गई है। वर्तमान में प्रत्येक समिति में 21 सदस्य लोक सभा तथा 10 सदस्य राज्य सभा से लिए जाते हैं। ये सभी सदस्य एक वर्ष के लिए मनोनीत किए जाते हैं। 16 समितियों के अध्यक्ष लोक सभा से तथा आठ के राज्य सभा से लिए जाते हैं। इन

समितियों का मुख्य कार्य मंत्रालयों या विभागों की अनुदान माँगो पर विचार करना तथा सदनों को उन पर प्रतिवेदन देना होता है।

7.5.2.5 लेखानुदान

संविधान के अनुच्छेद-116 (1) के अंतर्गत यह प्रावधान है कि, संसद बजट-प्रक्रिया के पूरा होने से पहले ही वित्तीय वर्ष के प्रथम दो माह के लिए कार्यपालिका को अग्रिम अनुदान स्वीकृत करके व्यय करने की अनुमति प्रदान कर सकती है । इसे ही लेखानुदान कहा जाता है। यह लेखानुदान लोक सभा द्वारा अनुमानित बजट के छठे भाग के बराबर स्वीकृत किया जाता है, क्योंकि विनियोग विधेयक तथा वित्त विधेयक की स्वीकृति में समय लगता है । अतः लेखानुदान पारित होने पर बजट स्वीकृति 1 अप्रैल के पश्चात भी हो सकती है। लेखानुदान भी विनियोग विधेयक के रूप में पारित होता है। सामान्यतः लेखानुदान तथा अंतरिम बजट एक जैसे प्रतीत होते हैं किंतु, इनमें थोड़ा सा अंतर है। वस्तुतः अंतरिम बजट थोड़ा सा विस्तारित एवं अधिक प्रावधानों से युक्त होता है।
लोक सभा को यह शक्ति भी प्राप्त है कि वह किसी सेवा पर चालू वर्ष में स्वीकृत राशि अपर्याप्त रहने पर अनुपूरक अनुदान (Supplementary Grant) भी स्वीकृत कर सकती है, जो विनियोग विधेयक की भाँति ही पारित होता है। प्रत्येक वित्तीय वर्ष की शुरुआत पर प्रस्तुत होने वाले बजट में पूर्ववर्ती वर्ष की अनुपूरक अनुमान माँगें भी प्रस्तुत होती हैं। युद्ध जैसी विषम परिस्थितियों में बिना व्यय अनुमान तैयार किए ही अग्रिम अनुदान (Vote on Credit) स्वीकृत किया जा सकता है। युद्ध जैसी विशेष परिस्थितियों में आकस्मिक निधि से राष्ट्रपति स्पेशल ग्रांट भी स्वीकृत कर सकते हैं। यह सभी अनुदान अंततः संसद द्वारा स्वीकृत होकर नियमित किए जाते हैं।

7.5.2.6 विनियोग विधेयक

संविधान के अनुच्छेद-110 (1) के अनुसार- “भारत की संचित निधि से कोई भी धनराशि बिना विधि द्वारा विनियोजन को नहीं निकाली जा सकती है।” अतः सभी अनुदान माँगो पर मतदान हो जाने के पश्चात संपूर्ण व्यय अनुमानों को विनियोग विधेयक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। लोक सभा में स्वीकृत होने पर ‘धन विधेयक’ के रूप में राज्यसभा को भेजा जाता है। स्पष्ट है कि राज्यसभा इसमें संशोधन या अस्वीकृति नहीं कर सकती है। अतः राज्यसभा की स्वीकृति के पश्चात विनियोग विधेयक राष्ट्रपति के पास स्वीकृति हेतु भेजा जाता है जो स्वीकृति के पश्चात अधिनियम का रूप धारण कर लेता है तथा कार्यपालिका को संचित निधि में से धन निकालने का अधिकार प्राप्त हो जाता है हो जाता है।

7.5.2.7 वित्त विधेयक

संविधान के अनुच्छेद-265 के अनुसार- “बिना क़ानूनी अधिकार के ना तो कोई कर लगाया जा सकता है और न ही वसूला जा सकता है। अतः व्यय करने के लिए आवश्यक धन राशि नये कर लगाकर या पुराने करों की दरों में वृद्धि करके जुटायी जाती है। कुछ कर स्थाई प्रकृति के होते हैं जबकि कुछ कर अस्थाई प्रकृति के होते हैं। करों को बढ़ाने तथा नए कर लगाने संबंधी प्रस्ताव राष्ट्रपति के पूर्व अनुमति के बिना सदन में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं। करों से संबंधित प्रस्ताव ही ‘वित्त विधेयक’ कहलाता है जो लोक सभा में प्रस्तुत होता है। जहाँ विनियोग विधेयक में बहस के दौरान कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, वहीं वित्त विधेयक में बहस के समय कर घटाने के कटौती प्रस्ताव कई बार सरकार द्वारा स्वीकार कर लिए जाते हैं। लोक सभा में विचार विमर्श करने के पश्चात वित्त विधेयक को प्रवर समिति (Select Committe) को सौंपा जाता है, जिसकी समीक्षात्मक टिप्पणियाँ बहस का विषय बनती है।
अंतत: लोक सभा से स्वीकृत होकर वित्त विधेयक, राज्यसभा को भेजा जाता है जो 14 दिन के भीतर इसे पुन: लौटाने के लिए बाध्य होती है। राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात यह अधिनियम का रूप ले लेता है तथा सरकार को

राजस्व वसूलने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। संसद में प्रस्तुति के बाद वित्त विधेयक को 75 दिन में स्वीकृति मिलना अनिवार्य है। ऐसा 'Provisional Collection of Taxes Act, 1931' के अंतर्गत वर्णित है।

7.5.3 बजट का क्रियान्वयन

सांसद द्वारा बजट पारित होने के पश्चात सरकार को राजकोट से धान व्यय करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यह अधिकार कई प्रकार के दिशा निर्देशों के अधीन रहता है। कार्यपालिका के लिए बजट अनुमानों के अनुसार आय-व्यय करना आवश्यक है और एस पूरी प्रक्रिया को निम्न बिन्दुओं में दर्शाया जा सकता है- वित्तीय साधनों का एकत्रीकरण, एकत्रित कोषों का संरक्षण तथा वितरण तथा लेखा संधारण।

7.5.3.1 वित्तीय साधनों का एकत्रीकरण

किसी भी संगठन में व्यय करने से पूर्व आय का होना प्राथमिक आवश्यकता होती है। अतः वित्त अधिनियम के अंतर्गत वित्त मंत्रालय तथा अन्य संबद्ध कार्यकारी संगठन विभिन्न करों, शुल्कों, ऋणों के माध्यम से राजस्व एकत्र करना शुरू करते हैं। वित्त मंत्रालय का राजस्व विभाग तथा उसके अन्य अभिकरण जैसे- केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड तथा केंद्रीय सीमा शुल्क एवं उत्पाद शुल्क बोर्ड इत्यादि प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों को एकत्र करवाने हेतु निर्देश एवं नियम प्रतिपादित करते हैं।

7.5.3.2 एकत्रित कोषों का संरक्षण तथा वितरण

सरकार के नाम से या सरकारी नियमों के अंतर्गत एकत्रित समस्त शुल्क, कर तथा अन्य प्राप्तियों राजकोष में जमा होती है। भारत में ब्रिटिश काल से ही राजकोष के माध्यम से ही सरकारी धन का लेन देन होता रहा है। देश भर में स्थापित विभिन्न राजकोष तथा उप राजकोष जिला एवं तहसील स्तर पर स्थापित होते हैं जो स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया तथा उसके सहायक बैंकों के माध्यम से समस्त वित्तीय लेन देन करते हैं। राजकोष की व्यवस्था संचालन में रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया भी सहायता प्रदान करता है। राजकोष के तीन प्रमुख उत्तरदायित्व होते हैं- वित्तीय साधनों के गठन या अनियमितता पर नियंत्रण रखना, वित्तीय लेन देन को सुविधाजनक तथा त्वरित रूप से संचालित करना एवं सरकारी आय-व्यय के लेखे नियंत्रित करना। राजकोष से धन निकालने के लिए हर कार्यालय में एक या उससे अधिक अधिकृत अधिकारी होते हैं जिन्हें आहरण एवं वितरण अधिकारी (Drawing and Disbursing Officer or DDO) की शक्तियां प्राप्त होती है। विधानमंडल में स्वीकृत बजट अनुमानों की सूचना वित्त मंत्रालय के द्वारा संबंधित विभाग तक तथा विभागाध्यक्षों से कार्यालय अध्यक्षत तक आ जाती है। अतः राजकोष से धन उसी मद से प्राप्त होता है जो नियमानुसार स्वीकृत होता है। राजकोष में प्रतिदिन चालान के माध्यम से धन जमा होता है तथा स्वीकृत बिलों के माध्यम से धन निकाला भी जाता है। इस प्रकार राजकोष आय तथा व्यय के 2 लेखे रखता है, जिन्हें निश्चित अवधि में राज्य के राज्य के महालेखापाल के पास भिजवाया जाता है।

7.5.3.3 लेखा संधारण

प्रत्येक प्रशासनिक कार्यालय का ये उत्तरदायित्व होता है कि वह समस्त वित्तीय लेन देन का पूर्ण हिसाब किताब तथा लेखे रखें। इन लेखों में समस्त औपचारिकताएं पूर्ण की जाती है। उप-राजकोष समस्त लेखे, राजकोष को तथा उसके बाद राजकोष इन्हें राज्य मुख्यालय स्थित महालेखापाल के पास भिजवा देता है, जिससे सम्पूर्ण क्षेत्र के विभागों द्वारा किए जा रहे व्यय पर नियंत्रण रहता है। केंद्र में रेलवे के अतिरिक्त सभी विभागों का एक महालेखापाल होता है। लेखांकन के समस्त नियम भारत के महालेखा परीक्षक द्वारा बनाए जाते हैं।

स्थूल रूप में लेखा संधारण का कार्य प्रथमत: संबंधित कार्यालय, द्वितीय राजकोष तथा इसके बाद महालेखा पाल के कार्यालय में रखा जाता है। लेखा संधारण में व्यस्य शीर्षों को छोटे शीर्ष, उपशीर्ष तथा बड़े शीर्ष में विभक्त किया जाता है। सरकारी आय- व्यय के लेखों का परीक्षण भी किया जाता है।

इस प्रकार 31 मार्च तक यदि स्वीकृत धनराशि कोई विभाग व्यय नहीं कर पाता है तो वह स्वतः ही समाप्त मानी जाती है तथा अगले वर्ष की स्वीकृति विधानमंडल से ही आती है। कभी कभी किसी विभाग में एक ही शीर्ष के अधीन किसी एक मद का धन समाप्त हो जाता है, किन्तु दूसरे मद में धन विद्यमान होता है तो विभागाध्यक्ष को यह शक्ति है कि वह एक सीमा तक मदों का व्यय हस्तांतरित (Transfer) कर पुनर्विनियोजित (Reappropriated) कर सकता है, किन्तु अनुदान शीर्ष में पुनर्विनियोजन केवल विधानमंडल भी कर सकता है। लेकिन भारत में इस प्रकार की स्थिति में बहुत विचित्रता देखने को मिलती है। बजट स्वीकृति की सूचना प्राय: देरी से आती है तथा बजट का अधिकांश हिस्सा फ़रवरी -मार्च माह में व्यय किया जाता है, अन्यथा स्वीकृत राशि समाप्त (Lapse) हो जाती है।

7.6 निष्कर्ष

बजट संबंधी प्रक्रिया को प्रशासन का केंद्र बिंदु माना जाता है। यह एक ऐसा लिखा पत्र होता है जिसके माध्यम से कार्यपालिका व्यवस्थापिका के सम्मुख आती है और विस्तार के साथ अतीत, वर्तमान तथा भविष्य की वित्तीय स्थिति का प्रतिवेदन कर प्रस्तुत करती है। विधानमंडल से बजट को स्वीकृति प्राप्त हो जाने के बाद बजट की क्रियान्वित ही की जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. रेलवे बजट को सामान्य बजट से कब प्रकट किया गया?
2. भारत में प्रथम आधुनिक बजट कब प्रस्तुत किया गया था?
3. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद- में बजट प्रक्रिया का उल्लेख दिया गया है?
4. भारत में बजट प्रक्रिया कितने चरणों से होकर गुजरती है?
5. भारत में वित्तीय वर्ष की शुरुआत कब से होती है?

7.7 सारांश

प्राचीन भारत में भी बजट की प्रक्रिया अति विकसित की। 1860 में ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी से शासन अपने हाथ में लेने के साथ ही भारत में आधुनिक बजट व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। भारतीय संविधान के अंतर्गत बजट की प्रक्रिया अनुच्छेद-112 से 117 में उल्लेखित प्रक्रिया का पालन करती है। बजट के द्वारा सरकार की समस्त आय तथा व्यय का लेखा जोखा प्रस्तुत किया जाता है। बजट कार्यपालिका के द्वारा ही तैयार भी किया जाता है और प्रस्तुत भी किया जाता है। संसदात्मक लोकतंत्र में बजट विधानमंडल के समक्ष वैधानिक स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तथापि बजट क्रियान्वयन का दायित्व पुनः कार्यकारिणी का ही है, किंतु विधानमंडल बजट के क्रियान्वयन के पश्चात भी इस पर नियंत्रण रखता है। कार्यपालिका संचालन स्तरों को प्रत्यायोजित की गई शक्तियों के अनुसार ही धन को खर्च करती है। सरकार के द्वारा किए गए सभी खर्चों का लेखा परीक्षण सांविधिक परीक्षक द्वारा किया जाता है, ताकि यह जाता जा सके कि सार्वजनिक निधि का बजट के अनुसार किया गया है तथा नियमों एवं विनियमों का पालन किया गया है।

7.8 शब्दावली

प्रलेख- किसी विषय की सूचना या प्रामाणिक जानकारी देने वाला लेख।
हस्तान्तरित- संपत्ति या अधिकार जो एक के हाथ से दूसरे के हाथ में गया हो। जिसका हस्तांतरण हुआ है।
लेखानुदान- राजस्व और खर्चों का लेखा जोखा।
अनुदान- आर्थिक सहायता।

अंतरिम बजट- इसके जरिए सरकार को सीमित अवधि के लिए जरूरी खर्च की अनुमति मिलती है।

प्रवर्तित- आरंभ किया गया

मितव्ययता- नियत सीमा के भीतर खर्च करने की प्रक्रिया।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1921, **2.** 1860, **3.** 112-117 तक, **4.** 3, **5.** 1अप्रैल

7.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. कटारिया, सुरेंद्र, 2009. भारतीय लोक प्रशासन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, दिल्ली।
2. शर्मा, प्रभुदत्त, 2007. प्रशासनिक सिद्धांत; कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, नई दिल्ली, मुंबई।
3. अवस्थी, अवस्थी,2014. भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पंत, जे.सी.2005.लोक अर्थशास्त्र; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में बजट निर्माण की प्रक्रिया पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. भारत में बजट व्यवस्था की पृष्ठभूमि पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. भारत में बजट की संसद में प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया को विस्तार से बताइए।

इकाई- 8 सार्वजनिक/सरकारी व्यय का वर्गीकरण

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 सर्वजनिक व्यय का अर्थ एवं महत्व
8.3 सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण
8.3.1लाभ के आधार पर वर्गीकरण
8.3.2 आय के आधार पर वर्गीकरण
8.3.3 कार्यो के आधार पर वर्गीकरण
8.3.4 महत्व के आधार पर वर्गीकरण
8.3.5 मिल का वर्गीकरण
8.3.6 डाल्टन का वर्गीकरण
8.3.7 प्रोफेसर जे. के. मेहता का वर्गीकरण
8.3.8 रॉशर का वर्गीकरण
8.3.9 पीगू का वर्गीकरण
8.3.10 आर्थिक वर्गीकरण
8.4 निष्कर्ष
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

सार्वजनिक व्यय, वैयक्तिक व्यय की भांति राज्य की क्रियाओं का आदि और अंत, दोनों ही है। जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार विभिन्न क्रियाएं संपन्न करती है, उन उद्देश्यों का अध्ययन हम राजस्व के इसी विभाग में करते हैं और राज्य के व्यय के परिणामों और आकार से ही हम को यह ज्ञात होता है कि राज्य का क्या स्थान मनुष्य के जीवन में है और राज्य किस सीमा तक नागरिकों के संरक्षक के रूप में कार्य कर रहा है। राजकीय व्यय के आकार में बहुत वृद्धि हुई है। इस वृद्धि के वैसे तो अनेक कारण हैं, परंतु मुख्य कारण यही है कि राज्य की क्रियाओं का क्षेत्र पहले से कई गुना बढ़ गया है। यदि हम आधुनिक राज्यों के व्यय की ओर ध्यान दें और उन आंकड़ों का अध्ययन करें, तो यह ज्ञात होगा कि राज्य के कार्यों में केवल विस्तृत वृद्धि ही नहीं हुई है, बल्कि गहन वृद्धि भी हुई है। विस्तृत वृद्धि (extensive increase) से हमारा अभिप्राय यह है कि राज्यों के कार्यों की संख्या पहले से अधिक हो गई है और कई गुना बढ़ गई है। गहन वृद्धि (intensi veincrease) से हमारा आशय यह है कि पहले जो कार्य राज्य के मौलिक कार्य समझे जाते थे उनमें अब पहले की अपेक्षा अधिक व्यय की आवश्यकता है और पहले की अपेक्षा वे गत वर्षो में बहुत व्ययपूर्ण हो गए हैं। प्रस्तुत अध्ययन में हम सार्वजनिक व्यय के अर्थ को समझते हुए उसके वर्गीकरण पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सार्वजनिक व्यय के सामान्य अर्थ तथा महत्व को भली-भांति जान पाएंगे।
- सार्वजनिक व्यय के वर्गीकरण के विभिन्न आधार के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

8.2 सर्वजनिक व्यय का अर्थ एवं महत्व

प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक व्यय को महत्व नहीं दिया था। प्रोफेसर रॉबर्ट पील (Robert Peel) ने कहा कि, "धन सरकार की अपेक्षा लोगों के हाथों में अधिक फलदाई सिद्ध हो सकता है।" फलत: लोक वित्त का क्षेत्र काफी संकुचित हो गया था। यह धारणा बहुत लंबे समय तक बनी रहे, परंतु 19वीं शताब्दी के बाद इस दिशा में एक नया मोड़ आया। अब अर्थशास्त्रियों के विचारों में परिवर्तन आना प्रारंभ हो चुका था। राजकीय हस्तक्षेप धीरे-धीरे बढ़ने लगा। समाजवादी विचारधारा, कल्याणकारी राज्यों की स्थापना तथा लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के कारण सरकारी हस्तक्षेप और अधिक व्यापक होने लगा। वैगनर, फ्रेडरिक लिस्ट, कार्ल मार्क्स तथा जे. एम. कीन्स आदि विद्वानों ने व्यक्तिगत विचारधारा की कटु आलोचना करते हुए सरकारी हस्तक्षेप की सराहना की और आज स्थिति यह हो गई है कि सरकारी हस्तक्षेप प्रगतिशील और कल्याणकारी राज्य की निशानी बन चुका है। आज राज्य का प्रवेश आर्थिक क्षेत्र में हो चुका है, परिणाम स्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होने लगी है।

सरल शब्दों में, सार्वजनिक व्यय, सरकारी अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले व्यय को कहते हैं। यह व्यय उन व्ययों का सूचक होता है जो प्रशासन के द्वारा अपने देश तथा देश के नागरिकों की भलाई के लिए किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह व्यय देश के नागरिकों की रक्षा करने तथा उनके आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण की वृद्धि हेतु किए जाते हैं।

सार्वजनिक व्यय सार्वजनिक वित्त का महत्वपूर्ण भाग ही नहीं है, बल्कि आज यह सार्वजनिक वित्त का केंद्र बिंदु भी बन चुका है। अर्थशास्त्र में जो स्थान उपभोग का है वही स्थान सार्वजनिक वित्त में सार्वजनिक व्यय का माना जाता है। सार्वजनिक आय और ऋणों की प्राप्ति सार्वजनिक व्ययों की पूर्ति के लिए की जाती है। सार्वजनिक व्यय के द्वारा लोक कल्याण के कार्यों की पूर्ति की जा सकती है। लोक कल्याणकारी राज्य से देश के नागरिक यह अपेक्षा करते हैं कि सरकार उन मुद्दों में व्यय करें जिन पर वे स्वयं व्यय करने की सामर्थ्य नहीं रखते हैं। कोई भी व्यक्ति सामूहिक शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, सड़क परिवहन, सुरक्षा आदि पर व्यय नहीं कर सकता है। अतः सार्वजनिक व्यय के द्वारा उन महत्वपूर्ण योजनाओं का संपादन किया जा सकता है। संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि सार्वजनिक व्यय के द्वारा उन आवश्यकता ओं को संतुष्ट किया जा सकता है जो व्यक्तिगत रूप से संतुष्ट नहीं की जा सकती है।

8.3 सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण

सरल शब्दों में, सार्वजनिक व्यय के वर्गीकरण से हमारा अभिप्राय वैज्ञानिक तथा आर्थिक आधार पर राज्य द्वारा विभिन्न मदों के लिए किए गए व्यय की उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक व्ययों की प्रकृति तथा प्रभाव में अंतर किया जा सकता है। समय-समय पर राज्य द्वारा कुछ ऐसे कार्य किए जाते हैं, जिनमें कुछ वयय निहित होता है तथा जब सार्वजनिक व्यय को वर्गीकृत किया जाता है तो राज्य के कार्यों का स्वत: ही वर्गीकरण हो जाता है। सार्वजनिक व्यय की विभिन्न शाखाओं की प्रकृति तथा प्रभाव को स्पष्टतया समझने के लिए ऐसे वर्गीकरण की आवश्यकता है। फिर भी इसे अधिक उपयोगी तथा प्रभावशाली बनाने के लिए इस वर्गीकरण को बहुत अधिक औपचारिक नहीं बनाना चाहिए। इसमें सार्थक तथा व्यावहारिक खर्च को प्रकट किया जाना

चाहिए, ताकि विभिन्न व्ययों के प्रभावों व भार को समझा जा सके। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मद पर किए गए व्यय के साक्षेप महत्व पर भी प्रकाश डाला जाना चाहिए।

वर्गीकरण विभिन्न मदों को क्रमबद्ध कर व्यवस्थित करना है। लोक व्यय के वर्गीकरण के द्वारा इस व्य के विभिन्न मदों को वैज्ञानिक एवं आर्थिक आधारों पर क्रमबद्ध किया जाता है। इससे विभिन्न प्रकार के लोक व्यय के प्रभावों का विश्लेषण करना संभव होता है। भिन्न-भिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न आधारों पर लोक व्यय का वर्गीकरण किया है। कुछ महत्वपूर्ण वर्गीकरण को प्रस्तुत किया जा रहा है जिनका विस्तार से इन सभी वर्गीकरण की व्याख्या करके समझने का प्रयास करते हैं-

8.3.1 लाभ के आधार पर वर्गीकरण

19वीं शताब्दी में जर्मन अर्थशास्त्री काहन तथा अमेरिकी अर्थशास्त्री प्लेहन ने इस वर्गीकरण को दिया था। लाभ को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सार्वजनिक व्यय को चार भागों में बांटा है-

1. समाज पर किया जाने वाला व्यय- जिसका लाभ सामान्य के संपूर्ण समाज को मिलता है। इस वर्ग में सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात आदि पर किया गया व्यय सम्मिलित किया जा सकता है।
2. वर्ग विशेष पर किया जाने वाला व्यय- इस श्रेणी में उस व्यय को सम्मिलित किया गया है जो किसी वर्ग विशेष की आवश्यकता तथा समस्याओं पर किया जाता है। अल्पकाल में सरकार को ऐसे व्यय का विशेष लाभ तो नहीं मिल पाता है, परंतु दीर्घकाल में जिस वर्ग पर यह व्यय किया जाता है उसकी स्थिति अच्छी हो जाती है। इस प्रकार के व्यय के अंतर्गत बीमारी- बीमा, बेरोजगारी भत्ता, वृद्धावस्था पेंशन तथा अपाहिजों एवं विकलांगों को दी जाने वाली सुविधाएं आती है।
3. व्यक्ति विशेष तथा समाज पर किया जाने वाला व्यय- इस श्रेणी में उस व्यय को रखा गया है जो व्यक्ति विशेष को लाभ पहुंचाने के साथ समाज को भी लाभ पहुंचाता है; जैसे- पुलिस व न्यायालयों के प्रबंध पर किया जाने वाला व्यय।
4. संस्था विशेष पर किया जाने वाला व्यय- इस श्रेणी में उन व्ययों को शामिल किया जाता है जो व्यय ख़ास संस्थानों को ही लाभ पहुंचा सकते हैं; जैसे- सार्वजनिक उद्योगों पर किया जाने वाला व्यय।

यद्यपि यह वर्गीकरण सामान्य जनता के पक्ष में माना जा सकता है, परंतु इस सार्वजनिक व्यय को इन विभिन्न मदों से बांटना कठिन है। इसमें संदेह नहीं है कि यह वर्गीकरण अच्छा है, क्योंकि यह उन लाभों से संबंधित है जो सार्वजनिक व्यय के द्वारा सामान्य लोगों को दिए जाते हैं। वास्तव में साधारण व्यक्ति सार्वजनिक व्यय की तकनीकों में नहीं बल्कि उससे प्राप्त होने वाले लाभ में रुचि रखते हैं। परंतु यह सिद्धांत भी दोषों से मुक्त नहीं है। इसका सबसे गंभीर दोष यह है कि यह वर्गीकरण आपसी सहमति से नहीं किया गया है इसी कारण यह अवैज्ञानिक तथा अपूर्ण बन गया है। इसमें परस्पर अतिक्रमण का दोष है। ऐसी परिस्थितियों में ऐसे में जो केवल विशेष समूह को लाभ पहुंचाता हो तथा सामान्य समुदाय को लाभ पहुंचाने वाले व्यय में अंतर करना कठिन होता है। इसलिए वर्तमान व्यवस्था में इस सिद्धांत के लिए कोई स्थान नहीं है।

8.3.2 आय के आधार पर वर्गीकरण

यह वर्गीकरण प्रोफेसर निकोल्सन (Nicholson) ने किया है। उन्होंने विजय के वर्गीकरण का आधार आए को माना है। अर्थात सार्वजनिक व्यय से आए में जो वृद्धि होती है वही आए के वर्गीकरण का आधार है। इसे निम्नलिखित चार भागों में बांटा गया है-

1. प्रथम वह व्यय है, जिसके करने से राज्य को किसी प्रकार की आय प्राप्त नहीं होती है, जैसे- युद्ध पर होने वाला व्यय तथा बेरोजगारों एवं गरीबों की सहायता पर होने वाला व्यय।

2. दूसरे प्रकार के वे व्यय है जो सरकार को प्रत्यक्ष आय नहीं देते हैं, परंतु दीर्घकाल पर उन व्ययों से अप्रत्यक्ष रूप से आय प्राप्त होती है। शिक्षा पर किए जाने वाला व्यय इसका एक उदाहरण है, क्योंकि 'गरीबी प्रतीक्षा कर सकती है, शिक्षा नहीं।' दीर्घ काल में जब देश के नागरिक शिक्षित होंगे तो उनकी कार्यकुशलता बढ़ने से देश को लाभ मिलेगा और देश की प्रगति होगी।
3. तीसरी श्रेणी में वे व्यय आते हैं जिनसे सरकार को आंशिक आय प्राप्त होती है; जैसे- शुल्क सहित शिक्षा। इससे सरकारी व्यय को बड़े पैमाने पर किया जाता है, परंतु इन सेवाओं से सरकार को व्यय की अपेक्षा शुल्क बहुत कम मिलता है।
4. चौथी श्रेणी के व्यय वह हैं, जिनमें व्यय करने के बाद सरकार को आए होती रहती है; जैसे- यातायात, संचार व्यवस्था आदि पर किया गया व्यय।

8.3.3 कार्यों के आधार पर वर्गीकरण

एडम स्मिथ ने सार्वजनिक व्यय को सरकार के कार्यों के आधार पर वर्गीकृत किया है। इस वर्गीकरण का प्रोफेसर वेस्टेवल ने समर्थन किया है। यह वर्गीकरण कुछ इस प्रकार से है-

1. सुरक्षा व्यय- इसमें सरकार द्वारा हथियार, बारूद के क्रय, सुरक्षा, पुलिस प्रशासन, न्याय तथा जेल इत्यादि पर किया जाने वाला व्यय शामिल किया जाता है।
2. व्यवसायिक व्यय- जनहित में सरकार द्वारा व्यवसायिक गतिविधियों, जैसे- रेल, सड़क, राष्ट्रीय मार्ग इत्यादि पर किए गए व्यय को इसमें शामिल किया जाता है।
3. विकास व्यय- देश के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, जन सुविधाओं पर किया गया व्यय इसमें शामिल है। ऐसे व्यय से राष्ट्रीय आय बढ़ती है। यह वर्गीकरण समाज लोगों के कल्याण के आधार पर सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण करता है। इस सिद्धांत में भी दोष यह है कि यह कह पाना संभव नहीं है कि अमुक व्यय सुरक्षा से संबंधित है तथा विकास से संबंधित नहीं है एवं अमुक व्यय व्यवसायिक है तथा विकास से संबंधित नहीं है।

8.3.4 महत्व के आधार पर वर्गीकरण

यह वर्गीकरण प्रोफेसर फिंडले शिराज (Shirras) के द्वारा किया गया है। इसे प्राथमिक एवं गौण व्यय का वर्गीकरण भी कहा जाता है। उन्होंने सार्वजनिक व्यय के वर्गीकरण को निम्न रूपों में बाँटा है- प्राथमिक व्यय और गौण व्यय प्राथमिक व्यय के अंतर्गत आंतरिक एवं बाहरी सुरक्षा संबंधी व्ययों को रखा गया है। इस व्यय के बारे में शिराज ने लिखा है कि, "प्रत्येक नाम मात्र के शासन तक को अन्य सब बातों से पहले इस पर वह करना होता है।" जहाँ तक गौण व्ययों का संबंध है, उसके बारे में शिराज़ का कहना है कि गौण व्यय में समाज, लोक उपक्रम व्यय और कुछ अन्य व्यय सम्मिलित हैं।

प्रोफेसर शिराज ने प्रधान तथा गौण व्यय को पुन: चार भागों में विभक्त किया है-

1. सुरक्षा व्यय, जिसमें सामुद्रिक, स्थल एवं हवाई सेना व सुरक्षा संबंधी व्यय भी सम्मिलित किए जाते हैं।
2. इस श्रेणी के व्यय के अंतर्गत न्याय व्यवस्था, पुलिस प्रशासन- व्यवस्था, जेल आदि पर किया जाने वाला व्यय आता है।
3. तीसरी श्रेणी के व्ययों में मुख्य रूप से विधानसभा, संसद तथा मंत्रालयों, देश-विदेश में भेजे जाने वाले राजनीतिज्ञों पर किया जाने वाला व्यय आता है।
4. इस श्रेणी में ऋण संबंधी व्ययों को जो उत्पादक तथा अनुत्पादक दोनों हो सकते हैं, रखा गया है।

8.3.5 मिल का वर्गीकरण

मिल ने सार्वजनिक व्यय को दो भागों में बांटा है- आवश्यक व्यय तथा ऐच्छिक व्यय।

आवश्यक व्यय वे होते हैं, जिनको हम गहन व्यय या परंपरागत व्यय कह सकते हैं। इन विषयों को सरकार प्राचीन काल से करती आ रही है और यह व्यय सरकार को अनिवार्य रूप से करने होते हैं, जैसे- सेना व नागरिक प्रशासन पर किया जाने वाला व्यय। ऐच्छिक व्यय वे होते हैं, जिन्हें करने के लिए सरकार को बाध्य नहीं किया जा सकता है। ऐसे बयानों के अंतर्गत सामाजिक कल्याण संबंधी कार्यों पर किया जाने वाला व्यय शामिल होता है।

मिल के वर्गीकरण का आधार भी वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि वर्तमान समय में हम सरकार के किस कार्य को आवश्यक और किस कार्य को अनावश्यक करें यह निर्धारित नहीं किया जा सकता है। लोक कल्याणकारी राज्य के अंतर्गत तो बेकारी भी और शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय भी अनिवार्य है, ऐसी स्थिति में ऐच्छिक व्यय कौन सा होगा, कहना कठिन है। जो व्यय कभी ऐच्छिक था वह अब आवश्यक हो गया है।

8.3.6 डाल्टन का वर्गीकरण

प्रोफेसर डाल्टन ने सार्वजनिक व्यय को इस आधार पर वर्गीकृत किया है कि, क्या सरकार को व्यय के बदले में कोई सेवाएं प्राप्त होती है या नहीं? उन्होंने सार्वजनिक व्यय को दो श्रेणियों में विभक्त किया- अनुदान और क्रय-विक्रय संबंधी व्यय।

यही कारण है की डाल्टन का वर्गीकरण राजस्व वसूली से भिन्न है। परंतु निकोलसन के वर्गीकरण पर आधारित है। वह दो प्रकार की स्थितियों बताता है। उदाहरण के लिए- जब राज्य धन व्यय करता है तथा बदले में उसे कुछ सेवाएं वस्तुएं प्राप्त होती हैं। उसे खरीद मूल्य कहा जाता है। जैसे कि, सरकारी कर्मचारियों का वेतन तथा फर्नीचर जो खरीद के लिए दिया गया 'खरीद मूल्य' इत्यादि। जब सरकार धन खर्च करती है तथा उसके बदले में कोई सेवाएं या वस्तुएं प्राप्त नहीं होती है तो उस व्यय को 'अनुदान' का जैसे कि, गरीबों को दी गई आर्थिक सहायता आदि। यदि कोई सार्वजनिक प्राधिकरण किसी वस्तु या सेवा हो प्रचलित बाजार मूल्य से उच्च मूल्य पर खरीद कर रहा है तो खरीद मूल्य में अनुदान का तत्व शामिल होगा। इसी प्रकार यदि सरकार किसी वस्तु या सेवा को उसकी लागत से कम मूल्य पर बेच रही है तो वह प्रथाओं के लिए अनुदान होगा। प्रोफेसर डाल्टन के अनुसार यदि भूतकाल के संदर्भ में देखा जाए तो सार्वजनिक ऋण पर ब्याज तथा पेंशन इत्यादि अनुदान ही है। इसी प्रकार पेंशन भूतकाल में किए गए कार्य के लिए किया जाने वाला भुगतान है। प्रोफेसर डाल्टन इसे अनुदान ही मानते हैं, हालांकि इसका विश्लेषण खरीद मूल्य के अनुरूप करना चाहिए।

डाल्टन ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अनुदान में भी अंतर किया है। उनके अनुसार अनुदान वह है जिसका सारा लाभ अनुदान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को ही प्राप्त होता है (जैसे कि वृद्ध आयु पेंशन) जबकि अप्रत्यक्ष अनुदान वह है जहां पूरा लाभ या आंशिक लाभ अन्य व्यक्तियों को दे दिया जाता है। यह वर्गीकरण तर्कसंगत लगता है इसमें अंतर को स्पष्ट देखा जा सकता है। हालांकि यह निर्णय करना संभव नहीं है कि किसी भी सार्वजनिक व्यय का कितना अंश अनुदान के रूप में है तथा कितना खरीद मूल्य के रूप में है। वास्तव में अनुदान तथा खरीद मूल्य में बहुत कम तथा अस्पष्ट अंतर है। इसीलिए इस वर्गीकरण को भी सुघड़ व पूर्ण वर्गीकरण नहीं माना जा सकता है। परंतु फिर भी इस वर्गीकरण को सर्वाधिक संतोषजनक माना जाता है।

8.3.7 प्रोफेसर जे. के. मेहता का वर्गीकरण

प्रोफेसर मेहता ने सार्वजनिक व्यय को दो भागों में विभाजित किया है- स्थिर व्यय और अस्थिर व्यय।

1. स्थिर व्यय- जिन व्यक्तियों के लिए यह व्यय किया जाता है, यदि वे एक व्यय का अधिकाधिक उपयोग करते भी हैं, तो भी इस व्यय में वृद्धि नहीं की जा सकती है। उदाहरण के तौर पर- सुरक्षा संबंधी व्यय।

2. अस्थिर व्यय- यह व्यय विकास के कार्यक्रमों में किया जाता है और लगातार बढ़ता ही जाता है। जैसे- शिक्षा, डाक, तार आदि सेवाओं पर किया जाने वाला व्यय। इस वर्गीकरण की व्याख्या करते हुए प्रोफेसर मेहता ने कहा कि हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि कोई एक व्यय पूर्णतया एक ही वर्ग में आ सकता है। प्रत्येक व्यय पूर्ण या आंशिक रूप से एक वर्ग में आ सकता है, जैसे, डाक सेवा का संपूर्ण व्यय अस्थिर नहीं है। यदि लोग अधिक पत्र लिखने लगे या अधिक लिफाफे और पोस्टकार्ड खरीदने लगे, तो इसके लिए सरकार को न तो अधिक पोस्टमैन रखने होंगे और ना ही अधिक डाकखाने खोलने होंगे। इस प्रकार प्रत्येक व्यय में आंशिक रूप से स्थिर व अस्थिर व्यय का भाग रहता है।

इस वर्गीकरण के आधार को स्पष्ट करते हुए प्रोफ़ेसर मेहता ने लिखा है कि ‘‘वर्गीकरण का आधार सार्वजनिक व्यय की प्रकृति है- यह व्यक्तियों के वर्गों के लिए है या व्यक्तियों के लिए, यह इस प्रकार का है कि लोग इसको नियंत्रित कर सकते हैं या नहीं कर सकते। यह वित्त शास्त्री के दृष्टिकोण से भी लाभदायक है, क्योंकि वह जानना चाहता है कि वह कहां तक अपने व्यय के अनुमान पर निर्भर रह सकता है और कहां तक व्यक्तियों को राज्य द्वारा प्रदान सेवाओं के उपयोग के निर्णय पर निर्भर करता है।’’

इस वर्गीकरण की उत्कृष्टता यह है कि सरकार की दृष्टिकोण से सार्वजनिक व्यय लागत है। जैसे कि सार्वजनिक राजस्व के प्रकरण में आय हैं। सभी लागतों की तरह इनका विभाजन भी स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों में किया जाता है। यह याद रखने योग्य बात है कि हमारा निश्चित व्यय पूरक तथा परिवर्तनशील या प्रमुख लागतो के समान है। इसलिए यह वर्गीकरण संतोषजनक है। परंतु उसी समय बहुत से अर्थशास्त्रियों ने यह कहते हुए की आलोचना की हो कि यह त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि यह कल्पना करता है कि राज्य अन उत्पादक व्यय भी कर सकता है।

8.3.8 रॉशर का वर्गीकरण

रोशन ने सार्वजनिक व्यय को तीन भागों में वर्गीकृत किया है- आवश्यक व्यय, उपयोगी व्यय और अनावश्यक व्यय।

आवश्यक व्यय वह है जो राज्य सरकार को करना ही पड़ता है तथा उसे टाला नहीं जा सकता। उपयोगी व्यय वह है जो वांछित है पर उसे कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है। अनावश्यक व्यय वह है जिसे सरकार करें या ना करें।

सामान्य श्रेणियों से व्यय का यह वर्गीकरण वास्तव में सार्वजनिक व्यय की मूलभूत समस्या का समाधान करता है। सार्वजनिक व्यय के गुण-दोष राज्य के बदलते हुए दायित्व एवं गतिविधियों के साथ बदलते जा रहे हैं, जो व्यय कभी अनावश्यक माना जाता था वह अब आवश्यक एवं उपयोगी बन गया है। यह मानना ठीक नहीं है कि राज्य द्वारा अनावश्यक खर्च किया जाता है। यदि सरकार ऐसे व्यय करेगी तो वह आर्थिक कल्याण या अधिकतम सामाजिक लाभ को प्राप्त नहीं कर सकती है। वास्तव में आज कल किसी भी लोकतांत्रिक राज्य में अनावश्यक व्यय नहीं किया जाता। जो व्यय आवश्यक है वह उपयोगी है तथा जो व्यय उपयोगी नहीं है वह भी आवश्यक है। संक्षेप में यह वर्गीकरण स्वीकार नहीं किया जा सकता।

8.3.9 पीगू का वर्गीकरण

प्रोफेसर पीगू ने सार्वजनिक व्यय को दो भागों में बांटा है- हस्तांतरित होने वाला व्यय तथा (Transferable expenditure) और अहस्तांतरित व्यय (Non -Transferable expenditure)

प्रोफेसर पीगू के अनुसार हस्तांतरित व्ययव र्तमान राष्ट्रीय संसाधन सेवा की खरीद से संबंध होता है। सरकारी ऋण के ब्याज के भुगतान हेतु किया गया जो व्यय, पेंशन, बीमारी लाभ इत्यादि इस व्यय के अंतर्गत आते हैं। इसी प्रकार अहस्तांतरित व्यय वह होता है जो लोगों को अनुग्रह के रूप में भुगतान किया जाता है या वर्तमान संपदा

अधिकार के व्यय हेतु। उदाहरण के लिए फौज, नौसेना तथा वायु सेना के भवनों के रखरखाव पर किए जाने वाला व्यय, सिविल सेवाओं, शिक्षा सेवा, न्यायालयों, डाक घरों पर किया जाने वाला व्यय अहस्तांतरित व्यय कहलाता है। वास्तव में अहस्तांतरित व्यय का अर्थ है, सेवाओं तथा वस्तुओं का वास्तविक प्रयोग। जबकि हस्तांतरित व्यय, किसी प्रकार भी आय को उत्पन्न नहीं करते हैं। उदाहरण के लिए जब कोई भी राज्य सेना में किसी सिपाही की भर्ती करता है तो उसकी सेवाओं के लिए भुगतान करता है, परंतु उसकी सेवाओं का अन्य वैकल्पिक उपयोग के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता।

हस्तांतरित व्यय का अर्थ होता है सेवाओं वस्तुओं के अधिकार का अंतरण। अब सरकार के स्थान पर वह लाभ प्राप्त करता को प्राप्त होता है। दूसरी ओर, अहस्तांतरित व्यय राष्ट्र की वर्तमान सेवाओं और संसाधनों के वास्तविक उपयोग को संभव बनाता है। हालांकि पीगू का वर्गीकरण तर्कपूर्ण है, सार्वजनिक व्यय से संबंधित है फिर भी इसमें अनेक भ्रांतियां हैं तथा यह भी हस्तांतरित एवं अहस्तांतरित व्यय में स्पष्ट अंतर प्रस्तुत नहीं करता है।

8.3.10 आर्थिक वर्गीकरण

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विकासशील तथा विकसित देशों ने सामाजिक लेखा प्रणाली को अपनाया है। ताकि सरकार के बजट की व्यवहारों का वर्गीकरण किया जा सके और राज्य की राजकोषीय गतिविधियों की उपयोगी व्याख्या की जा सके। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1958 में अपने बजट के क्रियात्मक तथा आर्थिक वर्गीकरण के लिए ‘A Manual For Economic And Functional Classification of Government Transactions’ तैयार किया था, इसमें प्रत्येक शीर्ष का सार्वजनिक व्यय दो भागों में बांटा- राजस्व लेखा तथा पूंजी लेखा। अन्य शब्दों में इसका यह अर्थ है कि सरकारी आय को दो भागों में बांटा जा सकता है- राजस्व तथा पूंजी लेखा और सरकारी संवितरण को राजस्व व पूंजी लेखा के रूप में।

भारत में केंद्रीय बजट में बजटीय व्यवहार का वर्गीकरण 1957 -58 से लागू है। भारत में राजस्व व्यय में प्रशासन, सुरक्षा तथा सार्वजनिक व्यवसायिक संस्थानों जैसे- रेलवे, डाक, टेलीग्राफ इत्यादि पर होने वाले सभी चालू खर्च शामिल रहते हैं, जबकि पूंजी व्यय में सुरक्षा तथा सार्वजनिक व्यवसायिक संस्थानों की सभी पूंजी व्यवहारों को शामिल किया जाता है। पूंजी व्यय को सकल स्थिर पूंजी संपत्ति सूची में वृद्धि तथा अंतरण जैसे दो शीर्षों में बांटा जाता है। सकल स्थिर पूंजी में भवनों, निर्माण, मशीनरी, उपकरण इत्यादि पर होने वाला व्यय शामिल किया जाता है, जबकि वृद्धि शीर्ष में तो तथा खाद्यान्नों इत्यादि पर होने वाला खर्च शामिल किया जाता है। पूंजी अंतरण में पूंजी निर्माण के लिए राज्यों तथा संघीय शासित प्रदेशों को दी जाने वाली अनुदान राशि भी शामिल होती है।

8.4 निष्कर्ष

सार्वजनिक व्यय के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उन विषयों तथा वस्तुओं के प्रभावों और कार्यकुशलता का अध्ययन करना है, जिसके लिए धन आवंटित किया गया है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए सार्वजनिक व्यय का विभिन्न मदों में उचित वर्गीकरण तथा विभिन्न आवश्यक मदों की व्याख्या अत्यंत आवश्यक तथा पहली शर्त है।

अभ्यास प्रश्न-

1. ‘‘धन सरकार की अपेक्षा लोगों के हाथों में अधिक फलदायी सिद्ध हो सकता है।’’ यह कथन किसके द्वारा कहा गया?
2. सार्वजनिक व्यय के वर्गीकरण के कोई दो आधार बताइए।
3. लाभ के आधार पर वर्गीकरण किसके द्वारा दिया गया था?
4. कौन सा वर्गीकरण सार्वजनिक व्यय को आवश्यक तथा ऐच्छिक विषय की श्रेणी में वर्गीकृत करता है?

5. प्रोफेसर मेहता ने सार्वजनिक व्यय को किन दो भागों में बांटा?

8.5 सारांश

सार्वजनिक व्यय केवल एक वित्तीय कार्यवाही ही नहीं है, बल्कि इसके कई सामाजिक लक्ष्य होते हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों के द्वारा सार्वजनिक व्यय का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। परंतु यह वर्गीकरण सार्वजनिक व्यय की परिवर्तित स्थिति की जांच नहीं करते। बल्कि यह एक ही वस्तु को ही अलग तरीके से प्रस्तुत करते हैं।

8.6 शब्दावली

राजस्व व्यय- सरकारी विभागों के सामान्य संचालन के लिए किया जाता है।
पूंजी बजट- इसके तहत पूंजी प्राप्तियां तथा भुगतान शामिल रहते हैं।
योजना व्यय- यह केंद्र सरकार के कुल व्यय का एक बड़ा हिस्सा होता है।
राजस्व बजट- इसके तहत सरकार की राजस्व प्राप्तियां तथा इस राजस्व में से किया गया व्यय शामिल रहते हैं।

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रॉबर्ट पील, **2.** लाभ के आधार पर वर्गीकरण, कार्य के आधार पर वर्गीकरण, **3.** जर्मन अर्थशास्त्री काहन तथा अमेरिकी अर्थशास्त्री प्लेहन, **4.** मिल का वर्गीकरण, **5.** स्थिर व्यय तथा अस्थिर व्यय

8.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. लेखी,आर.के., 2009. लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. पंत, जे.सी., 2005. लोक अर्थशास्त्र; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, एस.के.2009.लोक वित्त के सिद्धांत तथा भारतीय लोक वित्त; साहित्य भवन पब्लिकेशन: आगरा।

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सार्वजनिक व्यय के वर्गीकरण पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
2. सार्वजनिक व्यय के किन्ही दो वर्गीकरण को विस्तार से समझाइए।
3. सार्वजनिक व्यय के लाभ तथा कार्य के आधार पर वर्गीकरण पर एक लेख लिखें।

इकाई- 9 सार्वजनिक व्यय का सिद्धांत एवं विकास

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 सार्वजनिक व्यय के लक्ष्य
9.3 सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत
9.3.1 सार्वजनिक व्यय के शुद्ध सिद्धांत
9.3.1.1 पीगू का भुगतान करने की क्षमता का सिद्धांत
9.3.1.2 लाभ सिद्धांत
9.3.1.3 सैम्यूल्सन का सिद्धांत
9.3.1.4 जोहनसन का सिद्धांत
9.3.2 सार्वजनिक व्यय के सामान्य सिद्धांत
9.3.3 अन्य सिद्धान्त
9.4 सार्वजनिक व्यय की वृद्धि के कारण
9.5 निष्कर्ष
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

सार्वजनिक वित्त में सार्वजनिक व्यय की अवधारणा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। 19वीं शताब्दी के अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक व्यय की ओर बहुत कम ध्यान दिया था। इसका कारण संभवत: यह रहा कि केंद्रीय, राज्य तथा स्थानीय सरकारों के व्यय में कोई सार्थक वर्गीकरण नहीं किया गया था। सार्वजनिक व्यय के लिए कोई सिद्धांत नहीं बनाए गए थे। मूलतः सरकार के कार्य- न्याय, पुलिस एवं सुरक्षा तक ही सीमित थे। उनका भी विश्वास था कि सरकारी व्यय कुल मिलाकर फजूल खर्च है तथा उसे सरकार की अपेक्षा निजी लोगों के द्वारा बेहतर ढंग से खर्च किया जा सकता है। बदलते समय के साथ स्थितियाँ परिवर्तित हो गई तथा आर्थिक गतिविधियां भी जटिल हो गई जिससे अर्थशास्त्रियों को सार्वजनिक व्यय की ओर अधिक ध्यान देना पड़ा। इस प्रकार आधुनिक युग में सार्वजनिक व्यय को बहुत महत्व प्राप्त हुआ है। समाज कल्याण, आर्थिक प्रगति तथा नागरिकों की सामूहिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए केंद्रीय, राज्य तथा स्थानीय सरकारों द्वारा किया जाने वाले व्यय को सार्वजनिक व्यय कहते हैं। विकास कार्यों में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, सिंचाई, नेहरू, जल निकास, सड़कें, इमारतें इत्यादि शामिल है। सामाजिक कल्याण के इन कार्यो ने सार्वजनिक व्यय को बढ़ा दिया है। संक्षेप में, जिस प्रकार अर्थशास्त्र के अध्ययन में उपभोग महत्वपूर्ण है, बिल्कुल उसी प्रकार लोक वित्त के अध्ययन में सार्वजनिक व्यय ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। आज बीसवीं शताब्दी में सरकार की अवधारणा में

मूलभूत परिवर्तन हुआ है। वर्तमान युग में राज्य को कल्याणकारी राज्य कहा गया है, जिसमें सरकार को बहुत से कार्य करने होते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में हम सार्वजनिक व्यय के विभिन्न सिद्धांतों पर चर्चा करेंगे।

9.1 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सार्वजनिक व्यय के लक्ष्यों के बारे में जान पायेंगे।
- सार्वजनिक व्यय के शुद्ध एवं सामान्य सिद्धांतों को समझ पाएंगे।
- सार्वजनिक व्यय की वृद्धि के विभिन्न कारणों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

9.2 सार्वजनिक व्यय के लक्ष्य

सार्वजनिक व्यय केवल एक वित्तीय कार्यवाही ही नहीं है बल्कि, इसके कई सामाजिक लक्ष्य भी होते हैं। परंपरावादी अर्थशास्त्रियों ने अपनी संकुचित विचारधारा में कहा है कि सरकार को सामान्य गतिविधियों में बहुत कम हस्तक्षेप करना चाहिए। सरकार ही केवल एक ऐसा माध्यम है जो राजनीतिक संगठन को उचित रूप से रख सकती है। परंतु सन 1930 के पश्चात जे.एम. केन्ज़ ने आर्थिक विचारों से क्रांति ला दी। केन्ज़ और उनके बाद के अर्थशास्त्रियों ने सोचा कि कुछ निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सार्वजनिक व्यय की महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रोफेसर डाल्टन ने सार्वजनिक व्यय के लक्ष्य तथा उद्देश्यों को दो भागों में बांटा है- बाहरी आक्रमण और आंतरिक व्यवस्था एवं अन्याय के विरुद्ध मानवीय सुरक्षा और समुदाय के अधिकतम सामाजिक कल्याण को प्रोत्साहन।

इस प्रकार एक तरफ जहां इसका लक्ष्य सामाजिक और आर्थिक कल्याण को अधिकतम करना है, वहीं दूसरी ओर बाजार अर्थव्यवस्था में मंदी की प्रवृत्ति पर नियंत्रण करना भी है। सार्वजनिक व्यय का लक्ष्य अधिकतम निवेश करके पूर्ण रोजगार और वृद्धि की स्थिति को बनाए रखना भी होता है। इस की प्रवृत्ति आंतरिक संरचना का निर्माण करके और भविष्य में वृद्धि के लिए पूंजी निर्माण को प्रोत्साहित करके आर्थिक विकास में तेजी लाना भी होता है।

प्रोफेसर मुस्ग्रेव ने एक परिपक्व अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक व्यय के कुछ दायित्व का निर्धारण किया है, जैसे-

1. संसाधनों के पुनः आवंटन को प्राप्त करना और मार्केट अर्थव्यवस्था की अपूर्णताओं को सीमित करना।
2. संसाधनों की असमानता को कम करने के तरीके अपनाना और साधनों का पुनः आवंटन करना।
3. व्यापारिक उतार-चढ़ाव को कम करके आर्थिक स्थिरता को बनाए रखना।
4. समुदाय के लाभ के लिए व्यवसायिक गतिविधियों को बनाए रखना।

9.3 सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत

पुराने समय में परंपरावादी सिद्धांतवादियो ने सार्वजनिक व्यय की वृद्धि के किसी सिद्धांत पर अधिक ध्यान नहीं दिया। उन्होंने इसे केवल एक प्रशासनिक संस्था माना था, जिसका संबंध केवल कुछ सुरक्षात्मक कार्य से था। राज्यों को सार्वजनिक सेवाओं के लिए बहुत कम व्यय करना होता था। परंतु बीसवीं शताब्दी में सरकार की अवधारणा में मूलभूत परिवर्तन हुआ। वर्तमान युग में राज्य को कल्याणकारी राज्य कहा गया है। जिसमें सरकार को बहुत से कार्य करने होते हैं। सर्वप्रथम वैगनर (Adolph Wagner) ने अपने राजकोषीय सिद्धांत में कहा कि सरकार के आकार में अधिक वृद्धि होती है।

अतः बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय के सिद्धांतों को दो भागों में बांटा जा सकता है- सार्वजनिक व्यय के शुद्ध सिद्धांत और सार्वजनिक व्यय के सामान्य सिद्धांत।

9.3.1 सार्वजनिक व्यय के शुद्ध सिद्धांत

बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय के शुद्ध सिद्धांतों को चार भागों में बांटा गया है- पीगू का भुगतान करने की क्षमता का सिद्धांत, लाभ सिद्धांत, सैम्यूल्सन का सिद्धांत और जोहनसन का सिद्धांत। आईये इनकी चर्चा करते हैं-

9.3.1.1 पीगू का भुगतान करने की क्षमता का सिद्धांत

प्रोफेसर पीगू (Pigou)ने सार्वजनिक व्यय के अनुकूलतम स्तर के निर्धारण में भुगतान के क्षमता को बहुत अधिक महत्व दिया है।इन्होंने विचार व्यक्त किया है कि चालू अंतरण व्यय- ऋण सेवाएं, जैसे पेंशन, वृद्धावस्था पेंशन, व्यवहार में परंपरागत अपरिवर्तनीय संविदाओं के आधार पर संचालित होते हैं। लेकिन गैर-अंतरण व्यय का एक बड़ा भाग ऐच्छिक होता है। सार्वजनिक व्यय के ऐच्छिक भाग, जिसमें अंतरण और गैर-अंतरण व्यय दोनों शामिल होते हैं, को उस वित्तीय भाग के संदर्भ में नियमित करने की आवश्यकता है, जो उनकी वित्त व्यवस्था के संदर्भ में उठाना पड़ा। इसके लिए उन्होंने एक संतुलन सिद्धांत का प्रतिपादन किया जो सीमांत की अवधारणा पर आधारित है। सार्वजनिक व्यय की राशि को उस अनुकूलतम बिंदु पर निर्धारित किया जा सकता है। जहां पर खर्च किए गए रुपए से उतनी ही संतुष्टि प्राप्त हो जाती है, जितनी की रुपए को खोने में संतुष्टि की हानि हुई थी।

लिंदाहल के स्वैच्छिक विनियम सिद्धांत में लाभ सिद्धांत के आधार पर सार्वजनिक व्यय के अनुकूलतम बिंदु का निर्धारण किया गया है। जिसमें बाद में जोनसैन व वोओन(Johansen and Bowen) द्वारा सुधार किया गया। सैम्यूल्सन और मुसग्रेव (Samuelson and Musgrave) द्वारा नवीनतम विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

लिंदाहल के स्वैच्छिक विनियम सिद्धांत के अंतर्गत लिंदाहल के अनुसार, ''समुदाय में समूहों के बीच करों के भार के वितरण के संबंध में सार्वजनिक व्यय का निर्धारण होता है। इस बार के लिए वितरण अनुपात वही भूमिका निभाता है जो साधारण बाजार में पूर्ति और मांग के मध्य मूल्य का सामंजस्य।''

9.3.1.3 सैम्यूल्सन का सिद्धांत

सार्वजनिक व्यय के आधुनिक सिद्धांत का प्रारंभ 1954 से माना जाता है, जब सैम्यूल्सन ने अपने सिर्फ 3 पृष्ठों के लेख "The Pure Theory Of Public Expenditure" को प्रकाशित किया। यह लेख सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत को गणितीय रूप में पेश करता है। एक वर्ष के पश्चात 1955 में इसे ज्यामिति की सहायता से प्रस्तुत किया गया, जिस कारण यह अधिक लोगों की पहुंच के अंदर आ गया। सैम्यूल्सन का कहना है कि विकसेल, लिंडल, मसग्रेव तथा बोवेन को छोड़कर अन्य अर्थशास्त्रियों ने अधिकतम सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत की उपेक्षा की है तथा अपना अधिकांश समय करारोपण के सिद्धांत में ही लगाया है। इस कमी को दूर करने के लिए उन्होंने अधिकतम सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत को अपने लेखों में प्रस्तुत किया। जिस रूप में इसे सैम्यूल्सन ने लिखा उसका विकास इडली, ऑस्ट्रिया तथा स्वीडन के अर्थशास्त्रियों ने 1880 तथा 1920 के मध्य किया था। किंतु सैम्यूल्सन का सिद्धांत इन अर्थशास्त्रियों के सिद्धांतों से इस अर्थ में भिन्न है कि सैम्यूल्सन ने लोक व्यय(अर्थात सामाजिक वस्तु) के सिद्धांत को पैरेटो के अधिकतम कल्याण की शर्तों के विस्तार के रूप में प्रस्तुत किया, बजट नीति के निर्धारण की प्रक्रिया में सुधार के रूप में नहीं। वस्तुतः बजट नीति के निर्धारण की प्रक्रिया से सैम्यूल्सन ने कार्यक्षमता की शर्तों को अलग ही रखा। सैम्यूल्सन के सामने समस्या यह थी कि वह अर्थव्यवस्था में साधनों का आदर्श आवंटन किस प्रकार होता है, जहां निजी वस्तुओं के साथ-साथ सार्वजनिक वस्तुओं का भी उत्पादन होता है। निजी वस्तुएं भी हैं जिनका उपभोग अलग-अलग मात्रा में विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा होता है तथा सभी उपभोक्ताओं के अलग-अलग उपभोग का कुल योग भी इन वस्तुओं की कुल उत्पत्ति होती है। सार्वजनिक वस्तुओं का उपयोग तभी उपभोक्ता सामान मात्रा में करते हैं। अतः विभिन्न उपभोक्ताओं के अलग-अलग उपभोग को जोड़कर इन वस्तुओं के कुल उत्पादन को प्राप्त नहीं किया जाता है। अब मान लें की उत्पत्ति संभावना सीमा तथा उपभोक्ता अधिमान दोनों प्रकार की वस्तुओं के लिए दिए हुए हैं। इस स्थिति में अधिकतम कल्याण संबंधी पैरेटो द्वारा दी गई कार्यक्षमता की शर्तों को यहां लागू किया जा सकता है। किंतु, निजी वस्तुओं के संबंध में जिन शर्तों

को लागू किया जाता है, वे सार्वजनिक वस्तुओं की शर्तों से भिन्न है। निजी वस्तुओं के अधिकतम उत्पादन के लिए आवश्यक है, उत्पादन में रूपांतर की सीमांत दर उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमांत दर के बराबर हो तथा प्रतिस्थापन कि यह सीमांत दर सभी उपभोक्ताओं के लिए भी समान हो। सार्वजनिक वस्तुओं की स्थिति में रूपांतर की सीमांत दर प्रतिस्थापन की सीमांत दर ओं के योग के बराबर होती है तथा प्रतिस्थापन की सीमांत दर सभी उपभोक्ताओं के लिए समान नहीं होती है, बल्कि अलग-अलग होती है। इन शर्तों के आधार पर कोई एक अधिकतम समाधान नहीं मिलता है बल्कि कई समाधान मिलते हैं। सामाजिक कल्याण फलन के प्रयोग से सर्वोत्तम समाधान (The optimum of optima) प्राप्त होता है जिसे सैम्यूल्सन ने सुखद बिंदु (Bliss Point) कहा है।

9.3.1.4 जोहनसन का सिद्धांत

जोहनसन का सार्वजनिक व्यय का शुद्ध सिद्धांत दी गई प्राथमिकताओं और आय का वितरण के अंतर्गत दो समस्याओं को हल करता है। यह निजी और सार्वजनिक वस्तुओं में कुल उत्पादन का बंटवारा तथा निजी वस्तुओं की कुल पूर्ति का 2 उपभोक्ताओं के मध्य बंटवारा है। यह सभी समाधान पेरेटो अनुकूलतम है, क्योंकि किसी के भी अलग होने में या तो एक उपभोक्ता को हानि होगी अथवा दूसरे को। अनुकूल स्थितियों में अनुकूलतम का निर्णय अधिकतम कल्याण की सामान्य समस्या के अंतर्गत सामाजिक उपयोगिता के फलन के आधार पर होगा।

9.3.2 सार्वजनिक व्यय के सामान्य सिद्धांत

प्रोफेसर ए.जी. बुचर (A.G.Bucher) जैसे कुछ अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक व्यय के संदर्भ में कुछ दिशा निर्देश दिए हैं, जिनका सरकारों को परिपालन करना चाहिए। उन्होंने कहा है “अभी तक कर नीति के अनुरूप व्यय नीति उपयुक्त रूप से विकसित नहीं हुई है, परंतु जब तक उपयुक्त स्तर का विकास नहीं हो जाता तब तक कुछ उद्देश्य और मूलभूत सिद्धांत विधायकों का मार्गदर्शन कर सकते हैं।”

इस प्रकार के नियम समस्या के समाधान में सहायक हो सकते हैं और यदि कोई रुकावट आती है तो उसे प्रथम चरण में ही रोका जा सकता है। इस संदर्भ में निम्नलिखित दिशा निर्देशों को अपनाया जाना चाहिए-

- यह समाज के कल्याण में वृद्धि करें।
- यह सामाजिक कल्याण को प्रोत्साहित करें।
- यह सुनिश्चित किया जाए कि निधि का उपयुक्त रूप से समाज कल्याण हेतु उपयोग हो रहा है।

वास्तव में सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत व्यक्ति कुशलता और उपयुक्तता का निर्धारण करते हैं। प्रोफेसर शिरास (Prof. Shirras)ने सार्वजनिक व्यय के सिद्धांतों का सुझाव देकर महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन सिद्धांतों का विस्तृत विवरण कुछ इस प्रकार से है-

1. **लाभ का सिद्धांत-** प्रोफेसर शिरास के अनुसार, “अन्य बातें समान रहने पर, सार्वजनिक व्यय इस प्रकार का होना चाहिए कि इससे महत्वपूर्ण सामाजिक लाभ प्राप्त हो, जैसे उत्पादन में वृद्धि संपूर्ण समाज की बाहरी आक्रमण तथा आंतरिक अशांति से रक्षा, तथा यथासंभव आय की विषमताओं में कमी। संक्षेप में लोक निधि का प्रयोग उन दिशाओं में किया जाना चाहिए जो कि सार्वजनिक क्षेत्र की दृष्टि से श्रेष्ठ हो अर्थात सार्वजनिक व्यय अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो।

   अतः इस नियम के अनुसार सार्वजनिक व्यय इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त हो। सार्वजनिक निधि किसी एक व्यक्ति विशेष समूह के लिए नहीं अपितु संपूर्ण समाज के हित के लिए व्यय होनी चाहिए। यह सिद्धांत अधिकतम कुल लाभ का पर्याय है।

सार्वजनिक व्यय का यह सामाजिक लाभ सिद्धांत उपभोक्ता के व्यवहार सिद्धांत सीमांत उपयोगिता के सिद्धांत के समान है। अतः सार्वजनिक अधिकारियों को साधनों का वितरण इस प्रकार से करना चाहिए ताकि उसके सभी प्रयोगों से प्राप्त सीमांत उपयोगिता बराबर हो। इस सिद्धांत का कोई विकल्प नहीं है। तथापि सार्वजनिक व्यय की कुछ मदों के लाभ का मापन कठिन है। संक्षेप में, लाभ सिद्धांत का लक्ष्य देश की उत्पादन और वितरण प्रणाली में सुधार लाना है।

2. **मितव्ययता का सिद्धांत-** इसका अर्थ है कि राज्य को मुद्रा के खर्च में मितव्ययी होना चाहिए। अर्थात फिजूलखर्ची तथा व्यर्थ के व्यय से बचना चाहिए। सार्वजनिक व्यय कुशल और उत्पादक होना चाहिए। अतः राज्य को आवश्यकता से अधिक खर्च नहीं करना चाहिए। उसे जहां तक संभव हो समाज के उत्पादन शक्तियों का विकास करना चाहिए। यही अर्थव्यवस्था का सही पहलू है। प्रोफेसर शिराज के अनुसार, "मितव्ययता का अर्थ है- करदाताओं के हितों की रक्षा के साथ-साथ राजस्व का विकास।" अतः राज्य द्वारा किए गए व्यय राजस्व में वृद्धि में सहायक होने चाहिए।
3. **स्वीकृति का सिद्धांत-** स्वीकृति का सिद्धांत सार्वजनिक व्यय से संबंधित नीति की सही प्रक्रिया और मध्यस्थों की समाप्ति तथा निर्धारित हितों के प्रभाव से संबंधित है। इसके अनुसार खर्च करने के लिए उच्च प्राधिकरण से अनुमति लेना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में कोई भी सार्वजनिक व्यय बिना उपयुक्त अनुमति के नहीं होगा। इसका अर्थ है कि प्रत्येक सरकारी प्राधिकरण को एक सीमा तक करने की स्वतंत्रता है, परंतु इस सीमा से अधिक व्यय करने के लिए उसे सक्षम अधिकारी से सही तौर पर अनुमति प्राप्त करनी होगी। इस सिद्धांत का लक्ष्य बेकार के खर्चों को रोकना है। इस सिद्धांत में यह भी निहित है की स्वीकृत धन का उपयुक्त ढंग से खर्च किया जाए ताकि उसका उचित रूप से प्रयोग हो। प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अंत में सार्वजनिक व्यय के लेखों का परीक्षण किया जाए। इससे बिना सोचे समझे और मध्यस्थों द्वारा किए गए खर्चों पर नियंत्रण स्थापित हो सकेगा।
4. **आधिक्य का सिद्धांत-** इस सिद्धांत का अभिप्राय है कि सरकार को घाटे से बचना चाहिए और आधिक्य का बजट बनाना चाहिए। उन्हें एक साधारण व्यक्ति की तरह आय से अधिक व्यय नहीं करना चाहिए। अतः हर एक को अपनी चादर के अनुसार ही पैर फैलाने चाहिए। इस संदर्भ में प्रोफेसर शिराज का मानना है कि, "सार्वजनिक प्राधिकरण को अपनी आय की प्राप्ति तथा वह साधारण व्यक्तियों के समान ही करना चाहिए। निजी वह के समान संतुलित बजट की सामान्य नीति होनी चाहिए। वार्षिक व्यय बिना नए साख के संतुलित किए जाएं।"

   यह सिद्धांत सुरक्षात्मक प्रतीत होता है। इसके अनुसार व्यक्ति को अपनी आय के अनुकूल ही व्यय करना चाहिए। इस प्रकार सार्वजनिक प्राधिकरणों के पास पर्याप्त राजस्व होना चाहिए जिससे ना केवल उनके वर्तमान खर्चे पूरे हों बल्कि उसमें भविष्य के लिए भी आधिक्य रहे। इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य को उधार नहीं लेना चाहिए बल्कि राज्य के पास ब्याज और ऋण चुकाने के लिए पर्याप्त राजस्व होना चाहिए। आधुनिक युग में संतुलित बजट को सदैव अच्छा नहीं माना जाता है। यह अर्थव्यवस्था की स्थिति पर निर्भर करता है। जब रोजगार और मूल्यों में स्थिरता की स्थिति हो तो वहां संतुलित बजट उपयुक्त रहता है। मूल्यों में वृद्धि की स्थिति में आधिक्य का बजट ज्यादा ठीक है, क्योंकि यह जनता की अतिरिक्त क्रय शक्ति को कम करता है। मंदी के समय घाटे का बजट की है, क्योंकि इससे जनता की क्रय शक्ति में वृद्धि होगी और प्रभावी कुल मांग में वृद्धि होगी और मांग तथा चालू उत्पादन में संतुलन होगा। परंतु आज के समय में आधिक्य के सिद्धांत का महत्व नहीं है।

9.3.3 अन्य सिद्धान्त

प्रोफेसर शिराज द्वारा बताए गए उपरोक्त सिद्धांतों के अलावा भी अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा कुछ और सिद्धांत भी सुझाए गए हैं। उन सभी सिद्धांतों का विस्तृत विवरण कुछ इस प्रकार है-

1. **लोच का सिद्धांत-** इसका अर्थ यह होता है कि सरकार की व्यय नीति में लोच होनी चाहिए। अर्थात देश की आवश्यकताओं के अनुसार सार्वजनिक व्यय के आकार और दिशा में परिवर्तन संभव होना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कठोर ना होकर लोचदार होनी चाहिए। सार्वजनिक व्यय इस प्रकार का होना चाहिए कि आपात स्थिति में संसाधनों को दूसरी ओर लगाया जा सके। परंतु इससे देश की अर्थव्यवस्था और अन्य विकास कार्यक्रमों पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।
2. **उत्पादकता का सिद्धांत-** उत्पादकता का सिद्धांत का अभिप्राय होता है कि सार्वजनिक व्यय से देश के उत्पादन को बढ़ावा मिलना चाहिए। अर्थात देश के सार्वजनिक व्यय का ज्यादा भाग उत्पादन और विकास कार्यों पर आवंटित किया जाना चाहिए। डॉक्टर ब्राइट सिंह (Dr. Bright Singh) के अनुसार अल्प-विकसित क्षेत्रों के लिए यह ठीक है, क्योंकि सामाजिक और सार्वजनिक सेवाओं तथा समुदाय के उपभोग की वृद्धि के लिए इन व्ययों में विस्तार की आवश्यकता है। जब से अल्प विकसित देशों में विकास कार्य प्रारंभ हुए हैं तब से इस सिद्धांत को महत्व मिला है। यह सिद्धांत अधिकतम उत्पादन और रोजगार के लक्ष्य पर आधारित है।
3. **समान वितरण का सिद्धांत-** इसका अर्थ है कि सार्वजनिक व्यय इस प्रकार से होना चाहिए कि संपत्ति और आय का वितरण समान हो। जिन देशों में गंभीर असमानता की स्थिति है, वहां पर इसका विशेष महत्व है। इसे समाज के गरीब वर्ग के लिए अधिक लाभकारी योजनाएं बनाकर प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण स्वरुप सार्वजनिक व्यय चिकित्सा, शिक्षा, मकान, वृद्धों को पेंशन इत्यादि पर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह समाज के कमजोर लोगों को प्राथमिकता देकर रोजगार के अवसरों में वृद्धि कर सकता है।
4. **अप्रभावीकरण का सिद्धांत-** इस सिद्धांत का अभिप्राय है कि सार्वजनिक व्यय का, उत्पादन, वितरण अथवा विनिमय के आर्थिक ढांचे पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। सार्वजनिक व्यय से उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि होनी चाहिए। आय और संपत्ति की असमानता में कमी आए और आर्थिक गतिविधियों तथा विनिमय संबंधों में वृद्धि हो। अप्रभावीकरण (Neutrality) को यहां पर स्थैतिकता के अर्थ में प्रयोग नहीं किया गया है जिससे अर्थव्यवस्था में स्थिरता आये। बल्कि इसका अर्थ है कि सार्वजनिक व्यय से उत्पादन-वितरण- विनिमय संबंधों पर प्रभाव ना पड़े।
5. **निश्चितता का सिद्धांत-** इसका अभिप्राय है कि सार्वजनिक अधिकारियों को सार्वजनिक व्यय के उद्देश्य और सीमा का स्पष्ट बोध होना आवश्यक है। खर्च करने वाली इकाई को इसकी राशि एवं लक्ष्यों का ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए खर्च करने से पहले उपयुक्त योजना का होना आवश्यक है। बजट बनाकर इसका अनुपालन किया जा सकता है। बजट के संपूर्ण वित्तीय वर्ष के लिए वित्तीय राशि एवं उद्देश्यों का पता लगता है। यह बजट ही है जिसके माध्यम से व्यय करने वालों को साधनों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। इस निश्चिता की अनुपस्थिति में राजकोषीय अनुशासन नहीं बनाए रखा जा सकता है और साथ ही साथ अनावश्यक खर्च में भी वृद्धि होती है।
6. **कार्यक्रमों का सिद्धांत-** इस सिद्धांत के अनुसार सार्वजनिक व्यय को विशिष्ट कार्यक्रमों द्वारा नियोजित किया जाए। स्पष्ट कार्यक्रमों के अभाव में सार्वजनिक निधि का विवेकपूर्ण उपयोग संभव नहीं है, क्योंकि सार्वजनिक व्यय लोक कल्याण की कुछ योजनाओं के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

अतः लोक निवेश के पूर्व निर्धारित कार्यक्रमों हेतु निश्चित धनराशि का आवंटन होना चाहिए। इसकी अनुपस्थिति में प्राथमिकता क्रम को बनाए रखना संभव नहीं होगा। ऐसा भी संभव है कि अधिक आवश्यक कार्यक्रमों के स्थान पर कम आवश्यक कार्यक्रमों पर सीमित साधनों को लगा दिया जाए।

7. **निष्पादकता का सिद्धांत-** यह सिद्धांत निष्पादन बजट की आवश्यकता पर बल देता है। जब किसी विशिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक वह किया जाए तो यह आवश्यक है कि समय समय पर उसके परिणामों का मूल्यांकन भी किया जाए और साथ ही जब आवश्यक हो तो आवश्यक कदम भी उठाए जाए। इस सिद्धांत के अनुपालन से निधि का सुचारु ढंग से उपयोग होगा और वे लक्ष्य प्राप्त हो सकेंगे जिनके लिए व्यय किया जा रहा है। निष्पादन पर पुनर्विचार प्राधिकरण को सदैव सतर्क रखेगा और निधि पर होने वाला व्यर्थ नहीं जाएगा और ना ही अधिक होगा।

9.4 सार्वजनिक व्यय की वृद्धि के कारण

पिछले कुछ वर्षों से लगभग संसार के सभी देशों में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की प्रवृत्ति पाई गई है। अहस्तक्षेप नीति की समाप्ति ने इस अवधि में इस प्रवृत्ति में काफी योगदान दिया है। सी.सी. प्लेहम मैं उचित ही कहा है, "सार्वजनिक गतिविधियों में वृद्धि के कारण सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है। यह वृद्धि विस्तृत एवं दोनों प्रकार की होती है। हर एक प्रकार की सरकार, केंद्रीय, मध्यस्थ एवं स्थानीय लगातार नए कर्तव्य अपने हाथ में ले रही हैं और लगातार पुराने कार्यों को संपन्न कर रही हैं और वह भी निरंतर बड़े पैमाने पर।"

इसीलिए आधुनिक कल्याणकारी सरकारों के सार्वजनिक व्यय में लगातार वृद्धि हो रही है। अगले पृष्ठों में हम सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए उत्तरदाई कारणों कारणों का विस्तृत निरीक्षण करेंगे।

1. **कल्याणकारी राज्य-** आधुनिक सरकारी कल्याणकारी हैं और अपने लोगों के आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन में सुधार लाना उनका लक्ष्य होता है। आम जनता के जीवन स्तर को ऊपर उठाना उनका नैतिक कर्तव्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु इन्हें बहुत से कल्याणकारी कार्य जैसे शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य इत्यादि अपने हाथ में लेने पड़ते हैं। पूंजीवादी अथवा समाजवादी सभी प्रकार की सरकारों के लिए यह सत्य है। उत्पादन और वितरण प्रणाली में सुधार लाने के लिए विधि एवं प्रशासनिक माध्यमों द्वारा भी सरकारी हस्तक्षेप को बढ़ावा मिलता है। राज्य समाज की बहुत ही मांगों को सामूहिक रूप से पूरा कर देता है जो कि पहले व्यक्तिगत रूप से संतुष्ट की जाती थी। Keynes एवं कई अन्य विचारकों का ऐसा विचार है कि विकसित देशों में स्थिरता और अल्प विकसित देशों में विकास दर में वृद्धि लाने के लिए सरकार का हस्तक्षेप अत्यधिक आवश्यक होता है। सामाजिक बीमा, बेरोजगारी कम करना, सस्ती चिकित्सा सुविधाएं, वृद्धावस्था पेंशन, आवास सुविधा इत्यादि कुछ नए कार्य हैं जिन्हें सरकार ने अपने ऊपर ले लिया है। सरकार को समाज की सामाजिक असमानता को भी कम करना होता है। भारत जैसे अल्प विकसित देशों में राज्य का व्यय इन सभी कारणों के कारण अत्यधिक तेजी से बढ़ रहा है।
2. **सरकार का प्रजातांत्रिक और समाजवादी ढांचा-** विश्व में प्रजातंत्रात्मक समाजवादी ढांचे के प्रसार से भी एक बड़ी सीमा तक सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई है। सरकार का प्रजातांत्रिक स्वरूप अन्य स्वरूपों से ज्यादा महंगा होता है। उदाहरण के तौर पर भारत में प्रजातंत्र काफी महंगा सौदा है। चुनावों, उपचुनावों और प्रशासनिक व्यवस्था पर व्यय में निरंतर वृद्धि हो रही है। सत्ता दल को नई नीतियों पर अत्यधिक वह करके लोगों का मत अपनी और करने का निरंतर प्रयास करते रहना होता है। इसके अतिरिक्त उन्हें चुनावों में की गई घोषणाओं को भी पूरा करना होता है। इसी प्रकार पूंजीवादी विचारधारा से समाजवादी विचारअनुच्छेद- की ओर परिवर्तन के फलस्वरुप सरकार को बहुत से सामाजिक कार्य करने होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र और राष्ट्रीयकरण दोनों ही सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण होते हैं।

3. **सुरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति-** विज्ञान और तकनीकी में हुए तेजी से विकास के कारण आज विश्व के सभी राष्ट्रों को परमाणु अस्त्रों से बाहरी आक्रमणों का खतरा अधिक बढ़ गया है। संपूर्ण विश्व की राजनीतिक स्थिति अनिश्चित एवं असुरक्षित हो गई है। यदि एक देश अपने सुरक्षा साधनों को मजबूत बनाता है तो अन्य देशों को भी आत्मरक्षा में अपने सुरक्षा साधनों में वृद्धि करनी होती है। आधुनिक परमाणु अस्त्रों का निर्माण, प्रशिक्षण अथवा सेना का नियोजन बहुत ही महंगा काम है। युद्ध तकनीक में परिवर्तन आता रहता है और इस परिवर्तन के साथ-साथ सेना के लिए नए प्रकार के हथियारों की खरीद भी आवश्यक हो जाती है। यह सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। आधुनिक समय को देखते हुए जब महामारी ने विश्व के सभी देशों को अपनी चपेट में ले लिया है, ऐसे में यह भी एक कारण हो जाता है कि सरकार के सार्वजनिक व्यय में में अचानक से महत्वपूर्ण वृद्धि हो जाती है।
4. **कृषि विकास-** भारत जैसे विकासशील देश में अर्थव्यवस्था की प्रगति का मूल तत्व कृषि विकास में ही निहित है। सरकार को कृषि तथा औद्योगिकि क्षेत्र के प्रभाव का पता होना चाहिए। कृषि एवं गैर-कृषि क्षेत्रों के अंतर्संबंध दोनों क्षेत्रों के विकास का कारण होते हैं। कृषि क्षेत्र का विस्तार औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहित करता है। औद्योगिकीकरण से कृषि को आधुनिक यंत्र मिलते हैं जो कृषि की उत्पादकता में सहायक होते हैं। सरकार कृषि क्षेत्र पर बहुत अधिक व्यय कर रही है जिससे ऋण, खाद, कीटनाशक इत्यादि सभी कृषि से संबंधित सामान कम मूल्य पर उपलब्ध हो सके। सरकार कृषि अनुसंधान और संरक्षण कार्यो पर भी बहुत व्यय कर रही है।
5. **शहरीकरण-** आधुनिक युग में बढ़ते हुए सापेक्ष सरकारी व्यय का एक और कारण शहरीकरण भी होता है। इन क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि के साथ नागरिक तथा प्रशासनिक व्ययों में वृद्धि की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। आजकल जल आपूर्ति, बिजली, यातायात, सड़कों का रखरखाव, शैक्षिक संस्थान, यातायात नियंत्रण, सार्वजनिक स्वास्थ्य इत्यादि व्ययों में अत्यधिक वृद्धि हुई है। अतः नागरिक सुविधाओं में वृद्धि भी सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक कारण मानी जाती है।
6. **ग्रामीण विकास योजनाएं-** भारत जैसे विकासशील देशों में सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर बहुत बड़ी राशि व्यय करनी होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग निवास करता है। सरकार को ग्रामीण जनसंख्या के कल्याण हेतु समुदाय विकास परियोजनाएं एवं अन्य सामाजिक योजनाएं अपनानी होती है। भारत में गरीबी उन्मूलन हेतु बहुत सी योजनाएं अब तक अपनाई जा चुकी हैं।
7. **औद्योगिक विकास-** महामंदी के पश्चात सरकार ने औद्योगिक विकास में भी सक्रिय भागीदारी निभाई है। वास्तव में इससे बेहतर जीवन, उच्च स्तर, कुशलता में वृद्धि और पर्याप्त स्तर तक सभी वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि आती है। इसके अतिरिक्त सरकार एकाधिकार को भी नियंत्रित करती है और कम लागत पर उपभोक्ता को वस्तुएं एवं सेवाएं प्रदान करती है। इन सभी कारणों से सार्वजनिक व्यय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।
8. **जनसंख्या में वृद्धि-** जनसंख्या में वृद्धि भी सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक कारण है, क्योंकि सरकार को विभिन्न कार्य करने के लिए मुद्रा की आवश्यकता होती है। वास्तव में भारत जैसे गरीब देश के लिए जनसंख्या में वृद्धि देश के विकास के लिए एक भयानक खतरा भी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण सरकार को भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा आदि सार्वजनिक व्यय का एक बड़ा भाग व्यय करना पड़ता है।

9. **यातायात और संचार में वृद्धि-** यातायात और संचार में विस्तार के साथ-साथ राज्य को कुशल यातायात प्रणाली का रखरखाव करना भी आवश्यक होता। सरकार को यह सभी सेवाएं बिना लाभ एवं बिना हानि के ही उपलब्ध करानी होती है। अल्पविकसित और पिछड़े देशों की सरकारों को रेलवे, सड़क और संचार पर बहुत बड़ा निवेश करना पड़ता है, ताकि आम जनता को इन सब सुविधाओं का लाभ मिल सके।
10. **व्यापारिक उतार-चढ़ाव पर रोक-** जैसा की आपको विदित होगा कि चक्रीय उतार-चढ़ाव के दौरान राजकोषीय नीति नियंत्रक का कार्य करती है। अतः मंदी की अवधि में सरकार को बड़ी मात्रा में सार्वजनिक व्यय करना पड़ता है। विकसित अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार को बनाए रखने की नीति अपनाई जाती है। अर्ध-विकसित अर्थव्यवस्था में कार्यात्मक सिद्धांत के अंतर्गत सार्वजनिक व्यय की वृद्धि से पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।
11. **नियोजन को अपनाना-** आधुनिक संसार की सभी सरकारें देश के विकास के लिए किसी ना किसी प्रकार की योजनाएं बनाती हैं। विकासशील देश में जब सार्वजनिक क्षेत्र अपनी भूमिका का विस्तार करता है तो उसी के साथ सार्वजनिक व्यय में भी वृद्धि होती है।
12. **मूल्य स्तर में वृद्धि-** विश्व में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का दूसरा कारण द्वितीय विश्व युद्ध के बाद होने वाली मूल्यों में वृद्धि भी है। मूल्य स्तर में वृद्धि से सरकार पर दो महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ते हैं। पहला, सरकार को सभी वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने के लिए उसके दाम देने पड़ते हैं। और अपने बढ़ते व्यय को पूरा करने के लिए बड़े वित्तीय स्रोतों को खोजना पड़ता है।
13. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि-** राष्ट्रीय आय में वृद्धि भी सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक कारण माना जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि इससे देश का आर्थिक विकास होता है। कर राजस्व में वृद्धि से सार्वजनिक राजस्व में वृद्धि होती है और इससे पुनः सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है।
14. **सामाजिक प्रगति-** समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य की पूर्ति के लिए राज्य ने बहुत से कार्य अपने हाथ में लिए हैं। जैसे कि, अनुसूचित जातियों, जनजातियों, जनजाति क्षेत्रों के विकास, पिछड़ी जातियों और आर्थिक रुप से कमजोर व्यक्तियों के विकास के कार्य आदि। सरकार ने इन क्षेत्रों के विकास के लिए अनुसूचित जाति कल्याण मटका, पिछड़ी जाति विकास बोर्ड और अन्य इसी प्रकार के कई संगठनों का गठन किया है। सरकार ने निर्धन वर्ग के कल्याण के लिए भी उसे बहुत सारी सुविधाएं प्रदान की है जिसके परिणाम स्वरुप अमीरी और गरीबी का अंतर कुछ हद तक दूर हुआ है और सामाजिक प्रगति भी हुई है।
15. **त्रुटिपूर्ण प्रशासन-** सरकारी कार्यालयों में फिजूलखर्ची और बर्बादी के कारण भी प्रशासन के सार्वजनिक व्यय में भारी मात्रा में वृद्धि हुई है।

इस प्रकार सार्वजनिक व्यय में विकास के लिए कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं। इन कारकों के अलावा एडोल्फ वैगनर (Adolph Wagner) ने भी अपनी परिकल्पना में सार्वजनिक व्यय में लगातार वृद्धि के कई घटक बताएं। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के वैगनर द्वारा बताए गए घटक कुछ इस प्रकार से हैं-

- **सामाजिक क्रियाकलापों में लगातार विस्तार-** वैगनर ने इस बात को स्वीकार किया है कि सामाजिक गतिविधियों में लगातार विस्तार सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक मूल कारण है। भूतकाल में सरकार के कार्य बाहरी सुरक्षा और देश की आंतरिक सुरक्षा और कानून के रखरखाव तक ही सीमित थे। परंतु आधुनिक एवं परिवर्तनशील युग में इस पुराने विचारधारा में बदलाव आया है और सरकार अपने नागरिकों के हित के लिए आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सभी प्रकार के कार्य करने लगी है। इसके

अतिरिक्त वे व्यापारिक उतार-चढ़ाव को कम करने और देश में पूर्ण रोजगार के लिए भी कार्य करने लगी है। इस प्रकार सरकार के कार्यों में वृद्धि से उनकी निरपेक्ष तथा सापेक्ष आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हुआ है।

- **युद्ध और युद्ध के लिए तैयारी-** वर्तमान शताब्दी में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एकमात्र सबसे महत्वपूर्ण कारण युद्ध है। कुल व्यय का आधा भाग राष्ट्रीय सुरक्षा पर खर्च होता है। युद्ध और युद्ध संबंधी अफवाहें देशों को हर समय युद्ध के लिए तैयार रहने के लिए बाध्य करती हैं। अतः सैनिक भक्तों में प्रगति इतनी तेजी से हो रही है कि वर्तमान समय में यह सबसे अधिक खर्चीला कार्य बन गया है।
- **जनसंख्या में वृद्धि और नगरीकरण-** सरकारी गतिविधियों और सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक और कारण जनसंख्या और शहरीकरण में वृद्धि है। शहरीकरण की प्रक्रिया में इस प्रकार के बयान में वृद्धि होती है जिससे जीवन और संपत्ति का संरक्षण हो सके। यह सरकार पर अतिरिक्त जिम्मेदारी डालता है। सरकार खाद्य पदार्थों का निरीक्षण, आवश्यक वस्तुओं का वितरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य में वृद्धि, अस्पतालों का निर्माण एवं रखरखाव, शिक्षा और जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिए कार्य करती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक समाज ज्यादा जटिल होते जा रहे हैं। जहां उनकी मांगों को पूरा करने के लिए ज्यादा राशि की आवश्यकता होती है।
- **विश्व मंदी-** वर्ष 1929 से 1933 की महान विश्वव्यापी मंदी भी सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए एक मुख्य कारण है। इस मंदी ने सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता को उजागर कर दिया। इस कारण विभिन्न क्षेत्रों में सरकारी क्रियाकलाप बढ़ गए। अतः आधुनिक सरकार की निवेश गतिविधियां सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए एक और कारण पैदा करती है।
- **मूल्यों में वृद्धि-** स्वतंत्रता के बाद से सार्वभौमिक स्तर पर मूल्यों में वृद्धि भी सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए समान रूप से भागीदार है। मूल्यों में वृद्धि के दो प्रभाव होते हैं। प्रथम, सरकार को उन सभी वस्तुओं और सेवाओं के लिए उच्चतर मूल्य प्रदान करने पड़ते हैं जो वह खरीदती है। द्वितीय, उसे अपने बढ़ते हुए व्यय के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती। इस प्रकार बढ़ता हुआ सार्वजनिक व्यय स्वयं में मूल्यों में वृद्धि के लिए जिम्मेदार घटक बन जाता है।
- **प्रजातांत्रिक संस्थाएं-** सार्वजनिक व्यय को बढ़ाने में प्रजातांत्रिक संस्थान प्रत्यक्ष घटक नहीं है। परंतु यह इस पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। आधुनिक प्रजातांत्रिक राज्य को राज्य का संवैधानिक प्रमुख बनाना पड़ता है, और यह केंद्र, राज्य और स्थानीय करों के संसद व विधान मंडलों पर भी व्यय करता है। इसके अतिरिक्त उसे संपूर्ण संसार के साथ राजनैतिक संबंध और मैत्री संबंध भी बनाने होते हैं। इस संदर्भ में यह नोट करना आवश्यक है कि विकसित देशों में अल्प विकसित देशों की स्थिति को समझा और इन देशों के लिए अपने संसाधनों का आवंटन की प्रारंभ किया। अतः बीसवीं शताब्दी में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए यह भी एक महत्वपूर्ण घटक बना है।
- **आर्थिक योजना की भूमिका-** वर्तमान युग में सभी देशों की सरकारें आर्थिक योजनाएं अपनाती हैं, जिससे देश का आर्थिक विकास हो सके। इस कारण भी सार्वजनिक व्यय में अत्यधिक वृद्धि हुई है।
- **जीवन की आधुनिक उलझनें-** आधुनिक जीवन की बढ़ती हुई जटिलताएं सरकार को साधारण जनता के हित में बहुत से गुणात्मक एवं संख्यात्मक कार्य करने पर बाध्य करती है जिससे सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है।

- **सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका-** प्रोफेसर डेल्टन के अनुसार, "सार्वजनिक क्षेत्र की बढ़ती हुई कुशलता निजी संगठनों की तुलना में, सार्वजनिक व्यय को बढ़ाती है। यह सर्वविदित है कि व्यक्तिगत निजी संगठन सदैव अधिकतम लाभ देखते हैं, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र देश का सामाजिक है।"

9.5 निष्कर्ष

वर्तमान युग में राज्यों और केंद्र के कार्यों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है, जिसके परिणाम स्वरुप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हो रही है। वर्तमान समय में युद्ध संबंधी व्यय तो बहुत अधिक बढ़ गया है। यह व्यस्त शीत युद्ध के कारण और भी अधिक बढ़ने लगा है। सरकार दिन प्रतिदिन नई-नई विभाग खोलती जा रही है। उन विभागों की व्यवस्था पर भारी मात्रा में होने लगा है। प्रजातंत्र में स्थानीय निकायों जैसे ग्राम पंचायतों, जिला-परिषदों, नगरपालिकाओं, विधानसभा तथा सांसदों पर भी वह दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. सार्वजनिक व्यय के सिद्धांतों को मूलतः कितने भागों में बाँटा गया है?
2. किन्ही दो शुद्ध सिद्धांतों के नाम लिखिये।
3. "The Pure Theory of Publl c Expendl ture" लेख किसने लिखा?
4. प्रो. शिराज द्वारा बताये गये किन्ही दो सामान्य सिद्धांतों के नाम लिखिये।
5. सार्वजनिक व्यय की वृद्धि की कोई दो कारण बताइये।

9.5 सारांश

समाज कल्याण, आर्थिक प्रगति तथा नागरिकों की सामूहिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए केंद्रीय, राज्य तथा स्थानीय सरकारों द्वारा किए जाने वाले व्यय को सार्वजनिक व्यय कहते हैं। विकास कार्यों में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ, सामाजिक सुरक्षा, सिंचाई, नेहरें, जल निकास, सड़कें, इमारते आदि शामिल है। सामाजिक कल्याण के इन कार्यों में सार्वजनिक व्यय को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। संक्षेप में, जिस प्रकार अर्थशास्त्र के अध्ययन में उपभोग महत्वपूर्ण है ठीक उसी प्रकार लोक वित्त के अध्ययन में सार्वजनिक व्यय में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। राज्य की बढ़ती हुई गतिविधियां तथा सार्वजनिक व्यय की प्रकृति और मात्रा देश के आर्थिक जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है अर्थात यह उत्पादन, वितरण और आर्थिक गतिविधियों के सामान्य स्तर को प्रभावित करती है।

9.6 शब्दावली

चालू अंतरण- धन का एक खाते से दूसरे खाते में जाने की क्रिया, सीमांत- हद, सीमा , प्रतिस्थापन- वस्तु के नष्ट होने पर या हट जाने पर उसी स्थान पर वस्तु का रखा जाना, रूपांतर- एक रूप से दूसरे रूप में आने या लाए जाने की प्रक्रिया

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. दो (शुद्ध सिद्धांत, सामान्य सिद्धांत), **2.** पीगू का भुगतान करने की क्षमता का सिद्धांत, लाभ का सिद्धांत, **3.** सैमुल्सन, **4.** लाभ का सिद्धांत, मितव्ययता का सिद्धांत, **5.** कल्याणकारी राज्य की अवधारणा और सरकार का प्रजातांत्रिक एवं समाजवादी ढाँचा

9.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. लेखी, आर. के. 2009. लोक वित्त नई कल्याणी पब्लिशर्स,नई दिल्ली।
2. पन्त, जे. सी.2005. लोक अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. सिंह, एम. के.2009. लोक वित्त के सिद्धांत तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन: आगरा।

9.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हजेला, टी. एन. 1996. राजस्व के सिद्धांत, कोणार्क पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सार्वजनिक व्यय के सिद्धांतों पर एक लेख लिखिए।
2. सार्वजनिक व्यय के सामान्य सिद्धांतों की विवेचना कीजिए।
3. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारणों की समीक्षा कीजिए।

इकाई- 10 निष्पादन बजट प्रणाली, शून्य आधारित बजट प्रणाली

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 बजट के प्रकार

10.3 निष्पादन बजट प्रणाली

- 10.3.1 निष्पादन बजट प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषाएं
- 10.3.2 निष्पादन बजट की विशेषताएं
- 10.3.3 निष्पादन बजट के उद्देश्य
- 10.3.4 निष्पादन बजट की प्रक्रिया
- 10.3.5 निष्पादन बजट के लाभ
- 10.3.6 निष्पादन बजट की हानियां या सीमाएं

10.4 शून्य आधारित बजट प्रणाली

- 10.4.1 शून्य आधारित बजट का अर्थ एवं परिभाषाएं
- 10.4.2 शून्य आधारित बजट की विशेषताएं
- 10.4.3 शून्य आधारित बजट की प्रक्रिया
- 10.4.4 शून्य आधारित बजट के लाभ
- 10.4.5 शून्य आधारित बजट की हानियां/सीमाएं

10.5 निष्कर्ष

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

आधुनिक लोक प्रशासन के अंतर्गत कार्य निष्पादन बजट के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग है। वर्तमान परंपरागत बजट आंकड़ों का विस्तृत जाल मात्र बनकर रह गया है। परंपरागत बजट से इस बात का पता नहीं चल पाता है कि लो हित के लिए कौन सी सेवाएं कितनी मात्रा में की गई है और उनके क्या परिणाम सामने आए हैं। वस्तुतः बजट द्वारा किए जाने वाले कार्य तथा कार्यक्रम अधिक महत्वपूर्ण होते हैं और बजट बनाते समय इन पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। निष्पादन बजट परंपरागत बजट से भिन्न होता है। परंपरागत बजट के द्वारा केवल यह पता चलता है कि कितना रुपया कर्मचारियों पर खर्च हुआ, कितना सामानों की खरीद पर खर्च हुआ और कितना विभिन्न योजनाओं को दिया गया है लेकिन निष्पादन बजट सरकारी क्रियाओं को कार्य, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं में प्रकट करने की एक क्रिया है। वहीं दूसरी ओर शून्य आधार बजट निर्माण, बजट निर्माण के प्रबंधकीय उपकरण के रूप में एक नवीन तकनीक है। शून्य आधारित बजट निर्माण में को यह उचित सिद्ध करना पड़ता है कि वह क्यों खर्च करना चाहता है।

प्रस्तुत अध्याय में हम निष्पादन बजट प्रणाली एवं शून्य आधारित बजट प्रणाली पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- बजट के विभिन्न प्रकारों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।
- निष्पादन बजट प्रणाली के अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, प्रक्रिया, लाभ एवं हानि के बारे में विस्तार से जान पाएंगे।
- शून्य आधारित बजट प्रणाली के अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, प्रक्रिया, लाभ एवं हानि के बारे में विस्तार से जान पाएंगे।

10.2 बजट के प्रकार

बड़े-बड़े देशों के दीर्घकालीन अनुभव से अनेक ऐसे सिद्धांत निकले हैं जो बजट बनाने में सहायक हैं। विगत अध्यायों में अपने बजट निर्माण के विभिन्न सिद्धांतों आदि का विस्तार से विवरण किया। बजट निर्माण में उन सभी सिद्धांतों का यदि अनुसरण किया जाए तो आवश्यकता के अनुसार कायदे का बजट बन सकता है। यह अवश्य है कि उक्त सिद्धांत ऐसे नहीं हो सकते कि प्रत्येक स्थिति में अभीष्ट फल ही दे दें। विशेष परिस्थितियों में उनमें संशोधन करना आवश्यक होता है परंतु फिर भी सार रूप में उनका पालन एक अच्छे बजट के लिए अत्यधिक आवश्यक माना जाता है।

जिन आधारों पर आय और व्यय का वर्गीकरण होता है, उनके अनुसार बजट भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। मोटे तौर पर बजट का वर्गीकरण चार प्रकार का होता है-

- संस्था या उसके विभागों के आधार पर,
- प्रयोजन या कार्य के आधार पर,
- विधि-विधान के आधार पर,
- उद्देश्य के आधार पर।

संस्था या विभाग को आधार मानने पर विभागीय प्रकार का बजट बनता है। बजट में प्रत्येक विभाग के आयों तथा व्ययों का विवरण होता है। ऐसे आय-व्यय अन्य विभागों से भी संबंधित हो सकते हैं, परंतु जो विभाग वास्तव में उन विषयों को कार्य रूप देता है, उसी के नाम पर वह बजट होता है। उदाहरण के लिए, किसी भी विद्यालय के भवन का व्यय सार्वजनिक निर्माण विभाग के बजट में दिखाया जाएगा, क्योंकि निर्माण का कार्य और तत्संबंधी लेनदेन वही करता है। यद्यपि, भवन शिक्षा विभाग का है। पर, इस विभागीय बजट से जनता यह नहीं जान पाती कि किसी विशेष कार्य पर या सेवा में कितनी लागत लगी है। एक ही विभाग के कार्य अनेक विभागों के पास हो सकते हैं। यह उसके भिन्न-भिन्न स्वरूपों से जुड़े होते हैं। सरकारों को इस प्रकार के विभागीय बजट से सुविधा होती है। इंग्लैंड और भारत में यही मुख्य रूप से प्रचलित है। वैसे अनेक अन्य देशों में भी इस प्रकार के बजट को अपनाया जाता है। ब्रिटिश बजट में नीचे टिप्पणी के रूप में उन विभागों का निर्देश होता है जिनके लिए कोई विशेष विभाग खर्च करता है। जैसे- सार्वजनिक निर्माण विभाग स्कूल, सरकारी ऑफिस, सार्वजनिक उपयोग के भवन आदि बनवा सकता है। वह टिप्पणी में निर्देश कर देता है कि किस कार्य पर कितना खर्च हुआ है। इससे इस प्रकार के बजट का दोष निकल जाता है और आय-व्यय का ठीक-ठीक चित्र मिल जाता है।

प्रयोजन-बजट में आय-व्यय के प्रत्येक कार्य और प्रयोजन को लेकर आंकड़े दिए जाते हैं। इसलिए इस प्रकार के दूसरे बजट का नाम निष्पादन बजट का कार्यक्रम बजट भी है। ऐसे बजट में यह दिखाया जाता है कि रक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, भवन-निर्माण, तथा अन्य ऐसे कार्यों पर कितना-कितना होगा और उसकी आयें क्या क्या है। उसमें प्रत्येक के साथ यह भी उल्लेखित होता है कि उसका विकास कैसे होने वाला है। साधारण व्यक्ति यही जानना चाहता है। उसको इससे प्रयोजन नहीं कि किस-किस मुद्दे पर कितना कितना खर्चा हो रहा है। अमेरिका की हूवर (Hoover) समिति ने सिफारिश की थी, "यहां का सरकारी बजट- उपलब्धि अथवा कार्यक्रम बजट बने। आज का संपूर्ण बजट-विधान पुनः निर्मित होना चाहिए" कार्यों, क्रिया-व्यापारी तथा योजनाओं के आधार पर बजट बनने चाहिए। यह 'निष्पादन-बजट' है।

कोई सरकार केवल प्रयोजन और लक्षणों के आधार पर बजट नहीं बनाती, परंतु व्यवहार में होता यही है, क्योंकि प्रत्येक विभाग का एक-एक कार्य-विशेष होता है। अतः विभागीय बजट वास्तव में उद्देश्य बजट की होता है। व्यक्ति की प्रकृति और स्वरूप को ध्यान में रखकर जो बजट बनाए जाते हैं, उनको राजस्व तथा पूंजीगत बजट कहते हैं। इसका तात्पर्य विस्तार से जितना प्रकट होता है, उतना नाम से नहीं हो सकता है। स्वरूप का अर्थ यहां उस काल से है जो योजना या कार्य को पूरा करने में लगता है। कभी-कभी कोई ऐसा उत्तर दायित्व होता है जो पहले से चला आ रहा होता है और जिसे चालू वर्ष में जारी रखना, या पूरा करना होता है या उन योजनाओं की पूंजी से जिन पर कई वर्षों में खर्च होने वाला है।

बजट का अंतिम वर्गीकरण प्रयोजन के विचार से होता है। सामान खरीदने, वेतन में वितरण करने, पारिश्रमिक देने, भूमि स्वायत्त करने और भवन निर्माण करने, आदि पर धन व्यय होता है। यह भिन्न-भिन्न प्रयोजन या लक्ष्य हैं जिन पर खर्च किया जाना है।

व्यवहार में कोई एक बजट एक ही विशुद्ध प्रकार का नहीं होता। चाहे संस्था, चाहे प्रयोजन और चाहे स्वरूप, जो बजट किसी एक आधार पर बनाया जाता है, वह सर्वांगीण नहीं हो सकता है। वास्तविक बजट मिश्रित प्रकार का होता है। किसी भी मुख्य आधार को ले लीजिए, किंतु दूसरे प्रकार भी उसमें आ ही जाते हैं। भारत के बजट में जो प्रधान, अप्रधान अथवा उप प्रधान शीर्षक होते हैं,वे प्रायः विभागों को भी सूचित करते हैं। उनमें से कुछ उद्देश्य, अथवा प्रकृति अथवा खर्च के लक्ष्य की ओर संकेत करते हैं।

बजट के इन सब स्वरूपों को और अच्छे से समझने के लिए आइए बजट के विभिन्न स्वरूपों का बिंदुवार विवरण देख लेते हैं-

1. **वार्षिक एवं अर्द्ध वार्षिक बजट-** बजट को फोन किए जाने की अवधि के आधार पर बजट वार्षिक एवं अर्धवार्षिक श्रेणियों में बांटा जाता है। प्रायः एक वर्ष की अवधि के लिए आय-व्यय का लेखा-जोखा रखने वाले बजट को वार्षिक बजट कहा जाता है। यह विश्व के अधिकांश देशों में बनाया जाता है। भारत, इंग्लैंड तथा अन्य राष्ट्रमंडल यह देशों में यह बजट 1 अप्रैल से 31 मार्च तक की अवधि का होता है, जबकि अमेरिका, स्वीडन, इटली, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में 1 जुलाई से 30 जून तक की अवधि का होता है। किंतु कतिपय देशों में एक से अधिक वर्ष के लिए भी बजट बनाए जाते हैं, जिन्हें द्विवार्षिक, त्रिवार्षिक, पंचवर्षीय, सप्तवर्षीय बजट आदि नामों से संबोधित किया जाता है। इस प्रकार बजट प्रायः लंबी अवधि की योजनाओं, कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के क्रियान्वयन हेतु बनाए जाते हैं। जैसे रूस में सप्तवर्षीय बजट बनाया जाता है।
2. **नकद एवं आय बजट-** नकद बजट वह बजट कहलाता है, जिसमें एक वित्तीय वर्ष में जो भी आय तथा व्यय के अनुमान में वास्तविक आय और व्यय हुआ हो। जैसे- भारत, अमेरिका, ब्रिटेन में नकद बजट बनाया जाता है। जबकि आय बजट वह बजट कहलाता है जिसमें किसी एक वित्तीय वर्ष में जो आय तथा

व्यय हुआ हो उस संबंधी वित्तीय वर्ष में दर्शाया तो जाता है, लेकिन वास्तव में उसे प्राप्त ना किया गया हो। जैसे- फ्रांस तथा कतिपय यूरोपियन देशों में आय बजट बनाया जाता है।

3. **संतुलित, घाटे एवं अतिरेक बजट-** जब किसी बजट में आय तथा व्यय संबंधी मदों की अनुमानित राशि बराबर होती है तो उसे संतुलित बजट कहा जाता है, लेकिन जब बजट में अनुमानित आय, अनुमानित व्यय से कम होती है तो वह बजट घाटे का बजट कहलाता है। इस के विपरीत जब बजट में अनुमानित आय, अनुमानित व्यय से अधिक होती है तो वह बजट अतिरिक्त अथवा लाभकारी कहलाता है।
4. **कार्यकारी बजट-** इस प्रकार का बजट बीसवीं शताब्दी में अस्तित्व में आया। इससे पूर्व इसका अस्तित्व नहीं था। इस प्रकार का बजट कार्यपालिका द्वारा बनाया जाता है तथा विधान मंडलों एवं व्यवस्थापिका द्वारा इसे पास किया जाता है।लेकिन इस प्रकार का बजट बनाने, उसे पास कराने तथा इसका उत्तर दायित्व वहन करने संबंधी सभी जिम्मेदारी कार्यपालिका पर ही होती है।
5. **सूत्र मदीय बजट-** सूत्र मदीय बजट वह बजट कहलाता है जिसमें प्रत्येक एकल स्थिति एवं उपकरण को व्यय के आकलन में प्रथक प्रथक सूत्रों में सूचीबद्ध किया जाता है तथा प्रथक प्रथक मदो को विधानमंडल या तो काट देता है अथवा स्वीकृति प्रदान करता है। यदि स्वीकृति प्राप्त हो जाती है तो अनुमानित व्यय उसी मद पर उतनी ही राशि में करना पड़ता है। सरकार द्वारा कोई भी मद, उपकरण अथवा सेवा क्रय की जाती है। उन सबकी गणना प्रथक प्रथक की जाती है। इस प्रकार का बजट एक पारस्परिक बजट है। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व प्रायः यह प्रयोग में लाया जाता था,लेकिन आज भी इस प्रकार के बजट का प्रचलन है। जैसे भारत एवं अमेरिका में पी.पी. बी.एस. के साथ अभी भी इस प्रकार के बजट का प्रचलन है।
6. **एकमुश्त राशि बजट-** एकमुश्त राशि बजट को पिंड राशि। इस बजट के अधीन कोर्स का स्थानांतरण ना केवल वस्तुओं के मध्य होता है, बल्कि संस्थागत इकाईयों एवं स्वीकृत कार्यों की गतिविधियों के मतलबी हो सकता है। कार्यकारी बजट के प्रथम वर्षों में वे संबंधित त्रुटियों को दूर करने के लिए एकमुश्त राशि बजट को अपनाया जाता है।
7. **कार्यक्रम बजट-** इस प्रकार का बजट पारंपरिक बजट की त्रुटियों को दूर करने के लिए बनाया जाता है क्योंकि पारंपरिक बजट में परिणामों की उपलब्धियों पर कोई केंद्रीय करण नहीं होता है। कार्यक्रम बजट के उद्भव के साथ अब बजट में परिणामों की उपलब्धियों पर केंद्रीकरण किया जाता है। इस प्रकार के बजट की यह विशेषता होती है कि यह प्रबंध के दृष्टिकोण रखता है। अतः कार्यक्रम नियोजन परिचालन विभागों में प्रारंभ हो जाता है तथा यह उच्चतर स्तर पर अत्यधिक केंद्रीकरण के प्रति सुरक्षा का कार्य करता है। अमेरिका के इस प्रकार के बजट को प्रबंध किए बजट कहा जाता है।
8. **निष्पादित बजट-** इस प्रकार के बजट में बजट विधियों के माध्यम से कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करने हेतु नियंत्रण किया जाता है। इस प्रकार के बजट में सरकार के क्रियाकलापों को विभिन्न गतिविधियों, परियोजना आदि के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।
9. **पी0पी0बी0एस0-** इस बजट की कार्य प्रणाली के अंतर्गत एक संघीय विभाग में एक ब्यूरो अध्यक्ष होता है। वह अपने बजट का निर्माण करते समय इसे 1 वर्ष के लिए निश्चित करता है तथा इसे कार्यक्रमों के बहुउद्देश्यों में बदला जाता है। मूल्य एवं लाभों में बदल दिया जाता है। बजट के परिणामों को प्राप्त करने के लिए अनेक तरीकों का इस्तेमाल करता है।
10. **शून्य आधारित बजट-** शून्य आधारित बजट वह बजट होता है, जिसमें वर्ष भर के संपूर्ण कार्यक्रमों तथा व्ययों का मूल्यांकन किया जाता है। इसमें प्रत्येक प्रबंधक को अपने बजट की आवश्यकताओं का विस्तृत

विवरण तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना होता है। इसके अंतर्गत प्रत्येक विभागाध्यक्ष को ना केवल नवीन प्रस्तावों तथा कोषों का औचित्य सिद्ध करना पड़ता है, बल्कि जो कार्यक्रम एवं नीति जारी है उनका भी औचित्य सिद्ध करना पड़ता है। अतः प्रबंधक को अपने विभाग की चलने वाली एवं सभी नवीन गतिविधियों का पुनर्निरीक्षण करना पड़ता है।

इस प्रकार बजट के अनेक स्वरूप होते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम केवल निष्पादन बजट प्रणाली एवं शून्य आधारित बजट प्रणाली पर ही विस्तार से चर्चा करेंगे। आइए, सर्वप्रथम अब हम निष्पादन बजट प्रणाली या कार्य निष्पादन बजट पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

10.3 निष्पादन बजट प्रणाली

आधुनिक लोक प्रशासन के अंतर्गत निष्पादन बजट के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में यह एक नया प्रयोग है। वर्तमान परंपरागत बजट आंकड़ों का एक विस्तृत जालसा बनकर रह गया है। परंपरागत बजट से इस बात का पता नहीं चल पाता है कि लोकहित के लिए कौन सी सेवाएं कितनी मात्रा में की गई हैं तथा उनके क्या परिणाम सामने आए हैं। वस्तुतः बजट द्वारा किए जाने वाले कार्य कार्यक्रम अधिक महत्वपूर्ण होते हैं और बजट बनाते समय इन पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। पहले विस्तृत कार्यक्रम तैयार कर लिया जाना चाहिए और यह देखा जाना चाहिए कि कार्यक्रम कितनी धनराशि में किस प्रकार से पूरे किए जा सकते हैं। कार्य के परिणामों या निष्पादन को आधार बनाकर निर्मित होने वाला बजट 'निष्पादन बजट' कहलाता है। इसे 'कार्यक्रम बजट', 'आउटकम बजट', 'नियोजन एवं निष्पादन बजट', 'कार्यक्रम सह-निष्पादन बजट' तथा 'नियोजन, कार्यक्रम तथा बजट प्रणाली'(PBBS) भी कहा जाता है। निष्पादन बजट का प्रथम प्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका के नगर प्रशासन में किया गया। यह इन सरकारों का कार्यात्मक संगठन ही था जिसके कारण कार्य निष्पादन बजट की दिशा में कार्य करना सुगम हो सका। इस क्षेत्र में रिचमंड तथा न्यूयॉर्क के नगर अग्रणी कहे जा सकते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रशासनिक सुधारों के लिए बने प्रथम हूवर आयोग (1949) ने सरकार के कार्यों, कार्यक्रमों एवं गतिविधियों पर आधारित बजट बनाने की अनुशंसा की थी। आयोग ने स्पष्ट रूप से यह कहा था कि बजट का उद्देश्य केवल वस्तुएं एवं सेवाएं करना ही नहीं है बल्कि बजट प्रणाली में इस तथ्य पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि प्रस्तावित व्यय करना क्यों आवश्यक है? हूवर आयोग की इस अनुशंसा को स्वीकारते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका की संघीय सरकार ने वर्ष 1950-51 में निष्पादन बजट बनाना प्रारंभ किया। संयुक्त राज्य अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति हैरी एस ट्रूमैन के नेतृत्व में रक्षा मंत्री रॉबर्ट मैकन्मारा ने इस बजट प्रणाली को पर्याप्त बढ़ावा दिया था क्योंकि वे रक्षा व्यय में आर्थिक औचित्य सिद्ध करना चाहते थे। द्वितीय हूवर आयोग (1956) ने पुनः इस बजट प्रणाली के समर्थन में तर्क दिए। धीरे-धीरे निष्पादन प्रणाली विश्व के अन्य देशों में भी लोकप्रिय होने लगी। सन 1965 में राष्ट्रपति जॉनसन ने इसे कार्यक्रम बजट प्रणाली के नाम से प्रारंभ किया। इसके बाद 1971 में यह प्रयोग समाप्त हो गया।

बजट का परंपरागत नमूना कुछ समय पूर्व तक भारत के साथ-साथ कई अन्य देशों में भी काम करता रहा, तथा यह राजस्व संबंधी जवाबदेही के उद्देश्य को पूरा करता था। 1940-1950 से प्रारंभ होने वाले दशकों में ध्यान, कुशलता के मुद्दों की ओर मुड़ा। अतः कार्य निष्पादन बजट जैसी तकनीकों का विकास किया गया। कार्य निष्पादन बजट की अधिकतर तकनीकी और प्रकृति मूल्य रेखा विधि (Cost Accounting) और वैज्ञानिक प्रबंध से ली गई है। कार्य निष्पादन बजट पर जो साहित्य उपलब्ध होता है, उसमें बजटिंग को प्रबंध का औजार बताया गया है और बजट को एक गुण कार्यक्रम' (Worth Programme) बताया गया है। इस प्रकार कार्य निष्पादन बजट का दिशा निर्देशन प्रबंध है। इसका मुख्य बल प्रशासकों की सहायता करना है ताकि वह कार्य करने वाली इकाइयों की कार्यकुशलता का अनुमान कर सके।

भारत में निष्पादन बजट के संबंध में अप्रैल, 1954 में लोकसभा में वित्त मंत्रालय की व्यय-नियंत्रण बहस के समय यह मांग उठी कि निष्पादन बजट प्रणाली की शुरुआत की जाए। संसद की अनुमान समिति ने अपने 20वें प्रतिवेदन (1957-58) में सुझाव दिया था कि, भारत में कुछ चयनित मंत्रालयों की परियोजनाओं का निष्पादन बजट बनाया जाना चाहिए। इस संबंध में सन 1961 में भारत सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को आदेश जारी करके कहा था कि वे सामान्य व्यापारिक बजट अनुमानों के साथ कार्यक्रम तथा निष्पादन आधारित बजटीय अनुमान भी प्रस्तुत करें। इस विषय पर सन 1964 में भारत सरकार ने एक अमेरिकी विशेषज्ञ फ्रैंक डब्ल्यू क्रॉसकी परामर्श सेवाएं ली थी। इसी प्रकार प्रशासनिक सुधार आयोग (प्रथम) ने भी सन 1968 में सुझाव दिया था कि भारत सरकार के मंत्रालय वर्ष 1969-70 से निष्पादन या उपलब्धि बजट प्रणाली को अपनाना शुरू करें। इस अनुशंसा से पूर्व ही वित्त मंत्रालय ने अप्रैल, 1968 में लोकसभा में 'चुने हुए संगठनों में उपलब्धि बजट' नामक मसौदा प्रस्तुत कर दिया था जिस के अनुसरण में केंद्रीय विभागों ने बजट बनाने शुरू किए किंतु भारत में यह प्रणाली पूर्ण निष्पादन बजट प्रक्रिया पर आधारित न होकर केवल परंपरागत बजट प्रणाली की पूरक विधि के रूप में क्रियान्वित की जा रही है। वर्ष 2000-01 में भारत सरकार के भूतल परिवहन मंत्रालय ने निष्पादन बजट निर्मित किया था। 25 अगस्त, 2005 को भारत की संसद में प्रथम बार 44 मंत्रालयों का परिणाम बजट (Outcome Budget) प्रस्तुत किया गया था। इसमें वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ने इन मंत्रालयों की मापन योग्य तथा निगरानी योग्य लक्ष्य निर्धारित करने वाले दस्तावेज को प्रस्तुत किया था।

10.3.1 निष्पादन बजट प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषाएं

कार्य निष्पादन बजट को सामान्यत:यह समझा जाता है कि यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सार्वजनिक खर्च को कार्यों, कार्यक्रमों, कार्यान्वयन इकाइयों अर्थात क्रियाओं, परियोजनाओं आदि की शब्दावली में प्रस्तुत करता है जो प्राथमिक तौर पर सरकार के उत्पादन अथवा निर्गत तथा इसकी लागत को प्रतिबिंबित करता है। निष्पादन बजट प्रणाली की तकनीकें मुख्यतः लागत लेखा तथा वैज्ञानिक प्रबंध पर आधारित हैं। यह मूल्यांकन की एक ऐसी विधि है जिसमें बजट की व्यय राशि को अंतिम परिणामों अर्थात कार्य निष्पादन से संबद्ध किया जाता है। निष्पादन बजट बजट में सम्मिलित व्यक्तिगत मदों के भौतिक एवं वित्तीय पक्षों को संबद्ध करने की एक ऐसी तकनीक भी है जो किसी संगठन के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले लक्षणों या उद्देश्यों को केंद्र बिंदु मानती है ना कि उन लक्ष्यों के लिए किए जाने वाले व्यय की राशि महत्वपूर्ण होती है।

एस. एस. विश्वनाथन के अनुसार, "निष्पादन बजट कार्यक्रमों, परियोजनाओं तथा क्रियाकलापों, जिनके वित्तीय एवं भौतिक पक्ष घनिष्ठता से अंतर संबंधित है, के रूप में विचारित परिचालन दस्तावेज (Operational Document) है। "

यूनाइटेड नेशंस हैंडबुक ऑन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन में दी गई परिभाषा के अनुसार, "सारांश रूप में निष्पादन बजट एक कार्य योजना है जिसमें एक वित्तीय वर्ष में सरकार द्वारा प्राप्त किए जाने वाले निश्चित उद्देश्यों का ब्यौरा होता है। यह सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्यों या दी जाने वाली सेवाओं के आधार पर सूत्रबद्ध किया जाता है तथा इन्हें इनकी लागतो के साथ प्रस्तुत करता है। कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की अवधि के दौरान संपादित किए जाने वाले कार्य एवं व्ययों के संबंध में सूचना देने हेतु प्रतिवेदन एवं लेखांकन की पद्धति की रूपरेखा तैयार की जाती है।... निष्पादन बजट में बजट का कार्यों, कार्यक्रमों एवं क्रिया या परियोजनाओं के अनुसार वर्गीकरण निहित है जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।''

जैसी बुकहैड इन शब्दों में- "विस्तृत रूप से निष्पादन बजट को बजट वर्गीकरण के साथ संबद्ध किया जाना अधिक उपयुक्त है, जिसमें सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्यों का अधिक उल्लेख रहता है, बजाय की सरकार द्वारा किए जाने वाले क्रय के।"

प्रशासनिक सुधार आयोग (प्रथम) निष्पादन बजट की परिभाषा कुछ इस प्रकार से भी है- "निष्पादन बजट सामान्यतः सरकारी प्रक्रियाओं को कार्यों, कार्यक्रमों, गतिविधियों तथा परियोजनाओं के रूप में प्रस्तुत करने की तकनीक के रूप में जाना जाता है। व्यवहारों के इस सार्थक वर्गीकरण से सरकारी गतिविधियों की वित्तीय एवं भौतिक रूप से बजट में पहचान की जाती है जिसमें की विनियोग एवं उत्पादन में उपयुक्त संबंध स्थापित किया जा सके एवं लागतो के संदर्भ में निष्पादन का मूल्यांकन किया जा सके।"

बजट सुधारों पर अनुमान समिति के अनुसार- "निष्पादन बजट कार्यों, कार्य किया क्रियाओं तथा परियोजनाओं पर आधारित बजट है जो निष्पादन के साधनों, जैसे- कार्मिक, सेवा, आपूर्ति तथा उपकरण इत्यादि की अपेक्षा निष्पादन तथा की जाने वाली सेवाओं पर ध्यान केंद्रित करता है। इस प्रणाली के अंतर्गत विभिन्न संगठनात्मक इकाइयों के कार्यों की क्रिया, कार्यक्रमों, उप कार्यक्रमों एवं संघटक योजना इत्यादि में विभक्त किया जाता है तथा प्रत्येक के लिए अनुमान प्रस्तुत किए जाते हैं।"

उपरोक्त वर्णित सभी परिभाषाओं के आधार पर निष्पादन बजट के बारे में कहा जा सकता है कि यह एक ऐसी तकनीक है जो-

1. यह निश्चित करती है कि संगठन के लक्षण एवं उद्देश्यों के अनुरूप बजट का निर्माण हो,
2. संगठन या विभाग के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्यक्रमों के एक समूह का निश्चय कराती है,
3. कार्यक्रमों को क्रियान्वित कराती है,
4. कार्यों एवं कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक संचालन करती है तथा
5. संगठन के प्रत्येक घटक की वास्तविक निष्पत्ति तथा लक्ष्यों की प्राप्ति में उनके योगदान का मूल्यांकन करती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि निष्पादन बजट मूलतः लक्षयोन्मुखी तथा उद्देश्यपरक प्रणाली पर आधारित है जिसमें केवल संगठनात्मक आय-व्यय का हिसाब ही नहीं बल्कि प्राप्त हुए निष्कर्षों या कार्य निष्पादन मूल्यांकन का आधार बनाया जाता है।

10.3.2 निष्पादन बजट की विशेषताएं

निष्पादन बजट की निम्नांकित विशेषताएं हैं-

1. इसमें संस्था या संगठन के लक्षण एवं उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित एवं वर्गीकृत किया जाता है ताकि उसके अनुसार परियोजनाएं या कार्यक्रम बनाए जा सकें।
2. इसमें व्यय का कार्यात्मक वर्गीकरण किया जाता है अर्थात उद्देश्यों के अनुसार कार्यक्रम, परियोजना तथा उप कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं, जैसे- शिक्षा व्यय के अंतर्गत ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा तथा उच्च शिक्षा इत्यादि।
3. इस प्रणाली में उद्देश्य एवं लक्ष्य के अनुसार निर्धारित कार्यक्रमों या परियोजनाओं के लिए वित्तीय आवंटन करते समय 'लागत लाभ विश्लेषण' को आधार बनाया जाता है। अतः लाभ देने वाली परियोजनाएं ही प्राथमिकता पर रहती हैं।
4. निष्पादन बजट दीर्घकालीन आधार पर होता है, जिसमें अल्पकालीन या तात्कालिक उद्देश्य के अतिरिक्त भविष्यगामी लक्ष्यों को भी पूर्ण महत्व प्रदान किया जाता है।
5. इस प्रणाली में एक सुव्यवस्थित लेखा तथा प्रतिवेदन प्रणाली के माध्यम से निष्पत्ति या परिणाम का मूल्यांकन किया जाता है।

6. निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह भी आवश्यक है कि संगठन में इकाइयों एवं पदाधिकारियों के मध्य अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों का प्रत्यायोजन किया जाए। निष्पादन बजट में यह विकेंद्रीकृत व्यवस्था पाई जाती है।

10.3.3 निष्पादन बजट के उद्देश्य

निष्पादन बजट प्रणाली का प्रयोग कुछ विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है, जो कुछ इस प्रकार से हैं-

1. संगठन के लक्षण एवं उद्देश्यों को अधिक स्पष्टता से प्रस्तुत करने हेतु।
2. प्रत्येक कार्यक्रम, परियोजना तथा गतिविधि के भौतिक एवं वित्तीय पक्षों को संबद्ध करने हेतु।
3. विकास परियोजना तथा वार्षिक बजटों में घनिष्ठ संबंध स्थापित करने हेतु।
4. निष्पादन, मूल्यांकन एवं अंकेक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु।
5. प्रबंध किया प्रशासन या फिर सरकार के विभिन्न स्तरों पर बजट ने निर्माण तथा निर्णय-प्रक्रिया में सुधार लाने हेतु।
6. सरकार या प्रबंध की मूल्यांकन एवं समीक्षा प्रक्रिया में सहायता करने हेतु।
7. प्रबंध के उत्तरदायित्व में वृद्धि करने और वित्तीय प्रक्रिया के नियंत्रण हेतु प्रबंध एवं प्रशासन को अतिरिक्त उपकरण प्रदान करने हेतु।
8. इसका अंतिम उद्देश्य दीर्घकालीन योजना तैयार करना होता है।

1968 में भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने वित्त, लेखा, विधि तथा लेखा परीक्षण पर दी गई अपनी वार्षिक रिपोर्ट में कहा था कि वास्तव में कार्य निष्पादन बजट सरकारी प्रचलन के कार्यों, कार्यक्रमों, क्रियाओं तथा परियोजनाओं में पेश करने की कार्य विधि है और यह अन्य उद्देश्यों के साथ-साथ निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है-

- जिन उद्देश्यों और लक्ष्यों के लिए धन की मांग की जा रही है, उनको अधिक सुस्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना तथा कार्यक्रमों एवं उपलब्धियों को वित्तीय सामग्री की शब्दावली में प्रस्तुत करना।
- बजट को विधानमंडल के द्वारा अधिक अच्छी तरह समझने और अधिक अच्छा पुनरीक्षण करने में सहायता करना।
- बजट बनाने के कार्य में सुधार करना और सरकार के सभी स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया को सरल बनाना।
- उपलब्धियों के लेखा-परीक्षण को अधिकाधिक उपयोगी तथा प्रभावी बनाना।

इस प्रकार निष्पादन बजट प्रणाली आधुनिक प्रशासनिक कार्यों तथा प्रबंध किए दायित्वों को वैज्ञानिक एवं तार्किक स्वरूप प्रदान करती है।

10.3.4 निष्पादन बजट की प्रक्रिया

निष्पादन बजट के निर्माण एवं निर्धारण में कुछ चरणों या अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है, जिनका वर्णन कुछ इस प्रकार से है-

1. **लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का निर्धारण-** प्रथम चरण में किसी भी संस्था या संगठन के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों का स्पष्ट निर्धारण किया जाता है ताकि बजट के निर्माण में भी सरलता एवं स्वच्छता रह सके। लक्ष्यों के अनुरूप नीतियां तथा वित्तीय अनुमान तैयार किए जाते हैं। इसी चरण में संसाधनों की उपलब्धता एवं उनकी सीमाएं, आयात निर्यात प्रतिबंध, श्रमिक विशिष्टता, विदेशी विनिमय और आर्थिक-वित्तीय समंक

इत्यादि का संकलन एवं विश्लेषण कर लिया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान ही संगठन के पदाधिकारी यह जान लेते हैं कि क्या प्राप्त करना है, क्यों प्राप्त करना है, कब तथा कैसे प्राप्त करना है।

2. **कार्यक्रमों का निर्धारण-** संगठन के लक्ष्य और उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात उनकी प्राप्ति के लिए उन्हें व्यवसाय के कार्यों, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं में वर्गीकृत किया जाता है। कार्यक्रमों के अंतर्गत योजनाओं का निर्माण, उत्पादन तथा बिक्री के लक्ष्यों का निर्धारण, वित्तीय लागत एवं लाभ का पूर्वानुमान इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। कार्यक्रम के निर्धारण के पश्चात प्रत्येक साधन के लिए वित्तीय अनुमान लगाए जाते हैं तथा कुल व्यय को उद्देश्य अनुसार व्यय के रूप में विभाजित किया जाता है। इस प्रक्रिया में गत वर्ष, चाल एवं भविष्य के अनुमान उपयुक्त वर्गीकरण के रूप में स्पष्ट किए जाते हैं।
3. **संसाधनों का आवंटन-** निष्पादन बजट-निर्माण के इस तीसरे चरण में निर्धारित कार्यक्रमों एवं योजनाओं के लिए मानव श्रम, सामग्री, मशीन तथा अन्य वित्तीय संसाधनों इत्यादि का आवंटन किया जाता है। कार्यकारी अधिकारियों के कार्य, दायित्व एवं अधिकार भी स्पष्ट किए जाते हैं। संसाधनों का आवंटन करते समय गत वर्ष का निष्पादन, कार्यक्रम के वार्षिक लक्ष्य, वित्तीय एवं भौतिक पक्षों के बीच संबंध, कार्य क्षमता की आय, लागत समंकों सहित वर्तमान बजट अनुमान तथा आगामी कुछ वर्षों के लिए बजट अनुमानों इत्यादि को ध्यान में रखा जाता है।
4. **प्रमापों की स्थापना-** निष्पादन बजट की क्रियाशीलता, निर्गत तथा निवेश के संबंध में मापन करने की तकनीक पर निर्भर करती है। अतः ऐसे प्रमाप निर्धारित किए जाते हैं जो लोचशील,व्यावहारिक, प्रभावी तथा त्रुटि रहित तथा विगत शोध एवं अनुभवों पर खड़े हो।
5. **बजट क्रियान्वयन-** निष्पादन बजट का मुख्य उद्देश्य कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के द्वारा लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। अतः स्वीकृत बजट प्रावधानों की सूचना विभिन्न मंत्रालय, विभागों या संगठनों को दी जाती है, ताकि कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के क्रियान्वयन की कार्यवाही सफलतापूर्वक प्रारंभ हो सके। परंपरागत बजट के विपरीत इस प्रणाली में प्राप्त भौतिक उपलब्धियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस चरण में प्रबंधक एवं कार्यकारी अधिकारी इस बात का ध्यान रखते हैं कि बजट राशि का उपयोग उसी उद्देश्य के लिए किया जाए जिनके लिए इसका प्रावधान किया गया था।
6. **निष्पादन मूल्यांकन-** निष्पादन बजट का यह अंतिम चरण होता है। इस अंतिम चरण में परियोजना तथा कार्यक्रम की निष्पत्ति या परिणाम का मूल्यांकन किया जाता है। इस हेतु बीच-बीच में प्रगति रिपोर्ट तथा मॉनिटरिंग की निर्धारित प्रमाणों के अनुसार की जाती रहती है, किंतु अंतिम मूल्यांकन ही सफलता का निर्णय करता है तथा भविष्य के कार्यक्रमों के लिए आधार बनता है।

10.3.5 निष्पादन बजट के लाभ

आधुनिक प्रबंधकीय तकनीकों तथा व्यवसायिक बजट के संदर्भ में निष्पादन बजट प्रणाली को एक प्रभावी विधि के तौर पर जाना जाता है। इस संबंध में प्रोफेसर एस. एल. गोयल कहते हैं, “यह सरकारी कार्यकलापों को जनता एवं विधायिका को अधिक बोधगम्य प्रस्तुतिकरण के लिए बेहतर कार्यक्रम निर्धारण, निर्णयन, समीक्षा तथा नियंत्रण में सहायता करता है।” निष्पादन बजट के विभिन्न लाभों को अगर लिखित बिंदुओं में स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है-

1. यह उद्देश्यों के द्वारा प्रबंध को लागू करने का सशक्त माध्यम है।
2. निष्पादन बजट यह बताता है कि गत वर्ष कौन से कार्य पूरे किए गए और कितने खर्च पर। परिव्यय का ज्ञान विभिन्न कार्यों की तुलनात्मक मूल्यांकन में भी सहायक होता है।

3. यह प्रशासन में उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। कौन किस कार्य के लिए उत्तरदाई है तथा किस को क्या क्या अधिकार प्राप्त है।
4. यह दीर्घकालीन उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम है।
5. इससे प्राथमिकताओं के निर्धारण में सहायता मिलती है।
6. बजट से निष्पत्ति मूल्यांकन सहजता से हो जाता है।
7. निष्पादन बजट नियोजन, नियंत्रण तथा लागत लेखांकन में प्रबंध का महत्वपूर्ण उपकरण साबित होता है।
8. यह सरकारी व्यय का अत्यंत स्पष्ट रूप प्रस्तुत करता है। ऐसा करने से विकल्प निकालना भी आसान हो जाता है।

भारतीय प्रशासकीय सुधार आयोग ने भी निष्पादन बजट के कुछ लाभ बताएं जो इस प्रकार हैं-

- निष्पादन बजट उन उद्देश्यों और लक्ष्यों को पूर्ण स्पष्टता से प्रकट करता है, जिन पर व्यय किया जाना है।
- यह बजट कार्यक्रमों तथा उपलब्धियों पर केंद्रित रहता है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि उपलब्धियां कितनी हुई तथा उन पर कितना धन खर्च हुआ।
- विधानमंडल निष्पादन बजट से सरकार के कार्यक्रमों को अच्छी तरह से समझ सकता है। इससे यह कार्यपालिका का सही रूप आंक सकता है,और उसकी आलोचना भी कर सकता है।
- निष्पादन बजट, बजट निर्माण एवं निर्णय प्रणाली में सुधार करता।
- इससे कार्यपालिका का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। साथ ही शासक वर्ग अपने वित्तीय कार्य करने में निष्पादन बजट को अति लाभ कर पाता है। साथ ही निष्पादन बजट प्रबंधन का एक उपकरण भी माना जाता है।
- निष्पादन बजट लेखा परीक्षण को अधिक उद्देश्य पूर्ण एवं प्रभावी बनाता है।

अमेरिकी राष्ट्रपति निष्पादन बजट को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते हुए इससे इसे अमेरिकी प्रशासन ने व्यापक रूप से लागू करवाया था। प्राथमिकता निर्धारण, सूक्ष्मता तथा निरंतरता के आधार पर राष्ट्रीय लक्ष्यों की पहचान, न्यूनतम लागत पर अधिकतम लाभ, भविष्य गामी सोच तथा व्यय एवं लाभ के अंतर संबंधों के क्रम में इसे महत्वपूर्ण विधि माना जाता है।

10.3.6 निष्पादन बजट की हानियां या सीमाएं

निष्पादन बजट अन्य सभी प्रक्रियाओं की तरह से पूर्ण रूप से त्रुटि रहित नहीं होता है। इस प्रणाली या बजटीय विधि की भी अपनी कुछ सीमाएं या हानियां हैं, जो कुछ इस प्रकार से हैं-

1. निष्पादन बजट स्पष्ट वर्गीकरण की मांग करता है जबकि वर्तमान लेखांकन पद्धति में व्यय शीर्षक विभाग अनुसार बनाए हुए हैं। भारत में व्यय के प्रकार पर ध्यान दिया जाता है ना कि व्यय के कार्यक्रम या उद्देश्य पर। निष्पादन बजट के लिए कार्यक्रम या क्रिया या उद्देश्य अनुसार वर्गीकरण आवश्यक है जो अभी प्रवर्तित नहीं है।
2. इस बजट के कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं का परिमाणात्मक मूल्यांकन हो पाता है। गुणवत्तात्मक मूल्यांकन इसमें संभव नहीं है।
3. इस बजट यह प्रणाली में सुदृढ़, आधुनिक तथा त्वरित सूचना प्रणाली आवश्यक होती है जो अभी संगठनों में विकसित नहीं हो पाई है।

4. यह तकनीक पुलिस, कानून, कार्मिक तथा शोध इत्यादि कार्य क्षेत्रों की परियोजनाओं का सही-सही मापन नहीं कर सकती है, क्योंकि इनमें भौतिक निष्पत्ति दिखाई नहीं पड़ती है।
5. इस प्रणाली से प्रशासन, संगठन तथा संस्थाओं में व्याप्त अव्यवस्था गत कमियां दूर नहीं हो सकती है।
6. निष्पादन बजट के लिए ऐसे विभागों का होना आवश्यक है जो चित्र अनुसार कार्यक्रम या परियोजना चलाते हो किंतु व्यवहार में यह सब संभव नहीं है।
7. परियोजना के लागत-अनुमानों का निर्धारण करना कठिन एवं सम से भरा कार्य है जो प्रायः सटीक सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि कई अन्य कारक प्रभाव दिखाते हैं।
8. मूल्यांकन की विधियां त्रुटि रहित नहीं है जबकि निष्पादन बजट का मूल उद्देश्य है उद्देश्य परक मूल्यांकन करना है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह तो स्पष्ट है कि निष्पादन बजट प्रणाली में भी अन्य प्रणालियों की भांति कुछ लाभ होते हैं तो कुछ हानियां भी होते हैं। परंतु इस प्रणाली की विभिन्न बाधाएं एवं सीमाएं वास्तव में इस प्रणाली की सीमाएं नहीं बल्कि प्रवृति प्रशासनिक व्यवस्था एवं उनकी प्रक्रियाओं की सीमाएं अधिक है। अतः प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से निष्पादन बजट प्रणाली को प्रभावी ढंग से उपयोग में लाया जा सकता है।

10.4 शून्य आधारित बजट प्रणाली

शून्य आधारित बजट प्रणाली, बजट निर्माण के प्रबंध किए उपकरण के रूप में एक नवीनतम तकनीक है। इस तकनीक का प्रथम प्रयोग अमेरिका में सन 1962 में किया गया। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर ने इस तकनीक का प्रयोग राज्य व्यय को नियंत्रित करने के लिए तब किया था जब वह जॉर्जिया के राज्यपाल थे।

शून्य आधारित बजट नियोजन तथा निर्णय की एक नई विधि है। यह विधि अमेरिका में ही विकसित हुई है। इस पद्धति के जनक एक निजी कंपनी के प्रबंधक पीटर ए. पेर माने जाते हैं जिन्होंने 'हार्वर्ड बिजनेस रिव्यू' पत्रिका में 'शून्य आधारित बजट' प्रणाली पर लेख लिखकर प्रशासकों, व्यवसायियों तथा उद्योगपतियों का ध्यान अपनी और आकर्षित किया था। टैक्सास इंस्ट्रूमेंट्र कॉरपोरेशन नामक कंपनी ने इसे सर्वप्रथम (1969) निजी क्षेत्र में लागू किया, जबकि सन 1973 में जॉर्जिया प्रांत के तत्कालीन गवर्नर जिम्मी कार्टर ने राज्य के बजट में शून्य आधारित बजट प्रणाली अपनाई। कार्टर जब संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति बने तक संघीय सरकार के बजट में इस प्रणाली के प्रयोग के लिए 1979 में जनमत संग्रह करवाया था। उसके बाद वह प्रणाली अमेरिका के संघीय एवं कुछ प्रांतों के बजट में अपनाई गई। कनाडा में उसको पर्याप्त लोकप्रियता एवं समर्थन प्राप्त है जबकि भारत में राजीव गांधी सरकार के वित्त मंत्री वी.पी. सिंह ने वर्ष 1987-88 के बजट के लिए इस प्रणाली को अपनाने का प्रयास किया था। किंतु अभी तक इसका देश में व्यापक प्रचलन नहीं है। इससे पूर्व भारत में श्रीमती इंदिरा गांधी ने सन 1983 में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग में शून्य आधारित बजट बनवाया था। जुलाई, 2000 में भारत सरकार ने सभी मंत्रालयों को शून्य आधारित बजट निर्मित करने तथा गैर योजना मद में 10प्रतिशत कटौती करने के निर्देश जारी किए थे।

10.4.1 शून्य आधारित बजट का अर्थ एवं परिभाषाएं

शून्य आधारित बजट, परंपरागत बजट से एकदम विपरीत होता है। परंपरागत बजट में पूर्व के समंको में हर वर्ष वृद्धि होती रहती है, जबकि शून्य आधारित बजट में हर बार शुरुआत से प्रारंभ की जाती है। उदाहरण के लिए परंपरागत बजट में किसी कार्यालय में कल्याण कार्यों के लिए गत वर्ष 200 करोड़ रुपए आवंटित किए गए थे तो इस वर्ष 250 या 400 करोड़ रुपए कर दिए जाते हैं, जबकि शून्य आधारित बजट में ऐसा नहीं होता बल्कि प्रत्येक वर्ष नए अनुमान लिखे जाते हैं तथा इनका औचित्य सिद्ध करना पड़ता है कि आखिर यह राशि क्यों आवश्यक है?

सरल शब्दों में, शून्य आधारित बजट निर्माण नीचे से बजट संबंधी प्रार्थना को न्यायसंगत ठहराने का मार्ग है, तथा वैकल्पिक कार्यक्रमों के पैकेजों के मूल्यांकन तथा कार्यक्रमों को क्रमानुसार व्यवस्थित करने की प्रक्रिया है। शून्य आधारित बजट प्रक्रिया की अलग-अलग विद्वानों द्वारा अनेक व्याख्या की जाती है। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें हर चीज को बाहर फेंक दिया जाता है और उसके बाद नए सिरे से हर वस्तु को प्रारंभ से शुरू किया जाता है या यह पहिए की फिर से खोज करने जैसा होता है स्पष्टत: यह धारणाएं ठीक नहीं है।

शून्य आधारित बजट वह बजट है जिसमें वर्ष भर के संपूर्ण कार्यक्रमों तथा व्ययों का मूल्यांकन किया जाता है। इसमें प्रत्येक प्रबंधक को अपने बजट की आवश्यकताओं का विस्तृत विवरण तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना होता है। इसके अंतर्गत प्रत्येक विभागाध्यक्ष को ना केवल नवीन प्रस्ताव तथा कोषों का औचित्य सिद्ध करना पड़ता है बल्कि जो कार्यक्रम एवं निधि जारी है उनका भी औचित्य सिद्ध करना पड़ता है। अतः प्रबंधक को अपने विभाग की चलने वाली एवं सभी नवीन गतिविधियों का पुनर्निरीक्षण करना पड़ता है।

प्रोफेसर आर. ए. मुसग्रेव इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं कि, "एक दल बजट को केवल वृद्धि संबंधी परिवर्तनों की जांच करने के स्थान पर संपूर्ण बजट पर विचार करने का सुझाव देती है।"

पीटर ए. पेयर के शब्दों में, "यह एक परिचालन, नियोजन एवं बजटन की प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक प्रबंधक को अपनी संपूर्ण बजट मांगों के प्रारंभिक (शून्य आधार) से विस्तार में औचित्य सिद्ध करना होता है। प्रत्येक प्रबंधक यह बतलाता है कि वह आखिर कोई धनराशि क्यों व्यय करें। इस विचारधारा के अनुसार सभी क्रियाएं निर्णय पैकेज में अभिव्यक्त की जाती है, जिन्हें महत्व के अनुसार क्रम देकर सुव्यवस्थित विश्लेषण द्वारा मूल्यांकन किया जाता है।"

रोनाल्ड सी. वॉग के अनुसार, "शून्य आधारित बजट एक प्रबंधकीय उपकरण है जो सभी चालू या नवीन क्रियाओं एवं कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए सुव्यवस्थित विधि प्रदान करता है, विवेकपूर्ण तरीके से बजट में कमी या वृद्धि स्वीकृत करता है तथा निम्न से उच्च प्राथमिकता वाले कार्यक्रमों में साधनों के पुनः आवंटन की स्वीकृति देता है।"

पीटर सारंत के अनुसार, "शून्य आधारित बजट एक ऐसी तकनीक है जो वर्तमान नियोजन, बजट एवं पुनर्निरीक्षण प्रक्रियाओं को परस्पर जोड़ती है और इन्हें पूर्ण बनाती है। यह चयनित लाभों की प्रभावी प्राप्ति हेतु सीमित साधनों की उपयोग की वैकल्पिक एवम् दक्ष विधियों की पहचान करती है। यह एक लचीली प्रबंध पद्धति है जो निधिकरण के औचित्य एवं व्यवस्थित पुनरीक्षण और चालू कार्यक्रमों या गतिविधियों के निष्पादन स्तरों पर संकेंद्रण द्वारा संसाधनों के पुनर्वितरण के लिए विश्वसनीय तर्काधार उपलब्ध कराती है।"

चार्ल्ज़ टी. हॉर्नग्रेन के शब्दों में "शून्य आधारित बजट एक विस्तृत एवं समय साध्य पद्धति है जिसमें प्रबंधकों को अपनी गतिविधियों एवं लागतो के औचित्यों को इस प्रकार सिद्ध करना पड़ता है मानो वे पहली बार प्रारंभ की जा रही है।"

10.4.2 शून्य आधारित बजट की विशेषताएं

उपरोक्त बताई गई विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर शून्य आधारित बजट की कुछ विशेषताओं को निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर दर्शाया जा सकता है-

1. इसमें बजट का निर्माण हर बार शून्य को आधार मानकर ही किया जाता है।
2. निर्णयन इकाई के प्रबंधक या उत्तरदाई अधिकारी को बजट आवंटन का औचित्य सिद्ध करना पड़ता है।
3. इसमें प्रत्येक क्रिया की निर्णयन खंडों में पहचान की जाती है।
4. निर्णयन खंडों को एक क्रम प्रदान किया जाता है।
5. लागत-लाभ विश्लेषण के आधार पर चयन किया जाता है।

6. बजट निर्णयन प्रक्रिया में सभी स्तर के अधिकारी भाग लेते हैं।
7. निर्णय खंडों को संस्था के उद्देश्यों के साथ जोड़ा जाता है।
8. उपलब्ध संसाधनों को विकल्पों के साथ जोड़कर श्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है।

10.4.3 शून्य आधारित बजट की प्रक्रिया

शून्य आधारित बजटिंग में दो मूल प्रश्न पर ध्यान केंद्रित किया जाता है-

- क्या वर्तमान क्रियाएं कुशल तथा प्रभाव कारी हैं?
- क्या वर्तमान क्रियाओं को समाप्त कर दिया जाए अथवा कम कर दिया जाए, ताकि उच्च प्राथमिकता वाले नए कार्यक्रमों को धन दिया जा सके अथवा वर्तमान बजट को कम कर दिया जाए?

शून्य आधारित बजट कार्य पद्धति में यह अनिवार्य है कि प्रत्येक संगठन अभी अपने सभी कार्यक्रम और क्रियाओं को चाहे वह चल रही है अथवा नयी हैं ,व्यवस्थित ढंग से उन पर पुनर्विचार करें और उनका मूल्यांकन करें, क्रियाओं पर पुनर्विचार उत्पादन अथवा उपलब्धि तथा लागत के आधार पर किया जाए, ताकि प्रबंध किए निर्णय करने पर बल दिया जा सके, संख्योन्मुख बजट बन सके और विश्लेषण को बढ़ाया जा सके। शून्य आधारित बजट प्रणाली एक दृष्टिकोण है। यह एक जड़ कार्यविधि नहीं है जिसको सभी संगठनों में समान रूप से लागू किया जा सके। इस प्रक्रिया को प्रत्येक संगठन की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना जरूरी होगा।

शून्य आधारित बजट के निर्माण के समय कतिपय विशिष्ट चरणों या अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जिनका विवरण कुछ इस प्रकार से है-

1. **बजट उद्देश्य का निर्धारण-** इस बजट के निर्माण का प्रथम चरण उद्देश्य के निर्धारण से संबंधित है ताकि अन्य चरणों में उसके अनुसार कार्यवाही की जा सके। यह उद्देश्य लागत की कमी, किसी संयंत्र को हटाना या कमी या विस्तार करना या परिव्यय में कटौती करना इत्यादि से संबंधित हो सकते हैं।
2. **क्षेत्र का निर्धारण-** संगठन के संपूर्ण स्तरों या इकाइयों अथवा कुछ चुनिंदा इकाइयों में शून्य आधारित बजट को लागू करना इसके फैलाव क्षेत्र या प्रभावित क्षेत्र को इंगित करता है। अतः निर्माण के समय यह निर्धारित किया जाता है कि इस बजट प्रणाली का प्रभाव क्षेत्र कितना होगा।
3. **निर्णय इकाई का निर्धारण-** बजट निर्माण के इस चरण में संगठन को अनेक निर्णय इकाइयों में विभक्त किया जाता है तथा प्रत्येक निर्णय इकाई के प्रबंध को बजट प्रस्तावों का औचित्य सिद्ध करना होता है। निर्णय इकाइयों का विभाजन उत्पादन, बाजार, ग्राहक समूह, भौगोलिक क्षेत्र, पूंजी तथा परियोजना इत्यादि आधारो पर किया जाता है।
4. **निर्णय पैकेजों का विकास-** शून्य आधार बजट का अगला कदम है 'निर्णय पैकेज' का निर्माण। एक निर्णय पैकेज ''एक प्रलेख है जो किसी विशेष गतिविधि की पहचान किस प्रकार प्रकट करता है कि प्रबंधन मूल्यांकन कर सके तथा इसकी अन्य गतिविधियों के प्रति कोई क्रम व्यवस्था कर सके।'' अर्थात इस महत्वपूर्ण चरण में प्रत्येक निर्णय इकाई का प्रबंधक अपनी क्रियाओं का विश्लेषण करता है तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वैकल्पिक विधियों की खोज करता है एवं विधियों की लागत-लाभ विश्लेषण के आधार पर जांच करता है। इसके पश्चात वह निर्णय पैकेज निर्मित कर लेता है। इस पैकेज में निर्णय, योजनाएं तथा उन पर होने वाले संसाधनों को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रक्रिया के उद्देश्य, संसाधन, वैकल्पिक क्रिया विधियां, निष्पादन के माप, लाभ, विकल तथा हानि इत्यादि पैकेज में सम्मिलित रहती है। इस प्रकार इस निर्णय पैकेज में संपूर्ण जानकारियां एकत्र रहती हैं जिसमें तथ्यों की

पहचान, कार्यक्रम, उनकी संख्या, दिनांक, वैकल्पिक प्रविधियां, अदृश्य लाभ-हानि तथा सुगमता मूल्यांकन इत्यादि वर्णित होते हैं।

5. **निर्णय पैकेजों की क्रमबद्धता-** इस चरण में पूर्व में एकत्र किए गए विभिन्न निर्णय पैकेज महत्व, लाभ एवं उपादेयता की दृष्टि से घटते क्रम में क्रमबद्ध किए जाते हैं। प्रबंधकों द्वारा बनाई जाने वाली संबद्धता का एक उच्च अधिकार समिति द्वारा परीक्षण किया जाता है।
6. **बजट निर्माण-** इस अंतिम चरण में निर्णय पैकेजों को क्रम प्रदान करते हुए एक अंतिम बिंदु तय कर लिया जाता है। इस बिंदु तक आए सभी प्रस्ताव स्वीकृत किए जाते हैं जिनके लिए संसाधनों का आवंटन कर दिया जाता है।

वस्तुतः शून्य आधारित बजट प्रणाली कठोर परिश्रम तथा उच्च विश्लेषण क्षमता की मांग करती है अन्यथा यह विधि पूर्ण सफल नहीं हो पाती है।

10.4.4 शून्य आधारित बजट के लाभ

शून्य आधारित बजट एक क्रांतिकारी धारणा है तथा गतिविधियों की योजना बंदी और नियंत्रण के लिए अपेक्षाकृत एक नया प्रबंधन उपकरण है। यह एक संगठन सब तरह के लोगों में सहयोग पूर्ण भावना का प्रसार करता है। शून्य आधारित बजट पर आधारित योजनाएं एवं बजट पारंपरिक निर्माण पर आधारित बजट की तुलना में बहुत सुधरे हुए होते हैं।

शून्य आधारित बजट के कुछ लाभ निम्नानुसार बताए जा सकते हैं-

1. यह प्रबंधन को कार्यक्रम के अधिकार क्षेत्र के अनुसार कोष निर्धारित करने के योग्य बनाता है। विभिन्न गतिविधियों के लिए प्राथमिकता आधारित की जाती है तथा उनका क्रियान्वयन भी उसी क्रम में होता है।
2. शून्य आधारित बजट निर्माण प्रबंध की कौशल पूर्णता में सुधार लाता है। प्रत्येक प्रबंधक को साधनों से संबंधित अपनी मांग को न्यायोचित साबित करना होता है। केवल वही कार्य आरंभ किए जाते हैं जो तर्क संगत है तथा व्यापार के लिए आवश्यक है।
3. बजट की सहायता से मितव्यई और व्यर्थ था उन क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है। मितव्ययी गतिविधियों को प्राथमिकता दी जाती है तथा कार्य के वैकल्पिक मार्ग का भी अध्ययन किया जाता है।
4. इस बजट के माध्यम से प्रबंध साधनों का अनुकूलतम प्रयोग किया जा सकता है। वह तभी किया जाता है जब वह तर्कसंगत सिद्ध हो जाता है। प्राथमिकताओं की एक सूची के आधार पर लागत लाभ विश्लेषण प्राथमिकता निर्धारित करने का मार्गदर्शन इसके द्वारा प्राप्त होता है।
5. यह बजट उन क्षेत्रों में बहुत उचित होता है जहां उपज को उत्पादन से संबंधित नहीं किया जाता है। उन दिशाओं के निष्पादन का मूल्यांकन कठिन हो जाता है जो स्पष्ट रूप से उत्पादन से संबंधित ना होकर अन्य गतिविधियों में व्यस्त होती है। यह तकनीक व्यापार की प्रत्येक गतिविधि की उपयोगिता निर्धारित करने में सहायक होती है।
6. इस बजट प्रारूप के द्वारा बजट निर्माण को संगठनात्मक लक्ष्यों से संबंधित किया जा सकता है। कोई भी कार्य इस आधार पर नहीं करने दिया जा सकता कि वह भूतकाल में भी होता था। केवल उन्हीं कार्यों की इस बजट के द्वारा अनुमति दी जाती है जो कि संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं।
7. यह तकनीक उपलब्ध विकल्पों का तर्क संगत विश्लेषण करती है तथा संसाधनों का आवंटन भी प्राथमिकता के अनुसार ही करती है।
8. इस तकनीक में प्रबंधकों द्वारा हाथ में लिए जाने वाले सभी कार्यक्रमों को महत्वपूर्ण मानते हुए उन्हें भली-भांति क्रियान्वित करने पर बल दिया जाता है।

9. यह पद्धति लागत नियंत्रण पर बल देती है।
10. इसमें उत्तरदायित्व लेखांकन का प्रयोग होता है। अतः निर्णय इकाइयों के प्रबंधक बजट कार्यक्रमों के लिए उत्तरदाई ठहराया जा सकते हैं।
11. यह प्रणाली बजट तथा संगठन को उद्देश्यों के साथ जोड़ती है। संगठन के उद्देश्यों के विपरीत कोई बजट में संभव नहीं है।
12. यह तकनीक 'उद्देश्यों के द्वारा प्रबंध' को लागू करने एवं उसके क्रियान्वयन को प्रयोग में लाती है।
13. इसमें अनुवर्तन एवं पुनरीक्षण पर अधिक बल दिया जाता है।

10.4.5 शून्य आधारित बजट की हानियां/सीमाएं

विभिन्न लाभों के बावजूद इस विधि में कुछ रुपया भी है, जो कि मुख्यतः शून्य आधारित बजट के क्रियान्वयन की कठिनाइयों से उत्पन्न होती है। इन सीमाओं का वर्णन कुछ इस प्रकार है-

1. यह प्रणाली अत्यधिक समय, श्रम तथा उच्च विश्लेषण समता की मांग करती है।
2. इस प्रणाली में समन्वय एवं संचार की समस्या सभी प्रशासनिक संगठनों के बनी रहती है।
3. इस तकनीक पर निर्णय इकाइयों की पहचान एक जटिल कार्य होता है।
4. तर्कसंगत निर्णयों की पहचान करना तथा निर्णय पैकेजों का निर्धारण करना भी एक समस्या होती है।
5. निर्णय पैकेजों को क्रमबद्ध करना भी सहज नहीं होता है, क्योंकि एक निर्णय कई कारणों से प्रेरित रहता है। कम लागत तथा मितव्ययिता के निर्णय विकास को प्रभावित करते हैं।
6. शून्य आधारित बजट पर नियंत्रण करता है किंतु इसमें आय पक्ष की उपेक्षा की गई है।
7. इस तकनीक में प्राथमिकता क्रम निर्धारित होने से निम्न प्राथमिकता की इकाई एवं उसके कार्मिक छटनी की समस्या का सामना करते हैं।
8. इस तकनीक सफलता उच्च प्रशिक्षण तथा कुशल प्रबंधकों पर निर्भर करती है।
9. प्रभावी सूचना प्रणाली के अभाव में शून्य आधारित बजट प्रणाली अल्प प्रभावी हो जाती है।

उपरोक्त सभी समस्याओं के अतिरिक्त गार्ड पीटर्ज़ दो समस्याओं का उल्लेख करते हैं जो शून्य आधारित बजट की राजनीतिक मान्यता को सीमित करती है। प्रथम, यह स्पष्ट है कि संगठन यह नहीं चाहते कि बाहर वाले यह जान पाए कि उनको जीवित रहने के लिए कितना न्यूनतम खर्च आवश्यक है। दूसरा, यदि परिकल्पना यह है कि किसी संगठन के लिए जीवित रहने के लिए न्यूनतम खर्च को प्रतिवर्ष चुनौती दी जा सकती है तो राजनीतिक झगड़े स्थाई बन जाएंगे और पुराने झगड़े प्रति वर्ष प्रारंभ हो जाया करेंगे। इससे ऐसे सामाजिक कार्यक्रमों को खतरा हो जाएगा जिनको शक्तिशाली जनसमर्थन प्राप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त मुख्य समस्या उस खतरे की भी है जो कई नौकरशाह उस प्रक्रिया में महसूस करते हैं जो उनके कार्यक्रम की प्रभावकारिता का मूल्यांकन करती है। इसके अतिरिक्त शून्य आधारित बजट के लिए एक प्रभाव कारी प्रशासन संचार साधन तथा प्रबंधकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, जिनको विश्लेषण में लगाया जाएगा।

शून्य आधारित बजट को वित्तीय ढीलेपन के लिए एक का उपचार समझना खतरनाक होगा। अमेरिका के उद्योग में शून्य आधारित बजट की सफलता मुख्यतः उसके लाभ प्राप्ति के लक्ष्य और संगठनात्मक लचीलेपन के कारण है। यह दोनों तत्व की सरकारी पर्यावरण में काम नहीं करते हैं। इसके अलावा नौकरशाही स्वभाव विकास- तरंग में ढला होता है और पहले से बड़े बजट की मांग करता है,ना कि अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य की। एक और बात भी है- राजनीतिक दबावों का वित्तीय निर्णय करने पर शक्तिशाली प्रभाव शून्य आधारित बजट के भविष्य को बहुत अनिश्चित बना देता है।

10.5 निष्कर्ष

कार्य निष्पादन बजट को सामान्य तरह समझा जाता है कि यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें सार्वजनिक खर्च को कार्यों, कार्यक्रमों, कार्यान्वयन इकाइयों अर्थात क्रियाओं, परियोजना आदि की शब्दावली में प्रस्तुत करता है जो प्राथमिक तौर पर सरकार के उत्पादन अथवा निर्गत तथा इसकी लागत को प्रतिबिंबित करता है।

कार्य निष्पादन अथवा कार्यक्रम बजट की भांति जीरो बेस बजट भी युक्ति प्रधान बजट होता है। इसे निजी क्षेत्र से लोक प्रशासन में अपनाया गया है जो अभी तक संयुक्त राज्य अमेरिका तक ही सीमित रहा है। शून्य आधारित बजट एक उभरती हुई प्रक्रिया है जिसे अमेरिका में विभिन्न प्रकार के औद्योगिक संगठन तथा राज्य और नगर की सरकारों ने अपनाया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. मोटे तौर पर बजट के कितने प्रकार होते हैं?
2. निष्पादन बजट प्रणाली के कोई दो और प्रचलित नामों को बताइए।
3. निष्पादन बजट की प्रक्रिया के कोई दो चरण लिखिए।
4. शून्य आधारित बजट प्रणाली का सबसे प्रथम बार उपयोग कहां किया गया था?
5. निजी क्षेत्र में शून्य आधारित बजट का प्रयोग सबसे प्रथम बार कब किया गया था?

10.6 सारांश

निष्पादित बजट में अंतिम सेवाओं को कार्य भारत पर निष्पत्ति की इकाइयों में बांट दिया जाता है, जिससे परिणाम की इकाइयां उपलब्ध हो जाती हैं तथा इनका कार्यक्रमों के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए श्रम एवं सामग्री के निवेश की गणना करने के लिए प्रयोग किया जाता है। एक बार उद्देश्य तथा इकाइयां स्पष्ट हो जाने पर लेखांकन तथा अंकेक्षण के द्वारा प्रभावी नियंत्रण रखा जा सकता है। भारत तथा दूसरे देशों में परंपरागत बजट की प्रक्रिया के अधीन प्रथा यह है कि यह जाने बिना की क्या योजना अच्छी तरह चल रही है अथवा नहीं और क्या इसको जारी रखना उचित भी है अथवा नहीं, बड़ा स्त्री के आधार पर ध्यान दे दिया जाता है। शून्य आधारित बजट प्रक्रिया में योजना के प्रभाव, लक्ष्यों, निशानों, उपलब्धि के मानकों, मूल्यांकन और विभिन्न प्रकार की क्रिया संबंधी पारस्परिक तुलना में संबंधित भारी मात्रा में संख्यात्मक आंकड़ों की आवश्यकता होती है। भारत की स्थिति में शून्य आधारित बजट की सहायता से सरकार बड़ी संख्या में ऐसी योजनाओं और उनसे संबंधित उपक्रमों को समाप्त कर सकती है, चाहे वह वार्षिक योजना में सम्मिलित की गई हैं अथवा नहीं, जबकि उनकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है अथवा कर्मचारियों तथा संरचना पर पूंजी लगाने के बावजूद भी वह प्रभावकारी ढंग से शुरू नहीं हो पायी। यदि इस प्रक्रिया को ठीक प्रकार से लागू किया गया तो इससे केंद्रीय सरकार के राजस्व खाते में जो भारी घाटे की प्रवृत्ति चल रही है, उसको बदलने में सहायता मिलेगी।

10.7 शब्दावली

निर्गत- निर्यात (output), निवेश- आयात (input), समंक संकलन- समंको को एकत्रित किया जाना, मानव श्रम- शारीरिक तथा मानसिक श्रम, प्रमाप- साक्ष्य, पुनरीक्षण- दोबारा देखना या पुनरावलोकन, विगत- बीता हुआ निष्पत्ति- आविर्भाव या उत्पत्ति, पूर्णता, बोधगम्य- समझ में आने लायक, परिव्यय- खर्च, लागत, परिमाणात्मक मूल्यांकन- Quantitative Evaluation, गुणवत्तात्मक मूल्यांकन- Qualitative Evaluation

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 4, **2.** कार्यक्रम बजट और आउटकम बजट, **3.** लक्ष्य एवं उद्देश्यों का निर्धारण तथा कार्यक्रमों का निर्धारण,**4.** अमेरिका, **5.** 1969

10.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. कटारिया, सुरेंद्र. 2009. भारतीय लोक प्रशासन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, नई दिल्ली।
2. लेखी, आर.के. 2009. लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना।
3. दुबे, आर. के.2004. आधुनिक लोक प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, सदाना, कौर. 2015.लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; किताब महल, नई दिल्ली।
2. शर्मा, प्रभु दत्त, 2007. प्रशासनिक सिद्धांत; कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निष्पादन बजट का अर्थ एवं परिभाषा बताते हुए एक टिप्पणी लिखिए।
2. निष्पादन बजट के विभिन्न लाभ एवं हानियां/ सीमाओं का वर्णन कीजिए।
3. शून्य आधारित बजट प्रणाली का अर्थ एवं विशेषताएं बताइए।
4. शून्य आधारित बजट प्रणाली की विभिन्न समस्याएं बताइए।

इकाई- 11 राजस्व के स्रोत कर एवं करों के अतिरिक्त आय

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 लोक वित्तः परिचय
    11.2.1 राजस्व का विकास
11.3 लोक वित्त का क्षेत्र
11.4 सार्वजनिक आय: आशय और श्रोत
    11.4.1 करः परिभाषा व विशेषताएं
    11.4.2 वैट (मूल्य वर्धित कर प्रणाली) क्या है?
    11.4.2.1 वैट के अन्तर्गत कर-दायित्व
    11.4.2.2 वैट का औचित्य/प्रचलन के कारण
    11.4.2.3 वैट की विशेषताएं
    11.4.2.4 वैट का परम्परागत कर प्रणाली से श्रेष्ठता
    11.4.2.5 वैट के गुण व दोष
11.4.3 वस्तु व सेवा कर Goods and Services Tax (GST)
    11.4.3.1 वस्तु एंव सेवा कर के अंतर्गत वस्तुओ और सेवाओ पर कर की दरें
    11.4.3.2 इनपुट टैक्स क्रेडिट
    11.4.3.3 वस्तु एंव सेवाकर के अन्तर्गत रिवर्स चार्ज तंत्र
    11.4.3.4 जी0एस0टी0 रिटर्न समय पर न दाखिल करने पर लेट फीस सम्बन्धित नियम
11.5 सार्वजनिक आय का वर्गीकरण
11.6 करों के अतिरिक्त आय
    11.6.1 शुल्क
    11.6.2 लाइसेन्स शुल्क
    11.6.3 जुर्माना
    11.6.4 विशेष निर्धारण
    11.6.5 मूल्य
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

लोक वित्त में हम सरकार द्वारा व्यय करने तथा इसके लिए धन जुटाने से सम्बन्धित उद्देश्यों, सिद्धान्तों, समस्याओं तथा परिणामों का अध्ययन करते हैं। आज विभिन्न देशों में लोकतान्त्रिक व्यवस्था है जिसमें राजा का स्थान जनता

के चुने हुए प्रतिनिधियों ने ले लिया है। लोकतन्त्र में जनता से लिया गया कर जनता के हित में प्रयोग किया जाता है तब 'राजस्व' का अर्थ 'राजा का धन न रहकर' 'जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का धन' हो जाता है। अतः 'राजस्व' के लिए 'लोक वित्त' शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा। सत्य तो यह है कि आज की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में 'राजस्व' विकसित होकर 'लोक वित्त' बन गया है। सार्वजनिक व्यय करने के लिए आवश्यक धन-राशि जुटाना नितांत आवश्यक है। अतः सार्वजनिक आय भी राजस्व का प्रमुख अंग है। इस इकाई में आप राजस्व की प्रकृति व क्षेत्र, सार्वजनिक आय का अर्थ, श्रोत व वर्गीकरण का अध्ययन करेंगे साथ ही वैट का आशय, विशेष ताएं व गुण-दोषों, वस्तु व सेवा कर, व करों के अतिरिक्त आय के बारे में भी जानेगे।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राजस्व की प्रकृति व क्षेत्र क्या है, को समझ सकें।
- सार्वजनिक वित्त और निजी वित्त में क्या अन्तर है, को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सार्वजनिक आय के अर्थ, श्रोत व वर्गीकरण को स्पष्ट कर सकेंगे।
- वैट का आशय, विशेषताएं व गुण-दोषों का वर्णन कर सकेंगे।
- वस्तु व सेवा कर को स्पष्ट कर सकोगे।
- करों के अतिरिक्त आय की व्याख्या कर सकोगे।

11.2 लोक वित्तः परिचय

लोक वित्त के लिए 'राजस्व' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। 'राजस्व' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है: राजन् + स्वः, जिसका अर्थ होता है- 'राजा का धन' राजतन्त्र में राजा समाज का प्रमुख होता था, अतः 'राजस्व' वास्तव में राजा का धन होता था। राजा जो कर वसूल करता था वह उसकी सम्पत्ति मानी जाती थी और वह उसको मनमाने ढंग से व्यय कर सकता था। न तो उसे बजट बनाने की आवश्यकता थी, नहीं किसी के अनुमति की।

अंग्रेजी शब्द 'Public Finance' भी दो शब्दों से मिलकर बना है, Public तथा Finance यहाँ 'Public' शब्द से तात्पर्य है, Public Authorities (सार्वजनिक सत्तायें अथवा सरकारें) तथा 'Finance' शब्द का अर्थ है- आय प्राप्त करना तथा व्यय करना।

डाल्टन के अनुसार, ''लोक वित्त सार्वजनिक अधिकारियों के आय तथा व्यय एवं इनके पारस्परिक समन्वय का अध्ययन है।''

भारत के प्रमुख प्रोफेसर, फिन्डले सिराज के अनुसार, लोक वित्त का सम्बन्ध सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा आय प्राप्त करने व व्यय करने के तरीके से है।''

सार्वजनिक अधिकारियों से अभिप्राय विभिन्न प्रकार की सरकारों से होता है, उदाहरणार्थ भारतवर्ष में सार्वजनिक अधिकारियों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय सरकारें जैसे- नगर निगम, नगर पालिकायें, जिला परिषद, ग्राम पंचायतें आदि सम्मिलित हैं।

आधुनिक काल में सरकारों की आय-व्यय लगभग पूर्णतया धन के रूप में ही होती है। अमौद्रिक आय-व्यय की मात्रा नगण्य होती है।

लोक वित्त को कुछ अन्य नामों से भी पुकारा गया है, जैसे- सार्वजनिक वित्त, राजकीय वित्त, राजस्व।

11.2.1 राजस्व का विकास

प्राचीन काल में राजस्व- राजस्व की विचारधारा को लगभग उतना ही प्राचीन कहा जा सकता है, जितना प्राचीन 'स्वयं' 'राज्य' का अस्तित्व है। भारत, मिश्र, यूनान आदि प्राचीन देशों में राजस्व के नियमों व नीतियों का प्रादुर्भाव हो गया था। प्राचीन सभ्यताओं की राजस्व प्रणालियाँ प्रमुखतः पराजित देशों से वसूल किये गये करों पर निर्भर करती थी। इसके अलावा, अप्रत्यक्ष कर, जैसे भूमि हस्तांतरणों तथा व्यापारिक सौदों पर कर भी लगाये जाते थे। रोम साम्राज्य में उत्तराधिकार कर तथा सामान्य बिक्री कर भी लगाया जाता था।

भारत में 'मनुस्मृति' तथा चाणक्य के अर्थशास्त्र में हमें करारोपण तथा राजकीय व्यय की व्यवस्था के बारे में सिद्धान्तों का विवरण मिलता है। ग्रीक युग की एक छोटी पुस्तक 'Athenian Revenues' जिसके लेखक Xenophon थे उल्लेखनीय है। प्लेटो तथा एरिस्टाटिल के लेखों में भी राजकोषीय विषयों पर टिप्पणियाँ प्राप्त होती हैं। रोम के इतिहासकारों के लेखों में भी रोमन राजकोषीय प्रणालियों का विश्लेषण तथा समालोचना मिलती है। सत्रहवीं शताब्दी में इग्लैंड में व्यापारवादियों ने करारोपण के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए; इस सम्बन्ध में सर बिलियम पेट्ठी (Shri William Petty) की कृति Treastise of Taxes and Contributions (1662) उल्लेखनीय है।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एडम स्मिथ ने राजस्व के सिद्धान्तों को एक और व्यवस्थित रूप प्रदान किया। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैल्थ आफ नेशन्स' (1776) में राजस्व सम्बन्धी विषयों पर अपने विचार प्रगट किए। एडम स्मिथ ने सार्वजनिक व्यय का विस्तृत विश्लेषण किया तथा सार्वजनिक ऋण पर सर्वप्रथम अपने विचार प्रस्तुत किए। बीसवीं शताब्दी में, विशेष कर, तीसा (1930's) के महामन्दी काल के बाद आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों व पहलुओं में राज्य का हस्तक्षेप स्वीकार किया गया तथा फलस्वरूप राजस्व के अध्ययन को विशेष महत्व प्राप्त हो गया। जनतन्त्रात्मक गणराज्यों के उद्भव, समाजवादी विचाराधारा की प्रधानता तथा विश्व के विभिन्न भागों में होने वाली राजनैतिक व आर्थिक क्रान्तियों ने एक अधिक प्रगतिशील आय-नीति तथा अधिक उदार राजकीय व्यय-नीति को जन्म दिया।

राजस्व का उद्देश्य अब सरकार के लिए धन एकत्र करना मात्र नहीं रहा, बल्कि आर्थिक स्थायित्व प्राप्त करने, आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने, सामाजिक न्याय प्राप्त करने और पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने का उसे एक शक्तिशाली साधन माने जाने लगा। इस सम्बन्ध में कीन्स, हैन्सन एवं लर्नर के विचार उल्लेखनीय है। कीन्स एवं हैन्सन ने राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) के महत्व को बताया। तद्नुसार, यह आवश्यक माना गया कि उपभोग में स्थायित्व लाया जाय और उसका उपयुक्त ढंग से नियमन हेतु क्षतिपूरक कार्यवाही की जाय।

लर्नर, जिन्होंने 'क्रियाशील वित्त के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया बताया, कि करारोपण का उद्देश्य सार्वजनिक वित्त के लिए केवल वित्त एकत्रित करना मात्र नहीं है बल्कि इसका मूल उद्देश्य मुद्रा-स्फीति को रोकना है। इसी प्रकार सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य कुछ वांछनीय दिशाओं में सरकारी धन को खर्च करना न होकर देश में पूर्ण रोजगार की अवस्था को प्राप्त करना है।

11.3 लोक वित्त का क्षेत्र

लोक वित्त के क्षेत्र का वर्णन निम्न प्रकार से है-

1. **सार्वजनिक व्यय-** अपने कार्यों को पूरा करने के लिए सरकार जो धन-राशि व्यय करती है, उसे सार्वजनिक व्यय कहते हैं। आधुनिक युग में सरकारें बहुत अधिक मात्रा में तथा अनेकों विषयों पर व्यय करती हैं, अतः सार्वजनिक व्यय राजस्व का एक प्रमुख विभाग हैं।

   इस विभाग के अन्तर्गत जिन बातों का अध्ययन किया जाता है उनमें से प्रमुख निम्न हैं-

- किन-किन मदों पर सरकारी व्यय होना चाहिए और किन पर नहीं अर्थात् सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र।
- सार्वजनिक व्यय कितने प्रकार के होते हैं अर्थात् सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण।
- सार्वजनिक व्यय करने में किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए अर्थात् सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त।
- सार्वजनिक व्यय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक व्यय के प्रभाव।

2. **सार्वजनिक आय-** सार्वजनिक व्यय करने के लिए आवश्यक धनराशि जुटाना नितांत आवश्यक है। अतः सार्वजनिक आय भी राजस्व का प्रमुख अंग है। सार्वजनिक आय से अभिप्राय सरकार द्वारा प्राप्त किये गये उस धन में से है जिसकी कि वापसी नहीं की जाती।
   वे प्रमुख बातें जिनका अध्ययन इस विभाग के अन्तर्गत किया जाता है, निम्न हैं-
   - सार्वजनिक आय के कौन-कौन से साधन हैं अर्थात् सार्वजनिक आय का वर्गीकरण।
   - कर, जो कि सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है, कितने प्रकार के होते हैं, अर्थात् कर का वर्गीकरण।
   - कर लगाने में किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् करारोपण के सिद्धान्त।
   - जनता की कर देने की शक्ति से क्या तात्पर्य हैं और यह किन-किन बातों पर निर्भर करती है अर्थात् करदेय क्षमता का अर्थ तथा उसके निर्धारक तत्व।
   - किन कारणों से एक करदाता कर का भार किसी अन्य व्यक्ति पर डालने में सफल होता है अर्थात् कर विवर्तन के तत्व।
   - सार्वजनिक आय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक आय के प्रभाव।
3. **सार्वजनिक ऋण-** सार्वजनिक ऋण भी राजस्व का एक महत्वपूर्ण विभाग है, क्योंकि सार्वजनिक व्यय की पूर्ति के लिए आवश्यक धनराशि जुटाने में सरकार को बहुधा देश-विदेश से ऋण भी लेना पड़ता है। सार्वजनिक ऋण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि सरकार को ऋण के रूप में प्राप्त धनराशि की वापसी भी करनी पड़ती है और साधारणतया वापसी की तिथि तक के लिए ब्याज भी चुकाना पड़ता है।
   सार्वजनिक ऋण से सम्बन्धित जिन बातों का अध्ययन इस विभाग में किया जाता है, उसमें से निम्न उल्लेखनीय हैं-
   - किन-किन परिस्थितियों में सरकार के लिए ऋण लेना वांछनीय होगा अर्थात् सार्वजनिक ऋण का क्षेत्र।
   - सार्वजनिक ऋण कितने प्रकार के होते हैं, अर्थात् सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण।
   - किन दशाओं में ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन दशाओं में कर लगाना अर्थात् ऋण और कर की तुलना।
   - किन दशाओं में देश के भीतर से ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन में विदेशों से अर्थात् आन्तरिक तथा वाह्य ऋण की तुलना।

- घाटे का वित्त प्रबन्ध क्या होता है, किस सीमा तक घाटे का वित्त प्रबन्ध किया जा सकता है और उसके क्या प्रभाव होते हैं अर्थात् घाटे के वित्त प्रबन्ध का अर्थ, सीमा तथा प्रभाव।
- ऋण की वापसी के कौन से तरीके हैं और उनमें से हर एक के क्या गुण व दोष है अर्थात् सार्वजनिक ऋण के शोधन के सिद्धान्त।
- ऋण के क्या प्रभाव होते हैं?

4. **वित्तीय प्रशासन-** वित्तीय प्रशासन से अभिप्राय उस शासन-व्यवस्था एवं संगठन से है जिसकी स्थापना सरकार अपनी विभिन्न क्रियाएं करने के लिए करती हैं।
   वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत निम्न प्रमुख प्रश्नों के बारे में अध्ययन किया जाता है-
   - बजट किस प्रकार तैयार, पास तथा कार्यान्वित किया जाता है?
   - विभिन्न करों का एकत्रण किन-किन अधिकारियों तथा संस्थाओं द्वारा होता है?
   - व्यय विभागों का संचालन क्यों कर होता है?
   - सार्वजनिक लेखों के लिखने तथा उनके आडिट के लिए कौन-कौन से विभाग तथा अधिकारी होते हैं तथा उनके क्या-क्या अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं?
     वेस्टेबल ने राजस्व के इस विभाग की आवश्यकता तथा महत्व पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार कोई भी वित्त की पुस्तक पूर्ण नहीं कही जा सकती, जब तक कि वह वित्तीय प्रशासन और बजट की समस्याओं का अध्ययन नहीं करती।
5. **राजकोषीय नीति-** राजकोषीय नीति का अर्थ है कि कुछ आर्थिक उद्देश्यों जैसे आर्थिक स्थायित्व (Economic Stibilcation) व आर्थिक विकास (Economic Development) की पूर्ति के लिए करारोपण, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण का उपभोग करना। अतः राजस्व के इस विभाग के अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि देश में आर्थिक स्थिरता लाने के लिए अथवा आर्थिक विकास के लिए राजकोषीय नीति का उपयोग किस प्रकार किया जाता है। राजकोषीय नीति के अध्ययन की महत्ता सन् 1930 की महामन्दी के पश्चात् आरम्भ हुई। आधुनिक युग में राजकोषीय नीति का महत्व राजस्व के पश्चात् आरम्भ हुई। आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है। यह बात अब समान रूप से स्वीकार की जाती है कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य समस्या व्यावसायिक दशाओं (business conditions) में स्थिरता लाने (stability) की होती है, जबकि अविकसित व अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की मुख्य आर्थिक समस्या तीव्र आर्थिक विकास है। इन दोनों ही समस्याओं के हल में राजकोषीय नीति का सकरात्मक व महत्वपूर्ण योगदान होता है।

11.4 सार्वजनिक आयः आशय व श्रोत

सार्वजनिक आय से अभिप्राय सरकार द्वारा प्राप्त किये गये उस धन से है जिसकी कि वापसी नहीं की जाती।
वे प्रमुख बातें जिनका अध्ययन इस विभाग के अन्तर्गत किया जाता है निम्न हैं-

1. सार्वजनिक आय के कौन-कौन से साधन है, अर्थात् सार्वजनिक आय का वर्गीकरण;
2. कर, जो कि सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है, कितने प्रकार के होते है, अर्थात् कर का वर्गीकरण;
3. कर लगाने में किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए, अर्थात् करारोपण के सिद्धान्त;

4. जनता की कर देने की षक्ति से क्या तात्पर्य है और यह किन-किन बातों पर निर्भर करती है, अर्थात् करदेय क्षमता का अर्थ, तथा उसके निर्धारक तत्व;
5. किन कारणों से एक करदाता कर का भार, किसी अन्य व्यक्ति पर टालने में सफल होता है अर्थात् कर विवर्तन के तत्व;
6. सार्वजनिक आय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक आय के प्रभाव।

11.4.1 करः परिभाषा व विशेषताऐं

कर को कुछ दशाओं में ड्यूटी अथवा इम्पोस्ट भी कहते हैं। विभिन्न लेखकों ने कर की परिभाषा विभिन्न प्रकार से दी है। कुछ उल्लेखनीय परिभाषाएं निम्न हैं-

सेलिगमैन के शब्दों में, कर व्यक्तिओं द्वारा सरकार को दिया जाने वाला वह अनिवार्य भुगतान है, जो सरकार बिना किसी फायदे के सार्वजनिक हित में व्यय करती है।

इन परिभाषाओं से कर के बारे में निम्न प्रमुख बातें स्पष्ट होती हैं-

कर, करदाता को अनिवार्य रूप से देना होता है, करदाताओं की इच्छा पर यह निर्भर नहीं करता, कि वे कर देंगे या नही।

कर से प्राप्त धन-राशि को लोकहित एवं जन-कल्याण के लिए व्यय किया जाता है, न कि किसी व्यक्ति विशेष या स्वयं करदाता की ही सेवा के लिये, उदाहरणार्थ, विदेशी आक्रमण से सुरक्षा पर व्यय।

कर के बदले में सरकार करदाता को कोई प्रत्यक्ष वस्तु या सेवा नहीं देती अर्थात करदाता के त्याग और सरकारी व्यय से मिलने वाले लाभ में कोई समान तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। उदाहरण के लिए, सरकार इस बात का वचन नहीं देती कि जो उत्पादन शुल्क सूती कपड़े से मिलेगा वह उस उद्योग पर ही व्यय कर दिया जायेगा। सुविधा नहीं मिलती। टासिग के मतानुसार, ''करदाता तथा सरकार के बीच प्रत्यक्ष प्रतिफल का अभाव ही कर की वास्तविकता है।''

कर का एक उद्देश्य शासन प्रबन्ध का खर्च पूरा करने के लिये आवश्यक धन जुटाना होता है। परन्तु इसके अतिरिक्त कर लगाने का एक उद्देश्य नियमन व नियन्त्रण भी है, अर्थात कुछ कार्यों के प्रचलन व प्रयोग को रोकने व सीमित, नियमित एवं नियन्त्रित करने के लिए भी सरकार कर लगाती है। उदाहरण के लिए शराब, अफीम तथा अन्य मादक वस्तुओं का उपभोग सीमित करने के लिए सरकार इन वस्तुओं के उत्पादन व उपभोग पर बहुधा कर लगा देती है। इसी प्रकार, स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार उपयुक्त वस्तुओं के आयात पर कर लगा देती है। बहुधा आवश्यक कच्चे माल पर निर्यात कर भी इस उद्देश्य से लगाया जाता है कि उनका निर्यात सीमित रहे और कच्चा माल देश के आन्तरिक उद्योगों को उपलब्ध हो सकें। बहुधा कर लगाने का उद्देश्य राजस्व-संग्रह तथा नियमन, दोनों एक साथ ही होता है।

संक्षेप में, कर की निम्न प्रमुख विशेषताऐं हैं-

1. यह एक अनिवार्य भुगतान है।
2. इसे सामान्य हित पर व्यय के लिए जुटाया जाता है।
3. कर के बदले में करदाता को कोई प्रत्यक्ष वस्तु या सेवा नहीं प्रदान की जाती।
4. कर का उद्देश्य आय प्राप्त करना व नियन्त्रण हो सकता है।

अतः कर की निम्न परिभाषा दी जा सकती है- ''कर एक अनिवार्य भुगतान है जो सरकार व्यक्तियों से सामान्य हित में प्राप्त करती है परन्तु जिसके बदले में कोई प्रत्यक्ष सेवा या सुविधा नही प्रदान की जाती; कर का उद्देश्य आय प्राप्त करना, या नियमन या दोनों होता है।''

11.4.2 वैट (मूल्य वर्धित कर प्रणाली) क्या है?

मूल्य वर्धित कर प्रणाली में राज्य में माल के प्रत्येक विक्रय पर कर लगता है तथा विक्रेता द्वारा राज्य में क्रेता को चुकाए गए कर का सेट-ऑफ 'इनपुट टैक्स रिबेट' के रूप में प्राप्त होता है। इस प्रणाली में एक बार प्रथम विक्रेता को पूर्ण विक्रय मूल्य पर कर लगता है तथा बाद के विक्रयों पर मूल्य संवर्धन पर ही विक्रेता को कर देना पड़ता है। चूंकि माल क्रय करते समय जो कर विक्रेता को दिया गया था, उसको उसके द्वारा माल विक्रय करते समय देय कर में से कम कर लिया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह कह सकते हैं कि मूल्य वर्धित कर माल के प्रत्येक विक्रय पर लगने वाला कर है जिसमें विक्रय के पूर्व स्तर पर राज्य में चुकाए गए कर, को कम करने की प्रत्येक विक्रय के समय व्यवस्था है। Value added tax is levied at each stage of sale with a credit of tax paid at immediately purchase stage within the state. उदाहरण द्वारा इसे इस प्रकार रखा जा सकता है, मोहन एक पंजीकृत व्यवसायी है, वह किसी माल को सोहन को 1000 रू में विक्रय करता है तथा मूल्य वर्धित कर की दर 10 प्रतिशत है तो वह क्रेता से 1100 रू वसूल करेगा, 1000 रू माल की कीमत तथा 100 रू मूल्य वर्धित कर, कुल 1000 $ 100 = 1100 रू। सोहन भी पंजीकृत व्यवसायी है, वह उस माल को 1300 रू में विक्रय करता है तथा 10 प्रतिशत से 130 रू मूल्य वर्धित कर वसूल करेगा। इस प्रकार सोहन का विक्रय मूल्य 1430 रू होगा। इस विक्रय पर उसे राज्य शासन को 130 रू - 100 (मोहन द्वारा चुकाया गया कर) = 30 रू जमा करने होंगे। यह प्रक्रिया तब तक चालू रहेगीं जब तक माल का विक्रय पंजीकृत व्यवसायियों की श्रृंखला के बीच चलता रहेगा तथा इस श्रृंखला के प्रथम विक्रेता व्यवसायी को अपने विक्रय मूल्य पर बनने वाला समस्त मूल्य वर्धित कर जमा करना होगा तथा श्रृंखला के शेष व्यवसायियों को केवल उनके द्वारा सवंर्द्धित मूल्य (Value addition) पर ही कर जमा करना होगा।

निर्माता व्यवसायी द्वारा वस्तु के निर्माण के लिए जो भी अन्य माल क्रय किया जायेगा, जिसमें कच्चा माल, आनुंशगिक माल, पैकिंग मैटेरियल तथा प्लान्ट एवं मषीनरी इक्यूपमेंट तथा स्पेयर पाटर्स शामिल होगा, जिसका निर्माण की प्रक्रिया में उपयोग किया जाता है, अथवा व्यापारी द्वारा अनुसूची दो के माल के सम्बन्ध में उपयोग किया जाता है, तब ऐसे समस्त माल पर चुकाए गए कर सेट-ऑफ (Input Tax Rebate) के रूप में निर्माता व्यवसायी तथा व्यापारी को प्राप्त होगी, यदि निर्मित माल का विक्रय अपने राज्य में या अन्तर्राज्यीय व्यवसाय में अथवा भारत के बाहर निर्यात के अनुक्रम में किया जाता है।

अनुसूची एक में वर्णित कर-मुक्त माल के निर्माण में लगने वाली इनपुट पर भी यदि राज्य में पंजीकृत व्यवसायी से माल क्रय किया गया है तब 5 प्रतिशत से अधिक दर से चुकाए गए कर का इनपुट टैक्स रिबेट के सेट-ऑफ मिलगा, इसी प्रकार यदि निर्मित माल का राज्य से बाहर षाखाओं को ट्रांसफर कर दिया जाता है या राज्य से बाहर आढ़त में विक्रय के लिए भेजा जाता है तब भी राज्य के पंजीकृत व्यवसायियों से क्रय माल पर 5 प्रतिशत से अधिक दर से चुकाए गए कर का इनपुट टैक्स रिबेट प्राप्त होगा।

11.4.2.1 वैट के अन्तर्गत कर-दायित्व

मूल्य वर्धित कर प्रणाली में निर्माता, आयातक तथा अन्य व्यवसायियों के लिए पृथक-पृथक कर दायित्व की सीमा नहीं रखी गई है। समस्त व्यवसायियों के लिए कर दायित्व सीमा सामान्यतः 5 लाख रू रखी गई है। इस टर्नओवर में सभी प्रकार के विक्रय जैसे कर-मुक्त, कर-चुका, कर-योग्य शामिल होगा। 5 लाख रू में अधिक विक्रय होने पर ही कर-दायित्व उत्पन्न होगा। आयातक, निर्माता या अन्य का कर दायित्व के लिए कोई वर्गीकरण नहीं है।

मूल्य वर्धित कर अधिनियम राज्य में लागू होने पर जिन व्यवसायियों का विक्रय निर्धारित की सीमा से अधिक होगा उन पर कर-दायित्व मूल्य वर्धित कर कर अधिनियम लागू होने के पश्चात से आएगा तथा जिनका विक्रय

कम है उनका विक्रय यदि किसी वर्श में निर्धारित सीमा से अधिक हो जाता है, तब जिस दिनांक को विक्रय सीमा से अधिक होगा उस दिनांक से कर दायित्व उदय होगा।

11.4.2.2 वैट का औचित्य/प्रचलन के कारण

विक्रय कर की वर्तमान संरचना में वस्तुओं पर दोहरे करारोपण तथा करों की बहुलता के करण समस्याएं उत्पन्न होती है जिसके परिणामस्वरूप कर बोझ स्तर दर स्तर बढ़ता है। उदाहरणस्वरूप वर्तमान प्रचलित कर ढांचे में किसी वस्तु के निर्मित होने से पूर्व उसके इनपुट्स (कच्चे माल) पर करारोपण होता है तथा उसके बाद जब वस्तु निर्मित हो जाती है तथा उसमें इनपुट पर लगा हुआ कर शामिल हो जाता है। जिसके कारण बहुस्तरीय कर बोझ बढ़ता है। मूल्य वर्धित कर में इनपुट टैक्स तथा पूर्ववर्ती क्रयों पर चुकाए गए कर के सम्बन्ध में सेट-ऑफ दिया जाता है। वर्तमान में प्रचलित विक्रय कर के ढांचे में अनेक राज्यों में बहुबिन्दु करों के करारोपण की स्थिति है यथा- टर्नओवर टैक्स, विक्रय पर अधिभार तथा अतिरिक्त अधिभार आदि। मूल्य वर्धित कर के क्रियान्वित होने पर इस प्रकार के अन्य कर समाप्त हो जाएंगे। इनके अतिरिक्त केन्द्रीय विक्रय कर (CST) को भी चरणबद्ध रूप से समाप्त किया जा रहा है जिसके लिए 1-6-2008 से CST की दर 2 प्रतिशत की गई है जिसे G.S.T. के साथ पूरा समाप्त किया जाना प्रस्तावित है। इसका परिणाम यह होगा कि समेकित रूप से पड़ने वाला कर बोझ युक्तिसंगत होगा तथा मूल्यों में भी सामान्यतः गिरावट आएगी।

- इनपुट टैक्स तथा पूर्ववर्ती क्रयों पर चुकाए गए कर का सेट-ऑफ दिया जाएगा।
- अन्य कर जैसे टर्नओवर टैक्स, अधिभार तथा अतिरिक्त अधिभार आदि समाप्त होंगे।
- समग्र रूप से कर बोझ का विवेकीकरण होगा।
- सामान्यतः कीमतें गिरेंगी।
- व्यवसायियों के द्वारा स्वतः कर-निर्धारण किया जाएगा।
- पारदर्शिता में वृद्धि होगी।
- राजस्व आय बढ़ेगी।

इस प्रकार मूल्य वर्धित कर जन-सामान्य, व्यवसायियों, उद्योगपतियों तथा शासन को सहायता करेगा। वास्तव में यह अधिक कार्यक्षमता तथा कर प्रणाली में पारदर्शिता तथा समान प्रतिस्पर्धा की ओर बढ़ाया जाने वाला एक कदम है।

11.4.2.3 वैट की विशेषताएं

माल के क्रय-विक्रय पर कर लगाने के लिए अभी तक जो कर प्रणालियां अपनायी जाती रही हैं, उनमें मूल्य वर्धित कर प्रणाली नवीनतम अवधारणा है। विश्व के अनेकों देशों में इस प्रणाली को अपनाया गया है एवं भारत में भी इस प्रणाली को सभी राज्य सरकारों ने लागू कर दिया है। मूल्य सवंर्द्धित कर जो कि अपने संक्षिप्त नाम मूल्य वर्धित कर के रूप में जाना जाता है की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार हैं-

1. **राज्य सरकार द्वारा करारोपण-** मूल्य सवंर्द्धित कर राज्य सरकारों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा राज्य में माल का क्रय-विक्रय पर लगाया जाने वाला कर है। भारतीय संविधान में माल के क्रय-विक्रय पर कर लगाने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया गया है। मूल्य वर्धित कर के पूर्व राज्य सरकारें विक्रय कर या वाणिज्यिक कर के रूप में माल के क्रय-विक्रय पर कर लगाती थी। अब इनका स्थान मूल्य वर्द्धित कर ने लिया है। इस कर को लागू करने के लिए विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने-अपने अधिनियम एवं नियम बनाए है।

2. **अप्रत्यक्ष कर-** मूल्य वर्द्धित कर एक प्रकार का अप्रत्यक्ष कर है। यह माल की बिक्री पर विक्रेता द्वारा वसूला जाता है, एवं शासन को जमा किया जाता है। इसका भुगतान विक्रेता व्यापारी द्वारा किया जाता है और मूल्य में इसे जोड़कर उपभोक्ता से वसूला जाता है। इसका अंतिम भार उपभोक्ता पर पड़ता है। इसका कराघात व्यापारी पर एवं करापात उपभोक्ता पर होने के कारण यह अप्रत्यक्ष कर की श्रेणी में आता है।
3. **बहुबिन्दु कर-** मूल्य वर्द्धित कर बहुबिन्दु कर है। किसी वस्तु को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुंचने में जितने स्तरों पर इसका हस्तान्तरण होता है, उतने स्तरों पर यह कर वस्तु के बढ़े हुए मूल्य पर लगता है। इसे हम निम्नलिखित उदाहरण से समझ सकते हैं-
   - प्रथम स्तर: उत्पादक द्वारा वितरक को विक्रय;
   - द्वितीय स्तर: वितरक द्वारा थोक व्यापारी को विक्रय;
   - तृतीय स्तर: थोक व्यापारी से उपभोक्ता को विक्रय;
   - चतुर्थ स्तर: फुटकर व्यापारी से उपभोक्ता को विक्रय;

   वस्तु की बिक्री से प्रत्येक स्तर यह कर राज्य में अपनाई गई गणना पद्धति के अनुसार लगेगा।
4. **बढ़े हुए मूल्य पर कर-** यद्यपि मूल्य विर्धित कर बहुबिन्दु कर है, लेकिन प्रत्येक स्तर पर वस्तु के सम्पूर्ण मूल्य पर यह कर नहीं लगता है, बल्कि विक्रेता द्वारा की गयी वृद्धि (विकय मूल्य -क्रय मूल्य = अन्तर) पर यह कर लगता है।
5. **मूल्य वर्धित कर की राशि बिल में अलग से प्रदर्शित करना-** मूल्य वर्धित कर, कर प्रणाली में पूर्ववर्ती विक्रेता को चुकाए गए कर की छूट व्यापारी को तभी मिल सकती है, जबकि बिल में ऐसे कर की राशि अलग से प्रदर्शित की गयी हो। अतः आगत कर की छूट की प्राप्ति क्रेता व्यापारी को उस वस्तु के पुनः विक्रय पर देय कर में से मिल सके, इसके लिए ऐसे कर की राशि बिल में माल की कीमत में शामिल करने की बजाय पृथक से चार्ज की जाती है।
6. **कम्पोजिशन के सुविधा-** जो छोटे व्यापारी इनपुट कर की छूट प्राप्त नहीं करना चाहते है, उनको यह विकल्प है कि वे एक निर्धारित प्रतिशत से एकमुश्त कर चुका कर अपने दायित्व को पूरा कर सकते है। इसे कम्पोजिशन कहते है। विभिन्न राज्यों के अधिनियमों के अन्तर्गत सामान्यतः 40 लाख रू तक के वार्षिक विक्रय वाले व्यापारियों को यह विकल्प प्राप्त होता है।
7. **पंजीयन-** विक्रय कर या वाणिज्यिक कर की तरह राज्य के मूल्य वर्धित कर अधिनियम के अन्तर्गत भी व्यापारी के लिए पंजीयन कराना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण है कि जो व्यापारी किसी राज्य में पूर्ववर्ती विधान में पंजीकृत थे, उनको मूल्य वर्धित कर अधिनियम के अन्तर्गत पुनः नया रजिस्ट्रेशन कराने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे व्यापारी मूल्य वर्धित कर के अन्तर्गत स्वतः ही पंजीकृत मान लिए गए है। नये व्यापारी जो अब पंजीकरण कराना चाहते है, उनका पंजीकरण उनके राज्य के मूल्य वर्धित कर अधिनियम के अन्तर्गत होगा।
8. **स्वतः कर-निर्धारण-** मूल्य वर्धित कर प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस प्रणाली में स्वतः कर-निर्धारण की व्यवस्था की गयी है। जो व्यापारी निर्धारित तिथि तक विक्रय विवरणी प्रस्तुत कर देते है एवं कर जमा कर देते हैं, उन्हें कर-निर्धारण के लिए कर विभाग के पास जाने की आवश्यक ता नहीं है। अपवादस्वरूप जांच के लिए कुछ प्रतिशत व्यापारियों को लेखे या सबूत प्रस्तुत करने के लिए विभाग कह सकता है।
9. **मूल्य वर्धित कर क्रियान्वयन हेतु प्रशासन-** विभिन्न राज्यों में मूल्य वर्धित कर प्रणाली को लागू करने एवं कर की वसूली के लिए पूर्ववर्ती वाणिज्यिक कर या विक्रय कर के अधिकारियों की सेंवाएं ही ली

गयी हैं। जैसे- किसी राज्य में वाणिज्यिक कर के प्रशासन एवं वसूली के लिए वाणिज्यिक कर विभाग कार्यरत था, उसे ही मूल्य वर्धित कर के प्रशासन एवं वसूली का कार्य सौंपा गया है। मूल्य वर्धित कर निर्धारण का कार्य वाणिज्यिक कर अधिकारी ही कर करेंगे।

10. **अन्तर्राज्यीय विक्रय पर कर-** राज्य के अन्दर वस्तुओं के विक्रय पर तो मूल्य वर्धित कर लगेगा, लेकिन अन्तर्राज्यीय विक्रय पर करारोपण की समस्या का अभी समाधान नहीं हो पाया है। इसलिए अन्तर्राज्यीय विक्रय पर अभी भी केन्द्रीय विक्रय कर लागू है। यद्यपि शासन ने केन्द्रीय विक्रय कर को क्रमश: समाप्त करने की घोषणा की है और इसी कड़ी में 1 अप्रेल 2007 से केन्द्रीय विक्रय कर की दर 4 प्रतिशत से घटाकर 3 प्रतिशत कर दी गयी है एवं 1 जून 2008 से इसे 2 प्रतिशत कर दिया गया है।

इस प्रकार मूल्य वर्धित कर प्रणाली एक प्रकार से विक्रय कर या वाणिज्यिक कर का सुधरा हुआ रूप है। इससे एक तरफ कर की अपेक्षाकृत कम दरों के कारण उपभोक्ताओं को कुछ राहत मिली है, तो दूसरी तरफ राज्य सरकारों को करवंचना में कमी के कारण अधिक राजस्व प्राप्त हो रहा है।

11.4.2.4 वैट का परम्परागत कर प्रणाली से श्रेष्ठता

परम्परागत बिक्री कर के स्थान पर मूल्य वर्धित कर अपनाने की आवश्यक ता निम्न कारणों से हो रही थी-

1. **प्रथम बिन्दु कर के कारण कम कर प्राप्ति-** विक्रय कर या वाणिज्यिक कर प्रथम बिन्दु होने के कारण सरकार को न्यूनतम मूल्य पर कर मिलता है। इससे राजस्व की हानि होती है। उदाहरण के लिए, एक निर्माता एक वस्तु का निर्माण करता है जिसकी लागत 20 रू प्रति वस्तु आती है। निर्माता अपना सम्पूर्ण माल अपने एक डीलर को 22 रू प्रति वस्तु बेचता है तथा 22 रू पर ही विक्रय कर 10 प्रतिशत की दर से 2.20 रू चुकाता है। डीलर तत्पश्चात उस वस्तु को 25 रू में खुदरा व्यापारी को कर चुका माल के रूप में विक्रय करता है तथा खुदरा व्यापारी व्यापारी उपभोक्ता को 40 रू पुनः कर चुका माल के रूप के रूप में विक्रय करता है। अतः यहां सरकार को मात्र 2.20 कर के रूप में प्राप्त होते है जबकि वास्तव में 40 रू पर 10 प्रतिशत की दर से 4 रू प्राप्त होने चाहिए थे। यह दोष मूल्य वर्धित कर को अपनाकर ही दूर किया जा सकता है।
2. **प्रोत्साहनों एवं छूटों में राजस्व हानि-** राज्य सरकारें अपने प्रदेश में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से औद्योगिक इकाइयों को विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन एवं छूटें प्रदान करती है। इस कारण से राज्य सरकार के राजस्व में कमी आती है। मूल्य वर्धित कर व्यवस्था में सभी राज्यों में करमुक्त माल एंव कर की दरों में एकरूपता होने के कारण किसी राज्य विशेष को ऐसी छूटें या प्रोत्साहन देने का अधिकार नहीं रहेगा।
3. **अन्तिम कर की अव्यावहारिकता-** अन्तिम बिन्दु पर करारोपण के अन्तर्गत वस्तु का मूल्य अधिकतम होता है तथा उस पर एक निश्चित दर से कर वसूल किया जा सकता है परन्तु प्रशासकीय एवं व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण अन्तिम बिन्दु कर को व्यवहार में पूर्ण रूप से नहीं लाया जा सकता है। अतः मूल्य वर्धित कर प्रणाली ही यह कठिनाई दूर कर सकती है।
4. **कर दरों की अधिक संख्या-** प्रथम बिन्दु कर को अपनाने पर राज्य सरकार को अनिवार्य रूप से भिन्न-भिन्न प्रकार की दरों का समावेश करना होता है। इस कारण से गणना सम्बन्धी कार्य जटिल हो जाता है, लेकिन राजस्व में कोई विशेष वृद्धि नहीं होती है। मूल्य वर्धित कर अपनाने से दरों के कम से कम वर्ग अपनाए जा सकते है एवं सभी राज्यों में समान रूप से लागू किए जा सकते है।
5. **टर्नओवर टैक्स के दोशों का निवारण-** टर्नओवर टैक्स की दशा में विक्रय के प्रत्येक बिन्दु पर सम्पूर्ण मूल्य पर कर चुकाना पड़ता है, इससे वस्तु के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। जैसे-एक वस्तु

उत्पादक से उपभोक्ता तक पंहुचाने में चार कड़ियों से गुजरती है। ऐसी स्थिति में उसके विक्रय मूल्य पर चार बार कर लगेगा, जो कि वस्तु के अन्तिम मूल्य को अत्यधिक बढ़ा देगा, जबकि वास्तविक रूप में मूल्य वर्धित कर की दशा में प्रत्येक चरण पर केवल बढ़े हुए मूल्य पर ही कर लगता है।

6. **राजस्व में वृद्धि-** विक्रय के प्रत्येक व्यवहार में बढ़े हुए मूल्य पर सरकार को कर मिलता है, इससे राजस्व में वृद्धि होती है। इस कर से सरकार को निरन्तर आय प्राप्त होती रहती है। मूल्य वर्धित कर अपनाने से करवंचना पर भी रोक लगती है, क्योंकि विक्रय के विभिन्न चरणों में एक साथ कर चोरी सम्भव नहीं होती।
7. **स्वतःनियन्त्रण-** जमा कर घटाव विधि स्वतः नियन्त्रण का कार्य करती है। प्रत्येक व्यापारी अपने सकल कर दायित्व में से पूर्व में चुकाए गए कर की क्रेडिट पाने के लिए अपने पूर्व विक्रेता से बीजक प्राप्त करेगा। ऐसी स्थिति में विक्रय के विभिन्न चरणों में बिना बीजक के व्यवहार नहीं होगें। इससे करवंचना पर नियन्त्रण की स्वतः व्यवस्था हो जाएगी।

11.4.2.5 वैट के गुण व दोष

वैट के निम्नांकित गुण हैं-

1. **प्रथम बिन्दु एवं अन्तिम बिन्दु कर का मिश्रण-** मूल्य वर्धित कर कर प्रणाली में माल के विक्रय के प्रत्येक चरण में विक्रेता द्वारा वस्तु के मूल्य में की गयी वृद्धि पर कर चुकाया जाता है। इसमें प्रथम बिन्दु पर भी कर लगता है एवं बाद वाले चरणों में भी कर लगता है।
2. **करवंचना में कमी-** मूल्य वर्द्धित कर में कर की चोरी का भय कम रहता है, क्योंकि प्रत्येक फर्म को केवल मूल्य वृद्धि पर ही कर देना पड़ता है, जो विक्रय कर की तुलना में काफी कम होता है। स्वाभाविक है उत्पादक कर की चोरी करने को प्रोत्साहित नहीं होते।
3. **पूर्ण हिसाब-किताब-** मूल्य वर्धित कर व्यवस्था की यह विशेषता है कि इसमें प्रत्येक व्यापारी एवं निर्माता अपने व्यवसाय का सही एवं पूरा-पूरा हिसाब रखता है, क्योकि ऐसा करने से ही वह पूर्व में भुगतान किए गए करों पर छूट की मांग कर सकता है।
4. **सरलता-** किसी भी व्यापारिक फर्म द्वारा देय कर का हिसाब लगाने के लिए सर्वप्रथम उसकी कुल बिक्री पर लागू दर से कर लगाया जाता है। इस कर में से फर्म या संस्था द्वारा मध्यवर्ती सामान के क्रय पर एवं मशीनों आदि के क्रय पर पहले दिए गए कर घटा दिए जाते है। सैद्धान्तिक रूप में, मूल्य वर्धित कर को इस ढंग से बनाया गया है, कि फुटकर स्तर एवं सेवाओं सहित अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर इसे लागू किया जा सके।
5. **निर्यात प्रोत्साहन-** मूल्य वर्द्धित कर को उत्पादन लागत से सरलता से पृथक किया जा सकता है तथा कर भार को पृथक करके निर्यात व्यापार को प्रोत्साहित किया जा सकता है। यदि हम अन्य करों से तुलना करें, तो पातें है कि मूल्य वर्द्धित कर निर्यात व्यापार बढ़ाने में अधिक सहायक है।
6. **मूल्य नियन्त्रण में सहायक-** विक्रय कर के फलस्वरूप मूल्य में अधिक वृद्धि होती है, किन्तु मूल्य वर्द्धित कर का भार, वितरण की सभी क्रियाओं में समान होने से मूल्य में अधिक वृद्धि नहीं होती।
7. **व्यावहारिक-** अन्य करों की तुलना में मूल्य वर्द्धित कर अधिक व्यावहारिक है। यही कारण है कि यूरोप के अधिकतर देशों ने इसे अपनाया है एवं भारत के सभी राज्य भी इसे अपना रहे है।
8. **उत्पादन क्षमता में वृद्धि-** मूल्य वर्द्धित कर लाभ के आधार पर न लगाया जाकर उत्पादन की मात्रा के अनुसार लगाया जाता है। लाभ हो या हानि फर्म को कर देना ही पड़ता है, अतः प्रत्येक फर्म यह प्रयास करती है कि न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करे।

वैट के निम्नांकित दोष हैं-

1. **व्यावहारिक कठिनाइयां-** मूल्य वर्द्धित कर को लागू करने के लिए एक सक्षम एवं कार्यकुषल प्रशासन तन्त्र की आवश्यकता होती है, जो उत्पादन एवं वितरण की विभिन्न कड़ियों में होने वाली मूल्य वृद्धि का सही लेखा-जोखा रख सके, परन्तु इस प्रकार के कुशल कर्मचारी न होने से इसे लागू करने में प्रारम्भिक कठिनाई हो सकती है।
2. **करदाताओं का सहयोग आवश्यक-** यह कर प्रणाली उसी समय लागू की जा सकती है जब सरकार को करदाताओं का पूरा सहयोग मिल सके। इसके लिए फर्मो को उत्पादन व मूल्य की सही गणना करना जरूरी है। फर्मो को इसका हिसाब भी रखना पड़ता है, कि उत्पादन में जिन अन्य फर्मों से सामग्री क्रय की गई है, उन्होंने कितने कर का भुगतान किया है।
3. **गणना सम्बन्धी कठिनाइयां-** इस कर की गणना करना सरल नहीं है, क्योंकि इसमें काफी जटिलता रहती है। पूर्ववर्ती लागत या पूर्व में चुकाया गया कर, ज्ञात करने के लिए काफी रिकार्ड रखने पड़ते है।
4. **मूल्य वर्धित कर की विभिन्न दरें-** कुछ प्रदेशों में अघोषित माल पर 13 प्रतिशत की दर से एवं घोषित माल पर 5 प्रतिशत की दर से मूल्य वर्द्धित कर लगता है जो कि काफी उंची है। जिन वस्तुओं पर वाणिज्यिक कर की दर कम थी उन पर भी मूल्य वर्धित कर 13 प्रतिशत से लगता है जो कि न्यायसंगत नहीं है।
5. **मूल्य वृद्धि-** मूल्य वर्धित कर के कारण वस्तुओं के मूल्य घटने के बजाय बढ़ रहे है, क्योंकि विक्रय के प्रत्येक चरण में कर लगने के कारण उपभोक्ता पर अन्तिम भार काफी बढ़ गया है। व्यापारी पहले कर सहित मूल्य पर अपना माल बेचते थे। अब उसी मूल्य पर माल बेच रहे हैं एवं उपभोक्ता से मूल्य वर्धित कर अलग से वसूल कर रहे है।
6. **प्रशासकीय जटिलता-** मूल्य वर्धित कर के कारण वाणिज्यिक कर विभाग को प्रशासकीय जटिलता एवं तकनीकी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। अधिकारियों एवं कर्मचारियों को मूल्य वर्धित कर की गणना प्रक्रिया एवं इनपुट रिबेट देने की पद्धति में व्यावहारिक कठिनाइयां आ रही है। इसका परिणाम, व्यापारियों को भुगतना पड़ रहा है। उन्हें अधिकारियों की मनमानी का षिकार होना पड़ रहा है।
7. **कर चोरी पर अंकुश की धारणा गलत-** यह गलतफहमी है, कि मूल्य वर्धित कर लगने के कारण कर चोरी रूक जाएगी। मूल्य वर्धित कर प्रणाली में कर चोरी की सम्भावना विक्रय कर या वाणिज्यिक कर की तुलना में अधिक है। यदि प्रथम चरण में ही माल बिना बिल के बिकता है, तो अन्तिम चरण तक वह बिना बिल बिकता जाएगा और सरकार को किसी भी स्तर पर कोई राजस्व नहीं मिलेगा।

इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण होगा कि मूल्य वर्धित कर प्रणाली लागू करने के बाद सरकार एवं व्यापारियों की सभी समस्याओं का समाधान हो गया है।

11.4.3 वस्तु व सेवा कर Goods and sessnce Tax (GST)

वस्तु एंव सेवा कर वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति पर लगाया जाने वाला एकीकृत कर है। इसकी शुरूआत भारत में 01 जुलाई 2017 को की गई। इस कर में उत्पाद शुल्क, राज्य स्तरीय कर, मनोरंजन कर, सेवाकर व अन्य अप्रत्यक्ष स्थानीय कर शामिल है। वस्तु एंव सेवा कर का आरोपण अन्तिम उपभोक्ता पर किया जाता है। इसके प्रत्येक चरण के आपूर्तिकर्ता को इनपुट टैक्स क्रेडिट व्यवस्था के माध्यम से इसकी भरपाई करने की अनुमति होती है। वस्तु या सेवा पर एक दर से टैक्स लग रहा है। एंव दो राज्यों के मध्य टैक्स की दर में कोई भी विसंगति नहीं है। वस्तु एंव सेवा कर लागू होने के बाद, कर वहां लगेगा, जहां वस्तु या सेवा की आपूर्ति होगी। चूंकि वस्तु एंव

सेवाकर केन्द्र व राज्य द्वारा लगाया जाने वाला एकीकृत कर है, इसलिए इसके बटवारे के लिए जी0 एस0 टी0 को चार भागों में बांटा गया है।

- केन्द्रीय वस्तु एंव सेवाकर (CENTRAl GOODS AND SERVICE TAX- CGST)
- राज्य स्तरीय वस्तु एंव सेवाकर (STAT GOODS AND SERVICE TAX- SGST)
- एकीकृत वस्तु एंव सेवाकर (INTEGRATED GOODS AND SERVICE TAX- IGST)
- संघ राज्य वस्तु एंव सेवाकर (UNION TEÙITORY GOODS AND SERVICE TAX- UTGST)

1. **केन्द्रीय वस्तु एंव सेवाकर-** केन्द्रीय सरकार द्वारा वसूल किये जाने वाले कर को केन्द्रीय वस्तु एवं सेवाकर कहते है। पूर्व की अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था में सेवा कर, उत्पाद शुल्क , कस्टम शुल्क आदि केन्द्रिय सरकार के प्रमुख अप्रत्यक्ष कर वसूली के साधन थे।
2. **राज्य स्तरीय वस्तु एंव सेवाकर-** राज्य सरकार के कर संग्रह का प्रमुख स्रोत बिक्री कर था। वस्तु एवं सेवा कर लागू होने के बाद राज्य स्तरीय वस्तु एवं सेवा कर ही राज्य सरकार के कर संग्रह का प्रमुख साधन है।
3. **एकीकृत वस्तु एवं सेवाकर-** एकीकृत वस्तु एंव सेवाकर विधेयक 27 मार्च 2017 को लोकसभा में पेश किया गया था, यह विधेयक वस्तुओं और सेवाओं को अंतर-राज्य की आपूर्ति पर, आयात निर्यात एंव विशेष क्षेत्र में आपूर्ति करने पर केन्द्र द्वारा लगाया जाता है।
4. **संघ राज्य वस्तु एंव सेवाकर-** सेवाकर विधेयक 27 मार्च को लोकसभा में पेश किया गया था केन्द्रशासित प्रदेश की सीमा के भीतर माल और सेवाओं की आपूर्ति पर यू0टी0जी0एस0टी0 लगाया जाता है।

11.4.3.1वस्तु एंव सेवा कर के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं पर कर की दरें

1. शून्य प्रतिशत की वस्तुएं- मांस, मछली, मुर्गी, अण्डा, दूध, दही, शहद, आटा, बिन्दी, नमक इत्यादि।
2. 5 प्रतिशत की वस्तुएं- अगरबत्ती, पवनचक्की, बायोगैस, काजू इत्यादि।
3. 12 प्रतिशत की वस्तुएं- इक्सरसाइजबुक कटलरी, आइटम, कोटन वुल carpets, floor covering etc.
4. 18 प्रतिशत की वस्तुएं- एल्युमिनियम स्कै्रप, पोस्टर कलर, स्कूल बैग, कम्प्यूटर प्रीन्टर, इत्यादि।
5. 28 प्रतिशत की वस्तुएं- एयरक्राफ्ट, आटोमोबाइल, मोटरसाइकिल, पेन्ट, शेविंग क्रीम, हेयर शैम्पू, आदि।

11.4.3.2 इनपुट टैक्स क्रेडिट

जी0एस0टी0 व्यवस्था में इनपुट टैक्स क्रेडिट व्यापारियों के लिए मददगार साबित हो रहा है। यदि कोई पंजीकृत व्यापारी देश के किसी भी पंजीकृत व्यापारी से, माल या सेवाएं पक्के बिल से खरीदता है, तो उसके द्वारा खरीदे गये माल या सेवा पर, जो कर भुगतान किया जाएगा, वह बिक्री पर देय कर मे से घटा दिया जाता है, इससे व्यापारी की करदेयता में कमी आती है, और इस व्यवस्था से दोहरे करारोपण से बचा जा सकता है। एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है कि इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ एक व्यापारी कैसे लेता है।

उदाहरण के लिए, मान लीजिये किसी निर्माण करने वाली फर्म को अपने उत्पाद के लिए 100 रू का कच्चा माल खरीदना पड़ रहा है और उस माल पर जी0एस0टी0 की दर 12 प्रतिशत है। इस प्रकार कच्चे माल को प्राप्त करने के लिए कुल 112 रू चुकाने होगें, अब निर्माण फर्म जिस माल को तैयार कर रही है, उस माल की कीमत 150 रू है और जी0एस0टी0 की दर 18 प्रतिशत है तो उस फर्म की बिक्री पर कर 27 रू होगी, चूंकि उसने खरीद करते समय 12 रू का कर चुकाया है, तो उसे 27-12=15 रू ही जी0एस0टी का भुगतान करना होगा।

जीएसटी के अन्तर्गत इनपुट टैक्स क्रेडिट समायोजन के नियम में केन्द्र एंव राज्य के बीच वस्तु एंव सेवा कर के बंटवारे के लिए इसे चार भागों में लगाया जाता है, जब राज्य के भीतर माल या सेवा की सप्लाई की जाती है तो

राज्य स्तरीय वस्तु एंव सेवा कर (STATE GOODS AND SERVICE TAC- SGST) और केन्द्रीय वस्तु एंव सेवा कर (CENTRAL GOODS ANG SERVICE TAX- CGST) लगाया जाता है। एक पंजीकृत व्यापारी अपने इनवार्ड सप्लाई पर चुकाये गये CGST, SGST, और IGST का समायोजन आउटवर्ड सप्लाई पर देय CGST, SGST, और IGST से इस प्रकार कर सकता है।

1. INPUT CGST का समायोजन OUTPUT CGST से, शेष बचने पर यदि IGST की कोई देयता है तो IGST से समायोजन।
2. INPUT SGST का समायोजन OUTPUT SGST से, शेष बचने पर यदि IGST की कोई देयता है तो IGST से समायोजन
3. INPUT IGST का समायोजन OUTPUT IGST से, शेष बचने पर SGST और IGST की देयता को समायोजित किया जा सकता है। CGST और SGST का आपस में समायोजन नहीं हो सकता है।

11.4.3.3 वस्तु एंव सेवाकर के अन्तर्गत रिवर्स चार्ज तंत्र

वस्तु एंव सेवाकर तंत्र में सामान्यतः सप्लायर यानी वस्तु एंव सेवा बेचने वाला, ग्राहक या क्रेता से जी0एस0टी चार्ज करता है और सरकार को जमा करवाता है, लेकिन कुछ परिस्थिति ऐसी भी होती है कि जिसमें जी0एस0टी0 की जिम्मेदारी सप्लायर की न होकर, वस्तु या सेवा को प्राप्त करने वाले की होती है, इसे ही रिवर्स चार्ज तंत्र कहते है।

उदाहरण के लिए अगर कोई व्यापारी, किसी वस्तु या सेवा को अपंजीकृत व्यक्ति से खरीदता है, तो उसे वस्तु के मूल्य पर जी0एस0टी0 का भुगतान करना होता है, रिवर्स चार्ज की दर वस्तु या सेवा पर निर्धारित जी0एस0टी0 की दर के बराबर होता है, कुछ परिस्थितियों में यह दर कम हो सकती है।

उदाहरण, अगर कोई व्यापारी किसी वस्तु या सेवा को आयात करता है तो यह परिस्थिति रिवर्स चार्ज में आती हैं, और क्रेता ने जितनी मूल्य की वस्तु या सेवा आयात की है उस पर जी0एस0टी0 का भुगतान करना होता है।

11.4.3.4 जी0एस0टी0 रिटर्न समय पर न दाखिल करने पर लेट फीस सम्बन्धित नियम

जी0एस0टी0 परिषद द्वारा निर्धारित तिथि के अन्दर रिटर्न न दाखिल करने पर CGST एक्ट और SGST एक्ट के अन्तर्गत 100-100 रू प्रतिदिन के हिसाब से लेट फीस का प्रावधान है, इस प्रकार अगर आप रिटर्न भरने में एक दिन की भी देरी करते है तो 200 रू लेट फीस चुकाना होगा। अधिकतम लेट फीस CGST एक्ट और SGST के अन्तर्गत 5,000-5,000 रू निर्धारित है इस प्रकार आपको एक माह के लेट रिटर्न के अधिकतम 10,000 रू लेट फीस का भुगतान करना होगा।

11.5 सार्वजनिक आय का वर्गीकरण

सार्वजनिक आय का अनेक विद्वानों द्वारा वर्गीकरण किया गया है। आईये इनका अध्ययन करते हैं-

1. **ऐडमस्मिथ का वर्गीकरण-** ऐडमस्मिथ ने आय को दो भागों में विभाजित किया है-
   - **नागरिकों से होने वाली आय-** इस वर्ग में आय के वे सब साधन सम्मिलित हैं, जिनके अन्तर्गत सरकार को जनता से आय प्राप्त होती है जैसे कर।
   - **राजकीय सम्पत्ति से होने वाली आय-** इस वर्ग में वह आय आती है, जो सरकारी सम्पत्ति जैसे सरकारी भूमि व पूंजी से होती है।

ऐडमस्मिथ का यह वर्गीकरण आधुनिक दशाओं के लिए उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इसमें दोनो ही वर्ग बहुत विस्तृत है। आजकल नागरिकों तथा राजकीय सम्पत्ति से भी कई प्रकार की आय होती है, और एक उपयुक्त वर्गीकरण में इनका उल्लेख भी आवश्यक है।

2. **ऐडम्स का वर्गीकरण-** ऐडम्स ने सार्वजनिक आय को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया है-
   - **प्रत्यक्ष आय-** इसके अन्तर्गत अधिकांशतः सार्वजनिक भूमि, सार्वजनिक उद्योगों, जैसे- रेल, तार, डाक आदि तथा अन्य सरकारी सम्पत्ति से होने वाली आय होती है।
   - **व्युत्पादित आय-** इस आय के अन्तर्गत वह आय सम्मिलित है जो नागरिकों से वसूल की जाती है, जैसे- कर, शुल्क, दण्ड आदि से होने वाली आय।
   - **प्रत्याशित आय-** इस वर्ग के अन्तर्गत सार्वजनिक साख से होने वाली आय होती है, जैसे- वांण्डस की बिक्री या ट्रेजरी नोट्स से होने वाली आय।

   उपर्युक्त वर्गीकरण का दोष यह है कि इसमें पहला वर्ग बहुत विस्तीर्ण हो गया है, क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यापारिक कार्यो से होने वाली आय और प्रशासनिक कार्यों से होने वाली आय मिला दी गई है। परन्तु इन दोनों प्रकार की आयों के स्वरूप भिन्न है अतः इन्हें पृथक होना चाहिए।
3. **सेलिगमैन का वर्गीकरण-** सैलिगमैन ने सार्वजनिक आय को तीन भागों में विभक्त किया है-
   - **दानात्मक आय-** दानात्मक आय से तात्पर्य उस सरकारी आय से है, जो कि प्रजा सरकार को दान-उपहार के रूप में देती है। इसकी दो विशेषताएं हैं, पहला- यह ऐच्छिक होती है और दूसरा- इसके बदले में सरकार व्यक्ति को कोई प्रत्यक्ष सेवा, सुविधा या वस्तु प्रदान नहीं करती।
   - **संविदात्मक आय-** इस वर्ग में वे सब आय आती है जो राज्य को राजकीय उद्योगो और सम्पत्ति से प्राप्त होती है। साधारण व्यक्ति की भांति राज्य भी उद्योग और व्यवसाय चलाती है; उदाहरण के लिए, सरकार कारखाने खोलती है, रेल, मोटर गाड़ियां और हवाई जहाज की सेवायें प्रदान करती है। इस आय की दो विशेषताएं होती हैं- यह ऐच्छिक होती है और इसके बदले में सरकार प्रत्यक्ष सेवा, सुविधा व वस्तु प्रदान करती है।
   - **अनिवार्य आय-** इसके अन्तर्गत वह आय आती है जिसका देना व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं करता। ऐसी आय सरकार शासन-शक्ति, दण्ड विधान षक्ति तथा करारोपण शक्ति के द्वारा प्राप्त करती है। जुर्माने, कर, विशेषकर इस आय के उदाहरण है। इसकी दो विशेषताएं हैं- यह ऐच्छिक नहीं है और इसके बदले में कोई प्रत्यक्ष सेवा, सुविधा नहीं दी जाती।

   उपर्युक्त वर्गीकरण का दोष यह है कि इसमें अनिवार्य आय का वर्ग बहुत विस्तीर्ण हो गया है क्योकि इसमें कर से होने वाली आय और प्रशासनिक कार्यो से होने वाली आय दोनों ही ली जावेगी। परन्तु इन दोनों प्रकार की आयों के स्वरूप भिन्न है। अतः इन्हें पृथक होना चाहिए।
4. **टेलर का वर्गीकरण-** टेलर ने सार्वजनिक आय को चार भागों में विभाजित किया है- अनुदान तथा उपहार , प्रशासनात्मक आय, व्यापारिक आय और कर।
   - **अनुदान तथा उपहार-** इसके अन्तर्गत पहले तो वह आय सम्मिलित होती है, जो कि एक सार्वजनिक सरकार दूसरी सार्वजनिक सत्ता को सहायता अनुदान के रूप में देती है, जैसे केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को या राज्य सरकार स्थानीय सरकारों को विभिन्न कार्यों के लिये अनुदान देती है। दूसरे सरकारों को उपहार के रूप में व्यक्तियों व गैर सरकारी संस्थाओं से कुछ धन मिल जाया करता है। परन्तु इस वर्ग की आय मात्रा के दृष्टिकोण से कोई विशेष महत्व की नहीं। इन दोनों प्रकार की आय की आधारभूत विशेषता यह है कि इनका मिलना दाता की स्वेच्छा पर निर्भर होता है और इसमें अनिवार्यता का तत्व नहीं होता।

- **प्रशासनात्मक आय-** इस श्रेणी के अन्तर्गत शुल्क, लाइसेन्स शुल्क, जुर्माने, जब्तगी, विशेष निर्धारण तथा वह आय सम्मिलित है जो कि राज्य को किसी व्यक्ति के बिना उत्तराधिकारी छोड़े हुए, मर जाने पर उसकी सम्पत्ति से मिलती है। वह आय सरकार की प्रशासनिक गतिविधियों के फलस्वरूप होती है।
- **व्यापारिक आय-** इस आय के अन्तर्गत वह आय शामिल है, जो सरकार के द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तुओं को खरीदने पर मूल्यों के रूप में उसे दी जाती है, जैसे- डाकखर्च, सरकारी निगमों को रूपया उधार देने पर, मिला ब्याज, अथवा सरकारी विद्युत कम्पनी को दिये जाने वाले मूल्य भी इसमें शामिल है। इस आय के अन्तर्गत सरकार को प्राप्त होने वाली आय तथा दाता को होने वाले लाभ में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, किन्तु सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुए अपनी सभी सेवाओं के बदले में सरकार अपनी लागत से कुछ कम ही मूल्य वसूल करती है, जैसे प्रायः डाक सेवाओं के बारे में यह बात अच्छी तरह लागू होती है।
- **कर-** विभिन्न प्रकार के कर जो सरकार के द्वारा लगाये जाते है इस श्रेणी में रखे जाते है।

टेलर का यह वर्गीकरण अधिक सुव्यवस्थित, तर्क संगत तथा उपयोगी प्रतीत होता है। उसने निष्चय ही आय ही आय के विभिन्न साधनों को उनके स्वभाव के अनुसार विभिन्न वर्गो में प्रस्तुत किया है।

5. **भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वर्गीकरण-** भारत में रिजर्व बैंक ने केन्द्रीय और राज्य सरकारों की आय के साधनों का अत्यन्त उपयोगी वर्गीकरण दिया है। इस वर्गीकरण के अनुसार सम्पूर्ण आय को प्रमुख भागों में बांटा गया है- कर से आय और गैर-कर आय।
   - कर से आय के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कर, जैसे- आय तथा व्यय पर कर, सम्पत्ति तथा पूंजी के सौदों पर कर तथा वस्तुओं और सेवाओं पर कर शामिल है।
   - गैर-कर आय के अन्तर्गत प्रशासनात्मक प्राप्तियॉ, सार्वजनिक उद्योगों, जैसे- रेलवे, टेलीग्राफ, मुद्रा तथा टकसाल से आय तथा अन्य आय (जैसे राज्यो से मिला ब्याज) शामिल हैं। राज्यों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के द्वारा दिए हुए अनुदान तथा अन्य प्रतिदान भी सम्मिलित है।

11.6 करों के अतिरिक्त आय

करों के अतिरिक्त आय का वर्गीकरण निम्न है-

11.6.1 शुल्क

शुल्क अथवा फीस की निम्न परिभाषा दी जा सकती है- ''यह एक ऐसा भुगतान है, जो सरकार सामान्य हित में प्रदान की गई सेवाओं तथा सुविधाओं के बदले में लेती है, लेकिन जिनसे शुल्क दाता को प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। उदाहरण के लिए पेटेन्ट फीस, रजिस्ट्रेषन फीस, कोर्ट फीस आदि।''

फीस लगाने का आधार यह माना जाता है कि सेवा प्रदान करने व निगरानी करने में जो लागत आए, उसके बराबर फीस ली जाय। परन्तु व्यवहार में बहुधा सुविधा के कारण, बिना लागत का ध्यान रखे ही फीस निश्चित कर दी जाती है।

बहुधा फीस की मात्रा, लागत से अधिक होती है। ऐसी दशा में, आधिक्य को कर कहना उचित होगा। व्यवहार में, पूरे भुगतान को शुल्क ही कह लिया जाता है और उसे शुल्क तथा कर में विभाजित नहीं किया जाता।

शुल्क और कर में अन्तर को सपष्ट किया जा सकता है-

- शुल्क के बदले में सरकार शुल्क दाता को विशेष लाभ, सुविधा या अधिकार देती है। परन्तु कर के बदले में करदाता को कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिलता।
- शुल्क सिद्धान्तः सेवा की लागत को पूरा करने लिये लिया जाता है, परन्तु कर के साथ इस प्रकार का प्रश्न नहीं उठता।
- शुल्क ऐच्छिक है परन्तु कर अनिवार्य।

11.6.2 लाइसेन्स शुल्क

लाइसेन्स फीस या शुल्क उन मामलों में ली जाती है जब कि सरकारी अधिकारी स्वंय कोई कार्य या सेवा सेवा न करके किसी अन्य व्यक्ति को यह अधिकार सौंप देता है। इसमें नियमन एवं नियन्त्रण का अंश छिपा रहता है। समाज हित में कुछ व्यक्तियों को ही सेवायें सम्पन्न करने के अधिकार दिये जाते है और उनके बदले में उनसे लाइसेन्स फीस वसूल की जाती है। उदाहरणार्थ, मादक वस्तुओं के विक्रय के लिये लाइसेंस दिये जाते और बदले में लाइसेन्स शुल्क लिये जाते है।
शुल्क और लाइसेन्स शुल्क में अन्तर यह है, कि शुल्क उन मामलों में दिया जाता है जब सरकार कोई सेवा सम्पन्न करती है, जब कि लाइसेन्स शुल्क उन मामलों में दिया जाता है जब कि सरकारी अधिकारी कोई कार्य न करके, किसी व्यक्ति को कार्य व सेवा करने का अधिकार प्रदान कर देता है।

11.6.3 जुर्माना

जुर्माना वह भुगतान है, जो सरकार नागरिकों से सरकारी कानून तोड़ने पर दण्ड स्वरूप लेती है। जुर्माने का उद्देश्य दण्ड लेकर समाज में होने वाली बुराइयों को रोकना होता है, तथा लोगों को सरकारी कानून का पालन करने के लिए बाध्य करना होता है।
जुर्माने तथा कर में अन्तर, जुर्माना तब ही लगता है जब किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया हो, परन्तु कर बिना अपराध किये ही सरकार व्यक्तियों से ले लेती है। जब कि कर का उद्देश्य मुख्यतः आय प्राप्त करना होता है, जुर्माने का उद्देश्य अपराध रोकना होता है।

11.6.4 विशेष निर्धारण

सेलिगमैन के अनुसार, ''विशेष निर्धारण एक ऐसा अनिवार्य अंशदान है जो प्राप्त होने वाले विशेष लाभ के अनुपात में लगाया जाता है, ताकि जनता के हित में किये गए सम्पत्ति में विशेष सुधार की लागत को पूरा किया जा सके।''
ब्यूहलर के अनुसार विशेष निर्धारण एक अनिवार्य भुगतान है, जो चुनी हुई सम्पत्ति पर विशेष सुधार या सेवा के लिए लगाया जाता है; यह विशेष सुधार या सेवा जनहित में की जाती है लेकिन इससे सम्पत्ति के मालिको को भी लाभ होता है। विशेष निर्धारण प्रमुख विशेषताएं-

1. यह एक अनिवार्य अंशदान है; इसका देना व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है।
2. यह किसी स्थान विशेष के विकास की लागत पूरा करने के लिए लगाया जाता है।
3. स्थानीय विकास सामान्य हित में किया जाता है।
4. स्थानीय विकास के फलस्वरूप वहां के सम्पत्ति के स्वामियों को विशेष लाभ व सुविधायें उपलब्ध होती हैं तथा उनकी सम्पत्ति के पूंजीगत मूल्य में वृद्धि होती है।
5. विशेष निर्धारण आम तौर से भूमि पर और कभी-कभी भवन पर लगाया जाता है। चल सम्पत्ति पर विशेष निर्धारण नहीं लगाया जाता।

6. विशेष निर्धारण की राशि, प्राप्त लाभ के समानुपात में होती है।

उदाहरण के तौर पर यदि सरकार जनहित की दृष्टि किसी स्थानीय क्षेत्र में सड़कें बनवा दें, पार्क लगवा दें, नालियों की उचित व्यवस्था कर दें, सीवर लाइन डलवा दें, जल-पूर्ति की व्यवस्था कर दें, तो स्थानीय लोगों को विशेष लाभ होगा और उनकी सम्पत्तियों के मूल्य में वृद्धि हो जायेगी।

इसी प्रकार, सिंचाई के लिए नहरों एवं कुओं की व्यवस्था कर देने से कृषि-भूमि का मूल्य भी बढ़ जायगा।

उपयुक्त दशाओं में व्यक्तिओं को मिलने वाला लाभ अनर्जित होता है, क्योंकि उसके लिए उन्हें कोई व्यय व परिश्रम नहीं करना पड़ता। इस लाभ का कुछ अंश सरकार विशेष निर्धारण के रूप में ले लेती है।

विशेष निर्धारण एवं कर में अन्तर-

- विशेष निर्धारण स्थानीय विकास होने पर लगाया जाता है, जबकि कर लगाने में ऐसा नहीं होता;
- विशेष निर्धारण की आय केवल सम्बन्धित क्षेत्र में स्थानीय विकास के हेतु उपयोग की जाती है, जबकि कर से प्राप्त आय विकास कार्यों तथा राजकीय प्रबन्ध दोनों पर हीं की जाती है।
- विशेष निर्धारण से प्राप्त आय उसी क्षेत्र में व्यय कर दी जाती है, जहां से उसे प्राप्त किया गया है परन्तु कर से प्राप्त आय सामान्यतः अन्य स्थानों पर व्यय की जाती है।
- विशेष निर्धारण देने वाले व्यक्तियों को प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होता है जबकि कर देने वाले व्यक्तियों को प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिलता।
- विशेष निर्धारण, व्यक्ति को स्थानीय विकास से मिलने वाले लाभ के आधार पर निश्चित होता है, जबकि कर बहुधा करदाता की क्षमता पर।
- विशेष निर्धारण का सम्बन्ध सम्पत्ति (विशेष कर भूमि) से होता है, जब कि कर का सम्बन्ध सम्पत्ति, आय, व्यय आदि किसी से हो सकता है।
- सम्पत्ति कर से मुक्त हो सकती है, परन्तु विशेष निर्धारण से नहीं जब तक कि सम्पत्ति को स्थानीय विकास से लाभ ही न पहुंचा हो।
- विशेष निर्धारण केवल एक ही बार में निश्चित कर दिया जाता है, यद्यपि उसका भुगतान एक दम से या किस्तों में किया जा सकता है, परन्तु कर का निर्धारण प्रतिवर्ष होता है।

11.6.5 मूल्य

मूल्य यह ऐच्छिक भुगतान है जो सरकार व्यक्तियों से वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले में प्राप्त करती है। इसके उदाहरण सरकारी उद्योगों तथा व्यापारिक संस्थानों के द्वारा बेची गई वस्तुओं के बदले में मिलने वाले मूल्य है। बहुधा सरकारी जनोपयोगी संस्थानो द्वारा बिजली, पानी, रेल यातायात, टेलीफोन आदि की सुविधाएं प्रदान की जाती है; इनके बदले में जो मूल्य प्राप्त होता है उसे दर के नाम से पुकारा जाता है।

मूल्य एवं कर में अन्तर-

- मूल्य एक ऐच्छिक भुगतान है; मूल्य देने के लिए सरकार किसी व्यक्ति को बाध्य नहीं कर सकती। यदि राजकीय वस्तुओं का उपभोग न किया जाय, तो मूल्य देने की आवश्यक ता नहीं होती। दूसरी ओर, कर एक अनिवार्य भुगतान है, जिसका देना व्यक्ति की अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं करता।
- मूल्य के बदले में प्रत्यक्ष सेवा या सुविधा प्रदान की जाती है, जबकि कर के बदले में प्रत्यक्ष सेवा या सुविधा नही दी जाती।

अभ्यास प्रश्न-

1. कर कैसा भुगतान है?
2. शुल्क कैसा कर है?
3. किसके अन्तर्गत सरकारी अधिकारी कोई कार्य न करके किसी व्यक्ति को कार्य या सेवा का अधिकार प्रदान कर देते है?
4. VAT का पूरा नाम क्या है?
5. GST का पूरा नाम क्या है?
6. GST को कब लागू किया गया?

11.7 सारांश

सार्वजनिक आय से अभिप्राय सरकार द्वारा प्राप्त किये गये उस धन से है, जिसकी वापसी नही की जाती है। सार्वजनिक आय के अनेक श्रोत हैं, जैसे- कर, शुल्क , लाइसेन्स शुल्क, जुर्माना, विशेष निर्धारण, मूल्य, उपहार एवं अनुदान। कर सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है। कर लगाते समय कुछ सिद्धान्तों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इन सिद्धान्तों को ही करारोपण का सिद्धान्त कहते हैं। करारोपण के सिद्धान्तों की सबसे महत्वपूर्ण व्याख्या एडम स्मिथ ने किया है। प्रो0 फिण्डले षिराज के अनुसार, एडमस्मिथ के बाद कोई भी विद्धान करारोपण के सिद्धान्तों को इतना सरल तथा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत नही कर पाया है। प्रो0 एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक "Wealth of Nation" में करारोपण के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त बताये हैं, जो समता का नियम, निश्चितता का नियम, सुविधा का नियम तथा मितव्ययिता का नियम है। किसी वस्तु की खुदरा कीमत, उत्पादन तथा वितरण के प्रत्येक चरण में होने वाले मूल्य सवर्धन का योग है। मूल्य संवर्धन बिक्री कीमत तथा खरीदी गयी सामग्रियों की लागत का अन्तर है। बिक्री कर के इस दूसरे सम्भव रूप के अन्तर्गत, वस्तुओं पर उत्पादन तथा वितरण के प्रत्येक स्टेज पर होने वाली मूल्य वृद्धि पर कर लगाया जाता है, न कि कुल प्राप्ति पर। इसे मूल्य संवर्धन कर वैट का नाम दिया गया है। वस्तु एवं सेवा कर, वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर लगाया जाने वाला एकीकृत कर है। इसकी शुरूआत भारत में 1 जुलाई 2017 को की गई। इस कर में उत्पाद शुल्क , राज्य स्तरीय कर, मनोरंजन कर, सेवा कर व अन्य अप्रत्यक्ष स्थानीय कर शामिल है। वस्तु व सेवा कर, का आरोपण अन्तिम उपभोक्ता पर किया जाता है। इसके प्रत्येक चरण के आपूर्तिकर्ता को इनपुट टैक्स क्रेडिट व्यवस्था (Input tax credit Facility) के माध्यम से इसकी भरपाई करने की अनुमति होती है।

11.8 शब्दावली

कर- कर एक अनिवार्य भुगतान है। कर के बदले करदाता को कोई प्रत्यक्ष वस्तु या सेवा नही प्रदान की जाती है।

शुल्क- शुल्क ऐच्छिक होता है परन्तु कर अनिवार्य होता है। शुल्क के उदाहरण पेटेन्ट शुल्क, रजिस्ट्रेशन शुल्क कोर्ट फीस आदि है।

लाइसेन्स शुल्क- शुल्क उन मामलों में दिया जाता है जब सरकार कोई सेवा सम्पन्न करती है, लाइसेन्स शुल्क के अन्तर्गत सरकारी अधिकारी कोई कार्य न करके किसी व्यक्ति को कार्य या सेवा का अधिकार प्रदान कर देते हैं।

जुर्माना- जुर्माना तभी लगता है जबकि व्यक्ति ने कोई अपराध किया हो। जुर्माना का उद्देश्य अपराध-रोकना है।

विशेष निर्धारण- विशेष निर्धारण एक अनिवार्य अंशदान है जो प्राप्त होने वाले विशेष लाभ के अनुपात में लगाया जाता है। उदाहरण- विकास सेवी, विकास चार्ज आदि।

मूल्य- मूल्य वह ऐच्छिक भुगतान है जो सरकार व्यक्तियों से वस्तुओ और सेवाओं के बदले में प्राप्त करती है।

उपहार- कभी-कभी राष्ट्र-प्रेमी या दानात्मक स्वभाव के व्यक्ति या संस्था अथवा एक देश की सरकार अन्य देश को उपहार देती है। उपहार प्रायः बाढ़, सूखा महामारी व भूकम्प की स्थिति में दिये जाते है।

कर-देय क्षमता- कर-देय क्षमता से तात्पर्य लोगो की आर्थिक समृद्धि या उनके जीवन-स्तर से लगाया जाता है जिस व्यक्ति की आर्थिक समृद्धि अधिक होती है उसकी कर देने की योग्यता अधिक होती है।

प्रगतिशील कर- जब आय बढ़ने के साथ कर की दर बढ़ती जाती है तो ऐसे कर को प्रगतिशील कर कहते हैं। आयकर ऐसे कर का प्रमुख उदाहरण है।

प्रतिगामी कर- यदि आय बढ़ने के साथ-साथ कर की दर घटती जाय तो ऐसा कर प्रतिगामी कर कहलायेगा। ऐसे करों के उदाहरण अप्रत्यक्ष कर है।

कराघात- जब सरकार किसी व्यक्ति पर कर लगाती है और उस राशि को उसी से वसूला जाता है इसे उस व्यक्ति पर कराघात कहेगें। उदाहरण के लिए उत्पादक पर कराघात होता है।

कर विवर्तन- उत्पादक कर की राशि थोक विक्रेता से वसूल लेता है, थोक विक्रेता फुटकर विक्रेता से वसूल लेता है कर के टालने की इस प्रक्रिया को कर-विवर्तन कहते है।

करापात- कर के टालने की प्रक्रिया जब समाप्त हो जाती है और जिस व्यक्ति पर इसका भार अन्त में, पड़ता है उस व्यक्ति पर करापात हुआ माना जाता है। उपभोक्ता पर करापात होता है।

एकीकृत कर- कई करों को मिलाकर एक कर लगाया जाना एकीकृत कर होता है।

आरोपण (भार)- आरोपण का अर्थ, भार या अन्तिम भार से है।

इनपुट टैक्स क्रेडिट व्यवस्था- विक्रेता को क्रय पर दिये गये कर, का छूट प्राप्त होना, इनपुट टैक्स क्रेडिट की व्यवस्था कहलाता है।

भरपाई- अब तक दिये गये कर का क्रेडिट प्राप्त करना, भरपाई कहलाता है।

विसंगति- अन्तर का न होना, विसंगति न होना कहलाता है।

रिवर्ज चार्ज तन्त्र- जहां प्राप्तकर्ता कर का भुगतान करता है।

क्रेडिट- क्रेडिट का अर्थ छूट से है।

11.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनिवार्य, **2.** ऐच्छिक, **3.** लाईसेन्स शुल्क, **4.** Value Added Tax, **5.** Goods and Services Tax, **6.** 1 जूलाई 2017

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजस्व- डॉ0 जे0 सी0 वार्शेय।
2. लोकवित्त- डॉ0 एस0 के0 सिंह।
3. राजस्व- डॉ0 आर0 एस0 कौशिक।
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार- के0 एल0 माहेश्वरी।
5. Delton, H- Principles of public Finance.
6. Public Finance Theory and Practice- Mehta and Agrawal.
7. Shirras, Findley- The Science of Public Finance.
8. Hicks, Ursula- Public Finance.
9. A.C. Pigou- A Study of Public Finance.
10. Taylor P.E.- Economics of Public Finance.

11. Raja J. Chhelliah- Fiscal Policy in under developed Countries.
12. Indirect Taxes अप्रत्यक्ष कर- डॉ0 एच0 सी0 मेहरोत्रा एवं प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल।
13. News Paper.
14. Net Surfing.

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Indirect Taxes अप्रत्यक्ष कर- डॉ0 एच0 सी0 मेहरोत्रा एवं प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल।
2. राजस्व- डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय।
3. लोकवित्त- डॉ0 एस0 के0 सिंह।
4. राजस्व- डॉ0 आर0 एस0 कौशिक।
5. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार- के0 एल0 माहेश्वरी

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोक वित्त से आप क्या समझते हैं? इसके क्षेत्र की विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. सार्वजनिक आय को परिभाषित करते हुए इसकी व्याख्या कीजिए।
3. WAT और GST को विस्तार से समझाइए।

इकाई- 12 घाटे का वित्तीयन

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 भारत में हीनार्थ प्रबन्धन की विभिन्न धारणाएं
12.3 हीनार्थ प्रबन्धन का उद्देश्य
12.4 राजस्व घाटा व पूंजी घाटा
    12.4.1 प्रभावी राजस्व घाटा
    12.4.2 पूंजी घाटा
12.5 राजकोषीय घाटा
12.6 प्राथमिक घाटा व मौद्रिकृत घाटा
12.7 निवल मूल घाटा
12.8 सार्वजनिक क्षेत्र की उधार आवश्यकता
12.9 संरचनात्मक घाटा व परिचालन घाटा
12.10 बजट घाटा तथा बजट अधिशेष
12.11 घाटे का वित्त पोषण व इसकी आवश्यकता
12.12 घाटे की वित्त पोषण के साधन
12.13 राजकोषीय घाटे की बनावट व राजकोषीय नीति
12.14 सारांश
12.15 शब्दावली
12.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.17 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
12.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.19 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

हीनार्थ-प्रबन्धन से आशय सरकार द्वारा प्रबन्धित उस धनराशि से है, जिसमें सरकार अपनी सामान्य आय से अधिक व्यय करती है, अर्थात सरकार के सम्भावित व्यय उसकी सम्भावित आय से अधिक होने पर सरकार उसको पूरा करने के लिए जो उपाय करती है उसको हीनार्थ-प्रबन्धन कहते हैं।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- हीनार्थ प्रबन्धन, राजस्व घाटा व प्रभावी राजस्व घाटा, पूँजी घाटा तथा राजकोषीय घाटा की व्याख्या कर सकेंगे।
- प्राथमिक और मौद्रिकृत घाटा मध्य भेद कर सकेंगे।
- बजट घाटा तथा बजट अधिशेष की व्याख्या कर सकें।

- घाटे का वित्त पोषण तथा उसकी आवश्यकता व साधन की व्याख्या कर सकेंगे।
- राजकोषीय घाटे की बनावट व राजकोषीय नीति को समझने में सक्षम होंगे।

12.2 भारत में हीनार्थ प्रबन्धन की (घाटे की वित्त-व्यवस्था) विभिन्न धारणाएं

भारत में केन्द्रीय सरकार के बजट में हीनार्थ प्रबन्धन या घाटे को विभिन्न रूपों में दिखाया जाता है जो इस प्रकार है-

1. **बजटरी घाटा-** सरकार की सभी प्राप्तियों की तुलना में सरकार के कुल व्यय की अधिकता को बजटरी घाटा कहा जाता है। बजटरी घाटा = कुल व्यय-कुल प्राप्ति
2. **आगम या राजस्व घाटा-** सरकार की आगम आय की तुलना में आगम व्यय की अधिकता को आगम घाटे के नाम से दर्शाया जाता है। सूत्र के रूप में- आगम या राजस्व घाटा = आगम व्यय- आगम प्राप्ति
3. **प्रभावी राजस्व घाटा-** यह धारणा 2012-13 केन्द्रीय बजट से प्रारम्भ की गयी है। इसका आशय राजस्व घाटा तथा पूंजी सम्पत्तियों के सृजन हेतु दिये गये अनुदान के अन्तर से है। इस पर ध्यान केन्द्रित करने से राजस्व घाटे के उपभोग सम्बन्धी घटक में कमी लाने और अभिवृद्धित पूंजीगत व्यय हेतु क्षमता स्थापित करने में सहायता मिलेगी।
4. **राजकोषीय घाटा-** इसका अर्थ आगम प्राप्तियों ओर ऋण-भार उत्पन्न न करने वाली पूंजीगत प्राप्तियों पर कुल व्यय के आधिक्य से होता है।
5. नोट- राजकोषीय घाटे को 'सकल राजकोषीय घाटा' भी कहा जाता है। ऋण भार उत्पन्न न करने वाली पूंजीगत प्राप्तियों से आशय ऋणों की वसूली तथा अन्य पूंजीगत प्राप्तियों (उधार एवं अन्य देयताओं को छोड़कर) से होता है।
6. **प्राथमिक घाटा-** राजकोषीय घाटे में सरकार द्वारा ब्याज के रूप में भुगतान की जाने वाली राशि को घटाकर आने वाला घाटा प्राथमिक घाटा कहलाता है। इसे 'प्राथमिक राजकोषीय घाटा' भी कहते हैं।
7. **मौद्रिकृत घाटा-** यह घाटा राजकोषीय घाटे का वह भाग है जिसकी पूर्ति रिजर्व बैंक द्वारा नये नोटों को छापकर की जाती है।

यह उल्लेखनय है कि सन 1997-98 के बजट से तदर्थ ट्रेजरी बिलों और 91 दिन के ट्रेजरी बिलों की व्यवस्था समाप्त हो जाने के कारण "बजटरी घाटा" की धारणा की प्रासंगिकता समाप्त हो गयी है।

12.3 हीनार्थ प्रबन्धन के उद्देश्य

विश्व में हीनार्थ प्रबन्धन की व्यवस्था का प्रारम्भ आर्थिक मन्दी तथा युद्धकालीन संकटों का सामना करने के लिए किया गया, लेकिन वर्तमान समय में इसे आर्थिक विकास की वित्त व्यवस्था के लिए भी व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। विस्तृत रूप से हीनार्थ प्रबन्धन के उद्देश्य को अग्र प्रकार रखा जा सकता है-

1. **मन्दी के प्रभाव को रोकने के लिए-** मन्दी के समय कुल प्रभावपूर्ण मांग में कमी आ जाती है जिसके परिणाम स्वरूप रोजगार में गिरावट आ जाती है। लार्ड कीन्स का मत है कि मन्दी काल में प्रभावपूर्ण मांग की कमी के कारण रोजगार में कमी आ जाती है तथा रोजगार में कमी प्रभावपूर्ण मांग को कम कर देती है। इस प्रकार एक दुष्चक्र पैदा हो जाता है जो कि सार्वजनिक व्यय को बढ़ाकर समाप्त किया जा सकता है। कीन्स ने सुझाव दिया कि हीनार्थ प्रबन्धन का प्रयोग क्षतिपूरक वित्त के रूप में किया जायें इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत व्यय में हुई कमी को सरकार अपने व्यय से पूरा करती है। इसके परिणामस्वरूप प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि हो जाती है। यदि मन्दी काल में सरकार सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर व्यय आरम्भ कर दे तो

इसके फलस्वरूप रोजगार की मात्रा बढ़ेगी और नागरिकों के हाथों में अधिक क्रय शक्ति आयेगी। इससे वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग बढ़ेगी, कीमतें उठेंगी, उत्पादन बढ़ेगा, रोजगार बढ़ेगा तथा मन्दी का चक्र समाप्त हो जायेगा, परन्तु इस दिशा में सफलता तभी मिलेगी जब हीनार्थ-प्रबन्धन किया जाए क्योंकि उसे अतिरिक्त द्रव्य का सृजन होगा जिससे समाज में कुल व्यय-योग्य कोष मे वृद्धि हो जायेगी। उन्नत देशों, विशेषकर अमरीका में मन्दी के प्रभावों को दूर करने के लिए इसका आश्रय लिया गया है। ऐसे हीनार्थ प्रबन्धन का मुद्रास्फीतिजनक प्रभाव नहीं होता वरन् गिरती कीमतों को ऊपर उठाकर निष्क्रिय अर्थयवस्था को चेतन किया जाता है।

मन्दी के उपचार के लिए हीनार्थ-प्रबन्धन का प्रयोग तीन प्रकार से किया जा सकता है-

- पम्प प्राइमिंग- इसके अन्तर्गत मन्दी से उत्पन्न शिथिलता को दूर करने के लिए सार्वजनिक निर्माण नीति प्रयोग में लायी जाती है। सड़कें, पुल, नहरें इत्यादि का निर्माण आरम्भ किया जाता है। व्यक्तियों को रोजगार मिलता है। उनके हाथों में क्रय शक्ति आती है। वस्तुओं की मांग बढ़ती हैं बड़े पैमाने पर क्षतिपूरक व्यय किया जाता है। टेलर के शब्दों में, ''पम्प प्राइमिंग इस विश्वास पर आधारित है कि यदि पर्याप्त मात्राओं में तथा उचित परिस्थतियों के अन्तर्गत सार्वजनिक कोषों का आय-प्रवाह में इन्जेक्शन लगा दिया जाये तो वह आशा की प्रवृति को बदल देगा तथा मन्दी से उभार को प्रोत्साहन देगा।''
- चक्रीय- हीनार्थ-प्रबन्धन के अन्तर्गत सरकार अपने व्यय में वृद्धि करने के साथ-साथ करों में छूट आदि की सुविधाएं देती है। इसका उद्देश्य व्यापार-चक्र के परिणामस्वरूप उत्पन्न मन्दी की तीव्रता कम करना है।
- चिरकालिक- हीनार्थ प्रबन्धन के अन्तर्गत दीर्घकाल तक धाटे के बजट बनाये जाते हैं। सरकारी व्यय में वृद्धि की जाती है। धीरे धीरे नये विनियोगी निवेश करने के लिए प्रोत्साहित होने लगते हैं। हेन्सन की मान्यता है कि लम्बी अवधि तक तीव्रगति से विकास होने पर अर्थव्यवस्था में परिपक्वता आ जाती है। नयी पूंजी के निवेश की दर गिरने लगती है। नये निवेश के अवसर नहीं होते। निष्क्रियता का वातावरण पैदा हो जाता है। ऐसी धारणा बन जाती है कि अब कोई लाभ नहीं होगां इसे दूर करने के लिए लम्बे समय तक हीनार्थ-प्रबन्धन किया जाता है।

2. **युद्धकाल में हीनार्थ-प्रबन्धन-** युद्ध काल में समस्या यह होती है कि देश के समस्त साधनों को यृद्ध के प्रयत्नों में लगाया जाये। यह काम हीनार्थ-प्रबन्धन से किया जा सकता है। यृद्धकाल में अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति करारोपण, सार्वजनिक उपक्रमों से आय तथा ऋणों द्वारा की जाती है परन्तु इन सबसे प्राप्त आय पर्याप्त नहीं होती अतः युद्ध चलाने के लिए सरकार हीनार्थ प्रबन्धन करती है। इसके द्वारा सरकार के हाथों में अतिरिक्त क्रय-शक्ति आ जाती है जिससे यृद्ध के लिए सामग्री तथा सेवाएं खरीदी जाती हैं। इस प्रकार के हीनार्थ प्रबन्धन से उत्पादन घट जाता है क्योंकि उत्पत्ति के साधन सामान्य वस्तुओं के उत्पादन से हटाकर युद्ध की वस्तुओं को पैदा करने में लग जाते हैं तथा जनता के हाथों में सरकारी व्यय द्वारा अतिरिक्त क्रय शक्ति पहुँच जाती है। परिणामतः कीमतें बढ़ जाती हैं।
3. **आर्थिक विकास के लिए हीनार्थ-प्रबन्धन-** एक विकसशील देश को विभिन्न क्षेत्रों में निवेश के लिए धन की आवश्यकता होती है जिससे अर्थव्यवस्था को धरातल से उपर उठाने की स्थिति में लाया जायें। यह निवेश बड़ी राशि में होना चाहिएं अल्प विकास के घेरे में फंसी अर्थव्यवस्था को झटका देकर निकाला जा सके। अल्प विकसित देश में प्रति व्यक्ति आय कम होती है, अतः बचत भी कम होती है। जीवन निर्वाह ही कठिनाई से होता है बचत कहां से हो? इस कारण विकास के लिए धन नहीं मिल पाता।

जनता निर्वाह स्तर से भी नीचे रहती है। धन के वितरण में असमानता होती है। कुछ धनी व्यक्ति उपभोग पर बहुत व्यय करते हैं। इस उपभोग को सरकार कर लगाकर कम कर सकती हैं परन्तु इससे पर्याप्त धन नहीं मिल पाता। ऋण भी इतने नहीं मिल पाते कि विकास की आवश्यकता को पूरा कर सके। लोकतन्त्र में सरकार अधिक कर लगाते हुए भी हिचकिचाती है क्योंकि उसे भय रहता है कि आगामी चुनाव में लोग उसे वोट नहीं देंगें, अतः हीनार्थ प्रबन्धन का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। यदि लक्ष्य अच्छा है तो साधन कैसे भी क्यों न हों वे उचित ही कहे जायेंगे। नई मुद्रा का सृजन कर प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों को काम में लगाया जाता हैं।

12.4 राजस्व घाटा व पूंजी घाटा

सरकारी बजट के राजस्व खाते की कुल व्यय यदि कुल आय से अधिक हो तो घाटे की मात्रा राजस्व घाटा कहलाता है। राजस्व व्यय अनिवार्य है तथा तत्कालिक होता है। ऐसे व्यय उपभोगात्मक तथा अनुत्पादक होते हैं। इस प्रकार के व्यय को वित्तीय नीति के क्षेत्र में अपराध माना जाता है। इस घाटे को कम करने के लिए खर्च किए जाने वाले पैसे का उपयोग किसी भी विकासात्मक कार्य के लिए किया जा सकता है। भारत में इस नयी शब्दावली का प्रयोग वित्त वर्ष 1997-98 से प्रारम्भ हुआ।

सरकारी बजट के राजस्व खाते की यदि कुल आय कुल व्यय से अधिक हो तो यह आधिक्य राजस्व अधिशेष कहलाता हैं। इस तरह की वित्तीय नीति को बेहतर माना जाता है, क्योंकि राजस्व अधिशेषके पैसों का उपयोग उत्पादक क्षेत्रों में किया जा सकता है। दूसरी बात जो ध्यान में रखी जानी चाहिए कि किस प्रकार सरकार ने इस अधिशेष का प्रबन्ध किया है तथा इस दिशा मे अपनाई गई नीति औचित्यपूर्ण है अथवा नहीं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भारत राजस्व अधिशेष राज्य बन गया, लेकिन विशेषज्ञों ने इसकी सराहना नहीं की है, क्योंकि प्रभाव अर्थव्यवस्था पर अच्छा नहीं था- कर के अधिक दर हो जाने के कारण कर की चोरी होने लगी तथा भ्रष्टाचार, काला धन इत्यादि भी अर्थव्यवस्था में व्याप्त हुआ।

किसी भी वित्त वर्ष के राजस्व घाटे को मात्रात्मक रूप अथवा सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है। सामान्यतः राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय आकलन के लिए इसे प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है।

12.4.1 प्रभावी राजस्व घाटा

प्रभावी राजस्व घाटा एक नयी अवधारणा है जिसे संघीय बजट 2011-12 द्वारा पहली बार इस्तेमाल किया गया। परंपरागत रूप से राजस्व घाटा सरकार की राजस्व प्राप्ति और व्यय के बीच का ऋणात्मक अंतर है। ज्ञात हो कि इस घाटे में केन्द्र सरकार के वे व्यय भी शामिल होते हैं जो वह राज्य सरकार को 'अनुदान' के रूप में देता है और इनसे कई विकासशील परिसंपत्तियों का सृजन होता है। हालाकि इन परिसंपत्तियों का स्वामित्व केन्द्र के बजाय राज्यों का होता है। केन्द्रीय वित्त मंत्री (वर्ष 2011-12) के अनुसार केन्द्र के इस व्यय को 'गैर विकासात्मक' या 'अनुत्पादक' नहीं माना जा सकता, क्योंकि इनसे प्रत्यक्ष विकासशील निवेश होता है। इस प्रकार यह तर्क रखा गया कि इस कारण केंद्र के राजस्व व्यय में से न उन खर्चो को जिनसे राज्यों में परिसंपत्तियाँ सृजित होती हैं, को घटाकर देखा जाना चाहिए और जो मात्रा बचती है वास्तव में वहीं केंद्र का राजस्व घाटा माना जाना चाहिए। इसे सूचित करने के लिए ही इस नयी अवधारणा का ERD उपयोग किया गया। अर्थात ERD की प्राप्ति केंद्र के राजस्व घाटे में से उसके ''पूंजीगत अस्तियों संबधी अनुदानों'' को घटाने से होती है। इन अस्तियों में मुख्यातया प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम आदि शामिल थे।

इस अवधारणा का अंतिम उल्लेख हमें केंद्रीय बजट 2013-14 में मिलता है, जिसके अनुसार 2016-17 तक जबकि RD 1.5 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया गया था ERD शून्य हो गया था। इसका अर्थ है, वर्ष 2016-17

तक RD केवल GoCAs के कारण होना चाहिए था। यह वास्तव में आरडी की व्याख्या करने का एक नया तरीका थां हम केंद्रीय बजट 2014-15 (पूर्ण) के बाद 2016-17 तक भारत सरकार द्वारा इसका इस्तेमाल नहीं पाते हैं। इस तरह नई अवधारणा को समाप्त मान लिया गया है।

12.4.2 पूँजी घाटा

सार्वजनिक वित्त या अर्थशास्त्र में कोई ऐसा शब्द नहीं है। लेकिन व्यवहार में अक्सर यह शब्द पूंजी की कमी, पूंजी की विरलता के अर्थ में रोजमर्रा के आर्थिक समाचारों में सुनने में आता है। दर असल सरकार सार्वजनिक व्यय के लिए अपेक्षित निधि, धन, पूंजी के प्रबंधन की समस्या से जूझ रही होती है। ऐसे खर्चे राजस्व संबधित भी हो सकतें हैं या पूंजी से जुड़े हुए भी। विकासशील अर्थव्यवस्था में पूंजीगत व्यय की उच्च आवश्यकता के चलते इस तरह की मुश्किलें हमेशा बनी रहती हैं। क्या इस स्थिति को दर्शाने के लिए अगर कोई उपयुक्त शब्द है यह स्वाभिक रूप से पूंजी घाटा रहा है।

12.5 राजकोषीय घाटा

यदि सरकार की कुल प्राप्ति (राजस्व व पूंजी प्राप्ति) तथा कुल व्यय (राजस्व व पूंजी व्यय) का संतुलन नकारात्मक हो तो यह राजकोषीय घाटे को दर्शाता है। इस अवधारणा का उपयोग भारत में वित्त वर्ष 1997-98 से किया जा रहा है।

राजकोषीय घाटे का अभिप्राय यह है कि सरकार द्वारा किया गया खर्च उनके साधनों से कहीं अधिक है यानि सरकार अपने आय से अधिक व्यय कर रही है। राजकोषीय घाटे को मात्रात्मक रूप अथवा सकल घरेलू उत्पादक के प्रतिशत के रूप में दर्शाया जा सकता है। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों के लिए सामान्यतः इसे प्रतिशत में ही दर्शाया जाता है। भारत में प्रायः यह घाटा देखा गया है तथा यह घाटा बहुत अधिक होता रहा है।

वित्तीय घाटे को मात्रात्मक रूप में (यानी कि घाटे का कुल मुद्रात्मक मूल्य) या उस विशेष वर्ष की GDP के प्रतिशत के रूप मे दिखाया जा सकता है। सामान्यतः घरेलू या अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययनों (यानी कि तुलनात्मक अर्थशास्त्र) में प्रतिशत का इस्तेमाल किया जाता है।

भारत एक ऐसा देश रहा है जहां न सिर्फ नियमित बल्कि भारी वित्तीय घाटा रहा है। इसके अलावा इसके वित्तीय घाटे की संरचना आलोचना का आसान शिकार भी रही है।

12.6 प्राथमिक घाटा व मौद्रिकृत घाटा

वित्तीय घाटा, एक साल की ब्याज देनदारियां हटाकर, प्राथिमक घाटा है। इस शब्द का इस्तेमाल भारत ने 1997-98 के बजट से करना शुरू किया था। यह उस साल अर्थव्यवस्था के वित्तीय घाटे को दर्शाता है, जिसमें विभिन्न ऋणों और देनदारियों पर ब्याज का भुगतान नहीं करना है। यह मात्रात्मक और जीडीपी के प्रतिशत दोंनों रूपों में दिखाया जाता है।

इसे सरकार के व्यय के स्वरूप में ज्यादा पारिदर्शिता लाने के लिए एक बहुत कारगर उपकरण माना जाता है। इससे किन्हीं भी दो सालों की तुलना की जा सकती है और बहुत सारी चीजें स्पष्टतः जानी जा सकती हैं।

मौद्रीकृत घाटा, राजकोषीय घाटे का वह भाग जिसकी आपूर्ति सरकार को जीडीपी द्वारा की गयी (कर्ज के रूप में) उसे मौद्रीकृत घाटा कहा जाता हैं इस नयी अवधारणा को भारत द्वारा वर्ष 1997-98 से उपयोग में लाया जा रहा है। किसी वित्त वर्ष के लिए इसे मात्रात्मक तथा सकल घरेलू उत्पाद GDP के प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है।

इस अवधारणा का विकास एक नयी शुरूआत है जिसके द्वारा भारत सरकार के बाजार ऋाणों पर निर्भरता तथा राजकोषीय प्रबंधन में पारदर्शिता लायी जाती है। वास्तव में अपनी व्यय की पूर्ति के लिए भारत सरकार बाजार

ऋणों (जो आंतरिक ऋण है) पर बड़े अर्थों में निर्भर रही है। इस बाजार ऋण का प्रबंध जीडीपी करती है। इसके अतिरिक्त सरकार अपनी प्रतिभूतियों, बांड़ों आदि से जो बाजार ऋण लेती रही है। उसका प्राथमिक ग्राहक भी जीडीपी ही रहा है। (वैसे 2006-7 से अब जीडीपी यह बाध्यता नहीं रही)। इन माध्यमों से सरकार भारी मात्रा में आंतरिक ऋणों की उगाही करती रही है तथा भारत की राजकोषीय नीति का यह एक चिंताजनक पहलू रहा था। वर्ष 1991-92 में शुरू किये राजकोषीय समेकन की प्रक्रिया के प्रारम्भ का यह एक प्रतिफल है कि इस अवधारणा का विकास किया गया। अब सरकार जीडीपी को दीर्घावधिक ऋणों की उगाही के लिए बाध्य नहीं करती है। वह अब इससे सिर्फ अर्थोपाय अग्रिम (ways and means advance) के माध्यम से ही ऋण लेती है जो छोटी अवधि के ऋण हैं (364 दिनों तक के)।

12.7 निवल मूल घाटा

सकल मूल घाटे से सरकार द्वारा दिये गये ऋण और अग्रिम को घटाने पर निवल मूल घाटे का अनुमान प्राप्त होता है। इसको राजकोषीय घाटे से ब्याज की अदायगियों और उधार और अग्रिम को घटा कर तथा ब्याज प्राप्तियाँ जोड़कर भी अनुमानित किया जा सकता है।

12.8 सार्वजनिक क्षेत्र की उधार आवश्यकता

यह पूरे क्षेत्र का एकीकृत घाटा है तथा इस क्षेत्र द्वारा अर्थव्यवस्था के संसाधनों के निवल उपभोग का परिमापन है। इसे बजटीय घाटे का सर्वाधिक विस्तारित परिमापन कहा जा सकता है तथा इसमें सरकार के सभी अंगों के घाटे जुड़े रहते हैं। संक्षिप्त शब्दों में इसे समस्त सरकारी इकाइयों के (कुल व्यय-कुल राजस्व प्राप्तियाँ) के बराबर, अथवा (नये उधार-ऋण भुगतान-जमा रोकड़ में कमी) के बराबर अनुमानित किया जा सकता है।

नोट करें कि यहाँ पर व्यय में सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों के वेतन एवं भत्ते, वस्तुओं तथा सेवाओं पर व्यय, अचल पूँजी निर्माण, ऋण पर ब्याज, आर्थिक सहायताएँ तथा अन्य अन्तरण शामिल होते हैं। परन्तु व्यय के इस परिमापन में ऋण का भुगतान तथा वित्तीय प्रतिभूतियों के संग्रहण के तद्रूप अदायगियों को शामिल नहीं किया जाता। इसी प्रकार राजस्व में करों से प्राप्तियों, फीसें, जुर्माने शुल्क, उपभोक्ताओं से वसूलियाँ, सार्वजनिक परिसंपत्तियों की बिक्री से प्राप्त धन राशियों को शामिल किया जाता है। परन्तु जमा रोकड़ से निकाली गई राशियों को राजस्व का भाग नहीं माना जाता।

इस परिमापन में कुछ कठिन सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक प्रश्न का सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, किन आर्थिक इकाइयों को सरकार का अंग माना जाए? इसके अतिरिक्त इस परिमापन से सरकारी क्षेत्र के घाटे के कारण अर्थव्यवस्था द्वारा वहन की जाने वाली वास्तविक संसाधन लागत का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि यह लागत केवल घाटे तक ही सीमित नहीं रहती; इसके प्रभाव मुद्रास्फीति तथा अन्य कई रूपों में भी प्रकट होते हैं।

12.9 संरचनात्मक घाटा व परिचालन घाटा

सरकारें बहुधा ऐसे कदम उठाती है जिससे सरकारी व्यय में कमी अथवा राजस्व में बढ़ोतरी हो सकती हैं परन्तु यदि ऐसे कदम अल्पकालीन हों तो उनके बजटीय प्रभाव भी अल्पकालीन ही होंगे। अतः वस्तुस्थिति का सही अनुमान लगाने के लिए बजटीय घटे को अनुमानित करते समय इन अल्पकालीन प्रभावों वाले घटकों को अनदेखा कर देना चाहिए। ऐसा करने पर ‘सार्वननिक क्षेत्र की उधार आवश्यकता’ (PSBR) के संशोधित अनुमान को संरचानात्मक घाटे की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार के घाटे का यह परिमापन सार्वजनिक क्षेत्र की दीर्घकालीन घाटे की स्थिति दर्शाता है।

परिचालन घाटा, 'सार्वननिक क्षेत्र की उधार आवश्यकता' के परिमापन के अनुमान पर कीमतों में परिवर्तन का प्रभाव भी पड़ता है। यदि यह अनुमान कीमतों के इस प्रभाव को दूर करने के उपरांत लगाया जाए, तो इसे परिचालन घाटे की संज्ञा दी जाती है। परन्तु व्यावहारिकता में इस अनुमान में कई कठिनाइयाँ आती है। उदाहरण के लिए सर्वप्रथम कठिनाई एक उचित कीमत सूचकांक के चुनाव की रहती है। इसी प्रकार परोक्ष करों के कारण समस्या यह उठाती है कि एक ओर तो इनसे सरकार के राजस्व में वृद्धि होती है, परन्तु दूसरी ओर कीमतें भी बढ़ जाती हैं। यही बात सरकारी उद्यमों द्वारा कीमतें बढ़ाने पर लागू होती हैं वहाँ भी राजस्व में वृद्धि के साथ ही उपभोक्ताओं (जिनमें सरकार स्वयं भी शामिल है) के लिए कीमतें बढ़ जाती हैं।

12.10 बजट घाटा तथा बजट अधिशेष

सरकार बजट की कुल आय (राजस्व खाते की आय+पूंजी खाते की आय) यदि व्यय से अधिक हो तो इस आधिक्य को बजट अधिशेष कहते हैं। इसी तरह सरकारी बजट का कुल व्यय (राजस्व खाते का आय+पूंजी खाते का व्यय) यदि कुल आय (राजस्व खाते का आय+पूंजी खाते का आय) से अधिक हो तो यह आधिक्य बजट घाटा कहलाता है।

व्यवहार मे दुनिया भर की सरकारें अधिशेष वाला बजट पेश नहीं करती, क्योंकि इसे सरकारों के विकास के प्रति उदासीनता का प्रतीक माना जाता है। लेकिन राजनीतिक हथियार के रूप में सरकार ऐसा बजट ला सकती है । उदाहरण के लिए वर्ष 2006-07 का उत्तरांचल का बजट एक अधिशेष बजट था)। कोई सरकार किसी विकासशील राज्य में अधिशेष का बजट केसे ला सकती है जबकि विकसित देशों को भी विकास की जरूरत होती है और वहां घाटे के बजट आ रहे हैं? भारत में केंद्र सरकार के बजट को कभी भी एक अधिशेष बजट के रूप में पेश नहीं किया गया। पहली बार सन् 1930 में अमेरिका में सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में शब्द (घाटे की वित्त व्यवस्था) का इस्तेमाल किया गया था, आज इसका इस्तेमाल कार्पोरेट सेक्टर भी कर रहा है और व्यवसायिक रणनीति के तहत किसी कंपनी का वित्तीय प्रबंधन इसका इस्तेमाल भी कर सकता है। किसी बीमार कंपनी को कई साल तक घाटे की वित्तीय व्यवस्था का रास्ता अपनाना पड़ सकता है ताकि वह खतरे के निशान से ऊपर आ सके (यानी कि नुकसान को बन्द कर सके)।

12.11 घाटे का वित्त पोषण व इसकी आवश्यकता

यह सरकार द्वारा बजट घाटे के लिए की गई वित्त प्रबंध की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में सरकार को यह पूर्व से ही मालूम होता है कि उसका कुल व्यय कुल प्राप्ति से अधिक होगा तथा वह ऐसी नीतियों का निर्धारण करती है, जिससे इस घाटे को वहन किया सकें। इसका पहली बार उपयोग 1930 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक वित्त के क्षेत्र में किया गया। अब इस शब्द का प्रयोग कॉर्पोरेट क्षेत्र में भी किया जाता है।

तीस के दशक की शरूआत में अमेरिका को पहले घाटे की वित्त व्यवस्था मे हाथ आजमाने पड़े और फिर पूरे यूरोप-अमेरिका की सरकारों ने यह रास्ता अपनाया। हालांकि इस रास्ते से विकसित दुनिया महामंदी (1929) के खौफ से बाहर निकल आई। साठ के दशक तक यह विचार पूरी दुनिया में लोकप्रिय हो गयां भारत ने घाटे की वित्त व्यवस्था में अपने हाथ 1969 में आजमाए और 1970 से यह एक नियमित कार्यक्रम बन गया, तब तक जब तक कि यह निराधार और अतार्किक नही हो गया ओर तुरंत सुधार मी मांग नहीं करने लगा। भारत में वित्तीय घाटा न सिर्फ अवहनीय स्तर के शीर्ष पर पहुंच गया बल्कि इसकी संरचना ही न्यायसंगत नहीं थी और अर्थशास्त्र के आधारभूत सिद्धातों के अनुरूप नहीं थीं अंततः भारत ने वित्तीय सुधारों की धीमी लेकिन सुदृढ़ प्रक्रिया शुरू की जिसे वित्तीय मजबूती की प्रक्रिया के रूप में भी जाना जाता है।

घाटे के वित्त पोषण की आवश्यकता, इस प्रकार की नीति की आवश्यकता सन् 1920 के दशक में महसूस की गई तथा इस अवधारणा का उद्भव हुआ। इसकी आवश्यकता तब होती है जब सरकार को किसी निर्धारित अवधि में विकास हेतु उपार्जन से अधिक खर्च करने की आवश्यकता होती हैं विकास होने के बाद आय से अधिक खर्च किए गए पैसों की प्रतिपूर्ति की जाती है- यही सोच इसका आधार है।
1930 के दशक में पहली बार संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस प्रकार की नीति को अजमाया तथा उसके तुरंत बाद सभी यूरोप-अमेरिकी सरकारों ने इस नीति का अनुसरण किया। इस नीति के द्वारा ही विश्व के विकसित देश 1929 की आर्थिक मंदी से ऊभर पाए। 1960 के दशक में यह अवधारणा विश्वभर में लोकप्रिय हो गई। भारत ने वित्तीय अभाव की नीति को 1969 में आजमाया तथा 1970 के दशक से यह एक अनिवार्य नीति बन गई। धीरे-धीरे भारत ने राजकोषीय सुधार की प्रक्रिया को अपनाया जिसे वित्तीय समेकन की प्रक्रिया कहा जाने लगा।

12.12 घाटे के वित्त पोषण के साधन

जब वित्तीय अभाव की नीति लोक वित्त के क्षेत्र में विश्वभर में एक स्थापित प्रक्रिया बन गई तब समय के साथ-साथ इसके साधन भी विकसित होने लगें ये साधन निम्नलिखित हैं-

1. **विदेशी सहायता-** यह सबसे उचित साधन है जिसके द्वारा सरकारी घाटे की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है यदि यह निम्न ब्याज के साथ आता हो तो भी। यदि यह सहायता बगैर ब्याज के आता हो तो इससे बेहतर और कुछ नहीं हो सकता। विदेशी अनुदान इससे भी बेहतर साधन है, क्योंकि न तो इस पर किसी किस्म का ब्याज होता है तथा न ही इसकी अदायगी जरूरी है, यह निःशुल्क होता है। इस तरह का अनुदान भारत को पोखरण परमाणु परीक्षण (1975) के बाद मिलना बंद हो गया। कई बार भारत ने इस तरह के अनुदान को नहीं स्वीकारा है, जैसे सुनामी के उपरांत भारत को दिया गया अनुदान (क्योंकि इनमें शर्ते छुपी होती है)
2. **विदेशी ऋण-** विदेशी ऋण वित्तीय घाटे को संभालने का दूसरा सबसे बेहतर तरीका है, बशर्ते कि वे तुलनात्मक रूप से सस्ते तथा लंबी अवधि के हो। यद्यपि विदेशी ऋण के देश की संप्रभु निर्णय लेने की प्रक्रिया पर हस्तक्षेप माना जाता है, लेकिन इसके अपने फायदे हैं तथा यह आंतरिक ऋण से दो कारणों से बेहतर मान जाता है-
    - विदेशी ऋण विदेशी मुद्रा के रूप में आता है, जिससे सरकारी खर्च को अतिरिक्त फायदा होता है , सरकार चाहे तो इस ऋण का उपयोग देश के अंदर अथवा आयात पर टिकी विकास की आवश्यकताओं के लिए कर सकती है।
    - यह ''क्राउडिंग ऑउट'' प्रभाव के कारण भी बेहतर माना जाता है, क्योंकि सरकार यदि देश के बैंकों से ऋण लेगी तो अन्य निवेश के लिए कहां से ऋण लेंगे।
3. **आंतरिक ऋण-** आंतरिक ऋण वित्तीय घाटे को कम करने का तीसरा सबसे बेहतर तरीका है। लेकिन यदि इस किस्म का ऋण अत्यधिक लिया गया तो जनता तथा निजी क्षेत्र के निवेश संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अर्थव्यवस्था पर दोहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है- निम्न निवेश (जिसके कारण निम्न उत्पादन, निम्न सकल घरेलू उत्पाद तथा निम्न प्रति व्यक्ति आय इत्यादि) व निम्न माँग (आम जनता तथा निजी क्षेत्र द्वारा)- अर्थव्यवस्था की गति धीमी पड़ जाती है, जैसा कि 1960, 1970 तथा 1980 के दशक में देखा गया।

4. **मुद्रा छापकर-** यह वित्तीय घाटे को कम करने का अंतिम हथियार है। लेकिन इस साधन की विकलांगता यह है कि सरकार इसके द्वारा वह व्यय नहीं कर सकती है जिसे विदेशी मुद्रा में किया जाना है। मुद्रा छापने के कारण अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले अन्य प्रतिकूल प्रभाव निम्नलिखित हैं-
    - यह अनुपातिक रूप में मुद्रास्फीति में वृद्धि करता है।
    - यह सरकारी के वेतनमान मं संशोधन करने के लिए सरकार को बाध्य करता है, जिसके कारण सरकारी खर्च का भार अधिक हो जाता है। सरकार इन सभी साधनों में से किसी भी साधन का चयन कर अपने वित्तीय घाटे को कम कर सकती हैं। सामान्यतः सरकारें वित्तीय प्रबंधन के लिए इन सभी साधनों के संयोजन का प्रयोग करती है।

12.13 राजकोषीय घाटे की बनावट व राजकोषीय नीति

वित्तीय अभाव के लिए जे0एम0केन्स की अवधारणा को सामान्यतः सभी तीसरे विश्व की अर्थव्यवस्थाओं ने अपनाया, लेकिन उसके पूर्ण अर्थों पर अमल नहीं किया गया। यह अवधारणा इस बात पर आधारित थी कि क्यों कोई अर्थव्यवस्था, राजकोषीय घाटे से निपटने के लिए कदम उठाना चाहती है। इस प्रश्न को समझने के लिए राजकोषीय घाटे की बनावट/संघटन का आकलन आवश्यक है।

सरकार के दो विस्तृत खर्च के भार में, राजस्व व्यय तथा पूंजी व्यय की बनावट का सुझाव दिया गया है-

1. अधिशेष राजस्व बजट अथवा शून्य राजस्व व्यय के साथ राजकोषीय घाटा सबसे बेहतर संयोजन है तथा वित्तीय अभाव की नीति के लिए सबसे उपयुक्त है।
2. निम्न राजस्व व्यय तथा अधिक पूंजी व्यय के लिए घाटे की आवश्यकता इसके लिए दूसरा बेहतर विकल्प है बशर्ते राजस्व घाटे को शीघ्र ही मिटा दिया जाए।
3. एक अंतिम स्थिति ऐसी हो सकती है, जब वित्तीय अभाव को कम करने की नीति का मुख्य भाग राजस्व व्यय की पूर्ति करता है तथा एक लघु भाग पूंजी व्यय के लिए होता है। घाटे का पूरा पैसा राजस्व व्यय में जा सकता है जो इसका सबसे बदतर रूप हो सकता है।

भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था के पीछे बेहतर कारण कम गैर-योजनागत खर्च या उच्च योजनागत खर्च थे (हालांकि भारत में पूंजीगत व्यय का विशिष्ट लक्षण रहा है जो इस गठजोड़ को घाटे की वित्तीय व्यवस्था का ऐसा प्रकार बना देता है जिसकी सलाह नहीं दी जाती)।

हालांकि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाएं (भारत समेत) भारी से भारी राजकोषीय घाटे और घाटे की वित्तीय व्यवस्था का इस्तेमाल कर रही थीं। लेकिन या तो वह पूंजी और गैर आय खर्चों के लिए माकूल घाटे को साध नहीं पाई या साधना नहीं चाहा।

राजकोषीय नीति, वित्तीय नीति का वास्तविक अर्थ महत्व तथा प्रभाव महामन्दी तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सामने आया। वित्तीय नीति सरकार की वह नीति है; जिसका संबंध सरकारी क्रय के स्तर, स्थानान्तरण के स्तर तथा कर संरचना से है। यह संभवतः वित्तीय नीति की सबसे बेहतर परिभाषा है जिसे विशेषज्ञों ने भी माना है। इसके उपरांत समष्टि अर्थव्यवस्था पर राजकोषीय नीति के प्रभाव का बेहतर तरीके से विश्लेषण किया गया। चूंकि इस नीति का अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव होता है, इसलिए इस नीति की परिभाषा उस नीति के रूप में दी जाती है जो सरकारी खर्च तथा कर को संचालित करता है तथा आर्थिक गतिविधियों (जिसे संख्यात्मक रूप में सकल घरेलू उत्पाद से दर्शाया जाता है) को उत्प्रेरित करता है। जे0 एम0 केन्स पहले अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने राजकोषीय नीति तथा आर्थिक निष्पादन को जोड़ने वाले सिद्धांत का विकास किया।

राजकोषीय नीति को एक अन्य तरीके से भी परिभाषित किया जा सकता है। यह सरकारी व्यय तथा करों में किया जाने वाला बदलाव है जिसका लक्ष्य समष्टि अर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना है (जैसे- विकास, रोजगार, निवेश इत्यादि) इसलिए हम यह कह सकते हैं कि राजकोषीय नीति कर तथा सरकारी व्यय के उपयोग को दर्शाता है
कर तथा सरकारी व्यय संपूर्ण अर्थव्यवस्था को किस तरह प्रभावित करती है। इसकी चर्चा नीचे की गई है। पहले हम कर तथा अर्थव्यवस्था पर उसके प्रभाव की चर्चा करेंगें-

1. कर का लोगों की आय, उनकी क्रय शक्ति, उपभोग तथा परिणामस्वरूप उनके जीवन स्तर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।
2. कर का व्यक्तियों, परिवारों तथा कंपनियों की बचत पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, जिससे अर्थव्यवस्था में निवेश प्रभावित होता है। निवेश से सकल घरेलू उत्पाद प्रभावित होता है, जिसका असर प्रति व्यक्ति आय पर पड़ता है।
3. कर का वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य पर भी प्रभाव पड़ता है, क्योंकि उनका उत्पादन मूल्य प्रभावित होता है।

सरकारी व्यय का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव निम्नलिखित दो रूपों में पड़ता है-

- वस्तुओं एवं सेवाओं को यदि सरकार द्वारा खरीदा जाए तो उन पर भी कुछ व्यय होता है जैसे सड़कों, रेलवे तथा बन्दरगाह का निर्माण, खाद्यान्न की खरीद (वस्तुओं के वर्ग में)तथा सरकारी कर्मचारियों को वेतन का भुगतान (सेवाओं के वर्ग में)।
- सरकार द्वारा गरीबों, बेरोजगारों व वृद्ध व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने में भी कुछ व्यय खर्च होता है, जिसे सरकारी अंतरण भुगतान कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. निश्चित सीमा के अन्दर अपनाया गया हीनार्थ- प्रबन्धन देश के ....के लिए सहायक है।
2. हीनार्थ प्रबन्धन का अभिप्राय किससे से है?
3. घाटे के वित्त से मुद्रा आपूर्ति में क्या असर पड़ता है?
4. घाटे का वित्त क्या उत्पन्न करता है?
5. घाटे के वित्त से भुगतान सन्तुलन कैसा होता है?
6. घाटे के वित्त का सम्बन्ध किस घाटे से है?
7. केन्द्रीय सरकार के बजट में किस वर्ष से बजटरी घाटे की धारणा की प्रासंगिकता समाप्त हो गई है?
8. प्राथमिक घाटे की गणना के लिए राजकोषीय घाटे में क्या समायोजन होता है?
9. राजस्व आगम एवं राजस्व व्यय का अन्तर क्या प्रदर्शित करता है?
10. सरकार की कुल प्राप्ति पर कुल व्यय का आधिक्य क्या स्पष्ट करता है?
11. केन्द्र सरकार के लिए भारतीय रिजर्व बैंक की शुद्ध साख में होने वाली वृद्धि को क्या कहा जाता है?

12.14 सारांश

वर्तमान समय में हीनार्थ-प्रबन्धन को वित्तीय संसाधनों के महत्वपूर्ण अंग के रूप में माना जाता है। 20 वीं शताब्दी के शुरू में हीनार्थ-प्रबन्धन को अच्दा नहीं माना जाता था, क्योंकि राष्ट्रों द्वारा सन्तुलित या बचत का बजट बनाया जाता था, परन्तु सन् 1930 की विश्वव्यापी मन्दी में प्रो0 कीन्स ने हीनार्थ प्रबन्धन को एक महत्वपूर्ण राजकोषीय उपाय के रूप में अपनाने पर जोर दियां वर्तमान समय में विकास और युद्ध दोनों की परिस्थितियों में वित्त व्यवस्था की दृष्टि से हीनार्थ-प्रबन्धन एक उपयोगी और महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है।

इस इकाई में हमने हीनार्थ- प्रबन्धन, राजस्व घाटा, पूँजी घाटा, राजकोषीय घाटा, प्राथमिक घाटा, मौद्रिक घाटा, घाटे का वित्त पोषण के साधनों व राजकोषीय नीति का वर्णन किया गया है।

12.15 शब्दावली

राजस्व घाटा-सरकारी बजट के राजस्व खाते की कुल व्यय की कुल आय पर आधिक्य। (RD)
पूँजी घाटा- पूँजी की कमी अथवा विरलता। (CD)
राजकोषीय घाटा- सरकारी कुल प्राप्ति तथा कुल ब्याज का नकारात्मक सन्तुलन।(FD)
प्राथमिक घाटा- वित्तीय घाटे में से एक वर्ष की ब्याज देनदारियां घटाकर बचा अवशेष। (PD)
मौद्रिक घाटा- राजकोषीय घाटे का वह भाग जिसकी आपूर्ति सरकार को त्ठप् द्वारा की जाती है।(MD)
महामंदी- विश्वव्याप्त महामन्दी सन् 1929 से 1935 तक ।
लोक नीति- जिसमें कुछ सार्वजनिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कराधान, सार्वजनिक व्यय ओर सार्वजनिक ऋण का आरोपण किया जाता है।
RBI- रिजर्व बैंक ऑफ इन्डिया।
GDP- सकल घरेलू उत्पाद।

12.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. आीर्थिक विकास, **2.** मुद्रा स्रजन, **3.** बढ़ती है, **4.** मुद्रा स्फीति, **5.** प्रतिकुल होता है, **6.** राजस्व घाटे से और पूंजी घाटे से, **7.** 1997-98, **8.** ब्याज भुगतान घटाना, **9.** राजस्व घाटा, **10.** बजटरी घाटा, **11.** मौद्रिकृत घाटा

12.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भाटिया, एच0 एल0, लोक वित्त, विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नोएडा।
2. थावराज, एम0जे0के0, फायनेन्सियल एडमिनिस्ट्रेशन आफ इन्डिया, सुल्तान चंद एवं संस, नई दिल्ली।
3. बर्मन, किरण, 1978 इंडियोज पब्लिक डेट् एंड पालिसी सिंस इंडिपेंडेंस, मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. त्रिपाठी, आर0 एन0 व राम त्रिपाठी; पब्लिक फाइनेन्स एण्ड इकोनॉमिक डेवलपमेंट इन इण्डिया, मिततल पबिलकेशन्स, दिल्ली।

12.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भाटिया, एच0 एल0, लोक वित्त, विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नोएडा।
2. त्रिपाठी, आर0 एन0 व राम त्रिपाठी; पब्लिक फाइनेन्स एण्ड इकोनॉमिक डेवलपमेंट इन इण्डिया, मिततल पबिलकेशन्स, दिल्ली।

12.19 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हिनार्थ प्रबन्धन की धारणाएं और उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
2. राजकोषीय घाटे पर टिप्पणी करें।
3. घाटे के वित्त पोषण की आवश्यकता और इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 13 सार्वजनिक ऋण प्रबंधन एवं भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 भारतीय रिजर्व बैंक: परिचय
13.3 भारतीय रिजर्व बैंकः उद्देश्य
13.4 रिर्जव बैंक का प्रबन्ध व कार्य
    13.4.1 केन्द्रीय बैंकिंग कार्य
    13.4.2 सामान्य बैंकिंग कार्य
    13.4.3 उपभोक्ता केन्द्रित कार्य
13.5 सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण
13.6 सार्वजनिक ऋण के सिद्धांत
13.7 सार्वजनिक ऋण के स्रोत
13.8 सार्वजनिक ऋण के आर्थिक प्रभाव
13.9 सार्वजनिक ऋणों का भार
13.10 सार्वजनिक ऋणों के शोधन के ढंग
13.11 सारांश
13.12 शब्दावली
13.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
13.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.16 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

प्रायः राज्य अपने सामान्य व्यय को अपनी सामान्य आय से पूरा कर देता है परन्तु कभी-कभी ऐसे अवसर भी आते हैं, जब सामान्य आय-व्यय के बढ़ते हुए आकार को पूरा करने में समर्थ नहीं होती। एक आधुनिक सरकार को बहुत से सामान्य कार्य करने पड़ते हैं और इनको करने के लिए बढी मात्रा में साधनों की आवश्यकता होती है। कुछ असामान्य परिस्थितियां, जैसे युद्ध, आकाल, विकास योजनाएं इत्यादि ऐसे असामान्य व्यय को जन्म देते हैं जिनके लिए सरकार को ऋण लेकर ही काम चलाना पड़ता है। राज्य द्वारा लिए गये ऋण को सार्वजनिक ऋण का नाम दिया जाता है। राज्य के अन्तर्गत केन्द्रीय शासन, राज्य शासन तथा स्थानीय शासन सब सम्मलित होते हैं। सार्वजनिक ऋण राज्य की आय का एक साधन है तथा गत वर्षों में यह सार्वजनिक वित्त व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग बन गया है, परन्तु ऋण का भुगतान करना पड़ता है, अतः आय का यह साधन अन्य साधनों से भिन्न है। अल्पकालीन दृष्टि से हम इसे सरकार की आय कह सकते हैं, दीर्घकालीन दृष्टि से नहीं। कुछ ऐसे ऋण भी हो सकते हैं, निरन्तर चलते हैं जिन्हें लौटाना नहीं पड़ता; केवल व्याज ही देना पड़ता है। परन्तु व्याज तो देना ही पड़ेगा। ब्रैस्टेबिल ने लिखा है, ‘‘जिस प्रकार एक व्यक्ति निरन्तर ऋण लेकर अपना काम नहीं चला सकता है, इसी प्रकार सरकार निरन्तर ऋण लेकर अपना काम नही चला सकती है।‘‘

सरकार द्वारा ऋण लेना पर्याप्त पुरानी प्रथा है, परन्तु प्राचीन काल में ऋण प्रायः शासक को दिया जाता था। जब एकतन्त्र का युग था तो राजा साधारण जनता से ऋण न लेकर केवल कुछ धनी व्यक्तियों से ऋण लेता था तथा इस ऋण की वापसी भी राजा की इच्छा पर निर्भर करती थी। इसके अतिरिक्त यह आवश्यक नहीं था कि इस ऋण का उद्देश्य जनता की भलाई के कार्यों पर व्यय करना हो। राजा प्रायः उसे अपने व्यक्तिगत हितों पर व्यय करता था। अतः सही रूप में हम इसे सार्वजनिक ऋण नहीं कह सकते। राजतन्त्र का युग समाप्त हो गया है तथा उनका स्थान लोकतान्त्रिक शासन ने ले लिया। इस नवीन शासन-प्रणाली के साथ ही सार्वजनिक ऋण का उदय हुआ। सार्वजनिक ऋण वर्तमान युग का शिशु है। प्रोफेसर जे0 के0 मेहता का यह कथन सत्य है कि ‘‘सार्वजनिक ऋण अपेक्षाकृत आधुनिक घटना है तथा विश्व में सरकारों के लोकतान्त्रिक स्वरूप के साथ इसका जन्म हुआ है।’’ सार्वजनिक ऋण तो आर्थिक विकास तथा मौद्रिक प्रणाली का परिणाम है। केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय सरकारें सभी ऋण ले रही हैं। लोकतान्त्रिक सरकार जनता से ऋण लेती है, किसी एक व्यक्ति से नहीं तथा इसका व्यय किसी एक व्यक्ति की भलाई के लिए न होकर सम्पूर्ण समाज की भलाई के लिए किया जाता है। इस ऋण को लौटाने के लिए सरकार बाध्य होती है।

इस इकाई में वित्तीय प्रशासन के एक महत्वपूर्ण अंग अर्थात सार्वजनिक ऋण पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में हम सरकारी ऋण के विभिन्न वर्गीकरणों तथा व्यक्तिगत व सार्वजनिक ऋण में भेद व सार्वजनिक के सिद्धातों, स्रोतों व आर्थिक प्रभावों व विधियों पर चर्चा करेंगे। साथ ही आप रिजर्व बैंक के स्थापना, इसके उद्देश्यों व भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यों के बारे में भी जानेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रिजर्व बैंक के स्थापना तथा इसके उद्देश्यों को विस्तार पूर्वक समझ सकेंगे।
- भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यों की विस्तार से चर्चा कर सकेंगे।
- साख नियंत्रण के उद्देश्यों तथा साख नियंत्रण रीतियों का वर्णन कर सकेंगे।
- सार्वजनिक ऋण के विभिन्न वर्गीकरण की व्याख्या कर सकेंगे।
- व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक के मध्य भेद कर पायेंगे।
- सार्वजनिक ऋण के सिद्धांतों व स्रोतों का वर्णन कर पायेंगे।

13.2 भारतीय रिजर्व बैंक: परिचय

भारत में केन्द्रीय बैंकिग की आवश्यकता 18वीं शताब्दी में महसूस की गई जब बंगाल के गर्वनर ने बंगा तथा बिहार में केन्द्रीय बैंकिग व्यवस्था के तहत भी प्रारम्भ केन्द्रीय बैंक स्थापित करने का सुझाव दिय। इस क्रम में सन् 1773 ई0 में बैंक स्थापित किया गया। लेकिन कुछ ही समय बाद यह बन्द कर दिया गया। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सन् 1913 ई0 में चैम्बरलेन आयोग ने भारत के लिए एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना का सुझाव दिया परन्तु प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने से इस सुझाव पर कोई विचार नहीं किया गया। चैम्बरलेन आयोग के सुझाव से तीन प्रेसीडेन्सी बैकों का एकीकरण कर सन् 1921 ई0 में ‘इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया’ की स्थापना की गई। इस बैंक को बाणिज्यक बैकों के कार्यो के साथ-साथ केन्द्रीय बैंक के कार्य करने की अनुमति प्रदान की गई, क्योंकि इम्पीरियल बैंक मूल रूप से एक वाणिज्यक बैंक था। अतः उसे नोट छापने के अधिकार से वंचित रखा गया। इम्पीरियल बैंक केन्द्रीय बैंक के कुछ कायों को करने के बाबजूद भी भारत में केन्द्रीय बैंक की कमी को पूरा नहीं

कर पाया। सन् 1926 ई0 में हिल्टन यंग कमीशन ने भारत के एक स्वतंत्र केन्द्रीय बैंक स्थापित करने की सिफारिश की जो भारतीय रिर्जव बैंक के रूप में भारत में बैंकिग सुविधाओं का विस्तार कर सके। जिसके आधार पर जनवरी 1927 ई0 में सरबेसिल ब्लैकट ने केन्द्रीय असेम्बली में एक बिल रखा, परन्तु बिल की मूल अनुच्छेद- ओं पर बहुत विरोध प्रकट किया गया और सरकार ने बिल को वापस ले लिया। सन् 1930 ई0 में केन्द्रीय बैंक जॉच समिति ने तथा 1933 में गोल मेज सम्मेलन केन्द्रीय बैंक स्थापित करने की जोरदार शब्दों में सिफारिश की गई। तत्पश्चात 1934 में विधानसभा में भारतीय रिर्जव बैंक बिल प्रस्तुत किया गया। जो सन् 1934 में एक एक्ट के रूप में पारित हुआ। इसी एक्ट के अनुसार भारतीय रिर्जव बैंक की स्थापना हुई और इसने 1 अप्रैल 1935 से अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया।

रिर्जव बैंक ऑफ इण्डिया भारत का केन्द्रीय बैंक है। केन्द्रीय बैंक किसी देश की मौद्रिक प्रणाली की सर्वोच्च (apex institution) संस्था होती है। जिसका प्रत्यक्ष तथा प्ररोक्ष नियंत्रण देय की मौद्रिक नीति तथा वित्तीय प्रणाली पर रहता है। मौद्रिक प्रणाली की सर्वोच्च संस्था होने के कारण देश में मौद्रिक एवं वित्तीय प्रणाली का संचालन, पथ प्रदर्शन और नियंत्रण करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

13.3 भारतीय रिजर्व बैंक के उद्देश्य

सन् 1934 ई0 में एक्ट के रूप में पारित हुए बिल के अनुसार 1 अप्रैल 1935 से भारत का रिर्जव बैंक निरंतर निम्नॉकित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य कर रहा है।

1. सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करना (सरकार की ओर से भुगतान करना,लेना तथा विदेशी विनिमय का लेने देन के साथ-साथ उक्त विषयों पर सरकार को सलाह देना)।
2. भारतीय रूपये के आन्तरिक व बाहय मूल्य में स्थिरता लाना।
3. देश में मुद्रा तथा साख को मांग के अनुरूप बनाये रखने के साथ-साथ नियंत्रित करना।
4. देश की मुद्रा, तथा बैंकिग व्यवसाय से संबंधित विविध विषयों पर आकड़े इक्ठा कर इन्हें प्रकाशित करना।
5. बैकों से नकद कोष प्राप्त कर दृढ केन्द्रीय कोष का निर्माण करना, जिससे मुद्रा बाजार में लोच पैदा हो, बैकिंग संकट रोका जा सके तथा बैंकिग व्यवसाय पर नियंत्रण रहे ।
6. बैकिंग व्यवसाय के उपभोक्ताओं के हितों का ध्यान रखना तथा उपभोक्ताओं के शिकायतों एवं विवादों को निपटाना।
7. कृषि के विस्तार व विकास के लिए कृषि साख संबंधी विभिन्न विषयों का अध्ययन करना, प्रत्यक्ष सहायता की व्यवस्था करना तथा आवश्यक हो तो सरकार को सलाह देना।
8. विदशों में मौद्रिक संबंध स्थापित करना।

13.4 रिर्जव बैंक का प्रबन्ध व कार्य

रिर्जव बैंक आफ इण्डिया की स्थापना सन् 1934 में पारित एक एक्ट के द्वारा 1 अप्रैल 1935 को हुई। प्रारम्भ में रिर्जव बैंक आफ इण्डिया का स्थामित्व अंशधारियों के हाथों में था, जिसकी अधिकृत पूजी 5 करोड़ रूपये थी जो 100 रूपये वाले 5 लाख अशों में विभाजित थी। लगभग सभी शेयर निजी लोगों के पास थे। रिर्जब बैंक ऑफ इण्डिया का केन्द्रीय बैंक के रूप में महत्वपूर्ण कार्यो के निर्वहन को देखते हुए भारत ने स्वत्रंत होने के बाद 1 जनवरी 1949 को इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया।

रिर्जव बैंक के कार्यों का संचालन केन्द्रीय संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। कुशल प्रशासन तथा विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से सम्पूर्ण भारत को चार भागों में बांटा गया है। उत्तरी क्षेत्र, पूर्वी क्षेत्र एवं पश्चिमी क्षेत्र, इनमें से प्रत्येक क्षेत्र के लिए पांच सदस्यों का स्थानीय बोर्ड होता है।

केन्द्रीय बोर्ड में कुल बीस सदस्य होते हैं। इनमें से एक गवर्नर तथा चार उपगवर्नर होते हैं। गवर्नर बैंक का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी होता है।

गवर्नर तथा उपगवर्नरों की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा पांच वर्षों के लिए की जाती है। रिर्जव बैंक के चार स्थानीय बोर्ड दिल्ली, कोलकता, मुम्बई तथा चेन्नई में स्थित हैं तथा चार संचालक (प्रत्येक के लिए एक) चारों स्थानीय बोर्डों से केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनित किये जाते हैं। इनका कार्यकाल भी पांच वर्षों का होता है। केन्द्रीय संचालक मण्डल में दस अन्य संचालक जिनका चुनाव केन्द्र सरकार द्वारा चार वर्षों के लिए किया जाता होते है। चार वर्षों के कार्यकाल के लिए नियुक्त किये गये संचालक उद्योग व्यापार, आर्थिकी तथा सहकारिता आदि विभिन्न क्षेत्रों के विषेषज्ञ होते हैं। इन उन्नीस सदस्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय संचालक मण्डल में एक सरकारी अधिकारी प्रायः भारत सरकार का वित्त सचिव होता है जो केन्द्र सरकार की इच्छानुसार कितने भी समय तक बोर्ड में बना रह सकता है।

स्थानीय बोर्ड केन्द्रीय बोर्ड के आदेशानुसार कार्य करते है तथा उनको आवंटित की गई जिम्मेदारियों एवं कार्यो पर केन्द्रीय बोर्ड को सलाह देते हैं। भारत सरकार द्वारा मनोनीत स्थानीय बोडों के सदस्य विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिनका कार्यकाल चार वर्ष का होता है।

रिर्जव बैंक का प्रधान कार्यालय मुम्बई में स्थित है। मुम्बई के अतिरिक्त दिल्ली, चेन्नई एवं कोलकता में स्थानीय प्रधान कार्यालय हैं। बैंक ने अपने कार्यालय देश में विभिन्न जगहों पर स्थापित किये हैं, जहां रिर्जव बैंक के कार्यालय नहीं है तथा जहां रिर्जव बैंक ने प्रभारी अधिकारी नियुक्त नहीं किये हैं, ऐसे स्थानों पर स्टेट बैंक रिर्जव बैंक के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। रिर्जव बैंक का केन्द्रीय प्रधान कार्यालय 10 (दस) भागों में विभक्त हैं, सेक्रेटरी का कार्यालय, चीफ एकाउन्टेण्ट का कार्यालय, निरीक्षण विभाग, कानूनी विभाग, बैंकिग विकास विभाग, कृषि साख विभाग, औद्योगिक वित्त विभाग, विनिमय नियत्रंण विभाग, अनुसंधान एवं सांखिकी विभाग।

केन्द्रीय/प्रधान कार्यालय के अतिरिक्त अन्य कार्यालयों को संगठन के तौर पर दो भागों में बांटा जाता है। (अ) नोट निर्गमन विभाग (ब) बैंकिग विभाग/निगमन विभाग पुनः दो भागों में विभाजित होता है। (अ) सामान्य विभाग (ब) नकदी विभाग। बैंकिग विभाग सरकार की तरफ से बैंकिग के सभी कार्य करता है। यह चार उप विभागों में विभाजित होता है। (अ) जमा खाता विभाग, (ब) प्रतिभूति विभाग, (स) सरकारी खाता विभाग और (द) सरकारी ऋण विभाग।

रिर्जव बैंक वित्तीय निरीक्षण के कार्य को वित्तीय निरीक्षण बोर्ड के मार्गदर्शन में पूरा करता है। इस बोर्ड का गठन नवम्बर 1994 ई में रिर्जव बैंक के केन्द्रीय बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की समिति के रूप में किया गया। इस बोर्ड का मुखिया गवर्नर होता है तथा केन्द्रीय बोर्ड से चार संचालकों को 2 साल के लिए नियुक्त किया जाता है। एक उप गवर्नर को (मुख्यतः गवर्नर इनचार्ज बैंकिग रेगुलेशन एण्ड सुपरविजन) को बोर्ड ऑफ फाइनेशियल सुपरविजन उप चेयरमैन नामित किया जाता है। इस बोर्ड के सदस्यों को महीने में एक बार मिलकर अपने कार्यों का अन्जाम देना पड़ता है।

सन् 1934 ई0 में पारित रिर्जव बैंक आफ इण्डिया एक्ट की प्रस्तावना के अनुसार रिर्जव बैंक प्रमुख रूप से भारत में मौद्रिक स्थिरता स्थापित करने तथा देश हित में मुद्रा तथा साख प्रणाली का संचालन करने के उद्देश्य से नोटों के निर्गमन का नियमन करना तथा रक्षित कोषों को रखने का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त देश में वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप रिजर्व बैंक को समय-समय पर अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। रिजर्व बैंक के कार्यो को मुख्यतः निम्न भागों में बांटा जा सकता है-

13.4.1 केन्द्रीय बैकिंग कार्य

1. **रिजर्व बैंक करेन्सी अधिकारी के रूप में-** भारत में एक रूपये का नोट, सिक्के और छोटे सिक्कों को नोट, सिक्के तथा छोटे सिक्कों को छोड़कर सभी करेन्सी नोटों के निर्गमन का एकाधिकार रिर्जव बैंक को प्राप्त है। एक रूपये के नोट, सिक्के तथा छोटे सिक्कों को भारत सरकार द्वारा जारी किया जाता है। वर्तमान में रिर्जव बैंक भारतीय करेन्सी का बड़ा भाग 2, 5, 10, 20, 50, 100, 500, 1000 तथा 2000 रूपये के नोटों के रूप में निर्गमन करता है। पूर्व में यह 5000 एवं 10,000 रूपये के नोटों का भी निर्गमन करता था, लेकिन बाद में अर्थव्यवस्था में काले धन को चलन से बाहर से बाहर करेन तथा कोलधन की रोकथाम करने के लिए उन्हें विमुद्रीकृत कर दिया गया। वर्ष 2016 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी ने 8 नवम्बर की आधी रात से 500 तथा 1000 रूपये के नोटों को विमुद्रीकृत किया तथा रिर्जव बैंक आफ इण्डिया कालेधन की रोकथाम के लिए 500 का नया नोट तथा 2000 रूपये का नोट लेकर आया। रिर्जव बैंक द्वारा जारी सभी नोट असीमित विधिग्राहा होते हैं और केन्द्र सरकार की उन पर गारंटी होती है। बैंक द्वारा नोट निर्गमन का कार्य अन्य बैंकि कार्य से अलग होता है। इसलिए रिर्जव बैंक ने दो अलग-अलग विभाग होते है। पहला- नोट निर्गमन विभाग और दूसरा बैंकिग विभाग।
   नोट निर्गमन विभाग का स्थिति विवरण बैंकिग विभाग से अलग रखा जाता है। निर्गमन विभाग की परिसम्पत्तियां तथा देनदारियां बैकिंग विभाग की परिसम्पत्तियों तथा देनदारियों से अलग रखी जाती है। देश की करेन्सी पर जनता का विश्वास कायम रहे, इसके लिए रिर्जव बैंक का नोट निर्गमन विभाग करेन्सी मूल्य के नोटों के बराबर सुरक्षित कोष में स्वर्ण के सिक्के, बहुमूल्य धातुऐं (सोना, चॉदी) विदेशी प्रतिभूतियां भारत सरकार की प्रतिभूतियां रूपये के सिक्के तथा ऐसे विनिमय विल व प्रतिज्ञा पत्र रखता है। जिनका भुगतान भारत में होना है। बैंकिग विभाग की मांग तथा इसके द्वारा हस्तान्तरित विनिमय विलों अथवा सरकारी प्रतिभूतियों आदि के आधार पर निर्गमन विभाग नोट जारी अथवा रद्द करता है। चलन में मुद्रा को लाने तथा हटाने का कार्य बैंकिग विभाग द्वारा किया जाता है।
   सन् 1935 ई0 से 1956 ई0 तक रिर्जव बैंक ने अनुपातिक कोष प्रणाली के आधार पर नोटों का निर्गमन किया। इस प्रणाली के अनुसार जारी निर्गमन नोटों के मूल्य के 40 प्रतिशत सोने के सिक्कों तथा विदेशी प्रतिभूतियों के रुप में आवश्यक रुप से रखना होता था तथा शेष राशि को रुपये में रखी जा सकती थी इसके साथ ही यह व्यवस्था भी थी कि किसी भी समय सोने के सिक्कों व स्वर्ण धातुओं के कोषों की न्यूनतम सीमा 40.02 करोड़ रुपये से कम न हो। अक्टूबर 1956 को इस पद्धति के स्थान पर 'न्यूनतम विदेशी कोष पद्धति' को अपना लिया गया। इस प्रणाली के अनुसार रिर्जव बैंक न्यनतम 515 करोड़ रुपये की परिसम्पत्तियां (इससे 115 करोड़ रुपये का न्यूनतम स्वर्ण कोष और 400 करोड़ रुपये की विदेशी प्रतिभूतियां और शेष राशि को बैंक में रखकर किसी भी सीमा तक नोटों का निर्गमन कर सकता है। सन् 1957 में इस प्रणाली को आसान बनाते हुए स्वर्ण तथा विदेशी प्रतिभूतियों के कोष की न्यूनतम सीमा 200 करोड़ रुपये कर दिया। जिसमें 115 करोड़ का स्वर्ण होना आवश्यक तथा शेष राशि के रुप में रखी जा सकती थी।
2. **साख नियंत्रण एवं मुद्रा पूर्ति-** भारत के केन्द्रीय बैंक के रुप में रिर्जव बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य है- मुद्रा पूर्ति तथा बैकों की साख की मात्रा को राष्ट्रीय हित में उच्चतम स्तर पर नियंत्रण करना। साख नियंत्रण से अभिप्राय बैकों को ऋण देने की नीति को नियंत्रित करने से है। इन्हें प्राप्त करने हेतु साख नियंत्रण भी अति आवश्यक है। रिर्जव बैंक को साख नियंत्रण के विविध अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें आवश्यक तानुसार प्रयोग में लाया जा सकता है। रिर्जव बैंक आफ इण्डिया एक्ट के अनुसार बैक के पास

साख नियंत्रण के विभिन्न अधिकार उपाय है। जिनमें से मुख्य रुप से बैंक दर ने परिवर्तन खुले बाजार की क्रियायें करने, बैकों के नकद कोषों की मात्रा में परिर्वतन करने जैसे अधिकार हैं। आवश्यकता पड़ने पर रिर्जव बैंक वाणिज्यक बैकों की ऋण नीति, निवेश नीति तथा व्याज नीति को पूर्णतया नियंत्रित कर सकता है।

3. **बैंकिग तथा वित्तीय व्यवसाय का नियमन-** बैंकिग तथा वित्तीय व्यवस्था के नियमन/नियंत्रण हेतु भारतीय बैंकिग अधिनियम-1949 के अन्तर्गत देश के वाणिज्यक बैकों पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से रिर्जव बैंक को कुछ निम्नांकित विशेषाधिकार दिये गये हैं-

    - भारत में बैंकिग व्यवसाय करने वाले बैंक को रिर्जव बैक से इस संबंधित लाइसेन्स प्राप्त करना अनिवार्य है। बैंक की नीति एवं स्थिति व कार्य प्रणाली संतोषजनक न होने पर यह लाइसेन्स रद्द भी किया जा सकता है।
    - वर्णातमक साख नियंत्रण के अधीन रिजर्व बैंक किसी भी बैंकिग कंपनी अथवा सभी बैंकिग कंपनियों को विशेष प्रकार के लेन-देन से रोक सकता है।
    - किसी भी बैंकिग कंपनी का दूसरी बैंकिग कंपनी के साथ एकीकरण करने से पूर्व रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है। अदालत को भी यह अधिकार नहीं कि वह रिजर्व बैंक रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति के बिना किसी एकीकरण को स्वीकृति दे दें।
    - रिजर्व बैंक अपनी इच्छा से या केन्द्र सरकार के निर्देष पर किसी भी बैंक का निरीक्षण कर सकता है। असंतोषजनक स्थिति होने पर वह निरीक्षण रिपोर्ट पर विचार करने हेतु अपने सचालकों की बैठक बुला सकता है तथा रिपोर्ट पर दिये गये सुझावों का पालन करने के लिए बैंक को आदेश दे सकता है। यह असंतोषजनक स्थिति वाले बैंक को प्रबंधक बदलने तथा कारोबार बन्द करने के आदेश भी दे सकता है।
    - बैंकों के वरिष्ठ अधिकारी की नियुक्ति उनके वेतन, प्रशिक्षण आदि से संबंधित नियम बनाने तथा उन्हें स्वीकृति प्रदान करने संबंधी अधिकार भी रिजर्व बैंक को प्राप्त है। रिजर्व बैंक तथ्यात्मक रुप से किसी भी बैंक के प्रबंधक प्रशासनिक अधिकारी तथा अध्यक्ष को उनके पद से हटा सकता है।
    - रिजर्व बैंक वाणित्यक बैंकों का वैधानिक नकद कोषानुपात तथा वैधानिक तरलता अपुपात का निर्धारण करता है।
    - प्रत्येक बैंक को नई शाखाओं के खोलने तथा पुरानी शाखाओं के स्थान परिवर्तन के लिए रिजर्व बैंक से पूर्वानुमति लेनी पडती है।
    - रिजर्व बैक को किसी बैंक विशेष अथवा सभी बैंकों की ऋण नीति पर नियंत्रण रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।
    - किसी बैंक की आर्थिक स्थिति यदि असंतोषजनक है तो रिजर्व बैंक उस बैंक के लिए कानूनी तौर पर विलम्बकाल घोषित करने की सिफारिश करता है, जिसकी अवधि 6 माह तक बढायी जा सकती है।

4. **बैकों का बैंक एवं पर्यवेक्षक के रुप में-** भारत में रिर्जव बैंक के अतिरिक्त व्यापारिक बैंक व अन्य बैकों का चलन है तथा रिजर्व बैंक व्यापारिक बैकों के बैक के रुप में कार्य कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस कार्य के द्वारा वह बैंकिंग व्यवस्था का संरक्षण नियमन तथा नियंत्रण करता है। रिर्जव बैंक को बहुत

ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जिनका प्रयोग वह देश की अर्थव्यवस्था के हित मे समय-समय पर विभिन्न प्रकार के फैसले लेकर बैंकिंग व्यवस्था को सुचारू रुप से चलाने का कार्य करता है।

बैकों के बैक के रुप में भारतीय रिजर्व बैंक अन्य बैकों से उनके नकद कोषों एक निश्चित प्रतिशत/हिस्सा अपने पास जमा कराता है। देश का केन्द्रीय बैंक होने की वजह से रिजर्व बैंक अधिकृत है कि वह देश के वाणिज्यक बैंकों से उनके कुल शुद्ध देयताओं का उसे 15 प्रतिशत तक अपने पास जमा कराये और इस अनुपात को नकद कोष अनुपात कहा जाता है। बैंकों के आपात काल में रिजर्व बैंक इन्हें पैसे उधार भी देता है, लेकिन यह अल्प अवधि के लिए ही किया जाता है। सभी बैंकों के नकद कोषों का एक हिस्सा एक बैंक (केन्द्रीय बैंक) में एकत्रीकरण से पूरे बैंकिंग व्यवसाय के नकद कोषों को नियव्मयता प्राप्त होती है। क्योंकि जब कोई बैक नकदी की कमी की वजह से आपातकाल का सामना करता है तो इसे आरक्षित केन्द्री एकीकृत कोष से उधार दे कर पूरा किया जा सकता है। रिजर्व बैंक द्वारा समय-समय पर देश की अर्थव्यवस्था को देखते हुए नकद कोष अनुपात को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। बैकों को आपातकाल से उबारने के साथ-साथ इस अनुपात का प्रयोग रिर्जव बैंक बैकिग साख को नियंत्रित करने तथा उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण के लिए भी किया जाता है जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप में हो सकता है।

5. **रिजर्व बैंक सरकार के बैंकर, अभिकर्ता एवं सलाहकार के रुप में-** भारतीय रिर्जव बैंक भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के बैंकर, अभिकर्ता तथा सलाहकार की भूमिका भी निभाता है। सरकारी बैकर के रूप में वह भारत सरकार तथा राज्य सरकारों का बैकिंग संबंधी सभी लेन-देन के कार्यों को करता है। इसके अन्तर्गत वह सरकार की तरफ से नकदी जमा करता है। अन्य संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा सरकार को चुकाई जाने वाली राशि वसूल कर सरकार के खाते में जमा करता है तथा सरकार की ओर से किये जाने वाले भुगतान सम्पन्न करता है, इसमे विनिमय का कार्य, सरकारी कोषों के स्थानान्तरित का कार्य तथा सरकारों के लिए विदेशों विनिमय की व्यवस्था करना सम्मिलित होता है। सरकार की ओर से सम्पन्न किये गये साधारण बैंकिग कार्यों के लिए रिजर्व बैक को कोई कमीशन नहीं दिया जाता है। साथ ही सरकारी जमाओं पर रिर्जव बैंक ब्याज भी नहीं चुकाता है।

   आर्थिक मामलों में सरकार के सलाहकार के महत्वपूर्ण कार्य के निर्वहन में रिर्जव बैंक सरकार को मौद्रिक वित्तीय अथवा आर्थिक कार्यों में सलाह देता है और इससे संबंधित सरकारी नितियों को सफल बनाने की दिशा में कार्य करता है। इसके साथ ही अन्तरराष्ट्रीय वित्त के मामलों में पंचवर्षीय योजना के वित्तीय स्वरूप के बारे में साधनों की गतिशीलता के बारे मे तथा बैंकिग व्यवस्था के बारे में रिर्जव बैंक सरकार को सलाह देकर आवश्यक कार्यवाही करता है।

6. **विदेशी विनिमय का प्रबंधन एवं नियंत्रण-** भारतीय रिर्जव बैंक देश के विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक के रुप में कार्य करता है, विनिमय नियत्रंण का प्रबन्ध करते हुए भारत सरकार के अन्तरर्राष्ट्रीय मुद्रा को IMF सदस्य के रुप में सरकार के अभिकर्ता के तौर पर कार्य करता है। रिर्जव बैंक का विनिमय नियंत्रण विभाग देश में विदेशी विनिमय का मांग और पूर्ति का सम्पर्ण हिसाब-किताब रखता है और उमे संतुलन बनाने का प्रयास करता है। केन्द्रीय बैंक होने के कारण भारत में विदेशी मुद्राओं का समस्त राष्ट्रीय कोष रिर्जव बैंक के आधीन तथा नियंत्रण में रहता है तथा इनमें से किसी भी तरह का भुगतान रिर्जव बैंक की स्वीकृति से ही किया जाता है। विनिमय नियंत्रण सर्वप्रथम सितम्बर 1939 में भारत में लागू हुआ और इसके अन्तर्गत प्राप्तियों और भुगतानों दोनों में नियंत्रण को लागू किया गया था। विदेशी विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत कानूनन यह आवश्यक है कि सभी विदेशी विनिमय की प्राप्तियां (किसी भी श्रोत से प्राप्त हुई हों आयात अथवा सरकारी श्रोत) निश्चय ही सीधे या अधिकृत विक्रेता द्वारा कोषों को एक स्थान पर

एकत्रित कर इनके विनियोगों को करने में सरलता तथा तत्परता होगी। भारतीय मुद्रा के मूल्य को स्थिरता प्रदान करने के लिए भी रिर्जव बैंक द्वारा समय-समय पर कदम उठाये जाते हैं। अथवा विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय किया जाता है। हांलाकि रुपये की विनिमय दर निर्धारण अब स्वतंत्र बाजार में मांग-पूर्ति के आधार पर निर्धारित होता है। परन्तु यथासम्भव इसमें स्थिरता बनाये रखना रिर्जव बैंक का दायित्व है। अन्ततः मह कहा जा सकता है कि विदेशी विनिमय नियंत्रण इस तरह कार्यान्वित किया जाता है, जिससे विदेशी विनिमय की मांग इसकी पूर्ति के अनुरुप सिमित किया जा सके।

7. **कृषि वित्त प्रवर्तन एवं साख व्यवस्था-** रिर्जव बैंक की स्थापना क समय से ही इसकी वैधानिक जिम्मेदारी के रुप में कृषि वित्त प्रवर्तन इसका प्रमुख कार्य रहा है तथा बीते दशकों में रिजर्व बैंक ने कृषि क्षेत्र में अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त व्यवस्था के लिए अनेक सहराहनीय कार्य किये हैं। अल्पकालीन साख की व्यवस्था के लिए सहकारी समितियों के विकास के साथ-साथ दीर्घकालीन वित्त की व्यवस्था हेतु इसने 1963 में कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम की स्थापना की थी। बाद मे राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना होने के बाद कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम का इसमें विलय कर दिया गया।

   प्रारम्भ से ही रिजर्व बैंक का एक प्रत्यक कृषि विभाग था जिसके मुख्य कार्य थे। (1) कृषि साख संबंधी प्रश्नों का अध्ययन करना, राज्य तथा केन्द्र सरकारों, सहकारी समितियों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं को कृषि साख से संबंधित सलाह देना (2) कृषि साख प्रदान करने वाली संस्थाओं के साथ संबंध सथापित करना था।

   कृषि के उत्थान के लिए रिर्जव बैंक द्वारा दिया गया वित्त किसानों तक राज्य सहकारी बैकों तथा भूमि विकास बैकों के माध्यम से पहुंचता था। रिर्जव बैंक राज्य सहकारी बैकों को अलग-अलग कार्यो के लिए अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण रियायती दरों पर देता था इसके साथ-साथ रिर्जव बैंक राज्य सरकारों को कृषि साख हेतु दीर्घकालीन ऋण भी दे रहा है। रिर्जव बैंक ने सहकारिता के विकास तथा सहकारी साख के विस्तार क लिए अनेक प्रकार से सहायता प्रदान की है। वाणिज्यक बैकों को भी आदेशित किया गया है कि वह कृषि साथ को प्राथमिकता दे। इसी क्रम मे 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की स्थापना की गई तथा 1982 मे स्थापित किये गये राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की 100 करोड़ की पूंजी भारत सरकार तथा रिर्जव बैंक द्वारा समान अनुपात मे लगायी गया। नावार्ड के द्वारा कृषि के अतिरिक्त ग्रामीण उद्योगों तथा अन्य उत्पादक कार्यों क लिए भी ऋण स्वीकृत किये जाते है। जिससे ग्रामीण विकास क कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जा सके।

8. **समाशोधन गृहों की व्यवस्था-** समाशोधन कार्य का महत्व इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि समाशोधन का कार्य धीमी गति से हुआ या इसमें रुकावट आयी तो अर्थव्यवस्था की क्रियायें मन्द पड़ने लगती है। बैकों का बैक तथा अंतिम ऋणदाता होने के कारण रिर्जव बैंक प्रारम्भ से ही समाशोधन कार्य कर रहा है। अर्थवस्वस्था के विस्तार व विकास के कारण अधिक समाशोधन गृहों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। 1935 में देश में केवल चार समाशोधन गृह स्थापित थे जो मुम्बई, दिल्ली, चेन्नई तथा कोलकता में कार्य कर रहे थे। 1962 में इनकी संख्या बढकर 69 तथा 1975 मे यह संस्था 212 हो गई इनमें से 9 संचालन रिर्जव बैंक करता है। यह सभी 9 समाशोधन गृह उन शहरों में है जहा रिर्जव बैंक के स्थानीय कार्यालय हैं। 170 समाशोधन गृहों की व्यवस्था स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा 33 समाशोधन गृहों की व्यवस्था स्टेट बैंक के सहायक बैंक कर रहे हैं।

9. **औद्योगिक वित्त प्रवर्तन-** किसी भी अल्पविकसित या विकासशील देश के लिए आगे बढने के लिए औद्योगिक विकास बहुत आवश्यक होता है, लेकिन औद्योगिक विकास के लिए पूँजी की आवश्यकता

होती है। सामान्यतया औद्योगकि विकास के लिए दीर्घकालीन वित्त/ऋण की आवश्यकता होती है, जिसे वाणिज्यक बैंकों के द्वारा प्रदान नहीं किया जाता है। इस तरह के दीर्घकालीन साख को देने का कार्य औद्योगिक वित्त की विशिष्ट शाखाओं का होता है। स्वतंत्रता के समय तक भारत में इस कार्य हेतु कोई भी संख्या अस्तित्व में नहीं थी। 1935 में रिर्जव बैंक की स्थापना के बाद इस बैंक ने संस्थागत औद्योगिक वित्त की स्थापना करने के उद्देश्य से भारतीय औद्योगिक वित्त त निगम और राज्य वित्त निगमों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई राज्य वित्त निगमों तथा भारतीय औद्योगिक वित्त निगम में रिजर्व बैंक ने अंश पूँजी गत रखी है। औद्यागिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला भारतीय औद्यागिक विकास बैंक 16 फरवरी 1976 तक रिजर्व बैक की एक सहायक संस्था के रुप में कार्य करता है। अब यह बैंक एक स्वायत्त संस्था के रुप में कार्य कर रहा है। सन 1964 में रिजर्व बैंक अधिनियम में संषोधन कर राष्ट्रीय औद्योगिक साख (दीर्घकालीन कार्य) कोष की स्थापना की गई जिसका प्रमुख उद्देश्य बड़े उद्योगों को दीर्घकालीन वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना था। रिजर्व बैंक ने भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना के साथ-साथ आयात-निर्यात बैक की स्थापना में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1 जुलाई 1960 को भारत सरकार द्वारा साख गारंटी योजना चालू की गई जिसका मुख्य उद्देश्य लघु एवं मध्यमय आकार के उद्योगों को बैंक तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा वित्तीय सहायता दिलाना था। इस योजना का संचालन रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। परन्तु साख की गारंटी भारत सरकार द्वारा दी जाती हे।

10. **मौद्रिक तथा भारत संबंधी सूचनाओं तथा आंकड़ों का प्रकाशन-** किसी भी देश के केन्दीय बैंक की तरह भारत का केन्द्रीय बैंक (रिजर्व बैंक) समय-समय पर मुद्रा, साख, आर्थिक स्थिति, कीमत, विदेशी, विनिमय, विदेशी व्यापार की दशा, दिशा, मात्रा तथा भुगतान संतुलन आदि के बारे में आंकड़ों का सजग रुप से संकलन कर विश्व स्तर की जानकारी प्रकाशित करता है। रिजर्व बैंक प्रतिवर्ष संचालक मण्डल की वार्षिक रिपोर्ट, मुद्रा तथा वित्त संबंधी रिपोर्ट और भारतीय बैंकिग वित्तीय एवं प्रवृति और प्रगति के आंकड़े प्रकाशित करता है। ये आंकड़े देश की मौद्रिक, वित्तीय एवं आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने तथा लाभदायक सिद्ध होते हैं। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का मासिक बुलेटिन तथा वार्षिक करेन्सी एण्ड फाइनेन्स रिपोर्ट महत्वपर्ण आर्थिक सूचनायें तथा आंकड़े प्रदान करता है।
11. **बैंकिंग विकास से संबंधित कार्य-** भारतीय रिजर्व बैंक देश के बैकों तथा बैकिग व्यवस्था पर नियत्रण रखने के साथ-साथ उनके विकास के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य करता है। बैंकिग विकास के स्वरूप शाखा विस्तार की एक निश्चित नीति अपनाकर बैंक विहीन क्षेत्रों खासकर ग्रामीण क्षेत्रों मे बैंकों की शाखायें खोली गई है। 'लीड बैंक' योजना के अन्तर्गत बैकों को आर्थिक विकास के कार्यों में भागीदार बनाने का प्रयास किया गया है। जमा बीमा निगम जिसकी स्थापन 1961 में की गई थी। 1970 में साख गारंटी निगम के साथ मिलाकर जमा बीमा तथा साख गारंटी निगम बना दिया गया। प्रशिक्षित अधिकारी तथा कर्मचारी ही किसी संस्था को उन्नति पर अग्रसर कर सकते है। इसको ध्यान में रखते हुए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने सन् 1954 में बम्बई में 'बैंकर्स टेनिंग कालेज' की स्थापना की। जहां बैंकों के अधिकारियों को प्रशिक्षित किया जाता है। पुणे ने कृषि बैंकिग कालेज की स्थापना के साथ ही चेन्नई में स्ट्राफ ट्रैनिंग कालेज खोला गया। बैंकिंग कलर्कों के प्रशिक्षण के लिए चार क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र मुम्बई, दिल्ली, कोलकता तथा चेन्नई में कार्य कर रहे है। बैंक प्रबंधन की राष्ट्रीय संख्या बैंकिंग प्रशिक्षण में अहम योगदान दे रहा है। रिजर्व बैंक के विकास एवं प्रवर्तन से संबंधित महत्वपूर्ण कार्य निम्नांकित हैं- वाणिज्यिक बैंक व्यवस्था का विकास, सहकारी बैकिंग व्यवस्था का विकास, बिल मार्केट का विकास, प्राथमिकता वाले क्षेत्र में साख उपलब्ध कराना, साख गारंटी, विभेदात्मक व्याज दर योजना, निर्यात के लिए वित्त का प्रवर्तन, औद्योगिक वित्त का प्रवर्तन।

13.4.2 सामान्य बैंकिंग कार्य

भारत का केन्द्रीय बैंक होने के कारण केन्द्रीय बैकिग कायों के अतिरिक्त रिजर्व बैंक सामान्य बैकिग कार्य भी करता है, जो निम्नांकित हो सकते हैं-

1. रिजर्व बैक द्वारा केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों को काम चलाऊ ऋण दिया जा सकता है, जिसकी अवधि 90 दिन से अधिक नही हो सकती है।
2. रिजर्व बैंक केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा वाणिज्यक बैकों के अतिरिक्त अन्य अर्द्धसैनिक गैर-सरकारी, सरकारी संस्थाओं तथा व्यक्तियों से जमा स्वीकार कर सकता है। परन्तु इन जामाओं पर किसी भी तरह का व्याज रिजर्व बैंक द्वारा नहीं दिया जाता है।
3. 90 दिन या इससे कम अवधि के विदेशी विनिमय किसी का क्रय-विक्रय रिजर्व बैंक द्वारा किया जा सकता है जिसका भुगतान अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के किसी सदस्य देश में होना हो।
4. रिजर्व बैंक 90 दिन या इससे कम अवधि के व्यापारिक विलों का क्रय-विक्रय तथा पुनर्कवेती करता है, जिसका भुगतान भारत में होने वाला हो।
5. रिजर्व बैंक सदस्य बैकों से विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय कर सकता है, किन्तु यह क्रय-विक्रय एक लाख रुपये से कम मूल्य की नहीं होना चाहिए।
6. फसल की बिक्री तथा कृषि के लिए वित्तीय सहायता देने के उद्देश्य को निर्मित कृषि बिलों को रिजर्व बैंक खरीदने-बेचने के साथ-साथ भुना भी सकता है। किन्तु इनकी अवधि 15 माह से अधिक नही होनी चाहिए।
7. रिजर्व बैंक विदेशी सरकारों द्वारा जारी की गई उस प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय कर सकता है जिसका भुगतान अधिकतम 10 वर्षो के अन्दर हो जाता हो।
8. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के किसी सदस्य देश के केन्द्रीय बैंक के यहा रिजर्व बैंक अपना खाता खोल सकता है अथवा उससे अभिकर्ता संबंध स्थापित कर सकता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के साथ लेन-देन कर सकता है।
9. रिजर्व बैंक स्वर्ण के सिक्के तथा स्वर्ण धातु खरीद-बेच सकता है।

13.4.3 उपभोक्ता केन्द्रित कार्य

रिजर्व बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य है बैंक उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण। रिजर्व बैंक द्वारा उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण का संज्ञान 1949 में ही लिया गया था जब उपभोक्ता सेवा उपभोक्ता अनुभव उपभोक्ता से संबंध तथा उपभोक्ता केन्द्रित जैसे शब्द सामने लाये गये। इन सबका आशय सिर्फ यही था कि उपभोक्ता सबसे ऊपर है। बैकों के नियंत्रक के रुप में रिजर्व बैक अपनी स्पापना से ही बैंकों द्वारा प्रदान की जा सकी, उपभोक्ता सेवाओं को पुनरीक्षेत्र करता है। विचार करता है तथा मूल्यांकित करता है। यह काय रिजर्व बैक द्वारा समय-समय पर तथा लगातार किये जाते है। जो बैकिग व्यवसाय को लगातार उपभोक्ता मित्र बनाने का प्रयास है। रिजर्व बैंक द्वारा आजादी के बाद बैकिग व्यवसाय को प्रतियोगी बनाया गया है। जिससे बैंक उपभोक्ताओं के उच्च दर्जे की सेवायें प्राप्त हो रही है। लेकिन इसके साथ ही रिजर्व बैक द्वारा यह महसूस किया गया। कि केवल प्रतिस्पर्धात्मक तत्व हो बैंक उपभोक्ताओं को उनका विनिमय अधिकार प्रदान नहीं कर पायेगा। इसी सन्दर्भ में रिजर्व बैंक ने संस्थात्मक ढांचे में कुद इस तरह के निमय कार्यप्रणाली विधियां तथा पर्यवेक्षात्मक ढांचा स्थापित किया, जिससे बैंकिग व्यवस्थाय के उपभोक्ता सेवाओं में गुणात्मक सुधार लाया जा सके।

13.5 सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण

सार्वजनिक ऋण के वर्गीकरण को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है-

1. **ऋण की दृष्टि से-** ऋण की दृष्टि से सार्वजनिक ऋणों को निम्न प्रकार रख सकते हैं-
    - **आन्तरिक ऋण-** आन्तरिक ऋण वे ऋण हैं, जिन्हें किसी देश की सरकार अपने देश के अन्दर से ही प्राप्त करती है। यह अपने देश की मुद्रा में ही प्राप्त किये जा सकते हैं। आन्तरिक ऋण केवल उसी समय सम्भव हो सकता है जबकि नागरिकों के पास पर्याप्त मात्रा में खर्चा पूर्ण करने के पश्चात बच रहता है। आन्तरिक ऋण के भुगतान की समस्या अधिक जटिल नहीं होती है, क्योंकि इनका भुगतान देश की मुद्रा में ही किया जाता है। आन्तरिक ऋणों पर ब्याज का भुगतान भी देश के नागरिकों को ही किया जाता है। आन्तरिक ऋण इच्छित वं अनिच्छत दोंनों ही प्रकार का हो सकता है। इस ऋण को प्राप्त करने हेतु देश के लागों पर दबाव भी डाला जा सकता है।
    - **बाह्य ऋण-** बाह्य ऋण वे ऋण होते हैं, जोकि विदेशों से प्राप्त किये जाते हैं। डाल्टन का मत है कि ''एक ऋण आन्तरिक या बाह्वा हो सकता है। एक ऋण आन्तरिक उस समय होता है जबकि सार्वजनिक अधिकारी, जो ऋण प्राप्त करता है, के सीमा क्षेत्र के अन्तर से प्राप्त किया जाए और इस सीमा से बाहर प्राप्त करने पर बाह्वा हो जाता है।'' बाह्य ऋणों का भार देश के नागरिकों को सहन करना पड़ता है। इस ऋण का द्राव्यिक का भार ब्याज व मूल धन के रूप में दी जाने वाली राशि से लगाया जाता है तथा उस ऋण का प्रत्यक्ष वास्तविक भार देश के नागरिकों के आर्थिक कल्याण में कमी होना है।
2. **उत्पत्ति की दृष्टि से-** उत्पत्ति की दृष्टि से सार्वजनिक ऋणों के अग्र भेद हैं-
    - **उत्पादक ऋण-** उत्पादक ऋण से आशय ऐसे ऋणों से है जिनका भुगतान व्यवसाय से प्राप्त आय से कर दिया जाता है। जो ऋण विकास कार्यो से जैसे नदी-घाटी योजना, जलकल, यातायात, लौह इस्पात, खाद व सीमेंट के कारखानों में लगाया जाता है उसे उत्पादक ऋण कहा जाता है। वर्तमान समय में सरकार द्वारा लिये गये ऋण नियोजन कार्य में लगाने से उत्पादक ही माने जाते हैं। क्योंकि इनसे भविष्य में उत्पादन एवं रोजगार की मात्रा में वृदि होगी जिससे राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आय बढ़कर करों के रूप में अधिक धनराशि प्राप्त होकर ऋणों का भुगतान सरलतापूर्वक किया जा सकेगा। उदाहरणार्थ बाढ़, भूकम्प, प्रतिरक्षा आदि पर किया गया व्यय उत्पादक माना जाता है।
    - **अनुत्पादक ऋण-** प्रत्यक्ष रूप से मौद्रिक लाभ न देने वाले ऋण अनुत्पादक ऋण कहे जाते हैं। यदि सरकार ऋण ऐसे उपयोगों में लगाती है जहां पर मूलधन एवं ब्याज की राशि का भुगतान करने हेतु पृथक से व्यवस्था करनी पड़े तो ऐसे ऋणों को अनुत्पादक या मृतभार ऋण कहते हैं। जैसे बाढ़ पीड़ितों को सहायता देने तथा अकाल एवं सुरक्षा आदि पर धन व्यय करना आदि। यद्यपि ऐसी सहायता से समाज का हित होता है, और जनता के कल्याण में वृद्धि होती है, परन्तु मौद्रिक रूप से इसका कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। वास्तव में कोई ऋण अनुत्पादक नहीं माना जा सकता। ''किसी भी देश की सम्पन्नता वहां की भूमि एवं डालरों में निहित न होकर स्वस्थ एवं प्रसन्न पुरूषों एवं बच्चों में होती है।''
3. **समय की दृष्टि से-** समय की दृष्टि से ऋणों को निम्न भागों में बांट सकते हैं-

- **अल्पकालीन ऋण-** जब सरकार थोड़े समय के लिए ऋण प्राप्त करे तो इन्हें अल्पकालीन ऋण कहेंगे। इस ऋण की मूल धनराशि को भविष्य में वापस कर दिया जाता है। इन ऋणों इसलिए इन ऋणों को चल ऋण कहा जाता है। इस ऋण को व्याज के साथ वापस करना होता है।
- **दीर्घकालीन ऋण-** जब सरकार के द्वारा लम्बी अवधि के लिए ऋण प्राप्त किये जायें तो उसे दीर्घकालीन ऋण कहते हैं। इस ऋण का एक निश्चित अवधि के पश्चात लौटाने का वायदा नहीं किया जाता परन्तु प्रतिवर्ष व्याज का भुगतान अवश्य कर दिया जाता है। इस ऋण की स्थापना हेतु सरकार द्वारा एक कोष की स्थापना की जाती है। यह ऋण कब लौटाये जायेंगें, इसकी सीमा नहीं होती।

4. **शोधन की दृष्टि से-** शोधन की दृष्टि से सार्वजनिक ऋण निम्न प्रकार के होते हैं-

- **शोध्य ऋण-** जब सरकार किसी ऋण के सम्बन्ध में एक निश्चित भावी तिथि पर भुगतान करने का वचन देती है तो ऐसे ऋण को शोध्य ऋण कहा जाता है।
- **अशोध्य या स्थायी ऋण-** ऐसे ऋण जिनके भुगतान का वायदा नहीं किया जाता इसे अशोध्य ऋण कहते हैं। इस ऋण में सरकार केवल ब्याज देने की गारंटी करती है तथा मूलधन को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। जे0के0 मेहता का मत है कि, ''शोध्य ऋण वे हैं जिन्हें सरकार एक भावी तिथि पर भुगतान करने का वचन देती है। वे जिनके लिए कोई वायदा नहीं किया जाता, वे अशोध्य ऋण कहलाते हैं। सार्वजनिक ऋण प्रायः शोध्य ऋण होते हैं।''

5. **स्वेच्छा की दृष्टि से-** स्वेच्छा की दृष्टि से ऋणों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

- **ऐच्छिक ऋण-** जब जनता स्वेच्छा से सरकार को जब ऋण देती है तो ऐसे ऋण को एच्छिक ऋण कहा जाता है। यह आन्तिरिक एवं बाह्य दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।
- **बलात ऋण-** आवश्यकता से कम ऋण प्राप्त होने से सरकार द्वारा जनता से मजबूरन ऋण प्राप्त किया जाता है। 17वीं या 18वीं शताब्दी में ऐसे ऋणों का अधिक प्रचलन रहा है। इन ऋणों को देश में उत्पन्न हुए आपातकाल को दूर करने में प्रयोग किया जाता रहा है।
  डाल्टन का मत है कि ''ऋण ऐच्छिक या बलात हो सकता है। बलात ऋण वर्तमान राजस्व व्यवस्था में कदाचित ही हो, क्योंकि इसमें हानियाँ अधिक व लाभ कम पाये जाते हैं जिससे दोनों ही करों को स्वैच्छिक माना जा सकता है।''

6. **सम्पत्ति की दृष्टि से-** सम्पत्ति की दृष्टि से सार्वजनिक ऋण के प्रमुख भेद निम्न हैं-

- **पुनरूत्पादक ऋण-** यह वे ऋण होते है, जिनके लिए सरकार उनके बराबर सम्पत्ति अपने पास रखती है, और इसकी आय में से ब्याज एवं मूलधन कर दिया जाता है।
- **मृतक बोझ ऋण-** इस ऋण में सरकार के पास उनके मूल्य के बराबर सम्पत्ति नहीं रखी जाती तथा ऋणों को भुगतान करारोपण की आय से हो जाता है। इस ऋण को ऐसे कार्यों पर व्यय किया जाता है जिनसे कोई भी आय प्राप्त न हो। जैसे युद्ध संचालन पर व्यय करना, अकाल, भूकम्प व बाढ़ पीड़ितों की सहायता आदि।

7. **अन्य दृष्टि से-** इस आधार पर सार्वजनिक ऋणों के रूप निम्न प्रकार हैं-

- **सूद सहित एवं सूद रहित ऋण-** सूद सहित ऋणों में सरकार द्वारा एक निश्चित अवधि के पश्चात ब्याज दी जाती है, जबकि सूद रहित ऋणों में सरकार द्वारा कोई भी ब्याज नहीं दी जाती है। प्राचीन के शासकों के द्वारा बिना ब्याज का ऋण लिया जाता था।

- **वार्षिक वृत्ति एव लाटरी ऋण-** सरकार द्वारा ऋण किश्तों में ऋण लेने की पद्धति को वार्षिक वृत्ति कहते हैं। ऐसे ऋण का भुगतान भी एक साथ न करके किश्तों में ही वार्षिक वृत्ति के रूप में कर दिया जाता है। लाटरी ऋण में मूलधन के अतिरिक्त इनाम भी घोषित किये जाते हैं।
- **क्रय योग्य एवं अक्रय योग्य ऋण-** क्रय योग्य ऋणों में वे सरकारी प्रतिभूतियां आती हैं, जिनका बाजार में स्वतन्त्रतापूर्वक क्रय विक्रय किया जा सकता है। इसके विपरीत अक्रय योग्य ऋण में वे ऋण सम्मिलित किये जाते हैं जो बाजार में न बेचे जाकर एक निश्चित अवधि के पश्चात सरकार को ही वापस कर दिये जाते हैं।
- **कुल ऋण एवं शुद ऋण-** एक निश्चित अवधि में सरकार द्वारा लिये गये समस्त प्रकार के ऋणों के योग को कुल ऋण कहा जाता है। इन ऋणों के भुगतान हेतु जो कोष सरकार द्वारा रखा जाता है, उसे घटाने पर शुद्ध ऋण ज्ञात होता है।

सार्वजनिक ऋण एक समान न होकर सदैव एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इस सम्बन्ध में जे0के0 मेहता का मत है कि "सार्वजनिक ऋण एक दूसरे से भिन्न होते हैं क्योंकि उनका आधार भिन्न-भिन्न होता है। इनमें यह अन्त बाजार ब्याज, चुकाने के ढंग आदि के कारण ही पाया जाता है।''

13.6 सार्वजनिक ऋण के सिद्धांत

सार्वजनिक ऋण के प्रमुख सिद्धांत निम्न प्रकार हैं-

1. **विनियोक्ताओं की आवश्यकता की पूर्ति-** सार्वजनिक ऋण का प्रबन्ध इस ढंग से किया जाना चाहिए कि विनियोक्ता की आवश्यकताएं सरकारी प्रतिभूतियों के प्रकार एवं उनके निर्गमन के सम्बन्ध में सन्तुष्ट होनी चाहिए।
2. **प्रशुल्क व मौद्रिक नीति से समन्वय-** देश में आर्थिक स्थिरता एवं आर्थिक विकास हेतु सार्वजनिक ऋण नीति का प्रशुल्क व मौद्रिक नीति के साथ समन्वय स्थापित करना आवश्यक है। ऋण नीति से बने रहना चाहिए।
3. **परिपक्वता, वितरण एवं ऋणधारी के प्रकार-** यदि कुल ऋण का एक बड़ा भाग अल्पकालीन ऋण है जो अधिकांशतया बैंक द्वारा लिया जाता है तो उसमें उच्च प्रकार की तरलता होगी जो कि स्फीति दबाव बतायेगी, जबकि अपस्फीतिक नीति की आवश्यकता होती है। अतः ऋण की उच्च तरलता स्फीतिक नियन्त्रण को कठिन बना देती है।
4. **अल्पकालीन ऋणों का दीर्घकालीन ऋणों में परिवर्ततन-** सार्वजनिक ऋण प्रबन्ध में अल्पकालीन ऋणों को दीर्घकालीन ऋणों में परिवर्तित किया जाना चाहिए विशेषकर अति दीर्घकालीन ऐसे ऋणों में जो कभी परिपक्व नहीं होते। परन्तु यह कार्य इस ढंग से किया जाना चाहिए जिससे आर्थिक स्थायित्व में कोई कठिनाई न हो।
5. **सार्वजनिक ऋण की ब्याज सेवा का न्यूनतम होना-** सरकार द्वारा सार्वजनिक ऋण की प्राप्ति न्यूनतम ब्याज दर भार पर करनी चाहिए। यह ऋण प्रबन्ध का एक प्रमुख उददेश्य है।ब्याज भार न्यूनतम होना चाहिए, क्योंकि ब्याज की व्यवस्था अतिरिक्त करारोपण से ही सम्भव हो पाती है। करारोपण की दर में कमी करने से विभिन्न प्रेरणाओं पर कम प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। जनता कर के भार को उठाने में असमर्थ रहती है।

13.7 सार्वजनिक ऋण के स्रोत

भारत में सार्वजनिक ऋण को निर्गमन करने या प्राप्त करने की विभिन्न रीतियों को निम्न प्रकार रखा जा सकता है-

1. **आन्तरिक ऋण-** आन्तरिक ऋण की दृष्टि से सरकार निम्नलिखित तकनीकों ओर स्रोतों से ऋण प्राप्ति करती है-
   - **विपणन उधार-** सरकार द्वारा लोक ऋण लेने की एक महत्वपूर्ण तकनीकी निश्चित तिथि वाले ऋणों का निर्गमन करना है। इसमें सरकार की निश्चित तिथि या वर्ष में भुगतान होने वाले ऋण-पत्र, बाण्ड या ऋण का निर्गमन करती है और इन पर ब्याज की दर भी निश्चित रहती है। यह ऋण सामान्य रूप से विक्रय के लिए होते हैं और जन-सामान्य द्वारा खरीदे जाते हैं। लेकिन इनका अधिकांश भाग व्यापारिक बैंकों, बीमा कम्पनियों और गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं द्वारा क्रय किया जाता है।
   - **लघु बचतें-** सरकार जन सामान्य से ऋण प्राप्त करने की दृष्टि से लघु बचत तकनीक का प्रयोग करती है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के ऋण प्रमाण पत्रों का निर्गमन किया जाता है। इस प्रकार के ऋण को प्राप्त करने के लए सरकार आय-कर में भी छूट प्रदान करती है और कभी कभी इन बचतों में राशि लगाना अनिवार्य भी कर दिया जाता है,
   - **अघोषित ऋण-** सरकार प्रॉविडेण्ड फण्ड, अनिवार्य बचत योजनाऐं, एन्यूटी जमा इत्यादि के आधार पर भी अकोषित ऋण प्राप्त कर लेती है।
   - **ट्रेजरी बिलों का निर्गमन-** सरकार के हाथ में ऋण प्राप्त करने का एक विशिष्ट साधन ट्रेजरी बिल होते हैं। इनमें से अधिकांश ट्रेजरी बिलों का प्रयोग रिजर्व बैंक से ऋण प्राप्त करने में किया जाता है।

लोक ऋण प्रवर्तन की उपर्युक्त तकनीकों के अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा निम्न स्रोतों का भी प्रयोग किया जाता है-

   - **केन्द्रीय सरकार के ऋण और अग्रिम-** राज्य सरकार के ऋणों का एक बड़ा भाग केन्द्रीय सरकार से ऋण और अग्रिम के रूप में प्राप्त किया जाता है। यह ऋण और अग्रिम नियोजन और गैर नियोजन दोनों उद्देश्यों से लिए जाते है।
   - **बैंकों और संस्थाओं से ऋण-** राज्य सरकारें बैंकों और अन्य संस्थाओं से भी ऋण और अग्रिम प्राप्त करती हैं। इनमें व्यापारिक बैंक, राष्टीय कृषि साख (दीर्घकालीन क्रियान्वयन) कोष, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम और जीवन बीमा निगम का नाम उल्लेखनीय है।
   - **रिजर्व बैंक से ऋण और अधिविकर्ष-** राज्य सरकारें रिजर्व बैंक से "Ways and Means Advances from the Reserve Bank of India" योजना के अन्तर्गत ऋण और अधिविकर्ष भी प्राप्त करती है।

2. **विदेशी या बाह्य ऋण-** विदेशी ऋणों में तीन स्रोतों को शामिल किया जाता है- विदेशी जनता, विदेशी सरकारें एवं विशिष्ट संस्थाएं- विदेशी जनता से ऋण प्राप्ति लगभग नगण्य रहती है, लेकिन विदेशी सरकारों तथा विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से पर्याप्त मात्रा में ऋण प्राप्त किया जाता है। विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास परिषद तथा एशियन विकास बैंक का उल्लेख किया जा सकता है।

13.8 सार्वजनिक ऋण के आर्थिक प्रभाव

जिस प्रकार सार्वजनिक आय एवं सार्वजनिक व्यय से पूरी अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है, उसी प्रकार से सार्वजनिक ऋणों का प्रभाव भी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। ऋण की प्रकृति, स्वभाव-अवधि एवं रूप आदि

पर सार्वजनिक ऋणों के प्रभाव निर्भर करते हैं। भारत में 1996-97 में कुल सार्वजनिक ऋण की मात्रा 368216 करोंड़ रूपये थी तथा 1996-97में सरकार का कुल दायित्व 630329 करोंड़ रू0 था। सार्वजनिक ऋणों के प्रभावों को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है-

1. **उत्पादन पर प्रभाव-** सार्वजनिक ऋण का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों को निम्नवत अध्ययन किया जा सकता है-
   - **कार्य, बचत एवं विनियोग की शक्ति पर प्रभाव-** यदि ऋण से प्राप्त धन को ऐसी योजनाओं पर व्यय किया जाए जोकि उत्त्पादक है और उससे नागरिकों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो जाती हो, तो उससे नागरिकों की कार्य करने, बचत करने एवं विनियोग करने की शक्ति पर अच्छे प्रभाव पड़ेंगे। यदि इस राशि को इस प्रकार व्यय किया जाए जिससे निर्धन वर्ग की आय बढ़े तो उससे निर्धनों की कार्य करने की शक्ति अधिक बढ़ जाती है। ऋणों का उपयोग सदैव इस ढंग से किया जाना चाहिए कि उससे निर्धन वर्ग लाभान्वित हो सके।
   - यदि प्राप्त ऋण को उत्पादन कार्यो मे लगा दिया है तो ऋणों का मूलधन व ब्याज के भुगतान हेतु करारोपण करने की आवश्यकता नहीं होगी। इसके विपरीत यदि प्राप्त ऋण राशि को अनुत्पादक कार्यों में लगा दिया जाए तो ऋण के भुगतान के लिए करारोपण करना होगा और उससे नागरिकों की कार्य करने, बचत करने एवं विनियोग करने की शक्ति पर बुरे प्रभाव पड़ेंगे।
   - **कार्य करने एचं बचत करने की इच्छा पर प्रभाव-** सार्वजनिक ऋणों के अच्छे साधनों में विनियोग करने से नागरिकों की बचत करने की इच्छा पर अच्छे प्रभाव पड़ते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि सार्वजनिक ऋण से कार्य करने एवं बचत करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं, क्योंकि- सरकारी प्रतिभूतियों में धन लगाने से निरन्तर आय प्राप्त होते रहने से नागरिकों की कार्य करने की इच्छा कम हो जाती हैं क्योंकि उन्हें आय निरन्तर प्राप्त होती रहती है। करारोपण का सहारा लिये जाने पर इससे नागरिकों की कार्य करने व बचत करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। यदि केवल ऋण लेने की ही व्यवस्था रखी जाए, तो उससे जनता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।
   - **साधनों के स्थानान्तरण पर प्रभाव-** सरकार द्वारा ऋण लेने पर उसे ऐसे उपयोगों में व्यय किया जाता है जिससे नागरिकों की उत्पादन शक्ति में वृद्धि हो जाती है। यदि ऋण का उपयोग अनुत्पादक कार्या में हो तो ऐसे हस्तानान्तरण से उत्पादन हतोत्साहित होगा।

     जे0के0 मेहता का मत है कि ‘‘भावी वर्षो में जहां पर ऋणों के भुगतान के लिए कर लगाये जायें तो व्यक्ति अपने उपयोग को कम करता है। अतः यह कहा जाता है कि ऋण के वर्तमान उपभोग कम न होकर भविष्य के उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। भविष्य में उत्पादन कम नहीं होता वास्तव में उत्पादन में वृद्धि हो जाती है।’’
   - **साधनों का एक उपयोग से दूसरे उपयोग को स्थानान्तरण-** सार्वजनिक ऋणों की क्रिया से उत्पत्ति के साधनों को एक उपयोग से दूसरे उपयोग की ओर स्थानान्तरित कर सकते हैं। अनुत्पादक कार्यो से देश का समुचित विकास नहीं हो पाता है।
2. **रोजगार पर प्रभाव-** जिन कारणों से सार्वजनिक ऋण उत्पादन की वृदि करता है, उन्हीं कारणों से रोजगार मे भी वृद्धि करता है। सरकार रोजगार एवं मूल्य स्तर को द्रव्य की मात्रा से नियमित करती है।

लर्नर का कथन है कि सार्वजनिक ऋण के सम्बन्ध में क्रियात्मक वित्त सिद्धांत का पालन करना चाहिए तथा उत्पादन की मात्रा एवं उस पर होने वाले व्यय में सदा सन्तुलन स्थापित होना चाहिए।

3. **उपभोग पर प्रभाव-** सार्वजनिक ऋणों का उपयोग पर प्रभाव ऋण देने के ढंग पर निर्भर करेगा। यदि ऋण की धनराशि उपभोग में से कटौती करके दी जाती है, तो उपभोग पर बुरे प्रभाव पड़ेंगे। उपभोग पर सार्वजनिक ऋण का प्रभाव वर्तमान में न पड़कर भविष्य में पड़ता है। इससे उपभोग में कमी होने की अपेक्षा बढ़ेगी। जब व्यक्ति अपने उपभोग में कमी करके सरकार को ऋण देता है तो उसे पर्याप्त उपयोग न होने के कारण व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर बुरे प्रभाव पड़ने लगते हैं। इससे उनकी कार्य क्षमता गिर जाती है तथा उत्पादन गिरने से वस्तुएं महँगी हो जाती है और उपभोग पूर्व की अपेक्षा और कम हो जाता है।
4. **निजी क्षेत्र पर प्रभाव-** सार्वजनिक व्यय द्वारा जनता की क्रय शक्ति के बढ़ने से वस्तुओं की मांग में वृद्धि हो जाती है तथा चलन में मुद्रा की मात्रा भी बढ़ जाती है। जब यह व्यय करों से प्राप्त किया जाए तो चालू उपभोग कम हो जाता है। परन्तु यह व्यवस्था ऋण कें रूप में करने से बचतों का सदुपयोग होता है और चालू उपभोग कम नहीं हो पाता। यदि ऋण का उपयोग निजी क्षेत्र मे उत्पादित माल के लिए किया जाए तो निजी क्षेत्र मे मांग में वृद्धि की जा सकती है। यदि ऋण के एक भाग का उपयोग सरकारी अधिकारियों की मजदूरी व वेतन के रूप में प्रयोग किया जाता है, तो वह निजी क्षेत्र में उत्पादित वस्तु के उपयोग पर व्यय हो सकता है, जिससे सार्वजनिक ऋण के अनुकूल प्रभाव पड़ते हैं। निजी क्षेत्र में विनियोग बढ़ने से लाभ की सम्भावनाएं भी बढ़ जाती है।
5. **उत्पादन लागत पर प्रभाव-** लागत में सामग्री व्यय तथा अन्य व्ययों को सम्मिलित किया जाता है। यदि सरकार ऋण राशि का उपयोग उत्पादकों को उचित मूल्य पर कच्ची समग्रियों की पूर्ति पर करे, औद्योगिक अनुसन्धानों को प्रोत्साहित करे, तो उससे उत्पादन लागत में कमी होगी तथा ऋणों के अनुकूल प्रभाव पड़ेंगें।
6. **विनियोग पर प्रभाव-** प्रायः सार्वजनिक ऋणों का विनियोग पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यदि सरकार बैंकों से ऋण प्राप्त करती है तो उससे जनता पर अतिरिक्त क्रय-शक्ति आयेगी और विनियोग की राशि में कोई़ कटौती नहीं होगी। यदि ऋणों के लिए धन निजी बचतों या व्यापार से लिया जाता है तो विनियोग में कमी होगी क्योकि धनराशि को या तो विनियोग किया जा सकता है या उसे ऋण के रूप में दिया जा सकता है।
7. **वितरण पर प्रभाव-** सार्वजनिक ऋणों के उपयोग से कभी धन के वितरण में समानता लायी जा सकती है, तो कभी धन के वितरण में असमानता। सार्वजनिक ऋणों से धन के वितरण में समानता लाना लाभकारी रहता है, इससे गरीब वर्ग लाभान्वित होता है। धन के वितरण में समानता लाने से देश मे कल्याणकारी कार्यो को बढ़ाया जा सकता है।
8. **तरलता पर प्रभाव-** जो व्यक्ति सरकारी प्रतिभूतियां क्रय करते हैं, उनकी सम्पत्ति में उच्चकोटि की तरलता बनी रहती है जिसे किसी भी उद्देश्य हेतु प्रयोग किया जाता सकता हैं। अतः सार्वजनिक ऋण उच्चतम तरलता सम्पत्ति प्रदर्शित करते हैं। स्फीतिक परिस्थितियों मे केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण क्षमता को बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाएँ आदि सीमित कर देती हैं। अधिक मात्रा में सार्वजनिक ऋण बाजार भार को बढ़ा देते हैं जो कि समाज पर स्फीतिक या अस्फीतिक प्रभाव डालते हैं।
9. **विदेशी ऋणों का प्रभाव-** विकासशील देशों में बाह्य ऋण पूजीगत माल के आयात को प्रोत्साहित करता है, जो कि उपभोग व विनियोग पर अनुकूल प्रभाव डालता है। विदेशी माल के आयात से जनता का जीवन स्तर बढ़ जाता है इस दृष्टि से कभी-कभी विदेशी ऋणों को प्राप्त करना अच्छा समझा जाता है।

10. **मुद्रा बाजार पर प्रभाव-** यदि निजी क्षेत्र से कोष के लिए अधिक मांग है तो सरकार को अधिक ब्याज दर पर प्रतिभूतियों को आकर्षित करना होगा अतः सरकार द्वारा ऋण प्राप्त करते समय उसे निजी क्षेत्र से तुलना करनी होगी। यदि सरकार विद्यमान पूर्ति की तुलना में अधिक ऋण लेना चाहती है तो उससे मुद्रा का विस्तार होगा । इस बढ़ी हुई मुद्रा का उपयोग देश की विकास योजनाओं व कार्यक्रमों पर किया जा सकेगा।
11. **साधन आबंटन व राष्ट्रीय आय पर प्रभाव-** करों के विपरीत, सार्वजनिक ऋणों का साधनों के आवंटन एवं राष्टीय आय पर थोड़ा ही प्रभाव पड़ता है। यदि विनियोग स्तर गिरता है तो उससे पूँजीगत माल के उत्पादन मे कमी होगी। इससे विपरीत, यदि पूँजीगत माल से उत्पादन बढ़ता है तो उसे राष्ट्रीय आय में वृदि हो जाती है तथा गुणंक के प्रभावकारी असर के कारण दीर्घकाल में रोजगार तथा आर्थिक क्रियाओं पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

13.9 सार्वजनिक ऋणों का भार

डाल्टन ने सार्वजनिक ऋण के भार को निम्न दो वर्गों में विभाजित किया है- आन्तिरक ऋण का भार एवं बाह्य ऋण का भार।

1. **आन्तरिक ऋण का भार-** आन्तरिक ऋण में राज्य अपने ही देश के लोगों व संस्थाओं से ऋण प्राप्त करता हैं अत इसके भार से सम्बन्धित मुख्य बातें निम्न हैं-
    - प्रत्यक्ष वास्तविक भार- यदि ऋणपत्र निर्धन वर्ग ने क्रय किये हैं और इनके भुगतान हेतु सरकार ने धनी वर्ग पर कर लगाया है तो ऋण का वास्तविक भार कम होगा। व्यवहार में ऋण पत्र धनी वर्ग के द्वारा ही क्रय किये जाने के कारण वास्तविक भार बढ़ जाता है।
    - प्रत्यक्ष मौद्रिक भार- आन्तरिक ऋणों में धन का पुनवितरण होने के कारण उसका कोइ प्रत्यक्ष मौद्रिक भार नहीं होता क्योंकि सरकार जनता से ही ऋण लेती है और उन्हीं पर कर लगाकर उसे वापस कर देती है।
    - अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार- सरकार ऋण लेकर यदि उसे विकासात्मक कार्यो पर व्यय करे तो इससे वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है और उससे मूल्यों मे भी वृद्धि हो जाती है।
    - अप्रत्यक्ष वास्तविक भार- ऋण का शोधन करने हेतु जनता पर कर लगाया जाता है जिससे आन्तरिक ऋणों का अप्रत्यक्ष भार नागरिकों पर ही पड़ता हैं इससे करदाता की कार्य करने एवं बचत करने की शक्ति एवं इच्छा हतोत्साहित हो जाती है।

      रेडफोर्ड के अनुसार, "आन्तरिक ऋण का प्रभावपूर्ण प्रभाव ऋण का भावी आय पर प्रभाव पड़ता है। भारी करारोपण से विनियोग रूक जाता है।"
2. **बाह्य ऋणों का भार-** बाह्य ऋण वे माने जाते है जिनमें मूलधन व ब्याज विदेशियों को दी जाती हो। ब्याज के रूप मे काफी धन प्रतिवर्ष विदेशी मुद्रा के रूप में विदेशों को चला जायेगा जिससे विदेशी विनिमय कोष पर बुरे प्रभाव पड़ सकते हैं। देश के दीर्घकालीन आर्थिक विकास कार्यक्रम में बाह्य ऋणों पर कम निर्भर रहना चाहिए तथा व्यवस्था आन्तरिक ऋणों से ही की जानी चाहिए। इसके भार से सम्बन्धित मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं-
    - प्रत्यक्ष वास्तविक एवं द्राव्यिक भार- वास्तविक भार का अनुमान उस समय लगता है जबकि नागरिकों को विदेशी भुगतान के बदले में देश की वस्तुओं एवं सेवाओं को निर्यात करना होता है जिससे आर्थिक कल्याण में कमी हो जाती है। यदि ऋणों का भुगतान निर्धनों की तुलना मे धनी

करें तो प्रत्यक्ष वास्तविक भार उस राशि से मापा जा सकता है जो ऋणी देश को मूलधन व ब्याज के रूप में विदेशों को चुकानी पड़ती हो।

- अप्रत्यक्ष द्राव्यिक व वास्तविक भार- यह भार प्रायः उत्पादन की कमी के कारण पड़ता हैं। बाह्ना ऋण से उत्पादन दो प्रकार से हतोत्साहित होता है -(अ) ऐसे ऋणों के शोधन के लिए भारी मात्रा में करारोपण करना पड़ता है जिससे कार्य करने एवं बचत की शक्ति पर बुरे प्रभाव पड़ते हैं। (ब) इन ऋणों के भुगतान करने से सरकार को सार्वजनिक व्ययों में कमी करनी होती है जिससे उत्पादन हतोत्साहित होता है। परन्तु यह सत्य नहीं है।

13.10 सार्वजनिक ऋणों के शोधन के ढंग

सार्वजनिक ऋणों का उपयोग देश के आर्थिक विकास में किया जाता है व नियोजन की सहायता से विकास कार्यक्रम बनाये जाते हैं। इन ऋणों को एक निश्चित अवधि के पश्चात चुकाया जाना आवश्यक माना जाता है। सार्वजनिक ऋणों के भुगतान के हेतु अनेक प्रकार की विधियों को अपनाया जाता है, इनमे से मुख्य विधियां निम्नलिखित है-

1. **पूंजी कर-** पूंजी कर लगाकर ऋणों का भुगतान किया जा सकता है। यदि लिये गये ऋण का उपयोग युद्ध कार्य पर किया गया है तो उसका भुगतान विशेष करारोपण द्वारा ही किया जाना चाहिए। जब सरकार अन्य प्रकार के कर लगाने में असमर्थ हो तो पूंजी कर को ही अपनाना उचित माना जाता हे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बहुत से अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने सरकार पर इस ढंग से ऋणों का भुगतान करने हेतु दबाव डाला था। डाल्टन का विचार है कि ''ऋणों के भुगतान के सम्बन्ध में सम्पूर्ण वाद-विवाद के मध्य अपने स्वयं के गुणों के कारण पूंजी कर ही सर्वोत्तम नीति है।'' पूंजी कर को लगाया जाना चाहिए या नहीं, इस सम्बन्ध में सदैव ही वाद-विवाद रहा है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसके पक्ष एवं विपक्ष में अनेक तर्क दिये हैं। रिकार्डो ने नेपोलियन को युद्ध के उपरान्त इस कर को लगाने की सलाह दी थीं उनके अनुसार, ''एक राष्ट्र जिस पर बहुत ऋण एकत्रित हो जाते हैं, वह बहुत ही कृत्रिम स्थिति में हो जाता है। जो देश इस प्रकार की कृत्रिम स्थिति की कठिनाइयों में फंस जाता है, वह इससे छुटकारा पाने हेतु अक्लमन्दी से कार्य करेगा और अपनी सम्पत्ति को ऋण के शोधन करने के लिए त्याग करने को तत्पर होगा।'' इस कर के अन्य समर्थकों में ए0एस0 हेन्सन, ए0सी0पीगू, एजवर्थ एवं लारेन्स थे। इसके विरोध में जोशिया स्टैम्प एव पेन थे।
2. **ऋण परिशोधन कोष-** इंग्लैंड में सर्वप्रथम सार्वजनिक ऋण के शोधन में ऋण परिशोधन कोष प्रणाली को अपनाया गया। उसके बाद विश्व के अन्य राष्ट्रों ने इस तरीके को अपनाया। इस रीति में सरकार द्वारा एक कोष का निर्माण किया जाता है और उसी से मूलधन एवं ब्याज का भुगतान कर दिया जाता है। करारोपण से जो आय प्राप्त होती है उसे भी इसी कोष में जमा कर दिया जाता है। यह कोष दो प्रकार से स्थापित किया जा सकता है। वार्षिक आय से कुछ बचत इसमें रखकर, या नवीन ऋणों का जारी करके।
   डॉ0 डाल्टन ने परिशोध कोष को दो भागों मे विभाजित किया है, जैसे (अ) निश्चित परिशोध कोष एवं (ब) अनिश्चित परिशोध कोष- जब धन की एक निश्चित मात्रा प्रतिवर्ष कोष मे जमा की जाए तो उसे निश्चित परिशोध कोष कहेंगे। इसके विपरीत जब कोष मे जमा की जाने वाली राशि निश्चित न हो तो उसे अनिश्चित परिशोध कोष कहेंगे। डाल्टन का मत है, ''एक संचयी परिशोध कोष में एक निश्चित ऋण राशि एवं कोष ब्याज पर लगा दिया जाता है जिससे बयाज के रूप में अर्जित धन राशि को परिशोधन कोष में लगा दिया जाता है। अतः वार्षिक परिशोधन कोष मे चक्रवृद्धि से ब्याज वृदि हो जाती है।''

ऋण भुगतान की अवधि को निश्चित कर लेने के बाद सरकार का दूसरा कदम यह होता है कि भुगतान कोषों को इस अवधि पर किस प्रकार फैलाया जाए। इसके लिए निश्चित परिशोध कोष की स्थापना तीन आधारों पर की जाती है जैसे-

ऋण शोधन की अवधि निश्चित करके, भुगतान कोषों को इस निश्चित अवधि में वितरित करके एवं शोधन कोष में बंटवारा विभिन्न प्रकार के ऋणों में करके।

- ऋण शोधन की अवधि निश्चित करके- इसमें ऋण के भुगतान की अवधि निश्चित कर दी जाती है और उस अवधि की समाप्ति पर ऋणों का भुगतान कर दिया जाता है। इस निश्चित अवधि की समाप्ति पर सभी प्रकार के ऋणों का भुगतान कर दिया जाता है।
- भुगतान कोषों को इस अवधि में वितरित करके- ऋणों के भुगतान करने की अवधि जितनी थोड़ी होगी उतना ही कम भार उस देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। भुगतान कोषों को ऋणों के भुगतान में निम्न प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है-
  - मात्रा कम करके- इस विधि मे वार्षिक ब्याज की राशि से भी अधिक ऋणदाताओं को भुगतान कर दिया जाता है जिससे प्रतिवर्ष ऋण भार कम हो जाता है। मूलधन अधिक लौटा दिये जाने से ब्याज का भाग कम हो जाता है और व्यय के रूप में भी धन कम रह जाता है।
  - भुगतान मात्रा समान रखकर- इसके अनुसार वर्ष में प्राप्त होने वाली ब्याज की सम्पूर्ण राशि को कोष में जमा नहीं करते, वरन् उसका केवल एक भाग ही इस कोष में जमा कर देते हैं और शेष राशि को ऋणदाताओं में वितरित कर दिया जाता है, जिससे प्रतिवर्ष ऋण का भार समान बना रहता है।
  - भुगतान की मात्रा बढ़ाकर- इसमें एक संचयी परिशोध कोष की स्थापना की जाती है जिसमें धनाशि चक्रवृदि दर से बढ़ती है और प्रतिवर्ष एक निश्चित धनराशि जमा करते हैं जिससे इस कोष की मात्रा में वृदि होती रहती है।
  - शोधन कोष का बंटवारा विभिन्न प्रकार के ऋणों में करके- इसमें शोधन कोष को विभिन्न प्रकार के ऋण में विभाजित करके, ऋण के भुगतान की व्यवस्था की जाती है। प्रो0 मेहता का मत है कि ‘‘परिशोध कोष की पद्धति ऋण भुगतान का सबसे अच्छा ढंग है। यह अत्यन्त क्रमबद्ध है तथा कोई उसे किसी विशेष ऋण की आवश्यकताओं की पूर्ति में समायोजित कर सकता है।’’ऋण शोधन की इस क्रिया को अग्र क्रिया से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

3. **ऋण निषेध-** सार्वजनिक ऋण से छुटकारा पाने का सबसे सरल ढंग यह है कि सरकार इसे चुकाने से इन्कार कर दे। परन्तु ऋणों के भुगतान को मना करने पर सरकार की साख समाप्त हो जाती है और युद की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। डाल्टन का मत है कि ‘‘खुला सैनिक आक्रमण सहित प्रचार से विभिन्न आर्थिक एवं वित्तीय दबाव तक ऐसे ढंग हैं जो ऋणदाताओं द्वारा ऋण वसूल करने में प्रयोग किये जाते हैं। विशेषकर जबकि विदेशी ऋणों का निषेध करना हो। जनतन्त्रीय सरकार द्वारा ऋण निषेध की रीति को निम्न कारणों से अपनाया जाना उचित नहीं माना जाता-

   - अन्याय पूर्ण- ऋण समाज के किसी एक वर्ग द्वारा प्रदान किया जाता है और उसका भुगतान न करने से समाज के किसी एक वर्ग को ही हानि सहन करनी होगी। जबकि उस ऋण से सम्पूर्ण समाज को लाभ पहुंचाये जा सकते हैं।

- राजनीतिक स्वतन्त्रता को खतरा- सरकार द्वारा विदेशी ऋणों को मनाही न करने से राजनीतिक स्वतन्त्रता को खतरे उत्पन्न हो सकेंगे। कहा जाता है कि ''विदेशी ऋण के साथ विदेशी झण्डा भी आ जाता है जो देश की अर्थव्यवस्था को खतरे में डाल सकता है।''
- नवीन ऋण प्राप्ति में कठिनाई- यदि सरकार किसी ऋण के भुगतान करने को इन्कार कर देती है तो भविष्य में नवीन ऋणों को प्राप्त करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी।

4. **ऋण परिवर्तन-** इस विधि से सरकार पुराने ऋणों को नये ऋणों में बदल देती है, जिन पर सूद की दर कम होती है। इस विधि में ऋणों की शर्तो एवं ब्याज की दर में परिवर्तन कर दिया जाता है। जो ऋणदाता नवीन ऋणों को स्वीकार नहीं करते उन्हें भुगतान कर दिया जाता है। ब्यूहलर के शब्दों में, ''ऋण परिवर्तन से आशय ब्याज करों की राशि को कम करने के लिए तथा उसका लाभ प्राप्त करने के लिए वर्तमान ऋणों को नवीन ऋणों में परिवर्तन करने से लगाया जाता है।'' ऋण परिवर्तन की क्रिया उस समय अपनायी जाती है जबकि ऋण के भुगतान की अवधि आ चुकती है, और साधनों के अभाव में सरकार ऋणों का भुगतान न कर पाती हो। अतः इस क्रिया में ऋण के भुगतान को टालने का प्रयास किया जाता है। कभी-कभी सरकार के ऋणों को चुकाने हेतु नवीन आकर्षक ऋणों को प्रारम्भ कर देती है।
5. **क्रमानुसार भुगतान-** क्रमानुसार भुगतान में प्रति वर्ष थोड़ी-थोड़ी मात्रा में भुगतान किया जाता है। इसमें समस्त ऋणों की व्यवस्था इस ढंग से की जाती है कि प्रतिवर्ष कुछ ऋणों की परिपक्वता हो जाए और उस भाग को उस वर्ष चुकता कर दिया जाए।
6. **पुनः ऋणशोधन-** इस रीति में सरकार नवीन ऋणों को चालू करने से जो राशि प्राप्त करती है उससे पुराने ऋणों का भुगतान कर दिया जाता है। नवीन ऋण कम ब्याज दर पर प्राप्त किये जाते हैं। जिससे भविष्य में सरकार पर ऋण का बोझ कर हो जाए।
7. **बजेटरी बचत-** सरकार द्वारा बनाये गये बजटों में से कुछ राशि प्रतिवर्ष बचत के रूप में निकालकर ऋणों के भुगतान में प्रयोग की जा सकती है।
8. **लाटरी द्वारा भुगतान-** इस विधि में ऋणों का भुगतान लाटरी के आधार पर किया जाता है तथा जिस व्यक्ति का नम्बर आ जाता है उसी को ऋण का भुगतान कर दिया जाता है लाटरी से नम्बर निकलने की एक पूर्ण प्रक्रिया है, जिसका पालन करके ही इस रीति का प्रयोग किया जा सकता है।
9. **वार्षिक वृत्ति-** इसमें सरकार जो ऋण प्राप्त करती है उसे वार्षिक किश्तों के रूप में चुका दिया जाता है। इसमें ऋण की राशि शनैः शनैःकम हो जाती है और एक निश्चित अवधि के बाद पूर्णतया समाप्त हो जाती है।
10. **ब्याज दर में कमी-** सरकार द्वारा ब्याज दर में कमी करके भी ऋण के भार को कम किया जा सकता है औरऋण का भुगतान हो सकता है। परन्तु यह ढंग व्यावहारिक नहीं माना गया और इसका विरोध सभी स्थानों पर किया गया।

अभ्यास प्रश्न-

1. किसने ने लोक ऋण का विरोध किया था?
2. एक निश्चित अवधि के बाद जिन ऋणों के भुगतान का वचन सरकार द्वारा दिया जाता है, वे क्या कहलाते हैं?
3. लोक ऋण क्या होते हैं?
4. सिचाई परियोजना के लिये लिया गया ऋण क्या है?
5. किसका ऋण भार कम होता है?

6. लोक ऋण के बाह्य स्रोत क्या हैं?

13.11 सारांश

किसी वर्ष में बजेटरी व्यवहार से उत्पन्न असन्तुलन को हम राजकोषीय घाटा से व्यक्त करते हैं, सरकार इस घाटे की पूर्ति वर्ष में की गयी आन्तरिक तथा विदेशी उधारी से करती है। इस उधारी को लोक व सार्वजनिक ऋण की संज्ञा दी जाती है। कालांतर में सार्वजनिक ऋण सरकार की एक सरल और अल्पकालीन गतिविधि के स्थान पर एक महत्वपूर्ण राजकोषीय घटक और एक सक्षम नीति-अस्त्र की पद्वीं प्राप्त कर चुका है। वर्तमान भारतीय बजेटरी व्यवहार के अनुसार केन्द्र सरकार के सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत तीन प्रकार की देयतायें आती हैं- (क) आन्तरिक ऋण (ख) विदेशी ऋण (ग) अन्य देयताएं। आन्तरिक तथा विदेशी ऋण भारत के सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत आते हैं। इस इकाई में लोकऋण वर्गीकरण सिद्धातों, स्रोतों, आर्थिक प्रभावों तथा शोधन विधियों की चर्चा की गई है।

13.12 शब्दावली

लोकऋण- आन्तरिक व विदेशी ऋण, आन्तरिक/घरेलू ऋण- जनता द्वारा ऋण यथाः विपणन उधार, लघु बचतें आदि, गैर-उत्पादक ऋण- निजी व गैर उत्पादक ऋण, कालावधि- ऋण शोधन समय सीमा, राजकोषीय घाटा- बजेटरी व्यवहार से उत्पन्न असन्तुलन

13.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने, **2.** शोध्य(ऋण), **3.** ऐच्छिक, **4.** उत्पादक, **5.** अशोध्य ऋणों का, **6.** विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ

13.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भाटिया, एच0 एल0, लोक वित्त, विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नोएडा।
2. थावराज, एम0जे0के0, फायनेन्सियल एडमिनिस्ट्रेशन आफ इन्डिया, सुल्तान चंद एवं संस, नई दिल्ली।
3. बर्मन, किरण, 1978 इंडियोज पब्लिक डेट् एंड पालिसी सिंस इंडिपेंडेंस, चुघ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. चन्द्रा, अशोक भारतीय प्रशासन, जार्ज ऐलन अनविन लिमिटेड।

13.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भाटिया, एच0 एल0, लोक वित्त, विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नोएडा।
2. चन्द्रा, अशोक भारतीय प्रशासन, जार्ज ऐलन अनविन लिमिटेड।

13.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रिजर्व बैंक के कार्यों की विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. सावर्जनिक ऋण के स्रोतों को स्पष्ट कीजिए।
3. सावर्जनिक ऋणों के शोधन के तरीके की व्याख्या कीजिए।
4. सावर्जनिक ऋण के आर्थिक प्रभाव पर प्रकाश डालिए।

इकाई-14 वित्तीय मूल्यांकन

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 वित्तीय मूल्यांकन
14.2.1 सार्वजनिक निवेश के उद्देश्य एवं महत्त्व
14.2.2 सार्वजनिक निवेश के प्रकार एवं निर्धारक तत्व
14.2.3 सार्वजनिक निवेश के निर्णय निर्माण की प्रक्रिया
14.2.4 परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति
14.2.5 वित्तीय मूल्यांकन की तकनीकें
14.2.5.1 कुल वर्तमान मूल्य
14.2.5.2 लागत लाभ अनुपात
14.3 सारांश
14.4 शब्दावली
14.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.8 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

अब तक आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि आधुनिक सरकारें विकासात्मक कार्यों पर आपार धन राशि खर्च करती है। सरकार द्वारा किया गया कुल व्यय जनता को अधिकाधिक सेवाएं एवं वस्तुएं प्रदान करने के लिए बड़ी संख्या में निवेश परियोजनाओं में वितरित होता है। इन परियोजनाओं में सड़कें, पुल, बंदरगाह, परिवहन, दूर संचार, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि सम्मिलित हैं। आधुनिक सरकारों को देश के विकास हेतु विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावसायिक गतिविधियाँ भी अपनानी पड़ती है। उदाहरण के तौर पर आधुनिक सरकारें देश के बैंकों एवं बीमा कंपनियों का स्वामित्व व नियंत्रण अपने हाथ में रखती हैं। औद्योगिक एवं उपभोक्ता वस्तुओं जैसे इस्पात, विद्युत उपकरण, दूध एवं ब्रेड का उत्पादन करती है। इन सभी गतिविधियों के लिए दिन प्रतिदिन के व्यय के अलावा दीर्घकालीन निवेश, जो पूँजीगत निवेश भी कहलाता है, की भी आवश्यकता होती है। सरकार एवं जन अभिकरणों द्वारा किया गया निवेश भी पूँजीगत निवेश कहलाता है।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- वित्तीय मूल्यांकन के संबंध में जान पायेंगे।
- सार्वजनिक निवेश के प्रकार एवं निर्धारक तत्व और निर्णय निर्माण की प्रक्रिया की व्याख्या कर पायेंगे।
- परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति को समझ पायेंगे।
- वित्तीय मूल्यांकन की तकनीकों को जान पायेंगे।

14.2 वित्तीय मूल्यांकन

आईये वित्तीय मूल्यांकन को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

14.2.1 सार्वजनिक निवेश के उद्देश्य एवं महत्व

भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में सार्वजनिक निवेश का उद्देश्य अधिकतम लोगों को अधिकतम लाभ पहुँचाना होना चाहिए। निजी निवेश, लाभ अथवा निजी हित से संचालित होते हैं, सार्वजनिक निवेश सामाजिक उपयोगिता अथवा लाभ पर आधारित होता है क्योंकि प्रजातांत्रिक देश सामान्यतः निर्वाचक गुणों की ओर से बोलते एवं कार्य करते हैं। यह राज्य की समस्त जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है। व्यापक अर्थों में, हम यह कह सकते हैं कि सार्वजनिक निवेश के उद्देश्य लगभग राज्य के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के अनुरूप होते हैं। विशेष अर्थों में सार्वजनिक निवेश राष्ट्रीय सुरक्षा एवं कानून तथा व्यवस्था की आवश्यकताओं एवं जरूरतों से दिशा निर्देशित होते हैं। यह सामाजिक उपयोगिता एवं जनोपयोगिता से भी निर्देशित होते हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, ऊर्जा, परिवहन एवं दूर संचार के क्षेत्रों में किया गया सार्वजनिक निवेश सामान्यतः इस श्रेणी में आते हैं सड़कों, पुलों, बंदरगाहों, रेलों, शक्ति संयंत्रों इत्यादि में किया गया सार्वजनिक निवेश सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचनाओं के रूप में न्यायसंगत ठहराये जाते हैं, यह विकास एवं वृद्धि के उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचनाओं में किया गया सार्वजनिक निवेश इसलिए भी तार्किक है क्योंकि इसमें अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है तथा इनकी प्रतिफल देने में सक्षम होने की अवधि भी लंबी होती है; बाह्य बचतों के कारण यह निजी निवेश के दृष्टिकोण से अनाकृष्ट तथा अनुप्रयुक्त हो जाते है। निजी व्यवसायिकों के पास साधन सीमित होते हैं। तथा वह उनके स्वयं के अलावा दूसरों को होने वाली बचतों अथवा प्रतिफल में रुचि नहीं दर्शाते। इसके दूसरी ओर सरकार के हाथों में उनकी कर लगाने की शक्ति एवं घाटे के वित्त के कारण अपार धन राशि होती है, वह एक समाज अथवा समुदाय के रूप में दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपना सकती है एवं अच्छे तथा बुरे प्रभावों या जो पश्चगामी और अग्रवर्ती कड़ियाँ अथवा इनके निवेशों से होने वाली बाह्य बचतें भी कहलाती हैं, का मूल्यांकन कर सकती है। आधारभूत संरचनाओं में निवेश एक अर्थव्यवस्था के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से भी आवश्यक है। ऐसे कई क्षेत्रों में निवेश का सुझाव निजी एकाधिकार को समाप्त करने तथा कुछ लोगों के हाथ में संपत्ति एवं धन का केंद्रीकरण रोकने के लिए भी दिया जाता है।

सार्वजनिक निवेश का महत्व इस तथ्य से भी जाना जा सकता है कि यह एक अर्थव्यवस्था के वर्तमान को इसके भविष्य से जोड़ता है। भारत जैसी अर्थव्यवस्था की वृद्धि की दर अधिकांश रूप से सार्वजनिक निवेश पर निर्भर करती है। यह निजी पूंजी एवं उद्यम की भूमिका को नकारने के लिए नहीं है। परंतु इस तथ्य के कारण कि सार्वजनिक निवेश निजी निवेश के विकास एवं प्रोत्साहन के लिए आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं के विकास का आधार प्रदान करता है, यह अति महत्वपूर्ण हो जाता है।

14.2.2 सार्वजनिक निवेश के प्रकार एवं निर्धारक तत्व

सार्वजनिक निवेश का आकार, प्रतिरूप एवं प्रकार विभिन्न कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं। सार्वजनिक निवेश का आकार, प्रतिरूप एवं प्रकार निर्धारित करने वाले कारक सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था के विकास का स्तर, अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ इत्यादि पर निर्भर करते है। राज्य की प्रकृति, उसकी विचारअनुच्छेद- , प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय क्षमताएं एवं सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में उसकी भूमिका भी सार्वजनिक निवेश के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत जैसे देश में जिसने मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं राष्ट्रीय विकास योजनाओं को अपनाया है, सार्वजनिक निवेश विकास कार्यनीति का एक घटक है। भारत ने यह संकल्प किया है

कि वह समाज की समाजवादी व्यवस्था को अपनायेगा तथा अर्थव्यवस्था की बागडोर लोक क्षेत्र में होगी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भारत में सार्वजनिक निवेश पिछली कई वर्षीय योजनाओं के दौरान निजी निवेश से कई अधिक गुणा बढ़ गया है। गरीबी एवं बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि भारतीय योजनाओं का मूलभूत उमूलभूत उद्देश्य है। इसे पाने के लिए सार्वजनिक निवेश का भारी उद्योगों एवं सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचनाओं में सक्रिय उपयोग किया जा रहा है। भारतीय सरकार की रोजगार संबंधी चिंता के कारण पुरानी एवं रुग्ण, कपड़ा, पटसन एवं अभियांत्रिक उद्योगों में भारी निवेश हुआ है। व्यक्तिगत निवेश परियोजनाओं का वर्गीकरण नवीन परियोजनाओं के विस्तार, आधुनिकीकरण एवं विविधीकरण के रूप में किया जा सकता है। विचाराधीन परियोजनाओं में से कुछ परस्पर निवारक भी हो सकती है जिसका अर्थ है कि एक को स्वीकृति प्रदान करने से दूसरी परियोजनाओं की स्वीकृति प्रतिबंधित हो जाती है। पुराने संयंत्र की पूरी तरह से मरम्मत अथवा प्रतिस्थापन किया जाना परस्पर निवारक परियोजना का उदाहरण है। वैकल्पिक परियोजनाएं परस्पर निवारक परियोजनाओं का एक अन्य उदाहरण है। उदाहरण के लिए विद्युत उत्पादन के लिए तीन वैकल्पिक परियोजनाएं हो सकती हैं। ताप बिजली संयंत्र अथवा जल विद्युत संयंत्र अथवा परमाणु ऊर्जा संयंत्र। एक अन्य उदाहरण के लिये लघु सिंचाई परियोजनाओं द्वारा अतिरिक्त सिंचाई क्षमता बढ़ाने के लिए कई विकल्प हो सकते हैं, जैसे नल कूप, उत्थापन सिंचाई, गुरुत्वाकर्षी नहरें, वर्तमान कुओं का चैड़ा करना तथा सुधारना। इसके अलावा स्वतंत्र परियोजनाएं भी हो सकती हैं। किसी नये उत्पादन का प्रवर्तन तथा अन्तरा विभागीय प्रशिक्षण संस्थान का आरंभ ऐसी दो स्वतंत्र परियोजनाएं हो सकती है जो परस्पर निवारक नहीं है।

14.2.3 सार्वजनिक निवेश के निर्णय निर्माण की प्रक्रिया

सार्वजनिक निवेश कई उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। तथा इन्हें निर्देशित करने वाले विभिन्न लोक निकाय होते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि सार्वजनिक निवेश से संबंधित निर्णयों के लिए उनकी अपनी संगठनात्मक प्रक्रियाएं होती हैं। यहां पर हम आपको भारत में सार्वजनिक निवेश निर्णय निर्माण प्रक्रिया का एक व्यापक ढांचा बतलाने का प्रयत्न करेंगे। जैसा कि आपको ज्ञात होगा, भारत ने मध्यम काल योजनाओं को अपनाया है। जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के विकास के लिए वर्षीय योजनाओं को बनाया जाता है। वर्षीय योजनाओं को तैयार करना योजना आयोग का उत्तरदायित्व है, जो कि 1950 में स्थापित किया गया था। इसके कई पूर्णकालिक एवं अंशकालिक सदस्य होते हैं। तथा यह भारत के प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करता है। योजना आयोग का एक उपाध्यक्ष भी होता है जो कि दिन प्रतिदिन के कार्यों को देखता है। योजना आयोग प्रत्येक योजना के अंतर्गत किया जाने वाला कुल निवेश तथा लोक क्षेत्र में उसके अंश का निर्णय करता है। योजना आयोग निवेश का क्षेत्रीय एवं अन्तर राज्यीय आबंटन भी करता है। यह वित्त मंत्रालय के साथ विचार-विमर्श करके केंद्रीय वार्षिक योजना तथा राज्य सरकारों के साथ विचार विमर्श करके राज्य वार्षिक योजना को अंतिम रूप प्रदान करते हैं। योजना निवेश का क्षेत्रीय एवं अन्तरराज्यीय आवंटन विकास कार्यनीति, प्राथमिकताओं की रूपरेखा तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास के महत्व को प्रतिबिम्बित करते हैं। यह आवश्यक रूप से बृहत स्तर के सार्वजनिक निवेश निर्णय हैं जो कि संपूर्ण सीमाओं का निर्धारण करता है। यहां पर यह भी कहा जा सकता है कि बृहत स्तर पर सार्वजनिक निवेश निर्णय योजना की राजनीति तथा विकास के सिद्धांतों एवं परिकल्पनाओं को भी प्रतिबिम्बित करती है। चूँकि पिछले दशक में अन्तर क्षेत्रीय, अन्तर राज्कीय एवं अन्तर सामयिक संगति का प्रश्न लगातार उछाला जाता रहा है, वैज्ञानिक योजनाओं के तहत अपनाई जाने वाली विभिन्न तकनीकें जैसे कि आगत निर्गत विश्लेषण एवं अर्थव्यवस्था के बृहत प्रतिमान योजना प्रक्रिया में अपनाये गये।

सार्वजनिक निवेश के बृहत स्तर के निर्णयों के अलावा संपूर्ण आकार एवं क्षेत्रीय तथा राज्यीय आवंटन से संबंधित प्रश्न महत्वपूर्ण होते हैं। एक अन्य स्तर है सूक्ष्म स्तर अथवा परियोजना स्तर पर सार्वजनिक निवेश निर्णय। योजना

द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंदर उसके आकार, क्षेत्रीय आवंटन से संबंधित विभिन्न कार्यक्रम जो कि वर्तमान व्यय एवं दीर्घकालीन परिसंपत्तियों के निर्माण दोनों को सम्मिलित करने हैं, तैयार किये जाते हैं। यह निर्णय सामान्यतः संबंधित मंत्रालयों में प्रशासनिक विभागों द्वारा एवं विशिष्ट कार्यक्रम प्राधिकारियों द्वारा योजना आयोग एवं वित्त मंत्रालय द्वारा वार्षिक बजट की निर्माण प्रक्रिया के रूप में किये जाते है। वार्षिक बजट में महत्वपूर्ण, विशाल एवं वृद्धिपरक पूंजीगत बजट होता है यहीं कारण है कि पूंजीगत निवेश निर्णय अथवा परियोजना निवेश निर्णय अति महत्वपूर्ण हो जाते है। प्रत्येक सार्वजनिक निवेश परियोजना को वार्षिक बजट में सम्मिलित करने से पूर्व उसके निर्माण एवं मूल्यांकन के लिए एक व्यवस्था की गई है। योजना आयोग के अलावा ऐसे कई सरकारी अभिकरण हैं जो कि परियोजना स्तर पर सार्वजनिक निवेश निर्णयों से संबंधित है। निवेश के आकार के संबंध में कुछ सीमाओं के अंदर, परियोजनाएं विभिन्न मंत्रालयों की व्यय वित्त समिति द्वारा स्वीकृति की जाती हैं। रोजमर्रा की एवं कम मूल्य की परियोजनाओं पर आंतरिक वित्तीय सलाहकार अथवा वित्त मंत्रालय द्वारा विचार विमर्श किया जाता है। कुल केंद्रीय निवेश का लगभग दो तिहाई भाग नित्यचर्या के वित्तीय निर्णयों के रूप में स्वीकृति किया जाता है। भारी निवेश वाली परियोजनाओं का विस्तृत परियोजना मूल्यांकन किया जाता है। सार्वजनिक निवेश परियोजनाओं का मूल्यांकन करने के लिए दो मुख्य अभिकरण हैं- योजना आयोग का परियोजना मूल्यांकन प्रभाग एवं सार्वजनिक निवेश मंडल। इन अभिकरणों को मूल्यांकन के लिए भेजे जाने वाली परियोजनाओं की वित्तीय सीमा समय-समय पर निर्धारित की जाती है।

14.2.4 परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति

यहाँ पर हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि प्रत्येक निवेश परियोजना में आवश्यक रूप से बहुगुणात्मक गतिविधियां सम्मिलित होती हैं जो कि परियोजना स्थापना के तर्काधार एवं उद्देश्यों, तकनीक का चुनाव; संयंत्र एवं मशीनों का चुनाव, उपयोग में आने वाले कच्चे माल का निर्धारण, उत्पाद का बाजार अथवा परियोजना की सेवा लागत, वित्त के साधन एवं प्रत्याशित लाभ को निर्धारित करती हैं। इसके पश्चात इस प्रकार की गतिविधियाँ जैसे कि भूमि का अधिग्रहरण, मशीनरी एवं संयंत्र वित्त का प्रबंध, सरकारी एवं अन्य वैधानिक निकासियां प्राप्त करना इत्यादि अपनाई जाती हैं। ये गतिविधियाँ परियोजना के आरंभ से शुरू हो जाती हैं जो कि परियोजना के उद्देश्यों को पूरा करती हैं।

परियोजना मूल्यांकन में आंकड़ों का संकलन, लागतों का अनुमान, लाभों एवं लाभदायकता को आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जाता है। संबद्ध आंकड़े प्राथमिक साधनों जैसे कि बाजार अथवा सहायक साधनों जैसे कि सरकारी प्रकाशनों अथवा उद्योग एवं अनुसंधान निकायों के प्रकाशनों से एकत्रित किये जा सकते हैं। एक बार संबद्ध आंकड़े एकत्रित हो जायें तो परियोजना की संभावित लागत तैयार की जा सकती है जो कि भूमि एवं भवन की लागत से शुरू होकर, संयंत्र एवं मशीनरी की लागत, कर एवं शुल्क, विविध स्थायी परिसंपत्तियाँ, स्थायी कार्यकारी पूंजी की आवश्यकताएं अनुमानित संचालन पूर्ण व्यय एवं आकस्मिक व्यय का अनुमान लगाती हैं।

एक बार परियोजना की लागत का अनुमान लगा लिया जाये तो यह आवश्यक हो जाता है कि कार्यान्वियन की सूची, क्षमता उपयोगिता, कच्चे माल की लागत एवं अन्य संबंधित लागतों, संभावित विक्रय मूल्य इत्यादि से संबंधित कुछ निश्चित पूर्वानुमान लगा लिये जायें जिससे अनुमानित प्रतिलाभ एवं परियोजना की लाभदेयता का अनुमान हो जाये। अनुमानित एवं अपेक्षित प्रतिफल की तुलना परियोजना की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का आधार बनती है। अनुमानित/अपेक्षित प्रतिफल में क्या सम्मिलित किया जाता है? यह वास्तव में परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति एवं केन्द्र बिन्दु पर निर्भर करता है। परियोजना मूल्यांकन के कई आयाम हो सकते हैं जो कि इस बात पर निर्भर करते हैं कि मूल्यांकन परियोजना अधिकारी अथवा वित्त प्रदान करने वाले अधिकारियों द्वारा किया जा रहा है जबकि परियोजना अधिकारियों का संबंध सामान्यतः तकनीकी, वित्तीय एवं आर्थिक अथवा

सामाजिक मूल्यांकन से होता है। वित्त प्रदान करने वाले अधिकारी इसके अलावा प्रबंधकीय मूल्यांकन से भी दिलचस्पी लेते हैं। आइये हम परियोजना मूल्यांकन के इन आयामों की संक्षेप में व्याख्या करें।

तकनीकी मूल्यांकन तकनीकी स्थिति, यंत्रों की क्षमताओं, उत्पादन कार्यक्षमता एवं अवस्थापन प्रभावों को ध्यान में रखकर परियोजना की तकनीकी व्यवहार्यता का मूल्यांकन करती है। सरल शब्दों में यह निर्णय लेने का प्रयास किया जाता है कि क्या परियोजना प्रस्ताव में विचारित उत्पादन गतिविधि प्रस्तावित स्थान पर संभव है तथा क्या उसके द्वारा इच्छित उत्पादन स्तर अनुमानित लागत पर उपलब्ध होगा।

वित्तीय मूल्यांकन परियोजना की व्यावसायिक व्यवहार्यता को परखने का प्रयास करता है। यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि एक तर्कसंगत समयावधि में क्या परियोजना उसे वित्त प्रदान करने के लिए प्राप्त ऋण को चुका पायेगी एवं समदृष्टि निधि की पूर्ति करने वालों को समुचित लाभ प्रदान कर पायेगी। यह परियोजना की निश्चित वित्तीय लागतों एवं परियोजना को प्रायोजित करने वाले निकायों के लाभों पर केंद्रित होता है।

आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन अर्थव्यवस्था अथवा समाज का व्यापक दृष्टिकोण अपनाता है। यह परियोजना की न्यायसंगतता आर्थिक अथवा सामाजिक लागतों एवं परियोजना से समस्त अर्थव्यवस्था अथवा समाज को होने वाले लाभों की तुलना करके आंकने का प्रयत्न करता है। प्रबंधकीय मूल्यांकन को प्रोत्साहनकर्ताओं की ईमानदारी एवं परियोजना निर्माण एवं कार्यान्वयन करने वाले प्रबंधकीय दल की क्षमता को आंकने का प्रयत्न करता है। इसका लक्ष्य प्रोत्साहनकर्ताओं एवं प्रबंधकों की परियोजना को नियोजित रूप से चलाने की प्रतिबद्धता की परख करने का होता है।

आप यह जान गये होंगे कि परियोजना मूल्यांकन के चार मुख्य आयाम होते हैं, जैसे कि तकनीकी मूल्यांकन, वित्तीय मूल्यांकन, आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन एवं प्रबंधकीय मूल्यांकन। जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रबंधकीय मूल्यांकन परियोजना को वित्त प्रदान करने वाले अभिकरणों द्वारा लागू किया जाता है, यह वित्तीय संस्थाएं जैसे कि भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम अथवा अंतर्राष्ट्रीय निकाय जैसे कि विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक इत्यादि भी हो सकती हैं। लोक क्षेत्र में परियोजना अधिकारी तकनीकी, वित्तीय एवं आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन पर ध्यान केंद्रीत करते हैं। आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन इकाई 15 में विवेचना का विषय होगा। अगले भाग में हम निवेश परियोजनाओं के वित्तीय मूल्यांकन की कुछ तकनीकों की व्याख्या करेंगें।

14.2.5 वित्तीय मूल्यांकन की तकनीकें

आपने यह देखा होगा कि निवेश परियोजनाओं में अपार धन राशि लगी होती है। इन परियोजनाओं से प्रतिफल भविष्य में उपलब्ध होता है जो कि दूरस्थ एवं कई वर्षों तक फैला हुआ हो सकता है। आप यह पाते हैं कि इन निवेशों में लगाया गया धन तथा इनसे प्राप्त होने वाला धन अलग-अलग समयावधि से संबंधित होता है। मुद्रास्फीति के इस दौर में, जिसमें कि हम सब रह रहे हैं आज का एक रुपया भविष्य के एक रुपये से अधिक मूल्यवान है। इसके अलावा भविष्य की अनिश्चितताएं हाथ में आये एक रुपए को भविष्य में प्राप्त होने वाले रुपये से अधिक मूल्यवान बना डालती है। परिणामस्वरूप परियोजनाओं का वित्तीय मूल्यांकन करते समय धन का यह समय मूल्य अति महत्वपूर्ण हो जाता है। पिछले कई वर्षो से मूल्यांकन की कई तकनीकें विकसित हुई हैं। इनमें से मुख्य हैं प्रतिफल प्राप्त होने की अवधि, प्रतिफल की लेखा दर, वर्तमान शुद्ध मूल्य, आंतरिक प्रतिफल दर एवं लागत लाभ अनुपात अथवा लाभदेयता सूचकांक। प्रथम दो यानि वे प्रतिफल प्राप्त होने की अवधि एवं प्रतिफल की लेखा दर तकनीकें धन के समय मूल्य की धारणा को नहीं मानते। अतः उन्हें सार्वजनिक निवेश के कार्यो के लिए नहीं अपनाया जाता। वर्तमान शुद्ध मूल्य, प्रतिफल की आंतरिक दर एवं लागत लाभ अनुपात सार्वजनिक

निवेश परियोजनाओं के वित्तीय मूल्यांकन के लिए सामान्य रूप से अपनाया जाता है। आईये हम प्रत्येक का संक्षेप में विवेचन करें।

14.2.5.1 कुल वर्तमान मूल्य (Total Present Value)

वर्तमान शुद्ध मूल्य जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, ऐसी तकनीक है जिसमें निवेश परियोजनाओं का वित्तीय मूल्यांकन परियोजना के नकद लागत एवं निर्गत के अंतर वर्तमान मूल्य के आधार पर किया जाता है। तदनुसार, वर्तमान शुद्ध मूल्य के आधार पर परियोजना मूल्यांकन के लिए हमें निम्न कार्य करने होंगे।

1. परियोजना की आर्थिक जिन्दगी के दौरान (वर्ष प्रति वर्ष) नकद आगत एवं निर्गत का अनुमान लगाना।
2. परियोजना के आर्थिक जीवन के दौरान नकद आगतों एवं निर्गतों की तुलना करके शुद्ध नकद प्रवाह का निर्धारण करना।
3. शुद्ध नकद प्रवाह में कटौती जिसमें उपयोग में लाई गई कटौती की दर अपेक्षित प्रतिफल की दर के समान होती है।
4. परियोजना का कटौती के बाद शुद्ध मूल्य अथवा वर्तमान मूल्य का निर्धारण।
5. अगर वर्तमान शुद्ध मूल्य धनात्मक है तो परियोजना को स्वीकृति प्रदान करना तथा अगर वर्तमान शुद्ध मूल्य ऋणात्मक है तो परियोजना को अस्वीकृत करना।

आप यह आसानी से अवलोकन कर पायेंगे कि वर्तमान शुद्ध मूल्य तकनीक से परियेजना मूल्यांकन करने के लिए हम केवल परियोजना से संबंधित नकद लागत एवं निर्गत में रुचि लेते हैं तथा लेखा के तरीकों आय एवं व्यय में नहीं जो कि नकद के अलावा अन्य घटकों को भी सम्मिलित करते हैं। एक उदाहरण के लिए, एक निश्चित अवधि में लाभ एवं हानि खाते का मूल्य ह्रास एक महत्वपूर्ण मद होती है, यह उसी अवधि के दौरान नकद निर्गतों का भाग नहीं होता है। अतः एक परियोजना के वर्तमान शुद्ध मूल्य का परिकलन करने के लिए हम केवल परियोजना से संबंधित नकद लागत एवं निर्गत पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं तथा समस्त गैर नकद आय एवं व्यय को नजर अंदाज कर देते हैं। इसके अलावा यह भी महत्वपूर्ण है कि इसे वर्तमान शुद्ध मूल्य के परिकलन के लिए ध्यान में रखा गया। नकद प्रवाह करों की कटौती के पश्चात परंतु ब्याज प्रभार से पहले होता है। यह कर के बाद क्यों किये जाते हैं ? यह समझना आसान है। चूंकि कर उत्तरदायित्व किसी भी आय 'अथवा नकद प्रवाह परियोजना अधिकारियों के पास उपलब्ध होने से पूर्व निभाना पड़ता है, अतः परियोजना से संबंधित कुल नकद प्रवाह कर उत्तरदायित्व प्रदान करने के पश्चात् ही लिया जाता है। परंतु यह ब्याज से पूर्व क्यों होता है। इसके लिये कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है, ब्याज से पूर्व नकद प्रवाह का निर्धारण इसलिए किया जाता है क्योंकि परियोजना के नकद प्रवाह में कटौती करने के लिए अपेक्षित प्रतिफल दर में ब्याज भी सम्मिलत होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अपेक्षित प्रतिफल दर और कुछ नहीं बल्कि वित्त के विभिन्न स्रोत्रों जिसमें ऋण भी सम्मिलित है का भारित औसत लागत है। वर्तमान शुद्ध मूल्य के परिकलन के संबंध में, यह भी महत्वपूर्ण है कि किसी परियोजना से संबंधित नकद प्रवाह परियोजना के आर्थिक जीवन के काल में ही विचार में रखा जा सकता है। अन्य शब्दों में इसका अर्थ है कि एक परियोजना के नकद प्रवाह उसके उपयोगी एवं लाभदायक आर्थिक जीवन के दौरान ही

विचार के लिए जायेंगे एवं उसके भौतिक जीवन काल तक नहीं। एक निवेश परियोजना का आर्थिक जीवन उसके भौतिक जीवनकाल से छोटा होता है। वर्तमान शुद्ध मूल्य की तकनीक को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेंगे। परंतु उससे पूर्व हमें संक्षेप में वर्तमान शुद्ध मूल्य के परिकलन के लिए अपनाई गई कटौती की प्रक्रिया को समझना होगा।

शुरू करने के लिए यह याद रखना आवश्यक होगा कि वर्तमान मूल्य भविष्य मूल्य का कटौती मूल्य है। यह अधिक परिचित वर्तमान राशि की मिश्रित मूल्य का विपरीत होता है। अतः वर्तमान मूल्य की भविष्य राशि की कटौती द्वारा परिकलन की प्रक्रिया को समझने के लिए, हम चक्रवृद्धि ब्याज के सूत्र से जो कि आपने विद्यालय में पढ़ा होगा, आरंभ करेंगे। आपको याद होगा कि एक रुपया 100 रुपयों की राशि (Po=100 #i,) का अगर एक वर्ष ;(n=1) के लिए 10 प्रतिशत ब्याज की दर से निवेश किया जाये तो एक वर्ष के पश्चात् वह 110 रुपये तथा दो वर्षों के अंत में यह 121 रुपये हो जायेगा तथा यह राशि तीन, चार, पांच अथवा इससे अधिक वर्षों के अंत में क्या हो जायेगा? यह निम्न सूत्र के साथ आसानी से जाना जा सकता हैः

$P_1 = P_0 (1+r)^n$

जहां पर P_1 = एक वर्ष के अंत में भविष्य राशि है।

P_0 = वर्तमान राशि है।

r = ब्याज की दर है।

n = समयावधि है।

अतः एक वर्ष के अंत में यह हो जायेगा

$P_1 =100 (1+ 10)^1 = 110$

दो वर्षों के अंत में यह हो जायेगा।

$P_2 =100 (1+ 10)^2 = 121$

$P_3 =100 (1+ 10)^3 = 133.10$

$P_4 =100 (1+ 10)^4 = 146.41$

$P_5 =100 (1+ 10)^5 = 161.05$

इसी प्रकार से आप वर्तमान राशि का भविष्य मूल्य किसी भी समयावधि के अंत में एक दी गई ब्याज दर पर निकाल सकते है।

अब अगर हम इन परिकलनों पर अन्य प्रकार से देखें तो हम कह सकते हैं कि 100 रुपये इस वर्ष के अंत में मिलने वाली 110 रुपयों की राशि का वर्तमान मूल्य है जहां पर कटौती की दर 10 प्रतिशत है। अथवा 100 रुपये दो वर्ष के अंत में 10 प्रतिशत कटौती की दर से मिलने वाली 121 रुपयों की राशि का वर्तमान मूल्य है। तथा 100 रुपये 5 वर्ष के अंत में 10 प्रतिशत कटौती की दर से मिलने वाली 161.05 की राशि का वर्तमान मूल्य है। इसे एक सूत्र के रुप में रखे तो: जहां पर चिन्ह (16.1) के समान की महत्त्व रखते हैं। अतः एक वर्ष के अंत में 10 प्रतिशत की कटौती दर से 110 रुपयों का वर्तमान मूल्य है: = 100 (1 + 10) = 110 एक भविष्य राशि के वर्तमान मूल्य का निर्धारण करने के लिए आप वर्तमान मूल्य सूत्र की मदद से गणनाओं के समय खर्च करने की बजाय, आप वर्तमान मूल्य सारणी का उपयोग कर सकते हैं।

आईये अब हम वर्तमान शुद्ध मूल्य तकनीक के अध्ययन के लिए एक विशिष्ट उदाहरण लेकर करें।

उदाहरण-1 एक सार्वजनिक संस्था एक निवेश परियोजना पर विचार कर रही है जिसका नकद प्रवाह निम्न प्रकार से है-

वर्ष	1	2	3	4	5
नकद प्रवाह (लाख रुपये)	8	20	15	10	5

अगर अपेक्षित प्रतिफल की दर 15 प्रतिशत प्रति वर्ष है, तो इस परियोजना को स्वीकृति किया जाये अथवा नहीं ?
आइये पहले हम इस मामले के तथ्यों को समझें। उपरोक्त तथ्य यह दर्शाते हैं कि सार्वजनिक संस्था एक परियोजना पर विचार कर रही है जिसमें आरंभ में नकद 30 लाख रुपयों, की जरूरत होगी।
परियोजना की पांच वर्षों की अवधि में यह प्रत्येक वर्ष क्रमशः 8 लाख रुपये 20 लाख रुपये, 15 लाख रुपयें, 10 लाख रुपये एवं 5 लाख रुपये पैदा करेगी। कुल नकद प्रवाह के यह आंकड़ें मूल्यह्रास एवं ब्याज से पूर्व परंतु करों के पश्चात् की राशि दर्शाते हैं। यह आंकड़ें परियोजना के आरंभ होने के पश्चात् की शुद्ध नकद लागत भी है एवं परियोजना के अंत में उपलब्ध अवशिष्ट मूल्य अथवा शेष बचा हुआ मूल्य भी है।
अब, इस परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिये सार्वजनिक संस्था निम्न प्रकार से एक सारणी तैयार करेगी-

परियोजना वर्ष	कुल नकद प्रवाह	वर्तमान साधन वर्तमान मूल्य (लाख रुपयों में)	मूल्य 15% पर (लाख रुपयों में)
0	-30	1.000	-30.00
1	8	0.870	6.96
2	20	0.756	15.12
3	15	0.658	9.87
4	10	0.572	5.72
5	5	0.497	2.49

आपने नोट किया होगा कि इस परियोजना का वर्तमान कुल मूल्य 10.16 लाख रुपये है अतः इसे कार्यान्वयन के लिए स्वीकृति किया जा सकता है। अब मान लीजिए कि सार्वजनिक संस्था के पास चार परियोजना प्रस्ताव विचारधीन थे, जिनका कुल मूल्य निम्न प्रकार से था-

परियोजना	वर्तमान शुद्ध मूल्य (लाख रुपयों में)
A	10.16
B	**-8.64**
C	9.50
D	12.50

वर्तमान मूल्य की तकनीक के अनुसार सार्वजनिक संस्था को A C एवं D परियोजनाओं को स्वीकृति कर देना चाहिए, अगर उसके पास इन्हें कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक धन राशि है। परियोजना B को इसलिये स्वीकृत नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उसका वर्तमान शुद्ध मूल्य ऋणात्मक है। अब अगर वित्त के अभाव के कारण सार्वजनिक संस्था को कोई एक परियोजना स्वीकृत करनी हो तो परियोजना D को स्वीकृत किया जाना चाहिए क्योंकि उसका वर्तमान कुल मूल्य सबसे अधिक है। अतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान कुल मूल्य तकनीक द्वारा परियोजना मूल्यांकन के अनुसार धनात्मक वर्तमान कुल मूल्य वाली परियोजना स्वीकृत की जानी चाहिए। अगर एक से अधिक परियोजनाओं में चुनाव करना हो तो अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य वाली परियोजना

को स्वीकृत किया जाना चाहिए। आंतरिक प्रतिफल दर तकनीक के अंतर्गत हम वह कटौती दर निकालते हैं जिस पर समस्त भविष्य कुल नकद प्रवाह का कुल वर्तमान मूल्य आरंभिक नकद प्रवाह के बराबर होता है, अन्य शब्दों में कुल वर्तमान मूल्य शून्य होता है। यह **कटौती दर आंतरिक प्रतिफल की दर** कहलाती है। इस तरह सबसे प्राप्त आंतरिक प्रतिफल दर की तुलना अपेक्षित प्रतिफल दर से की जाती है जिससे कि परियोजना की स्वीकार्यता का पता चल जाये। निणर्य नियम एकदम सरल है। अगर आंतरिक प्रतिफल की दर अपेक्षित प्रतिफल के बराबर अथवा उससे ज्यादा है तो परियोजना स्वीकार कर ली जाती है अथवा नहीं आंतरिक प्रतिफल दर का परिकलन करने के लिए परीक्षण प्रणाली को अपनाना पडता है। आइये हम एक मामले का अध्ययन उदाहरण के लिये करें।

उदाहरण-2 सार्वजनिक संस्था के पास एक निवेश परियोजना विचाराधीन है जिसके अनुमानित शुद्ध नकद प्रवाह निम्नलिखित हैं-

वर्ष	1	2	3	4	5	6
शुद्ध नकद प्रवाह (लाख रुपयों में)	-50	20	17.5	15	12.5	10

अगर अपेक्षित प्रतिफल की दर 15 प्रतिशत है तो क्या सार्वजनिक संस्था को यह परियोजना स्वीकृत करनी चाहिये अथवा नहीं ? आंतरिक प्रतिफल दर तकनीक के अंतर्गत पहले कदम के रूप में हम उस कटौती दर को ढूढ़ने का प्रयत्न करेगें जो कि भविष्य की सभी नकद प्रवाह के वर्तमान मूल्य को आस्मिक नकद बाहिर्वाह यानी कि इस मामलों में 50 लाख रुपयों के बराबर करती हो अथवा शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य है। इसलिए इसे परीक्षण प्रणाली कहते हैं। आइये, शुरुआत के तौर पर हम 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष कटौती दर से परीक्षण करें परिणामों को निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है-

परियोजना वर्ष	कुल नकद प्रवाह	वर्तमान साधन वर्तमान मूल्य (लाख रुपयों में)	मूल्य 20% पर (लाख रुपयों में)
0	-50	1.000	-50.00
1	20	0.833	16.66
2	17.5	0.694	12.15
3	15	0.579	8.69
4	12.5	0.482	6.02
5	10	0.402	4.02

कुल वर्तमान मूल्य = -2.46

आपने यह देखा होगा कि 20 प्रतिशत कटौती दर पर वर्तमान कुल मूल्य शून्य नहीं है। वह -2.46 है। अतः हमें किसी ओर कटौती दर से परीक्षण करना होगा। अब क्या वह 20 प्रतिशत से अधिक होना चाहिए अथवा कम? वह 20 प्रतिशत से कम होनी चाहिये क्योंकि हमने 16.6.1 में पाया था कि कटौती दर के कम होने से वर्तमान मूल्य बढ़ता है एवं इसके विपरीत होता है। आइये अब हम 16 प्रतिशत कटौती दर से प्रयत्न करें।

परियोजना वर्ष	कुल नकद प्रवाह	वर्तमान साधन वर्तमान मूल्य (लाख रुपयों में)	मूल्य 20% पर (लाख रुपयों में)
0	-50	1.000	-50.00
1	20	0.862	14.24

2	17.5	0.743	13.00
3	15	0.641	9.62
4	12.5	0.552	6.90
5	10	0.476	4.76

वर्तमान कुल मूल्य = -1.52

हम पाते हैं कि 16 प्रतिशत कटौती दर पर भी वर्तमान कुल मूल्य शून्य नहीं है। परंतु अब एक चीज स्पष्ट हो गई कि वह कटौती दर जिस पर भविष्य के समस्त नकद प्रवाह का वर्तमान मूल्य आरंभिक नकद लागत के बराबर हो जाएगा (अथवा वर्तमान शुद्ध मूल्य शून्य हो जायेगा) 16 प्रतिशत एवं 20 प्रतिशत के मध्य में स्थित है परंतु उस निश्चित दर को कैसे प्राप्त किया जाये ? क्या हम 16 प्रतिशत एवं 20 प्रतिशत के मध्य कोई और कटौती दर का परीक्षण कर सकते हैं। निश्चित रूप से, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम अपनी उपलब्ध जानकारी की मदद से सुनिश्चित कटौती दर अन्तर गणन सूत्र की सहायता से प्रदान कर सकते हैं। अन्तर गणन सूत्र निम्न प्रकार से हैः

आंतरिक प्रतिफल दर जहां पर,

= कटौती की निचली दर (उपयोग में लाई दो दरों में से)

= कटौती की उच्च दर (उपयोग में लाई दो दरों में से)

= निचली कटौती दर पर वर्तमान शुद्ध मूल्य (धनात्मक अथवा ऋणात्मक चिन्ह को हटा कर)

= उच्च कटौती दर पर वर्तमान शुद्ध मूल्य (धनात्मक/ऋणात्मक चिन्ह को हटाकर)

आइये अब हम उपयोग सूत्र में संख्या मूल्यों का प्रतिस्थापन करके आंतरिक प्रतिफल दर निकालें

आंतरिक प्रतिफल दर

$$= 16 + \frac{1.52}{1.52 + 2.46} \times (20 - 16)$$

$$= 16 + \frac{1.52}{3.98} \times 4$$

$$= 16 + 1.53 = 17.53$$

अतः इस परियोजना की आंतरिक प्रतिफल दर 17.53 है। चूंकि अपेक्षित प्रतिफलज दर 15 प्रतिशत है, परियोजना जिसकी आंतरिक प्रतिफल दर 17.53 प्रतिशत है। निश्चित रूप से स्वीकार्य है।

14.2.5.2 लागत लाभ अनुपात

वर्तमान कुल मूल्य एवं आंतरिक प्रतिफल दर के अलावा वित्तीय मूल्यांकन के लिए लागत लाभ अनुपात अथवा लाभदेयता सूचकांक प्रणाली का भी उपयोग कर सकते हैं। सभी तकनीक के अंतर्गत परियोजना के आर्थिक जीवन के दौरान शुद्ध नकद अन्तर्वाह का वर्तमान मूल्य शुद्ध नकद बाहिर्वाह के वर्तमान मूल्य के अनुपात के रूप में दर्शाया जाता है।

इसका सूत्र है: कुल नकद बाहिर्वाह का वर्तमान मूल्य/ कुल नकद अन्तर्वाह का वर्तामान मूल्य *100

उदाहरण में लिये गये परियोजना आंकड़ों से लागत लाभ अनुपात निम्न प्रकार से निकाला जा सकता है:

$$= \frac{40.16}{40} \times 100 = 1.34 = 134\%$$

अतः लागत लाभ अनुपात एक अनुपात (अथवा प्रतिशत) के में निकाला जा सकता है। लागत लाभ अनुपात का उपयोग एकदम सरल है। एक परियोजना स्वीकृति होती है यदि लागत लाभ अनुपात एक या एक सौ प्रतिशत से

अधिक हो। लागत लाभ अनुपात के आधार पर अगर एक लागत लाभ अनुपात से अधिक परियोजना में से चुनाव करना हो तो, नियम यह है कि जितना उच्च अनुपात हो उतना ही बेहतर है।

हम वित्तीय मूल्यांकन पर अपने विचार विमर्श को यह कहकर समाप्त करते हैं कि उपरोक्त व्याख्यायित तीनों तकनीकें समान रूप से लोकप्रिय हैं तथा अधिकांश रूप से संयोजन द्वारा न कि अलग-अलग उपयोग में लाई जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. वर्तमान मूल्य भविष्य मूल्य का ……… है।
2. वर्तमान कुल मूल्य तकनीक द्वारा परियोजना मूल्यांकन के अनुसार ………….. परियोजना स्वीकृत की जानी चाहिए।
3. अगर एक से अधिक परियोजनाओं में चुनाव करना हो तो ……...परियोजना को स्वीकृत किया जाना चाहिए।
4. आंतरिक प्रतिफल दर तकनीक के अंतर्गत हम वह कटौती दर निकालते हैं जिस पर समस्त भविष्य कुल नकद प्रवाह का कुल वर्तमान मूल्य ……………के बराबर होता है।
5. कटौती दर …………कहलाती है।
6. आंतरिक प्रतिफल की दर अपेक्षित प्रतिफल के बराबर अथवा उससे ज्यादा है तो परियोजना ………………कर ली जाती है।

14.3 सारांश

वर्तमान इकाई में हमने सार्वजनिक निवेश के उद्देश्यों एवं महत्व की व्याख्या की है। जबकि व्यापक अर्थोंत में सार्वजनिक निवेश का उद्देश्य "अधिकतम जनता को अधिकतम लाभ" पहुँचाना है, विशिष्ट अर्थों में इसका उद्देश्य एक प्रजातांत्रिक राज्य में सार्वजनिक निवेश की सामाजिक उपयोगिता अथवा सामाजिक लाभ को अधिकतम बनाना है। यह नोट किया गया है कि सार्वजनिक निवेश का आकार, प्रतिरूप एवं प्रकार विभिन्न कारकों जैसे कि आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति, अर्थव्यवस्था के विकास का स्तर, अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ इत्यादि पर निर्भर करते हैं। सार्वजनिक निवेश निर्णय निर्माण प्रक्रिया के दोनों समष्टि एवं व्यष्टि आयाम हैं तथा इसमें विभिन्न सरकारी अभिकरण सम्मिलित हैं। परियोजना स्तर पर, परियोजना मूल्यांकन में आवश्यक रूप से आंकड़े एकत्र करना एवं परितुलन, लागत का अनुमान, लाभ एवं लाभदेयता तथा परियोजना चुनाव मापदण्ड अथवा अपेक्षित प्रतिफल दर से उसकी तुलना करके यह निर्णय लिया जाता है कि परियोजना को अपनाया जाये अथवा नहीं। परियोजना मूल्यांकन के कई आयाम हो सकते हैं जैसे कि तकनीकी, वित्तीय, आर्थिक अथवा सामाजिक एवं प्रबंधकीय। वित्तीय मूल्यांकन जो कि इस इकाई का मुख्य केंद्र बिंदु है, परियोजना की व्यवसायिक व्यवहार्यता को परखता है। शुद्ध वर्तमान मूल्य आंतरिक प्रतिफल दर एवं लागत लाभ अनुपात वित्तीय मूल्यांकन को तीन व्यापक रूप से उपयोग में आने वाली तकनीकें हैं। इस इकाई के पश्चात् हम इकाई 15 में परियोजना के आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की विस्तृत रूप से व्याख्या करेंगे।

14.4 शब्दावली

आर्थिक और सामाजिक मूल्यांकन- परियोजना की आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन निर्धारण की प्रक्रिया।

वित्तीय मूल्यांकन- परियोजना की व्यावसायिक व्यवहार्यता या लाभकारिता निर्धारण की प्रक्रिया।

प्रबंधकीय मूल्यांकन- परियोजना के पीछे प्रबंधन समूह के समर्थन की निष्ठा और क्षमता निर्धारण की प्रक्रिया।

परियोजना मूल्यांकन- किसी निवेशित परियोजना की स्वीकार्यता को आँकने की प्रक्रिया।
तकनीकी मूल्यांकन- परियोजना की तकनीकी व्यवहार्यता निर्धारण की प्रक्रिया।

14.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कटौती मूल्य **2.** धनात्मक वर्तमान कुल मूल्य वाली **3.** अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य वाली **4.** आरंभिक नकद प्रवाह **5.** आंतरिक प्रतिफल की दर **6.** स्वीकार्यता

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dasgupta, A.K. and Pearce, D. W., 1972, Cost-Benefit Analysis-Theory and Practice, Macmillan, London.
2. Layard, R. (ed.), 1 972, Cost-Benefit Analysis, Penguin, Harmonsworth.
3. Little, I.M.D. and Mirrlees, J.A., 1990. Project Appraisal and Planning for Developing Countries, Heinemann Educational Books, London.
4. Pearce, D. W, and Nash, C.A., 198 1. The Social Appraisal of Projects: A Text in Cost Benefit Analysis, Macmillan, London.
5. Perkins, Frances. 1952, Practical Cost-Benefit Analysis: Basic Concepts and Applications, Macmillan, Australia.
6. Squire, L. and Van der Tak, H.G., 1975, Economic' Analysis of Projects, Johns Hopkins University Press, Baltimore.
7. UNIDO, 1972. Guidelines for Project Evaluation, United Nations, New York.

14.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. C.P. Kindleberger and Herick, Economic Development, 2/e, 1965.
2. Simon Kuznets, 'Economic Growth and Income Inequality, "AER. March
3. 1955.
4. Simon Kuznets, "Qualitative Aspects of Economic Growth of Nations: Distributions of Income by Size, "Economic Development and cultural Change, January 1963.

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. किसी परियोजना का वित्तीय विश्लेषण कब करना चाहिए?
2. किसी परियोजना के वित्तीय विश्लेषण में कुल वर्तमान मूल्य का मूल्यांकन कैसे करेंगे?
3. किसी परियोजना के वित्तीय विश्लेषण में लागत लाभ अनुपात का मूल्यांकन कैसे करेंगे?

इकाई-15 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन

इकाई की संरचना

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन
15.2.1 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की आवश्यकता
    15.2.1.1 बाजार विकृतियां
    15.2.1.2 बाह्यताए
    15.2.1.3 सामाजिक वस्तुएं
    15.2.1.4 कर
15.2.2 व्यावसायिक लाभदेयेयता की सीमाएं
15.2.3 राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयेयता
15.2.4 लाभ एवं लागत
15.2.5 सकल राष्ट्रीय लाभदेयता
15.2.6 सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण
    15.2.6.1 लागत एवं लाभ की माप
    15.2.6.2 छाया कीमतें
    15.2.6.3 सामाजिक भार
    15.2.6.4 सामाजिक ब्याज दर
15.3 सारांश
15.4 शब्दावली
15.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.7 उपयोगी पाठ्य सामग्री/सहायक
15.8 निबन्धात्मक प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

इकाई-14 में हमने परियोजना विश्लेषण तथा मूल्यांकन की तकनीकों एवं संकल्पनाओं की व्याख्या की है। उनमें चर्चा का केंद्र बिन्दु मुख्यतः एक परियोजना से संबंधित नकद अन्तर्वाह एवं बहिर्वाह ही थे। निर्विवाद रूप से, मूल्यांकन की तकनीक उन परिणामवाचक एवं मौद्रिक लाभों एवं लागतों से संबंधित थी जो कि परियोजना अधिकारी अथवा उद्यम को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होते थे। परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अन्य कोई प्रासंगिक विचारणीय मुद्दे नहीं हैं। वास्तव में, विभिन्न आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण से संबंधित विचार अर्थात गैर वित्तीय विचार कुछ स्थितियों में वित्तीय विचारों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

वित्तीय प्रतिफलनों के अतिरिक्त, अर्थात परियोना से परियोजना अधिकारियों को होने वाले प्रत्यक्ष लाभों के अतिरिक्त एक परियोजना से संबंधित कुछ गैर वित्तीय प्रतिफल भी होते हैं जो व्यापक रूप से आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरणीय लागत एवं लाभ होते हैं। ये समस्त समाज अथवा अर्थव्यवस्था को प्राप्त होते हैं। परियोजना के आर्थिक लाभ एवं लागत देश की अर्थव्यवस्था को परियोजना से होने वाले अवसर लागत एवं लाभ होते हैं।

क्षेत्रीय अवसर लागत यह आय या प्रतिफल हानि है जो कि निवेश के वैकल्पिक उपयोग के कारण होती है। अवसर लाभ निवेश के वैकल्पिक उपयोग से होने वाली अतिरिक्त आय अथवा प्रतिफल है। परियोजना की सामजिक लागत एवं लाभ समाज के विभिन्न वर्गों को को होने वाली हानियों अथवा लाभों के रूप में देखे जा सकते हैं। पर्यावरण लाभ एवं लागत भी परियोजना के महत्वपूर्ण गैर वित्तीय पहलू हैं। पिछली इकाई में चर्चित वित्तीय मूल्यांकन परियोजना के आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी आयामों को कितना आच्छादित करता है?

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन के विषय में जान पायेंगे।
- आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन आवश्यकता क्यों है, इसे समझ पायेंगे।

15.2 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन

आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

15.2.1 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की आवश्यकता

हम यह समझ सकते हैं कि परियोजनाएं समाज, या जीवन से अलग-अलग नहीं होती हैं। उनका एक सामाजिक संदर्भ होता है। भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में निवेश परियोजना अधिकतर आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय स्थापित करने के साधन के रूप में देखें जाते हैं। लोक निवेश परियोजनाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सामान्य लाभ में अधिकतम सहयोग प्रदान करेगी। क्या वर्तमान कुल मूल्य जैसे वित्तीय मूल्यांकन के मापदण्ड अधिकतम जनसंख्या को अधिकतम लाभ सुनिश्चित करते हैं। इस प्रश्न के उत्तर का कुछ भाग समाज के आर्थिक एवं औद्योगिक संगठन पर निर्भर करता है। सामान्यतः वर्तमान शुद्ध मूल्य विश्लेषण के लिए उपयोग में लाई गई कीमतें एवं लागतें आर्थिक मूल्यों का सही प्रतिबिंब है तो कुल वर्तमान लागत का नियम समाज के कुल आर्थिक कल्याण को अधिकतम बनाता है। अगर कीमतें एवं लागतें आर्थिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करने में असफल होती हैं तो यह निष्कर्ष लागू नहीं होगा। वस्तुतः ऐसे असंख्य कारण होते हैं जो एक ओर तो आर्थिक मूल्यों एवं दूसरी ओर प्रतीमान कीमतों एवं लागतों के मध्य विसंगतियों उत्पन्न करते हैं। आइये हम उनमें से कुछ का अध्ययन करें।

15.2.1.1 बाजार विकृतियां (Market Distortion)

विकृति का सबसे सामान्य रूप अधिशेष श्रम अर्थव्यवस्था के श्रम बाजार में पाया जाता है, जहां पर मजदूरी की दर श्रम की सामाजिक अवसर लागत के समान नहीं होती। अर्थव्यवस्था के आधुनिक संगठित क्षेत्रों में (आधुनिक उद्योग एवं वाणिज्य, सरकार एवं बागान) श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी (श्रमिक भूमिहीन हो अथवा नहीं हो सकता है) ग्रामीण क्षेत्रों में दी जाने वाली मजदूरी से कहीं अधिक होती है। अतः संगठित क्षेत्रों में श्रमिकों का लागत मूल्य ग्रामीण क्षेत्रों से कहीं अधिक है अगर हम यह मान लें कि संगठित क्षेत्रों में श्रम का मुख्य स्रोत्र ग्रामीण (कृषि) क्षेत्र है जैसा भारत के अधिकांश भागों में विद्यमान है। अतः आधुनिक संगठित क्षेत्रा में दी जाने वाली मजदूरी श्रम की समाज के प्रति अवसर लागत का प्रतिनिधित्व नहीं करती है।

भारत एवं शायद कई अन्य विकासशील देशों में पूँजी बाजार अपूर्ण माने जाते हैं। जिसका प्रमाण ब्याज दर की एक विस्तृत श्रेणी का विद्यमान होना है। उदाहरण के लिए, भारत में विभिन्न संगठित क्षेत्रा वित्तीय संस्थानों द्वारा ली गई

ब्याज दर पारंपरिक मुद्रा बाजार (ग्रामीण ऋण दाता, व्यापारी जमींदार इत्यादि) से सर्वथा विभिन्न है। जहाँ पर जोखिम समान हो वहां ब्याज दर भी समान होनी चाहिये। परंतु ऐसा कम ही होता है, क्योंकि सरकार पूंजी बाजार के स्वतंत्रा कार्य करने में हस्तक्षेप करती है तथा कई अन्य अपूर्णतायें भी होती हैं। एक अन्य मुख्य कारण जो विश्व बाजार के साथ आर्थिक एकीकरण को रोकता है वह सरकारी व्यापारी नीति है। कई विकासशील देशों में (जिनमें भारत भी सम्मिलित है) सरकारें कई प्रकार के सीमा शुल्क, आयात प्रतिबंध तथा कई बार तो निर्यात प्रतिबंध अथवा रोक लगा देती है। सीमा शुल्क एवं प्रतिबंध जो आयात पर लगायें जाते हैं वह घरेलू कीमतों को उनकी लागत जमा बीमा तथा वाहन शूल्क कीमतों से कहीं अधिक बढ़ा देती है। निर्यात प्रतिबंध एवं कोटा एक विपरीत दिशा में कार्य करते हैं। बहुधा एक संरक्षित उद्योगों के उत्पादन अन्य घरेलू उद्योगों के लिए कच्चे माल का काम करते हैं। यह परवर्ती उद्योगों के लिये निर्यात निरूत्साहन का कार्य करती है। सरंक्षण से कई बार घरेलू कीमत स्तर इतने बढ़ जाते हैं कि संरक्षित उद्योगों के मूल्य योग अनुपात उससे कहीं अधिक होते हैं जो संरक्षण के अभाव में हो। मुद्रा अधिमूल्यन कई विकासशील देशों का आम लक्षण है, तथा उपरोक्त संरक्षण उपायों में प्रतिबिंबित होता है। अगर विनियम दर (जो सरकार द्वारा नियंत्रित होती है) मुद्रास्फीति के अनुरूप नहीं बदली जाती तो आयात एवं निर्यात की कीमतें घरेलू बाजार की कीमतों की तुलना में अत्याधिक कम हो जाती है। इससे विदेशी मुद्रा की भारी माँग हो जाती है, तथा कई बार महत्त्वपूर्ण विश्व मुद्राओं की बाजार कीमत ज्यादा हो जाती है जो विनियम की बैंक दर से भिन्न होती है। सरकार वित्त उपलब्ध करनें के एक साधन के रूप में कर का स्वतंत्रा रूप में उपयोग करती है। करों द्वारा विशेषतः वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष करों द्वारा उपभोग वस्तुओं का घरेलू कीमत स्तर काफी बढ़ जाता है। बहुधा मध्यवर्ती वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता है जिससे अंतिम उत्पादों की कीमतें और भी बढ़ जाती हैं। दूसरी और अनुदान कीमत स्तर को नीचे गिरा देते हैं। कर लगाई गई अथवा अनुदान दी गई वस्तुओं की बाजार कीमतें उनकी सही सामाजिक लागत को नहीं दर्शाती है जिसमें उसकी खरीद बिंदु के समय उपलब्ध उसे उत्पादित करने में लगे साधनों की अवसर लागत ही सम्मिलित होती है। अतः हम यह पाते हैं कि उपरलिखित कारणों की वजह से बाजार कीमतें आर्थिक कीमतों से भिन्न होती हैं।

15.2.1.2 बाह्यताए (Externalities)

अधिकांश ऐसा होता है कि एक नई परियोजना आरंभ करने पर इसके आस-पास की आर्थिक गतिविधियों में कई परिवर्तन अथवा प्रतिक्रियाएं उत्पन्न हो जाए। ये सकारात्मक भी हो सकती हैं और नकारात्मक भी हैं। नकारात्मक पहलू क्षेत्रा में अन्य आर्थिक गतिविधियों के कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, अर्थात् सामाजिक लागतों का निर्माण करती है। सकारात्मक पहलू नई आर्थिक गतिविधियों एवं अतिरिक्त लाभ उत्पन्न करती हैं। इन अंतः संबंधों को बाह्यताएं भी कहा जाता है। संक्षेप में, बाह्यताएं उन लागतों एवं लाभों की ओर संकेत करती है जिनका निजी फर्म अपने वर्तमान कुल मूल्य विश्लेषण में नजर अंदाज कर देती है (जैसा कि वह लागत एवं लाभ जो कि फर्म के लिए तो बाह्य है परंतु समाज के लिए आंतरिक है)। इसके कई दर्जन उदाहरण है परंतु यहां पर केवल दो ही पर्याप्त होंगे।

माना कि एक इस्पात मिल का निर्माण किया जाता है, जिस स्थान पर वह बनाई जायेगी वहाँ के आस-पास की हवा तथा जल को दूषित करेगी। इसके बावजूद मिल की यह गंदगी वातावरण में छोड़ने की स्वतंत्राता प्राप्त होगी। प्रदूषण के लिए कोई शुल्क अथवा दण्ड नहीं होगा। अतः इस्पात कंपनी, गंदगी फैकनें की व्यवस्था का चुनाव करते समय यह मान लेगी कि पर्यावरण सुरक्षा की कोई लागत नहीं है, और उसी के अनुसार अपना आकलन करेगी तथा मिल बनाने का निणर्य लेगी। तथापि प्रदूषण के परिणामस्वरूप समाज को वास्तविक लागतें उत्पन्न होगी चूंकि कंपनी उन्मुख वर्तमान कुल मूल्य विश्लेषण इन लागतों को नजर अंदाज करेंगे। इससे यह निष्कर्ष

निकलता है कि फर्म के लिये वर्तमान कुल मूल्य के अधिकतम होने से यह जरूरी नहीं कि समाज कल्याण भी अधिकतम हो।

एक अन्य वैकल्पिक स्थिति लें। मान लें। मान लें कि श्रम लागत दिल्ली की तुलना में गुड़गांव में थोड़ी कम है। अतः एक नये निवेश को लागू करने पर, फर्म गुड़गांव में एक नई फैक्ट्री लगाने का निर्णय लेगी। परंतु इससे दिल्ली में बेरोजगार हुए व्यक्तियों को संभालने के लिए समाज पर पड़ने वाली उच्च संभावित लागत का क्या होगा ? यह लागतें फर्म के लिए बाह्य है परंतु समाज के लिए आंतरिक हैं, यहाँ पर फर्म का वर्तमान कुल मूल्य अधिकतम होने से समाज का आर्थिक कल्याण नहीं बढ़ेगा।

15.2.1.3 सामाजिक वस्तुएं (Social Goods)

ऐसी कई वस्तुएं होती हैं, जैसे कि शिक्षा, संस्कृति, शांति, सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं आधारभूत वैज्ञानिक अनुसंधान, जिन पर समाज उच्च मूल्य लगाता है, परंतु वह किसी न किसी कारणवश अपने मूल्य के बराबर बाजार कीमत नहीं जुटा पाते। अगर इनमें निवेश करने के लिए वर्तमान कुल मूल्य ही अकेला मापदण्ड हो तो समाज इन क्षेत्रों से संभवतः इतना कम निवेश करें कि इनकी संभावित क्षति ही हो। अतः समाज की उच्च आर्थिक अधिकतम की ओर ले जाने के लिये, वर्तमान कुल मूल्य नियम को परिवर्तित करना होगा।

15.2.1.4 कर (Tax)

अंतिम तथा अत्यधिक मुश्किल घटक निगम कर है। वर्तमान कुल मूल्य को अधिकतम करने के लिए, फर्मे वास्तविक रूप में करों के पश्चात् होने वाले नकद, प्रवाहों के पक्ष में सोचती हैं। अधिकतर मामलों में वर्तमान कुल मूल्य को करों के पश्चात् अधिकतम करने पर भी वही परिणाम आते हैं जो कि करों को घटाने से पूर्व करने पर आयें। परंतु कभी-कभी विवाद भी उत्पन्न हो सकता है जब कर पश्चात् वर्तमान कुल मूल्य के कुछ और परिणाम आते हैं एवं कर पूर्व वर्तमान कुल मूल्य नियम का अनुसरण करने पर कुछ अन्य कार्यविधि अपनानी पड़ती है। कर पूर्व अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य उस विकल्प का चुनाव करता है जो संपूर्ण समाज के लिए लाभदायक हो, जबकि कर पश्चात् अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य उस विकल्प का चुनाव करता है जो फर्म को अधिकतम लाभ पहुँचाये। अतः हमारे पास एक अन्य उदाहरण है जिसमें एक स्पष्ट संभावना है कि कर पश्चात् अधिकतम शुद्ध मूल्य नियम सामाज कल्याण को अधिकतम नहीं बनायेगा।

ऊपर दिए गए चारों स्रोत्रों, वर्तमान कुल मूल्य निवेश नियम एवं अधिकतम सामाजिक लाभ में उत्पन्न होते हैं, आधुनिक बाजार अर्थव्यवस्थाओं में विद्यमान है। वास्तविक प्रश्न यह है कि इस स्थिति के बारे में क्या किया जा सकता है ? क्या निवेश मापदंड के रूप में वर्तमान कुल मूल्य का त्याग कर देना चाहिये। सही उत्तर यह है कि यह नियम अधिकतम निवेश निर्णयों के लिए अन्य विकल्पों से बेहतर सिद्ध हुआ है अतः इसको बनाए रखना ही होगा। अधिकांश समय, फर्म का वर्तमान कुल मूल्य अधिकतम होने पर समाज का वर्तमान कुल मूल्य भी अधिकतम होता है, क्योंकि यही एक नियम है, जो महत्वपूर्ण एवं सीमित, साधन, यानी पूंजी का संभावित कुशलतम उपयोग करता है।

सोलोमन एण्ड प्रिगले ने यह पाया कि वित्त प्रबंध निर्णयों का अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य मापदंड समाज के आर्थिक कल्याण को बेहतर बनाने का कार्य किसी अन्य कार्यात्मक मापदंड से अधिक कुशल रूप में करता है। अतः यह समाज के आर्थिक कल्याण को अधिकतम बनाने के लिये एक आवश्यक शर्त है। परंतु यह अपने आप में समुचित शर्त नहीं है। समाज स्वयं ऐसी स्थितियों को बना (अथवा बिगाड़) सकता है जिनमें इस नियम को लागू करने पर कुल कल्याण का स्तर और अधिक ऊँचा उठ सकता है। एक समाधान जो कार्य नहीं करता वह है प्रबंधकों को यह अनुमति देना अथवा प्रोत्साहित करना कि वह साधनों का आबंटन अपने इस निजी अनुमान के आधार पर कर लें कि समाज के लिये वही अधिकतम लाभकारी होगा।

15.2.2 व्यावसायिक लाभदेयेयता की सीमाएं (Limitations of Professional profitability)

किन अर्थों में व्यावसायिक लाभदेयता के मापदंड राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयता से भिन्न होते है ?
ऐसा क्यों होता है कि व्यावसायिक लाभ बहुधा सामाजिक लाभों के बुरे मार्गदर्शक माने जाते हैं ? अगर दोनों हों मामलों में ढांचा "वर्तमान मूल्यों" का हो तो, स्पष्टतः व्यावसायिक लाभों एवं आर्थिक लाभों के मध्य अंतर किसी भी वर्ष में ब्याज की बाजार दर एवं समुचित सामाजिक कटौती दर के मध्य विसंगति का होगा। व्यावसायिक लाभ एक निश्चित अवधि में उपार्जन एवं लागतों के मध्य के मूल्यों का अंतर है।
उपार्जन बाजार कीमतों पर फर्म की प्रत्यक्ष मौद्रक आय होती है तथा लागतें बाजार भाव पर हुई लागत होती है। परियोजनाओं के आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन के लिए, आइये हम अधिक गहन विश्लेषण करें तथा जानने का प्रयत्न करें कि बाजार कीमतों का अर्थ क्या है, अर्थात् यह किसका प्रतिनिधित्व करती हैं ? अगर एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए 10 रुपये देने को तैयार है तो वह उससे कम से कम 10 रुपये के बराबर संतुष्टि पाने की अपेक्षा करता है। क्या इसका अर्थ यह है कि सामाजिक मूल्य भी 10 रुपये के बराबर है? यह आवश्यक नहीं है।
प्रथमतः एक व्यक्ति कितनी राशि देने को तैयार है यह उसकी आय पर निर्भर करता है। एक अमीर व्यक्ति नगण्य वस्तुओं के लिए अत्याधिक धन देने को तैयार हो सकता है, जबकि एक निर्धन व्यक्ति के लिए आवश्यकताओं पर भी छोटी से छोटी राशि खर्च करना मुश्किल हो सकता है। अतः बाजार कीमतें सामाजिक कल्याण का सही मापदण्ड नहीं हो सकती क्योंकि यह कीमतों पर आय वितरण के प्रभावों को भी दर्शाती है। एक व्यक्ति प्रत्युत्तर में यह पूछ सकता है कि अगर लोक नीति के संरक्षक वर्तमान आय वितरण को पसंद नहीं करते (उदाहरण के लिये अगर वह विद्यमान असमानताओं को नापसंद करती है) तो वह क्यों इसमें प्रत्यक्ष सुधार नहीं लाते ? एक बार वितरण में सुधार आ जाये तो परियोजना विश्लेषक मौद्रिक कीमतों को सरलता से कल्याण का मापदण्ड मान सकते हैं तथा आय वितरण के बारे में चिन्ता छोड़ सकते हैं। यह प्रत्युत्तर यद्यपि खोखला है, तथापि असहज नहीं है, चूँकि कई प्रतिरोध जैसे कि- राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक- आय वितरण में सुधारों को रोकते हैं तथा इन सीमाओं के कारण परियोजना मूल्यांकन इस धारणा पर नहीं आधारित हो सकते कि सभी समुचित आय पुनर्वितरित किये जा चुके हैं।
इसके अलावा आय पुनर्वितरण का एक सरल साधन परियोजना चुनाव भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, परियोजना "अ" जो कि एक निर्धन क्षेत्रा में लगाई जानी है तथा परियोजना "ब" जो कि एक धनी क्षेत्रा में लगाई जानी है के मध्य चुनाव करना है अथवा परियोजना "म" जो कि गरीब, अप्रशिक्षित श्रम का उपयोग करती हैं, एवं परियोजना "द" जो कि धनी लागों द्वारा पूर्ति किये गये उत्पादन साधनों का उपयोग करती है के मध्य चुनाव करना है। परियोजना चुनाव के वितरणीय परिणाम होते हैं, तथा कभी-कभी इस तरह से आय का पुनर्वितरण करना सामाजिक अथवा राजनीतिक रूप से अधिक व्यवहार्य हो सकता है बजाय इसके कि करों द्वारा अथवा अन्य प्रत्यक्ष साधनों द्वारा ऐसा किया जाए। अतः हमारे पास यह विधिसंगत तर्क है कि एक परियोजना से सामाजिक लाभों का मूल्यांकन करते समय वितरणीय प्रश्नों पर भी विचार किया जाये। यह एक व्यक्ति को तत्काल ही व्यवसायिक लाभदायकता से बाहर ले जाते हैं।
द्वितीय, एक परियोजना के ऐसे प्रभाव भी हो सकते हैं जो बाजार के बाहर कार्य करते हैं न कि उसके द्वारा कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, एक औद्योगिक परियोजना उस शहर में जहाँ वह स्थिति है अत्याधिक धूएं एवं प्रदूषित वायु का उत्पादन करती है अथवा एक फर्म उस क्षेत्रा की श्रम शक्ति को प्रशिक्षित करती हैं जबकि पहला प्रभाव अवांछनीय हो सकता है, तथा दूसरा प्रशसनीय, फर्म के लाभ में दोनों ही प्रतिबिंबित नहीं होंगें। खराब स्वास्थ्य अथवा पड़ोसियों के अरुचिकर जीवन की लागत व्यावसायिक लाभों को कम नहीं करती एवं प्रशिक्षण का लाभ भी फर्म को नहीं मिलता क्योंकि प्रशिक्षण के पश्चात् श्रमिक छोड़ कर जाने को स्वतंत्रा हैं। सह प्रभाव जो बाजार के

बाहर कार्य करते हैं बाह्यताएं या बाह्य कारक कहलाते हैं। यह व्यावसायिक लाभों की गणना में नहीं आते क्योंकि यह बाजार भाव पर निर्मित किये जाते हैं।

बाह्यताएं स्पष्ट रूप से सामाजिक चुनाव के लिए संगत तथा लोक नीति के मार्गदर्शक के रूप में व्यावसायिक लाभदेयता को नकारने के लिए समुचित तर्क प्रदान करती हैं। बाह्यताएं उत्पादक की प्रक्रिया में (उदाहरण के लिये उद्योगा कें द्वारा जल प्रदूषण) उपभोग प्रक्रिया में (उदाहरणतः अतिरिक्त कारों द्वारा सड़कों पर अतिसंकुलता) तथा विक्रय एवं वितरण की प्रक्रिया में (उदाहरणतः दुकानों पर भड़कीले प्रदर्शनों अथवा विज्ञापनों द्वारा समुदाय की शांति प्रभावित हो) उत्पन्न हो सकते हैं। बाह्यताएं बहुधा अधिकतम व्यापक होती हैं।

तृतीय, बाह्यताएं एवं आय पुनर्वितरण के आभाव के बावजूद व्यावसायिक लाभदेयता भ्रमित हो सकती है। अगर एक उपभोक्ता एक वस्तु के लिए 10 रुपये देने को तैयार है(तो वह उससे कम से कम 10 रुपये की संतुष्टि की अपेक्षा रखता है, परंतु वह उससे भी कहीं अधिक संतुष्टि की अपेक्षा रख सकता है। अगर हम किसी परियोजना द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बाजार मूल्य देखें तो हम अपेक्षित संतुष्टि के बराबर प्रवाह को माप पायें। परंतु तथ्य यह है कि उपभोक्ता इससे अधिक की अपेक्षा रखता है तथा पाता है। अगर हम एक परियोजना से कुल संतुष्टि के प्रश्न को आंकने का प्रयत्न करें, तो हमें उपभोक्ताओं द्वारा उत्पादन के लिए दी जाने वाली वास्तविक कीमत तथा तो वह देने को तैयार है के मध्य के अतिरेक का देखना होगा। यह अन्तर कभी-कभी उपभोक्ता अधिशेष कहलाता है। आय वितरण बाह्यताएं एवं उपभोक्ता अधिशेष के कारण व्यावसायिक लाभों को राष्ट्रीय लाभों के रूप में स्वीकार करना संभव हो जाता है। अन्य घटक भी है, परंतु उपरोक्त वर्णित कारण सामाजिक एवं निजी लाभों के मध्य के अंतर को स्पष्ट करने के लिए काफी हैं।

वर्तमान मूल्य अनुमानों का एक अन्य संघटक है सामाजिक कटौती दर। किसी भी दी गई लाभों की (चाहे निजी अथवा सामाजिक) श्रृंखला में वर्तमान मूल्य का आकार कटौती दर पर निर्भर करता है। कुछ ही वर्ष जीने की अपेक्षा रखता है तथा इस सीमितता द्वारा भविष्य के लिए की गई कटौती सामाजिक चुनाव के लिए उचित नहीं हो सकती, क्योंकि नियोजनकर्ता एक दीर्घकालिक दृष्टिकोण रखते हैं तथा भविष्य की पीढ़ी के कल्याण स्तर को ऊँचा करने को अधिक महत्त्व देते हैं।

15.2.3 राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयेयता (National Economic Profitability)

सामाजिक चुनाव का उद्देश्य सामाजिक लाभ को अधिकतम करना होता है, एवं सामाजिक लाभ की संकल्पना स्पष्ट रूप से तार्किक लोक नीति का आधारभूत घटक है, इसमें लोक परियोजनाओं का चुनाव भी सम्मिलित है। हम समाज के कुल लाभों का माप किस प्रकार से करते हैं ? स्पष्टतः हमें लागतों एवं लाभों की किसी ऐसी संकल्पना की आवश्यकता है जो कि हमें शुद्ध लाभों को कुल सामाजिक लाभों एवं कुल सामाजिक लागतों के अंतर के रूप में आंकलित करने में सहायता कर सकें। अगर हम समाज एवं राष्ट्र के मध्य तादात्म्य स्थापित कर लें तो इस अन्तर को उपयोगी रूप से राष्ट्रीय लाभ कहा जा सकता है।

लागतों एवं लाभों में वह सभी संबंधि घटक सम्मिलित होने चाहिये, जो हमारी दृष्टि से राष्ट्र कल्याण को प्रभावित करते हैं क्योंकि परियोजना चुनाव का उद्देश्य अधिकतम कल्याण होता है न कि केवल आर्थिक लाभों को अधिकतम करना। अतः हम अब आगे की चर्चा राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयता को सरलता से कुल राष्ट्रीय लाभदेयता के माप के रूप में, आर्थिक इकाइयों में अभिव्यक्त करेंगे। जबकि हमारे द्वारा चुनी गई ईकाइयाँ सुविधा के आधार पर चुनी गई हैं। तथा हमारे निर्णयों को प्रभावित नहीं करती, तथापि लागत एवं लाभों को किसी स्तरीय आर्थिक परिमाण में मापने के कुछ स्पष्ट परिकलन एवं अन्य लाभ हैं।

आइये हम लोक नीति के उन अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्यों के विवेचन से बात प्रारंभ करें जो कि परियोजना चुनाव के लिए प्रासंगिक समझे जाते हैं। हम उद्देश्यों एवं लाभों के मापों के मध्य संबंध को भी समझेंगें। हम राष्ट्र आर्थिक

लाभदेयता के एक मापदंड पाने की सामान्य समस्या, विभिन्न प्रकार के लाभों एवं लागतों जो विभिन्न उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से संबंधित है, व्यापक मापों का भी विवेचन करेंगे।

15.2.4 लाभ एवं लागत (Benefits and Cost)

एक बात यहाँ अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि लाभ एवं लागत का अन्तर एक चिन्ह ही है। लागत एक त्याग दिया गया लाभ है। अगर परियोजना "अ" दस लाख रुपयों के अतिरिक्त कुल उपभोग उत्पन्न करती है तो यह परियोजना "अ" के लाभों में से एक है। अब अगर परियोजना "अ" की बजाय परियोजना "ब" का चुनाव कर लिया जाता है जबकि उपयोग किये गये साधन एकदम एक से हैं, तब दस लाख रुपयों का कुल उपयोग परियोजना "ब" की प्रासंगिक लागत है। एक परियोजना के चयन से जिन लाभों का त्याग किया जाता है वह वास्तविक अर्थों में उसकी लागत हैं, अतः लागतों के माप करने एवं लाभों के माप करने में कोई स्पष्ट विश्लेषणात्मक अन्तर नहीं है। अतः आगे की चर्चा में हम उद्देश्यों को लाभों से संबंधित करेंगे तथा वह लागतों एवं उद्देश्यों के मध्य संबंधों को भी दर्शायेगा।

अब हम कुछ अधिक महवपूर्ण उद्देश्यों एवं उनके अनुकूल लाभों के माप की व्याख्या करेंगे।

1. **सकल उपभोग (Net Consumption)-** जीवन स्तर को उच्च बनाना राष्ट्रीय नियोजन का एक मूलभूत उद्देश्य है, एवं इसमें प्राकृतिक रूप से परियोजना चुनाव भी सम्मिलित है। जीवन स्तर के मापने का एक मुख्य आधार है प्रति व्यक्ति संकल उपभोग का स्तर। इस स्तर को ऋऊपर उठाने को सकल उपभोग उद्देश्य भी कह सकते हैं, जो कि स्पष्ट रूप से परियोजना चुनाव का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। अपनी प्राकृति से ही कुल उपभोग कुछ निश्चित मापन समस्याएं उत्पन्न कर देती है। समुच्चय के मामले में, प्रत्येक वस्तु पर सापेक्षिक भार उस कीमत को दर्शाते हैं जो उपभोक्ता उस के लिए देते हैं। अगर आवश्यक होता है तो इल कीमतों में सुधार किया जा सकता है एवं बाह्यताओं को सम्मिलित किया जाता है, परंतु इन विचारों को पृथक रूप से सम्मिलित करना अधिक सुविधाजनक होता है। इन सुधारों को किस प्रकार से लाया जाये यह कोई मुद्दा अथवा सिद्धान्त नहीं है परंतु यह एक सुविधा का विषय है जिसका विवेचन हम बाद में करेंगे। उपभोग को समय अनुसार एकत्रा करने का भी प्रश्न है।, जिसमें कटौती की समस्या भी सम्मिलित है, सामाजिक कटौती की समुचित दर वह दर है जिस पर निर्णय निर्माताओं को यह विश्वास कि भविष्य के लाभों को वर्तमान लाभों के बराबर लाने के लिए किस दर पर घटाना चाहिए। सामाजिक कटौती दर अगर दी हुई हो तो परियोजना मूल्यांकनकर्ता समस्त उपभोग वर्तमान अथवा, भविष्य का वर्तमान मूल्य सरलता से इस कटौती दर पर कटौती करके आकलन कर सकते हैं।
2. **आय पुनर्वितरण (Redistribution of Income) -** कुल उपयोग के साथ-साथ वितरण स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय लाभों के अनुमान के लिए महत्वपूर्ण है। सच पूछिये तो, वितरण के विचारों का कुल उपभोग से सही मायनों में पृथकीकरण नही किया जा सकता। एक बात समीकरण (3.1) में कुल उपभोग का अनुमान करने के लिए उपयोग की गई संबंधित कीमतें आय वितरण पर निर्भर करती हैं, चूंकि कीमते मांग द्वारा एवं मांग आय वितरण द्वारा प्रभावित होती है।

   जैसा कि हमने पहले कहा है सिद्धांत तौर पर यह संभव है कि प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा पेश की गई कीमत को सुअनुच्छेद- जाये, मसलन यह हम धनी व्यक्ति के मौद्रिक व्यय पर कम भार लगा सकते हैं। एक धनी व्यक्ति को होने वाली आय पर भी एक निर्धन व्यक्ति की तुलना में कम भार लगाया जाना चाहिये। ऐसे विस्तृत सुधार करना आसान नहीं होता तथा परियोजना विश्लेषक द्वारा किस प्रयोगिक तरीके का उपयेग किया जा सकता है। एक इस प्रकार का तरीका है, अधिकतम निर्धन समूह (उदाहरण के लिए सबसे निचले 10 प्रतिशत) की आय एवं उपयोग को अतिरिक्त सहयोग दिया जाय। सरल शब्दों में एक तरीका

यह है कि एक निश्चित निर्धन क्षेत्रा को अलग कर दिया जाए एवं उस क्षेत्रा में होने वाली किसी भी उपभोग पर अतिरिक्त भार लगा दिया जाए। इसी प्रकार से एक निश्चित वर्ग का पूर्वानुमान लगाने पर उदाहरण के लिए अप्रशिक्षित श्रमिक तथा वितरण के आधार पर होने वाली कुल लाभों को अतिरिक्त भार दे दिया जाए।

3. **राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर (Increased Rate of National Income) -** आजकल राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर को बढ़ाना एक महत्वपूर्ण नीति उद्देश्य हो गया है। इसकी प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि अगर दी गई उपभोग एवं आय का स्तर अनुकूल है तो उच्च वृद्धि पर निस्देह बेहतर है। यह भविष्य में उपभोग की संभावनाओं का सूचक है। तथापि यह कुछ अनावश्यक ही लगता है कि वृद्धि दर को एक पृथक उद्देश्य माना जाए जबकि समस्त भविष्य उपभोग प्रवाह को पहले से कुल उपभोग लाभ के माप में सम्मिलित कर लिया गया है।
4. **रोजगार स्तर (Status of Employment) -** रोजगार के स्तर पर विस्तार अथवा अधिक विशिष्ट रूप से कहें तो बेरोजगारी में कमी एक अच्छी निशानी मानी जाती है। बेरोजगारी को मानवीय गरिमा के विरुद्ध माना जाता है, एवं इसमें कमी को कुल उपभोग एवं उसके वितरण के विचारों को ध्यान किये बिना अधिक वरीयता दी जा सकती है। तब बेरोजगारी का आकार लागतों का माप हो सकता है यानी कि ऋणात्मक लाभों का। तब बेरोजगारी में कमी को एक पृथक उद्देश्य के रूप में देखा जा सकता है।
5. **आत्मनिर्भरता (Self Dependence)** - बहुत से विकासशील राष्ट्र धनी राष्ट्रों पर अत्यधिक निर्भर होते हैं क्योंकि अपने आर्थिक विकास प्रयासों में उनके पास बचतों अथवा विदेशी मुद्रा की चिरकालिक कमी होती है। विदेशी राष्ट्रों पर निर्भरता को कम करने एवं आत्म निर्भरता को एक लक्ष्य के रूप में देखा जाता है। एक परियोजना आत्म निर्भरता में सहायता प्रदान कर सकती है जबकि दूसरी परियोजना अन्य राष्ट्र पर निर्भरता को और अधिक बढ़ा सकती है। एक अपरिष्कृति परंतु सरल उदाहरण है व्यापार घाटे की माप, यानी आयात एवं निर्यात के मध्य अंतर। यह सामान्य पूंजी हस्तांतरणों को छोड़ देता है परंतु यह एक देश के

   अन्य देश पर निर्भरता का प्रथम समीपवर्ती संकेतक हो सकता है। हाल ही के वर्षों में आत्मनिर्भरता काफी चर्चित होने लगी है। बहुधा यह व्यापार संतुलन के घाटे द्वारा मापी जाती है, एवं कभी-कभी यह भुगतान संतुलन के घाटे के रूप में भी मापी जाती है, जिसमें संतुलित कार्रवाई को नहीं दर्शाया जाता है।
6. **उत्कर्ष आवश्यकताएं (Important Needs)-** रोजगार एवं आम निर्भरता लक्ष्यों के वह उदाहरण हैं जिनके राष्ट्रीय महत्व को व्यक्तियों के उपभोक्ता रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता। सामान्यतः हम इन लक्ष्यों को उत्कर्ष आवश्यकताएं कहते हैं। परियोजना की अन्य विशेषताओं, जिनमें विशिष्ट उपभोक्ता वस्तुएं भी सम्मिलित हैं, को विशेष ध्यान देने योगय माना जा सकता है क्योंकि इसका राष्ट्रीय महत्व जो उपभोक्ता सोचते हैं उससे कहीं अधिक है। एक पिछड़े हुए ग्रामीण समाज में, लोग शिक्षा (विशेषतः बालिका शिक्षा) पर धन व्यय करने में हिचकते हैं, परंतु लोक नीति इनके विकास के लिए कार्य करती है, चाहे इसे पाने वाले व्यक्ति इस सेवा पर खर्च करने से हिचकते हैं। शिक्षा को एक विशेष उत्कर्ष आवश्यकता समझा जा सकता है। सामाजिक वानिकी एवं पर्यावरण प्रदूषण को रोकना भी इसी श्रेणी में आते हैं। उत्कर्ष आवश्यकताएं लोक नीति में बहुधा महत्वपूर्ण होती हैं, इनका संबंध औद्योगिक परियोजना की अपेक्षा सामाजिक परियोजना में ज्यादा है।

   कई अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य की भी सूची बनाई जा सकती है परंतु अधिकांश महत्वपूर्ण उद्देश्यों का यहाँ उल्लेख किया जा चुका है। अब केवल एक ही प्रश्न बाकी रहा है वह है इन विभिन्न प्रकार के लाभों को एक एकीकृत माप में ढालने का है। इसकी अगले भाग में व्याख्या की गई है।

15.2.5 सकल राष्ट्रीय लाभदेयता (Net National Benefits)

माना कि B प्रकार 1 लाभ का माप है, तथा B दूसरे प्रकार 2 का। यह लाभों की सरंचना का संकेत करते हैं। परंतु हम इस चित्राण को लाभों के एक सरल एकीकृत माप में किस प्रकार से परिवर्तित कर सकते हैं ? इनका योग नहीं किया जा सकता क्योंकि यह भिन्न इकाइयों में है; उदाहरण के लिए यह संभव नहीं है कि हम दस लाख रुपये के कुल उपभोग का 2.000 के अतिरिक्त रोजगार के साथ योग करें एवं एक अर्थपूर्ण अंक मिल जाये। स्पष्टतः कोई ऐसा तरीका ढूंढना होगा जो लाभों के विभिन्न मापों को इकाइयों के एक माप में परिवर्तित कर सकें। कुल लाभ साधारण विशिष्ट लाभों का भारित योग होते हैं, भार उस दर को दर्शाते हैं जिस पर हम एक प्रकार के लाभ का अन्य के लिए प्रतिस्थापन करने को तैयार होते हैं। परंतु क्या यह भार स्थिर होने चाहिए। स्पष्ट रूप से नहीं, क्योंकि एक प्रकार के लाभ का सापेक्षिक महत्व देश में उसकी उपलब्धता की राशि पर निर्भर करेगा। अगर एक निर्धन क्षेत्रा को समुचित निवेश प्राप्त हो रहा है, तो वह क्षेत्रा धनी क्षेत्रा में परिवर्तित हो जायेगा तथा वह उच्च मूल्य जो कि हम उस क्षेत्रा की आय अथवा उपभोग पर लगाना चाह रहे थे अब कम किया जा सकता है। एक परियोजना संपूर्ण देश के लाभों के समस्त विवरण को क्रांतिकारी रूप में प्रभावित करने के लिए बहुत छोटी हो सकती है। एक निर्धन क्षेत्रा में एक छोटी परियोजना उसके लिये लाभदायक तो हो सकती है, परंतु फिर भी उसकी प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने में उतना सक्षम नहीं होगी कि वह देश की प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने के अनुपात में बढ़ सके। उसी प्रकार से, एक परियोजना देश में बेरोजगारी को तो कम कर सकती है, परंतु जब तक वह एक विशाल परियोजना न हो, वह बेरोजगारी के अनुपात को वहीं रहने देती है। ऐसा हो सकता है कि कई परियोजनाएं एक साथ मिलकर बेरोजगारी के अनुपात को घटा सकती हैं, अथवा उस निर्धन क्षेत्रा की प्रति व्यक्ति आय के अनुपात को देश के प्रति व्यक्ति आय के समान ला सकती हैं, परंतु इसके लिये एकीकरण एवं सामन्वय की आवश्यकता है। जो कि व्यक्तिगत परियोजना चयनकर्ता द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती, उसे राष्ट्रीय स्तर पर ही पाया जा सकता है। वास्तव में भारों का चयन, जो कि राष्ट्रीय मापदण्डों के दृष्टिकोण में देखे जा सकते हैं, इन प्रभावों का संपूर्ण आधार देखना होगा।

इस संचालन एवं एक बड़े प्रतियोगिता बाजार में एक बड़ी फर्म द्वारा किये गये चयन के मध्य एक (फोटो कापी पढ़ने में नहीं आ रहा) पूर्व निर्धारित बाजार दामों पर अपनी मछली बेचने को तैयार हो जाता है क्योंकि उसके उत्पादन बाजार भाव को प्रभावित करने के लिए बहुत कम है। तथापि अगर सभी मछुआरे एक साथ मिल जायें तो उनका उत्पादन कीमतों को आधारभूत रूप से प्रभावित पर सकेगा। व्यक्ति मछुआरे की भूमिका व्यक्तिगत परियोजना विश्लेषक के अनुरूप है जबकि बाजार की भूमिका केंद्रीय नियोजन के समरूप है।

एक बार अगर भविष्य का उपभोग स्तर वर्तमान उपभोग स्तर के समान मूल्यों में परिवर्तित कर लिया जाये, तो हम उस सकल उपभोग की इकाई का उपयोग वर्तमान उपभोग की इकाई के समान मान सकते हैं। अगर हम वर्तमान उपभोग को अपनी सामान्य खाता इकाई के रूप में स्वीकारें तो हम सकल उपभोग के संबंध में अन्य लाभों पर ध्यान देंगे। हम अपनी खाता इकाई का चुनाव अपनी सुविधा के अनुरूप करते हैं परंतु वर्तमान अथवा सकल उपभोग को खाता इकाई मान लेने के कुछ लाभ अवश्य है। अब हम परिकलन की मूर्त समस्याओं पर आ रहे हैं तथा परियोजना के आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की स्पष्ट आवश्यकता को पीछे छोड़ आये हैं। सामाजिक लागत लाभ विश्लेषक आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन का एक लोकप्रिय ढांचा प्रदान करते हैं

आइये आगे की चर्चा में हम उसकी धारणा, निर्णय मापदंड एवं प्रक्रिया की व्याख्या करें।

15.2.6 सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण (Social Cost Benefit Analysis)

सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण व्यापक अर्थों में परियोजना के कार्यान्वयन से हुए सभी अपेक्षित परिवर्तनों (उदाहरणतः आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी) का विशेष विवरण देता है। यह परियोजना के निवेश एवं

उत्पादन के रूप में देखे जा सकते हैं ताकि प्रत्येक की एक कीमत लगाई जा सकती है। चूंकि यह निवेश एवं उत्पादन कई वर्षों में वितरित होते हैं यानी कि, परियोजना के आर्थिक जीवन के दौरान होने वाले निवेश एवं उत्पादन के प्रवाह को संयुक्त करना आवश्यक हो जाता है। यहाँ पर मुद्रा का समय मूल्य प्रासंगिक हो जाता है तथा एक समुचित कटौती दर की आवश्यकता महसूस होती है। वर्तमान शुद्ध मूल्य अथवा आतंरिक प्रतिफल दर अथवा लाभदायकता सूचकांक अथवा लागत लाभ अनुपात के समान किसी निर्णय मापदंड की आवश्यकता किसी परियोजना को अंतिम रूप से स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने की होती है।

सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के लिए प्रणालीबद्ध दिशा निर्देश अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों जैसे कि यूरोपियन देश विकास संघ एवं संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ द्वारा विकसित किये गये हैं। भारत में 1975 में योजना आयोग ने औद्योगिक परियोजनाओं की व्यवहार्यता का प्रतिवेदन बनाने के लिए दिशा निर्देश तैयार किये थे। भारत सरकार के सिचाई मंत्रालय ने 1980 में सिंचाई एवं बहुउद्देश्य परियोजनाओं का विस्तृत परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने के लिए दिशा निर्देश दिये थे। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग) ने लोक निवेश मंडल प्रक्रिया के विषय पर अपने कार्यालय ज्ञापन पत्रा दिनांक 23 अगस्त 1984 में सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण की प्रयुक्ति का उदाहरण दिया है। पर्यावरण विभाग ने भी एक उपचारार्थ तैयार किया है जिससे बहुउद्देशीय परियोजना के पर्यावरण संबंधी पहलुओं को आंका जा सके। यह स्पष्ट है कि सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण को प्रयुक्त करने के लिए हमें विभिन्न अभिकरणों द्वारा दिए गये दिशा निर्देशों का पालन करना होता है। आइये हम सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के एक सामान्य ढांचे की व्याख्या करें। सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के एक व्यवस्था बद्ध प्रयोग में सामान्यतः निम्नलिखित बातें शामिल होती हैं:

1. • परियोजना के आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी निवेशों एवं उत्पादनों की माप,
2. • परियोजना के निवेशों एव उत्पादनों पर सामाजिक एवं लेखा या 'छाया कीमते लगाना,
3. • उपयुक्त सामाजिक ब्याज दर का चुनाव करना,
4. • परियोजना की सामाजिक लाभदेयता का आकलन करना

आइये हम उपरोक्त पहलुओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें।

15.2.6.1 लागत एवं लाभ की माप (Measurement of Cost and Benefit)

व्यापक रूप से परियोजना के आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण लाभ एवं लागतें तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। प्रथम वर्ग में वह लाभ एवं लागतें आती हैं जिनका परिमाण बताया जा सकता है। तथा मौद्रिक रूप से भी परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, एक जल विद्युत परियोजना से विद्युत की पूर्ति के रूप में होने वाले लाभ का परिमाण उत्पादित एवं वितरित विद्युत के रूप में किया जा सकता है। इन्हें प्रति इकाई बिजली की दर जो कि परियोजना अधिकारियों द्वारा ली जाती है, के अनुसार मौद्रिक रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है। द्वितीय प्रकार के लाभ एवं लागतें वह होते हैं जिनका परिमाण तो बताया जा सकता है, परंतु मौद्रिक रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए अगर जल विद्युत परियोजना के भाग के रूप में पानी एकत्रित करने के लिए एक बांध का निर्माण किया जाता है जिससे कि उस पानी को लाकर विद्युत उत्पादन के लिए जनरेटर

पर डाला जा सके, तो बांध में एकत्रित जल द्वितीय वर्ग के लाभ प्रदान करेगा। अगर यह मालूम चले कि बांध एक बाढ़ पीड़ित क्षेत्रा में है तथा बाढ़ को पुनरावृति के कारण उस क्षेत्रा में दस जीवन प्रतिवर्ष नष्ट हुआ करते थे। अब बांध पानी एकत्रित करके क्षेत्रा को बाढ़ से बचायेगा और प्रतिवर्ष दस जीवनों की भी रक्षा करेगा जो पहले बाढ़ के कारण नष्ट हो जाते थे। इस मामलें में इसका लाभ प्रति वर्ष दस जीवन भी होगा जो मापा तो जा सकता है परंतु मौद्रिक रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। यह अत्यंत ही कठिन है कि बचाये गये जीवन को एक ऐसा मौद्रिक मूल्य दिया जाए जो सामाजिक रूप से स्वीकृति हो। लाभों एवं लागतों का तीसरा वर्ग भी है जिसका न तो परिमाण बताया जा सकता एवं न ही मौद्रिक रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। अगर हम अपने जल विद्युत परियोजना के अंतर्गत बनाये गये बांध के उदाहरण को आगे बढ़ाये तो वह पर्यावरण को खूबसूरत बनाकर लाभ प्रदान करेगी क्योंकि जल की उपलब्धता से प्रकृति सौन्दर्य में भी वृद्धि होगी। तथापि समाज को प्राप्त यह लाभ अमूर्त प्रकृति के होंगे जिनका न तो परिमाण ही बताया जा सकेगा और न ही मौद्रिक रूप में परिवर्तित किया जा सकेगा।

एक परियोजना से होने वाले लाभों एवं लागतों को इन तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। तथापि, जैसे-जैसे हम अपने अनुसंधान को आगे बढ़ाते एवं अपने ज्ञान में वृद्धि करते हैं, एक श्रेणी की लागतें एवं लाभ दूसरी श्रेणी में ले जाये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, बांध द्वारा प्राप्त अमूर्त लाभ जो कि बंजर पथरीली पहाड़ी क्षेत्रा को हरे भरे क्षेत्रा में परिवर्तित कर पर्यावरण के सौदर्य में वृद्धि करेगा जो अपरिमाणक था। यदि हम यह अनुमान लगा पायें कि इस प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेने के लिए कितने पर्यटक उस क्षेत्रा में आने लगे हैं, तो इसे मापा जा सकता है। अतः उस लाभ का परिमाण उस क्षेत्रा आने वाले पर्यटकों की संख्या से लगाया जा सकेगा। अगर और अधिक अनुसंधान किया जाये तो हमारी जानकारी में सुधार एव वृद्धि हमें यह बतला सके कि उस क्षेत्रा में आने वाले पर्यटक से कितना चुंगी कर अथवा प्रवेश शुल्क लिया जायेगा तथा यह अनुमान परिमाणित लाभ को मौद्रिक रूप में परिवर्तित करने में हमें सहायता प्रदान करेगा।

इस प्रकार एक श्रेणी में लागतों एवं लाभों की दूसरी बेहतर परिणाम योग्य सूची में ले जाने की प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि लागतों एवं लाभों को परिमाणित करने एवं मौद्रिक रूप से परिवर्तित करने के प्रयास चलते रहेगें। योजना आयोग द्वारा तैयार की गई लोक क्षेत्रा परियोजना के व्यवाहार्यता अध्ययन के लिये नियमावली ने निम्न मुख्य मूर्त घटकों को बताया है, जिनका एक औद्योगिक परियोजना के राष्ट्रीय लाभों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

1. आयात शुल्क एवं आय।
2. विदेशी विनियम बचतें एवं आय।
3. साधनों के अतिरिक्त उपयोग जैसे कि श्रम, अतिरेक ईंधन जिनमें कि पूंजी पहले ही निवेश की जा चुकी है। राष्ट्र के प्राकृतिक साधन जैसे कि भूमि, वन, नदियाँ एवं खनिज सम्पदा इत्यादि।
4. क्षेत्रीय उद्योगों का सहायक उद्योगों के रूप में विकास।
5. राष्ट्रीय सुरक्षा के लाभ क्योंकि कई उद्योग जैसे कि जहाजरानी, विद्युत उपकरण, वायु परिवहन राष्ट्रीय सुरक्षा के निर्माण में प्रत्यक्ष रूप से लाभदायक होते हैं।

नियमावली यह भी कहती है कि इन घटकों के अलावा ऐसे कई असंख्य अभूर्त लाभ है जिनका परिमाण मौद्रिक रूप में नहीं आंका जा सकता। व्यवहार्यता प्रतिवेदन में इन कारकों पर भी बातचीत की जानी चाहिए।

15.2.6.2 छाया कीमतें (Shadow Prices)

एक परियोजना की लागतों एवं लाभों का अनुमान लगाने के लिए निवेशों का लागत के रूप में परिवर्तन कीमत प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। परियोजना के वह लाभ जो मापनीय है तथा मौद्रिक रूप में परिवर्तित किये जा सकते

हैं, वह भी कीमतों की मदद से मौद्रिक लाभों में परिवर्तित किये जाते हैं। आगतों को लागतों एवं निर्गतों का लाभों में परिवर्तन करने के लिए किन कीमतों का उपयोग किया जाता है यह सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के रूप का एक महत्वपूर्ण सीमा तक निर्धारण करता है। सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण में उपयोग के लिए प्रासंगिक कीमतों के छाया कीमतें अथवा सामाजिक कीमतें या योजना कीमतें अथवा लेखा कीमतें भी कहा जाता है।

प्रचलित बाजार कीमतें सही आभाव मूल्यों को नहीं दर्शाती। उदाहरण के लिए, अगर एक टन उर्वरक उत्पादन करने के लिए 2.000 रुपये लगते हैं, तो उसकी छाया कीमतें भी 2.000 रुपये प्रतिटन ही होनी चाहिए चाहे वह किसानों को 1500 रुपये प्रतिटन की अनुदानित कीमत पर दिये जा रहें हों। एक अन्य उदाहरण, अगर विदेशी विनियम की प्रचलित दर आधिकारिक रूप से निश्चित दर से अधिक है तो देश में निर्यात की कीमत कम करके बताई गई है। ऐसे मामले में सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण में उपयोग की गई कीमत आधिकारिक विनियम दर से अधिक होगी। एक वस्तु की कीमतें निर्धारित करते समय बाजार कीमतों से कर हटा दिए जाते हैं, क्योंकि यह हस्तांतरण भुगतान समझे जाते अतः यह सामाज पर लागत नहीं है।

कीमतों का निर्धारण परियोजना अधिकारियों के स्वविवेक पर नहीं छोड़ा जाता अपितु यह केंद्रीकृत नियोजन अभिकरण जैसे कि भारत के योजना आयोग द्वारा किया जाता है। छाया कीमतों की प्रणाली के अनुसार, वह वस्तुएं जो विदेशी व्यापार में शमिल की जा सकती है। उनका मूल्य सीमा कीमतों पर लगाया जाता है। वह वस्तुएं जो कि आयात की जा सकती है उनका मूल्य उनकी लागत बीमा वहन शुल्क कीमत पर लगाया जाता है। वह वस्तुएं जो कि अन्य देशों को निर्यात की जा सकती है का मूल्य शीर्षान्तर कीमत पर लगाया जाता है।

गैर व्यापारिक वस्तुएं अधिकांशतः एक परियेजना के आगत एवं निर्गत होते हैं। तथा व्यापारिक वस्तुओं की परियोजना कीमतों के घटक भी होते हैं। ऐसी वस्तुओं के लिये कोई प्रासंगिक सीमा कीमत नहीं होती। ऐसी वस्तुओं का सामाजिक मूल्य उनकी सीमांत लागत के आधार पर निकाला जाता है, जो कि व्यापारिक वस्तुओं एवं श्रम को विभाजित किया जाता है। अगर उत्पादन लागत में गैर व्यापारिक वस्तुएं भी हैं तो वह भी विभाजित की जाती हैं तथा पारस्परिक श्रम एवं करों में घटा दिया जाता है। यहाँ पर श्रम में निजी आय प्राप्त करने वाले समस्त घरेलू व्यक्तियों को शामिल कर लिया गया है। इसमें सरकारी नहीं परंतु स्वतंत्रा हित का ध्यान रखा जाता है।

फिर व्यापारिक वस्तुओं पर उनकी प्रासंगिक सीमा कीमतें लगा दी जाती हैं तथा श्रम की सामाजिक मजदूरी दर अथवा श्रम की सामाजिक अवसर लागत, जो कि प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित श्रम के लिए पृथक रूप से लगाई जाती है। परियोजना आगत एवं निर्गत का मूल्य विश्व कीमतों पर निर्धारित करने के पीछे क्या तर्क है ? इसकी तार्किकता इस तथ्य पर आधारित है कि विकासशील देशों में परियेजना की प्रासंगिक कीमतें (लाभ) अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आगत (निर्गत) के विनियम की अवसर लागतें हैं। अन्य शब्दों में विश्व कीमतें विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की अवसर लागत को दर्शाती हैं। अगर अर्थव्यवस्था का संचालन इस प्रकार से करना है कि सामाजिक लाभ अधिकतम हो, तो विश्व कीमतें प्रचलित होंगी (इसमें से कुछ सीमाओं को घटाना होता है

जैसे कि कर एवं सीमा शुल्क संरचनाएं इत्यादि) वस्तुओं का मूल्य सीमा कीमतों पर आंकने का एक तर्क यह है कि हम अनुकूलतम परिस्थिति के अनुरूप काम कर रहे हैं तथा यह मानते हैं कि अर्थव्यवस्था उस अनुकूलतम स्थिति की ओर बढ़ रही है। स्पष्टतः एक देश के लिए यह सर्वोत्तम लाभ होगा कि वह वस्तुओं का निर्यात तब करे जब ऐसी वस्तुओं की उत्पादन लागत शीर्षान्तर कीमत के बराबर अथवा उससे कम है। इस तरह, उन वस्तुओं के उत्पादन की भी कोई आर्थिक न्यायसंगता नहीं होगी जिनकी घरेलू उत्पादन लागत लागत-बीमा-वाहन शुल्क कीमत से अधिक है।

सैद्धांतिक रूप से कीमतों का उपयोग लेखा कीमतों के अनुरूप करने का तर्क त्रुटिहीन लगता है, क्योंकि इससे वस्तुओं के उत्पादन में अधिकतम कार्य क्षमता प्राप्त करने एवं अनुकूलतम व्यापार के परिणाम आने की अपेक्षा

होती है। यद्यपि कई अर्थशास्त्रियों द्वारा इस उपागम की आलोचना की गई है। आलोचना का मुख्य दबाव दो बिंदुओं पर है जो एक तरह से अन्तर संबंधित हैं।

पहला तर्क यह है कि विश्व कीमतों का उपयोग खुली अर्थव्यवस्था की मान्यता रखता है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की असीमित तत्परता होती है, तथा यह मान्यता वैध नहीं है। द्वितीय, अगर एक देश अप्रतिबंधित व्यापार के लिए तैयार भी हो जाये तो यह मान्यता कि वह ऐसा कर सकता है, वैद्य नहीं है।

विकासशील देश की सरकारें "खुली" अर्थव्यवस्था को विभिन्न कारणों से अपनाने को तैयार नहीं होती । प्रतिबंधित व्यापार नीति के पक्ष में शैशव उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करना एक महत्वपूर्ण तर्क है। विदेशी बाजारों पर भारी निर्भरता जोखिम हो सकती है। खुलेपन का विस्तार कई घटकों से सीमित होता है। जैसे कि निर्यात का आलोचदार मांग वक्र अन्य सरकारों की व्यापार नीतियाँ उत्पादन बढ़ाने के लिए स्थानीय उद्योगों द्वारा महसूस किये गये पूर्ति अथवा मांग के दबाव इत्यादि।

उपरोक्त घटक महत्वपूर्ण हैं तथा विकासशील देशों की कुछ वस्तुओं की व्यापारशीलता को प्रभावित करता है। परंतु आधार उपागम वैध रहता है। विशिष्ट समस्याओं अथवा अपवादों से हमें तर्क के आवश्यक बिंदुओं को अनेदेखा नहीं कर देना चाहिए। सीमा कीमतों का उपयोग साधारण रूप से इसलिये किया जाता है क्योंकि वह एक देश के लिए उपलब्ध अवसरों को बताती है तथा उन वास्तविक शर्तों का भी उल्लेख करती है जिन पर वह व्यापार कर सकता है।

15.2.6.3 सामाजिक भार (Social Weights)

ऐसा हो सकता है कि एक परियोजाना ऐसे लागत एवं लाभ प्रदान करें जिनका समाज के विभिन्न वर्गों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता हो। इससे न्यायपूर्ण वितरण की समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। परियोजना विश्लेषण में इन विचारों का समागम सामाजिक भारों के उपयोग से किया जा सकता है। यह भार एक योग्य सत्ता द्वारा सामाजिक प्राथमिकताओं के आधार पर दिये जाते हैं। अगर समाज के एक निर्धन वर्ग को होने वाले लाभों को धनी वर्ग के होने वाले लाभ की तुलना में अधिक मूल्यवान समझा जाता है तब उन लाभों को एक सुयोग्य भार से गुणा किया जा सकता है तथा धनी वर्ग के लिए वही लाभ रखे जा सकते है। उदाहरण के लिए, अगर एक परियेजना निर्धन वर्ग को 1000 रुपये का लाभ प्रदान करती है एवं अन्य वैकल्पिक योजना धनी वर्ग को 1000 रुपये का वैसा ही लाभ प्रदान करती है तो निर्धन वर्ग को होने वाले लाभ को एक सुयोग्य भार, जैसे कि 2, 2.5, 3 इत्यादि से गुणा किया जा सकता है जिससे कि यह निर्णय निर्माताओं की धनी वर्ग की तुलना में निर्धन वर्ग की उच्च प्राथमिकता को दर्शाता है। सामाजिक भार का निर्धारण करने के लिए काफी मात्रा में अनुभव की आवश्यकता होती है तथा यह केंद्रीय नियोजन अभिकरण का उत्तरदायित्व होता है।

15.2.6.4 सामाजिक ब्याज दर (Social Interest Rate)

मुद्रा के समय मूल्य को सही रूप में दर्शाने वाली ब्याज दर के चुनाव की सामाजिक मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका होती। अगर कर लगाने के उद्देश्य के लिए आयातित एवं निर्यातित वस्तुओं के मध्य कोई विभेदीकरण नहीं है तथा अगर सामाजिक मजदूरी पर वास्तविक मजदूरी दर से बहुत कम नहीं है तो प्रतिफल दर (बाजार कीमतों पर) जो कि अर्थव्यवस्था में वर्तमान पूंजी निवेश पर पाई जा रही है एक अच्छी सामाजिक ब्याज दर हो सकती है। परंतु बहुत से विकासशील देशों में यह दोनों शर्तें व्यवहार में लागू नहीं होती। सैद्धांतिक तौर पर समुचित सामाजिक ब्याज दर पूंजी की समुचित सामाजिक लागत। अगर सभी संभावित परियोजनाओं को लागू कर दिया जाए, तो इस दर की प्राप्ति संभव है। इसके साथ ही साथ अगर अर्थव्यवस्था की तमाम पूंजी का निवेश कर दिया जाए तो यह दर प्राप्त सकती है। यह दर समाज को प्राप्त होने वाली वर्तमान एवं भविष्य प्रतिफल के मध्य का अवसर एवं बचतों के उपयोग से प्राप्त होने वाली राशि को दर्शाती है। तथापि एक विशिष्ट औसत ब्याज दर पर कठोर दबाव नहीं होना

चाहिए और यह सामाजिक लागत एवं लाभ विश्लेषण के प्रारंभिक चरणों में ऊपर या नीचे समायोजित की जा सकती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. .... एवं .... लाभ एवं लागतें तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं।
2. मजदूरी की दर श्रम की सामाजिक अवसर लागत के .... होती।
3. अंतिम तथा अत्यधिक मुश्किल घटक ....है।
4. सीमा शुल्क एवं प्रतिबंध जो ....लगायें जाते हैं।

15.3 सारांश

इस इकाई में सामान्य रूप से परियोजना मूल्यांकन से संबंधित गैर वित्तीय विचारों उदाहरणतः आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी विचारों पर प्रकाश डाला गया है। वित्तीय मूल्यांकन की सीमाओं को बतलाया गया है एवं सामाजिक संदर्भ में अधिक प्रासंगिक आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की प्रकृति को समझाया गया है।

सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की सरल एवं प्रचलित तकनीक है। गैर वित्तीय विचारों को परियोजना विश्लेषण एवं मूल्यांकन में सम्मिलित करने के लिए सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण की प्रणाली को उदाहरण सहित दर्शाया गया है। इस प्रणाली के महत्वपूर्ण संघटकों जैसे कि लागत एवं लाभों की माप, छाया कीमतों, सम्परिवर्तन घटकों सामाजिक भार एवं सामजिक ब्याज दर को संपूर्ण रूप से दर्शाया गया है। इकाई के अंत में सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण तुलना पत्र के विवरण एवं परियोजना चुनाव के संदर्भ में निर्णय निर्माताओं की न्याय शक्ति की भूमिका को भी पहचाना गया है।

15.4 शब्दावली

पूँजी बाजार- पूँजी बाजार का संबंध खरीद, बिक्री और स्टॉक एवं बॉड से संबंधित विभिन्न संस्थाओं और व्यवस्था से है।

आर्थिक सहायता- उत्पाद की कीमत में वृद्धि रोकने के लिए एक या अधिक कंपनियों को या उद्योग की कंपनी को गिरने से रोकने हेतु सरकार द्वारा किया गया भुगतान है।

15.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण, **2.** समान नहीं, **3.** निगम कर, **4.** आयात पर

15.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dasgupta, A.K. and Pearce, D. W., 1972, Cost-Benefit Analysis-Theory and Practice, Macmillan, London.
2. Layard, R. (ed.), 1 972, Cost-Benefit Analysis, Penguin, Harmonsworth.
3. Little, I.M.D. and Mirrlees, J.A., 1990. Project Appraisal and Planning for Developing Countries, Heinemann Educational Books, London.
4. Pearce, D. W, and Nash, C.A., 198 1. The Social Appraisal of Projects: A Text in Cost Benefit Analysis, Macmillan, London.
5. Perkins, Frances. 1952, Practical Cost-Benefit Analysis: Basic Concepts and Applications, Macmillan, Australia.

6. Squire, L. and Van der Tak, H.G., 1975, Economic' Analysis of Projects, Johns Hopkins University Press, Baltimore.
7. UNIDO, 1972. Guidelines for Project Evaluation, United Nations, New York.

15.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. C.P. Kindleberger and Herick, Economic Development, 2/e, 1965.
2. Simon Kuznets, 'Economic Growth and Income Inequality, "AER. March, 1955.
3. Simon Kuznets, "Qualitative Aspects of Economic Growth of Nations: Distributions of Income by Size, "Economic Development and cultural Change, January 1963.

15.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. परियोजना विकास, मूल्यांकन और क्रियान्वयन में लागत-लाभ विश्लेषण की भूमिका के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. वित्तीय विश्लेषण और आर्थिक विश्लेषण के बीच भिन्नता बताए।
3. सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण के उद्देश्यों के प्रयोजन पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 16 भारत में विनिवेश, उद्देश्य एवं चुनौतियाँ

इकाई की संरचना

16.0 प्रस्तावना
16.1 उद्देश्य
16.2 विनिवेश: परिचय
16.3 विनिवेश के लिए तर्क/औचित्य
16.4 विनिवेश के प्राथमिक उद्देश्य
16.5 विनिवेश की संगठनात्मक संरचना
16.6 विनिवेश की प्रक्रिया
16.7 विनिवेश के तौर-तरीके
16.8 विनिवेश का ढांचा/तंत्र
16.9 विनिवेश की प्रणाली
16.10 सारांश
16.11 शब्दावली
16.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
16.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.15 निबन्धात्मक प्रश्न

16.0 प्रस्तावना

भारत में सार्वजानिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना उच्च आर्थिक विकास, वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता, और कीमतों में स्थायित्व आदि उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए की गई थी। भारत में सार्वजानिक क्षेत्र में सुधार समय की माँग है। आज वास्तव में आवश्यकता इस बात पर बल देने की है कि जिन उद्देश्यों को ध्यान में रख कर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना की गई थी उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार को व नीति निर्माताओं को दृढ संकल्प से कार्य करना चाहिए ताकि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की गरिमा को बनाया रखा जा सके। साथ ही भारतीय उद्योगों को और अधिक कुशल और विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए उदारीकरण को अपनाना ही होगा। विनिवेश से प्राप्त राशि का उपयोग राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए न करके इसका उपयोग सामाजिक क्षेत्र की योजनाओ में किया जाए जिससे कि शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार को बढ़ावा मिल सके। इस इकाई में आप विनिवेश की प्रकृति व क्षेत्र, विनिवेश के लिए कौन कौन से तर्क हैं व विनिवेश के प्राथमिक उद्देश्य का अध्ययन करेंगे साथ ही विनिवेश की प्रक्रिया व विनिवेश के तौर-तरीकों व विनिवेश का ढांचे व प्रणाली के बारे में भी जानेंगे।

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विनिवेश की प्रकृति व क्षेत्र को समझ पायेंगे।
- विनिवेश के लिए कौन कौन से तर्क हैं व विनिवेश के प्राथमिक उद्देश्य कौन कौन से हैं, की व्याख्या कर पायेंगे।

- विनिवेश की प्रक्रिया व विनिवेश के तौर-तरीकों का वर्णन कर सकेंगे।
- विनिवेश का ढांचे व प्रणाली को स्पष्ट कर सकेंगे।

16.2 विनिवेश: परिचय

विनिवेश एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (पीएसई) में अपने हिस्से या कुल इक्विटी को वापस लेती है। सार्वजनिक क्षेत्र के सम्बन्ध में मोहभंग 1970 में शुरू हुआ था। कई देशों में यह देखा गया कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (PSE) का प्रदर्शन अपेक्षाओं से बहुत कम था। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (पीएसई) की कमजोरी और दोष/कमियां कई देशों में सरकार और अर्थव्यवस्था के लिए गंभीर खतरे के साथ प्रकट होने लगे, जिनका कोई हल नहीं था। 1980 के मध्य तक वैश्विक स्तर पर राजनीतिक विकल्प यह इस बात पर विचार कर रहा था कि सरकार की आर्थिक गतिविधि के कारण उत्पन्न जीएनपी के अनुपात को कम किया जाना चाहिए और व्यावसायिक गतिविधियों को यथासंभव निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया जाना चाहिए। 1980 के दौरान, सोवियत ब्लॉक की समाजवादी अर्थव्यवस्था का पतन, रूस, पूर्वी यूरोपीय देशों और चीन द्वारा आर्थिक सुधार की शुरूआत के साथ, जनता के लाभ के लिए हर वाणिज्यिक गतिविधि में सरकार के हस्तक्षेप को कम करना शुरू क्र दिया। भारत, लगभग चार दशकों से विकास के मार्ग पर चल रहा था, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र से विकास का इंजन होने की उम्मीद थी। अस्सी के दशक के मध्य तक उनकी छोटी-छोटी कमियों और कमजोरियों ने कम क्षमता के उपयोग, कम दक्षता, प्रेरणा की कमी, ज्यादा समय और लागत की अधिकता, नवाचार करने में असमर्थता और त्वरित निर्णय लेने, निर्णय लेने आदि में राजनीतिक और नौकरशाही के बढ़ते हस्तक्षेप के रूप में अपना प्रभाव प्रकट करना शुरू कर दिया। लेकिन इन दोषों को दूर करने और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास की दर को बढ़ाने की कोशिश के बजाय, धीरे-धीरे आत्मनिर्भर विकास की अवधारणा को एक शांत दफन दिया गया। सरकार ने आयात को कम करने या चरणों में आयात शुल्क को वापस लेना शुरू कर दिया। इसके परिणामस्वरूप कीमती विदेशी मुद्रा भंडार घटने से लेकर निम्न स्तर तक घटता जा रहा है। विदेशी ऋण अदायगी के संकट ने देश के हित के लिए हानिकारक स्थितियों पर सरकार को RBI के आरक्षित सोने के भौतिक भंडार के विरुद्ध IMF से ऋण लेने के लिए मजबूर कर दिया। इस प्रकार, पीएसयू की 1991 की औद्योगिक नीति के प्रति नीतियों को उलटना शुरू कर दिया, लाइसेंस समाप्त करने की प्रक्रिया शुरू कर दी और 18 उद्योगों को छोड़कर, औद्योगिक लाइसेंस वापस ले लिया गया। बाजार को घरेलू निजी पूंजी के लिए खोला गया और विदेशी पूंजी को उच्च प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में 51प्रतिशत इक्विटी तक मुफ्त प्रवेश प्रदान किया गया। आर्थिक उदारीकरण का उद्देश्य प्रतिस्पर्धा बढ़ाना और नई फर्मों को बाजार में प्रवेश करने की अनुमति देना था। इस प्रकार पीएसई से अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और पीएसई के क्रमिक विनिवेश पर जोर दिया गया।

विनिवेश का महत्व वास्तव में उससे प्राप्त होने वाली राशि के उपयोग करने में निहित है, यदि इसका उपयोग बढ़ रहे राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए, बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे के विकास के लिए व स्वास्थ्य व सामाजिक कार्यक्रमों के लिए वित्त-व्यवस्था करने के लिए किया जाये। आम जनता के लिए सार्वजानिक उपक्रमों की इक्विटी में हिस्सेदारी बढ़ाना भी विनिवेश के मुख्य उद्देश्यों में से एक है। जहाँ तक विनिवेश से जुटाई गई राशि के उपयोग का सम्बन्ध है, इन निधियों के उपयोग के सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया कि इसका उपयोग बढ़ते राजकोषीय वित्तीय घाटे को कम करने के लिए व बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे के वित्त-पोषण के लिए किया जायेगा। साथ ही इस निधि का उपयोग स्वास्थ्य, पानी और शिक्षा जैसी सामाजिक कार्यक्रमों के लिए भी उपयोग किया जायेगा।

1991-92 से 2014-15 तक विनिवेश से प्राप्त राशि रु. 1,77,764 करोड़ है, जबकि इसी अवधि में राजकोषीय घाटा रु. 48,80,887 करोड़ है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि राजकोषीय घाटे का 3.63 प्रतिशत भाग ही विनिवेश के माध्यम से वित्तपोषित किया जा सकता है। विनिवेश के अन्य वर्षो की तुलना में केवल पहले, चौथे और तेहरवें वर्ष में ही विनेवेश से प्राप्त राशि का अनुपात राजकोषीय घाटे की तुलना में सबसे अधिक रहा है। दूसरी ओर इसी अवधि में कुल आंतरिक ऋण रु. 3,61,31,974 करोड़ है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आंतरिक ऋण का औसतन .49 प्रतिशत भाग ही विनिवेश के माध्यम से वित्तपोषित किया गया है। बाजार उधारी के सापेक्ष में विनिवेश से प्राप्त राशि का आंतरिक ऋण के वित्त पोषण में योगदान नगण्य ही रहा है। दुसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आंतरिक ऋणों व राजकोषीय घाटे के लिए वित्त व्यवस्था करने के लिए विनिवेश से प्राप्त राशि का उपयोग करने का निर्णय कारगर साबित नहीं हुआ है। सार्वजानिक क्षेत्र के उपक्रमों के 1991-92-2014-15 के विनिवेश से सरकार को लक्षित रु. 2,80,995 करोड़ की तुलना में रु. 1,77,764 करोड़ ही प्राप्त हुए जो लक्ष्य का 63.26 प्रतिशत ही है। विनिवेश से प्राप्त राशि के उपयोग राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण के लिए करना अस्वस्थ/दुखद व अल्पकालिक प्रयोग है। इसके लिए यह सुझाव प्रस्तावित है कि उधार ली गई राशि से राजकोषीय घाटे का वित्तपोषण करना जो कि वर्तमान में प्रचलित है, यह व्यवस्था ही जारी रहनी चाहिए।

प्रायः यह देखा गया है कि प्रतिकूल बाजार की स्थितियाँ, निजी क्षेत्रों के लिए सरकार द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों का आकर्षक न होना, कर्मचारियों व श्रमिक संघों का कड़ा विरोध, व राजनितिक इच्छाशक्ति का आभाव आदि विनिवेश से प्राप्त राशि का वास्तविक लक्ष्य की तुलना में कम रहने के मुख्य कारण माने जाते है।

16.3 विनिवेश के लिए तर्क/औचित्य

सरकारी कर्मचारियों और अंशदानों के ब्याज भुगतान, मजदूरी और वेतन जैसे मदों पर वर्तमान राजस्व व्यय के कारण केंद्रीय बजट वर्ष में राजस्व घाटा कम करने के कारण, सरकारों के पास सामाजिक और भौतिक बुनियादी ढांचे पर पूंजीगत व्यय के लिए किसी भी तरह का अधिशेष मुश्किल से बचा है। सार्वजनिक संसाधनों की भारी मात्रा कई गैर-रणनीतिक सार्वजनिक उपक्रमों में अवरुद्ध हो जाती है, जो अल्प प्रतिफल देती है। निकास मार्ग के अभाव में कई गैर-व्यवहार्य सार्वजनिक उपक्रमों के भरण-पोषण के लिए सरकार आगे के संसाधनों को उपलब्ध करने के लिए बाध्य है। इन सभी सरकारी आर्थिक संकटों के कारण सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी हिस्सेदारी के विनिवेश की स्पष्ट रूप से आगे की कार्रवाई शुरू कर दी गई। विनिवेश या निजीकरण से निम्न में मदद मिलेगी-

1. सामाजिक प्राथमिकता, जैसे- सार्वजनिक स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, शिक्षा और सामाजिक और आवश्यक बुनियादी ढाँचे के लिए उपलब्ध करने के लिए गैर-रणनीतिक सार्वजनिक उपक्रमों में बंद भारी मात्रा में दुर्लभ सार्वजनिक संसाधनों को जारी करना।
2. सार्वजनिक ऋण को कम करना जो असहनीय अनुपात की चुनौती के रूप में सामने आ रहा है।
3. वाणिज्यिक जोखिम को हस्तांतरित करना, जिससे सार्वजनिक क्षेत्र में बंद करदाताओं का पैसा निजी क्षेत्र में उजागर होता है, जहां भी निजी क्षेत्र इच्छुक है और इस दिशा में कदम रखने में सक्षम है। PSE में तैनात धन वास्तव में सार्वजनिक है। पैसा, और, ज्यादातर मामलों में पूरी तरह से परिहार्य और अनावश्यक जोखिम के संपर्क में है।
4. अन्य मूर्त और अमूर्त संसाधनों को साकार करते हुए, जैसे कि, बड़ी जनशक्ति वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के प्रबंधन में बंद हो गई है और साथ ही उनका समय और ऊर्जा भी उसी में लग रही है, उन क्षेत्रों में पुनर्भुगतान के लिए उपलब्ध हो सकती है जो सामाजिक प्राथमिकता पर बहुत अधिक हैं लेकिन ऐसे संसाधनों की कमी है।

5. विनिवेश से धन का व्यापक वितरण होगा, हालांकि छोटे निवेशकों और कर्मचारियों को निजीकृत कंपनियों के शेयरों की पेशकश की जाएगी ।
6. विनिवेश निजीकरण वाली कंपनियों को बाजार अनुशासन के लिए उदघाटित करेगी, जिससे वे अधिक कुशल बनेंगे और उनकी वित्तीय और आर्थिक ताकत पर टिके रहेंगे। वे पेशेवर तरीके से जवाब देने में सक्षम होंगे। यह पीएसई को सरकार के नियंत्रण से मुक्त करने और निजी कंपनियों में कॉर्पोरेट प्रशासन की शुरुआत करने में भी सुविधा प्रदान करेगा।
7. विनिवेश का पूंजी बाजार पर लाभकारी प्रभाव होगा, निवेशकों को आसानी से बाहर निकलने के विकल्प मिलेंगे, मूल्यांकन और मूल्य निर्धारण के लिए अधिक सटीक बेंच मार्क स्थापित करने में मदद मिलेगी और भविष्य में निजीकृत कंपनियां को उनकी परियोजनाओं या विस्तार के लिए धन जुटाने की सुविधा होगी। ।
8. पूर्ववर्ती सार्वजनिक क्षेत्रों को उपयुक्त निजी निवेशकों के लिए खोलने से आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि होगी और मध्यम से दीर्घावधि में अर्थव्यवस्था में, रोजगार और कर राजस्व पर कुल लाभकारी प्रभाव पड़ेगा, और
9. कई क्षेत्रों में उदाहरण के लिए दूरसंचार क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र के एकाधिकार का अंत उपभोक्ताओं को अधिक विकल्पों के माध्यम से राहत देगा, और उत्पादों और सेवाओं की सस्ती और बेहतर गुणवत्ता प्रदान करेगा। पीएसई में इक्विटी के विनिवेश की मात्रा को धीरे-धीरे 20 प्रतिशत से बढ़ाकर 49 प्रतिशत से 76 प्रतिशत और कुछ मामलों में 100 प्रतिशत कर दिया गया। इस प्रकार अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और सार्वजनिक उपक्रमों के क्रमिक विनिवेश के लिए सार्वजनिक उपक्रमों पर जोर दिया गया।

16.4 विनिवेश के प्राथमिक उद्देश्य

पीई में सरकारी इक्विटी के विनिवेश के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन निम्न प्रकार से हैं (जगदीश प्रकाश राव, 1996. पी. 4 जी)-

1. राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए राजस्व संग्रह बढ़ाने के लिए प्रतिबद्धता के रूप में आईएमएफ को बनाया गया।
2. अधिक जवाबदेही और बेहतर दक्षता सुनिश्चित करना।
3. सरकारी आवश्यकताओं के लिए कुशल संसाधन जुटाना।
4. पीई की इक्विटी में भाग लेने के लिए आम जनता को अवसर प्रदान करने के लिए।
5. कर्मचारी स्वामित्व को प्रोत्साहित और प्रेरित करना।
6. नौकरशाही नियंत्रण को कम करने और पीईएस के प्रबंधन को अधिक स्वायत्तता प्रदान करने के लिए।

विनिवेश पर सरकार की प्रतिबद्धता को 1991-92 और 1992-93 में आर्थिक नीतियों पर विस्तृत ज्ञापन में सरकार द्वारा आईएमएफ को दिसंबर, 1991 में प्रस्तुत किया गया था। इस संबंध में प्रतिबद्धता के प्राथमिक घटक हैं-

- उन क्षेत्रों से बचने के लिए जहां सामाजिक विचार/सरोकार सर्वोपरि नहीं हैं, सार्वजनिक निवेश के मौजूदा पोर्टफोलियो की समीक्षा अधिक समझ के साथ करें ।
- सार्वजनिक क्षेत्र को उन क्षेत्रों में जारी रखा जाना चाहिए जहां उनकी भागीदारी अत्यधिक उपयुक्त है जो स्वायत्तता की अधिक से अधिक डिग्री प्रदान करे।
- पीई को बजटीय हस्तांतरण प्रतिबंधित।

- पीई के लिए बाजार प्रतिस्पर्धा प्रदान करने के लिए।
- बीमार पीई को भारी नुकसान उठाना जारी रखने की अनुमति नहीं होगी।

निजीकरण नीति की वर्तमान दिशा को 9, दिसंबर, 2002 को संसद के दोनों सदनों में रखे गए एक सू-मोटू वक्तव्य में संक्षेपित किया गया है। सरकार ने अपनी नीति की घोषणा की है कि विनिवेश का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय संसाधनों और परिसंपत्तियों को अधिकतम उपयोग में लाना है। विशेष रूप से हमारे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में निहित उत्पादक क्षमता को दिलाने के लिए। विनिवेश की नीति विशेष रूप से लक्षित है-

- सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का आधुनिकीकरण और उन्नयन,
- नई परिसंपत्तियों का सृजन,
- रोजगार सृजन,
- सार्वजनिक ऋण की सेवानिवृत्ति,
- यह सुनिश्चित करने के लिए कि विनिवेश राष्ट्रीय संपत्तियों के क्षरण में परिणत नहीं होता है, जो विनिवेश की प्रक्रिया के माध्यम से, जहां हैं, वहीं बने रहते हैं। साथ यह भी सुनिश्चित करेगा कि विनिवेश से निजी एकाधिकार में न हो।
- एक विनिवेश आय कोष की स्थापना।
- प्राकृतिक परिसंपत्ति कंपनियों के विनिवेश के लिए दिशा-निर्देश तैयार करना।

सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति सरकार की वर्तमान नीति की मुख्य विशेषताएं हैं-

- संभावित व्यवहार्य PSE का पुनर्गठन और उनको पुनर्जीवित करना।
- उन PSE को बंद करें जिसे पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है।
- यदि आवश्यक हो, तो सभी गैर-रणनीतिक सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी इक्विटी को 26 प्रतिशत या उससे कम पर लाएँ,
- श्रमिकों के हितों की पूरी तरह से रक्षा करना।

विनिवेश से संबंधित मुद्दों जिन पर अभी भी बहस चल रही है और जो आने वाले वर्षों में प्रासंगिक रहेंगे। वह निम्न हैं-

- किन क्षेत्रों में विनिवेश नहीं होना चाहिए? क्या रक्षा, उत्पादन और सेवाओं का विनिवेश किया जाना चाहिए और राष्ट्रीय सुरक्षा के मद्देनजर यह किस हद तक वांछनीय है।
- किस हद तक विनिवेश के तरीका को खुला और पारदर्शी बनाया जा सकता है।
- विनिवेश के विभिन्न तरीकों में से किस मार्ग से घोषित उद्देश्यों की पूर्ति होगी?
- क्या विदेशी निजी निवेशकों को पीएसई में हित नियंत्रण हासिल करने की अनुमति दी जानी चाहिए।
- वीआरएस के तहत सेवानिवृत्त होने वाले सक्रिय और सक्षम कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने और पुनः नियोजित करने के लिए सामाजिक सुरक्षा तन्त्र कैसे स्थापित किया जाए।

विनिवेश की प्रक्रिया को तेज करने के लिए, सरकार ने विनिवेश मंत्रालय का एक नया पूर्ण मंत्रालय स्थापित किया। केंद्र में यूपीए सरकार की स्थापना के साथ एनडीए सरकार के दौरान विनिवेश का दौर चरम पर था। वाम

दलों के दबाव में, नई सरकार ने विनिवेश मंत्रालय को बंद कर दिया और इसे वित्त मंत्रालय के तहत एक विभाग में बदल दिया। यूपीए सरकार के सामान्य न्यूनतम कार्यक्रम ने यह स्पष्ट कर दिया है-

- लाभ कमाने वाला कोई भी पीएसयू का निजीकरण नहीं होगा।
- नवरत्न पीएसयू को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा जाएगा
- हानि की समस्या से झुझ रहे सार्वजनिक उपक्रम के निजीकरण के प्रस्ताव को श्रमिकों के परामर्श से जाना जाएगा।
- कोई निजीकरण नहीं अगर यह एकाधिकार या प्रतिबंधात्मक प्रतियोगिता बनाता है।

16.5 विनिवेश की संगठनात्मक संरचना

- सचिव (विनिवेश) को प्रशासनिक मंत्रालयों/विभागों के संयुक्त सचिवों द्वारा भी सहायता प्रदान की जाती है, जो अपने संबंधित मंत्रालयों/विभागों में विनिवेश के तहत सार्वजनिक उपक्रमों का प्रबंधन करते हैं। प्रशासनिक मंत्रालयों से संबंधित संयुक्त सचिव विनिवेश कार्य के लिए सचिव (विनिवेश) के लिए उत्तरदायी हैं। मंत्रालय के सभी विनिवेश का काम कम से कम सहायक कर्मचारियों के साथ अधिकारियों के स्तर पर किया जाता है। विनिवेश आयोग की स्थापना अगस्त, 1996 में भारत सरकार द्वारा प्रत्येक और हर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम (PSE) के विनिवेश की रणनीति, सीमा, कार्यप्रणाली, समय और मूल्य निर्धारण पर सलाह देने के लिए की गई थी। विनिवेश आयोग ने सरकार को रिपोर्ट सौंपी। विनिवेश विभाग की स्थापना अधिसूचना संख्या सीडी/551/99 दिनांक 10-12-1999 के तहत की गई थी, जो विनिवेश की प्रगति को सुव्यवस्थित और तेज करने के लिए नोडल विभाग था। केंद्र सरकार के विनिवेश से संबंधित मामलों के लिए डीओडी को जिम्मेदार बनाया गया था। पीएसयू से इक्विटी और यह पुनर्गठन सहित विनिवेश के तौर-तरीकों पर फैसलों के लिए भी उत्तरदायी है। सूचना संख्या CD-442/2001 के तहत दिनांक 6 सितंबर 2001 को, विनिवेश विभाग का नाम बदलकर विनिवेश मंत्रालय कर दिया गया। मंत्रालय को निम्नलिखित कार्य सौंपे गए हैं-

1. केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से केंद्र सरकार की इक्विटी के विनिवेश से संबंधित सभी मामले।
2. पुनर्गठन सहित विनिवेश के तौर-तरीकों पर विनिवेश आयोग की सिफारिशों पर निर्णय।
3. विनिवेश निर्णयों का कार्यान्वयन, सलाहकारों की नियुक्ति, अंशों के मूल्य निर्धारण और विनिवेश के अन्य नियम और शर्तों सहित।
4. विनिवेश आयोग।
5. केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम केवल सरकारी इक्विटी के विनिवेश के उद्देश्यों के लिए ।

भारत सरकार ने अपना आदेश संख्या 1/11/2002 - 3 सितंबर को तय किया है, जिसमें विनिवेश पर मंत्रिमंडल समिति का गठन किया गया है, जिसकी रचना और कार्य नीचे दिए गए हैं-

संरचना या गठन जिसमें- प्रधान मंत्री, उप-प्रधान मंत्री, ऊर्जा मंत्री, कानून और न्याय मंत्री, वाणिज्य और उद्योग मंत्री, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्री, वित्त और कंपनी मामलों के मंत्री, विदेश मंत्री, योजना आयोग के उपाध्यक्ष और विनिवेश मंत्री और उत्तर पूर्वी क्षेत्र के विकास मंत्री।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों से संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय के मंत्री, जिनके प्रस्ताव विचार के लिए आए थे, उन्हें समिति की बैठक में आमंत्रित किया जाएगा।

विनिवेश पर मंत्रिमंडल समिति कार्यों में-

- विनिवेश कार्यक्रम से संबंधित नीतिगत मुद्दों के बारे में सचिवों के मूलभुत समूह पर विचार करना।
- जीडीआर और घरेलू पूँजी बाजार मूल्य के माध्यम से सरकारी शेयरों की बिक्री के लिए प्राइस बैंड तय करने के लिए कार्य करना और सभी मामलों में बिक्री की अंतिम कीमत तय करना।
- लेन-देन के अंतिम मूल्य निर्धारण और रणनीतिक बिक्री के मामले में रणनीतिक भागीदार का फैसला करना।
- ऐसे मामलों के बारे में निर्णय लेने के लिए कि क्या विनिवेश आयोग की सिफारिशों और विनिवेश मंत्रालय के विचारों के बीच असहमति है और
- तीन साल की रोलिंग योजना और हर साल विनिवेश के वार्षिक कार्यक्रम को मंजूरी देना।

ऊपर दूसरे बिन्दु के संबंध में निर्णय वित्त मंत्री, भारी उद्योग और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम (PSE), विनिवेश मंत्री और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम से संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय के मंत्री द्वारा लिया जा सकता है, जिसके सम्बन्ध में विचार करने के लिए प्रस्ताव आया था।

16.6 विनिवेश की प्रक्रिया

विनिवेश प्रक्रिया सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया से संबंधित है। इस प्रक्रिया में ऐसे अंशो का मूल्यांकन और अंशो की बिक्री के लिए अपनाए जाने वाले तौर-तरीके शामिल है। तीन व्यापक विधियाँ हैं, जिनका उपयोग अंशो के मूल्यांकन के लिए किया जाता है।

1. **शुद्ध संपत्ति मूल्य विधि-** यह उपक्रम की शुद्ध संपत्ति का संकेत देगा जैसा कि खातों की किताबों में दिखाया गया है। यह संपत्ति के ऐतिहासिक मूल्य को दर्शाता है। यह लागत मूल्य से मूल्यह्रास को घटाकर दिखाया गया है जो अब तक परिसंपत्तियों पर प्रदान किया गया है। यह स्थिति या लाभप्रदता को प्रतिबिंबित नहीं करता है।
2. **लाभ अर्जन क्षमता मूल्य विधि-** लाभ अर्जन क्षमता आम तौर पर वास्तव में अर्जित या प्रत्याशित लाभ पर आधारित होती है। यह एक लेखा लाभ है। यह व्यय से अधिक आय है। यह वास्तव में उद्यम के आंतरिक मूल्य को इंगित नहीं करता है।
3. **बट्टागत नकदी प्रवाह विधि-** इस तकनीक का उपयोग निवेश प्रस्ताव की व्यवहार्यता का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है। इस पद्धति में भविष्य की वृद्धिशील नकदी प्रवाह का पूर्वानुमान लगाया जाता है और पूंजी दर की लागत को लागू करके वर्तमान मूल्य में छूट दी जाती है। यह विधि उद्यम के आंतरिक मूल्य को इंगित करती है। यह विधि निवेशकों की अपेक्षित आय प्रवाह को प्रतिबिंबित करने के लिए कहीं अधिक व्यापक और जटिल तरीका है।

इन तीन विधियों में से बट्टागत नकदी प्रवाह विधि सबसे अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि यह सबसे कठिन है।

16.7 विनिवेश के तौर-तरीके

विनिवेश के लिए तीन व्यापक स्वीकार्य और पारदर्शी तौर-तरीके हैं। ये नीचे दिए गए हैं-

1. एक सामान्य प्रविवरण के माध्यम से एक निश्चित मूल्य पर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के अंशो की पेशकश। यह प्रस्ताव मान्यता प्राप्त बाजार मध्यस्थों के माध्यम से आम जनता के लिए किया जाता है।
2. पूर्व-निर्धारित ग्राहकों के मध्य हिस्सेदारी की नीलामी के माध्यम से इक्विटी की बिक्री, जिनकी संख्या बड़ी हो सकती है। PSE की इक्विटी के लिए आरक्षित मूल्य व्यापारी बैंकरों की सहायता से निर्धारित किया जा सकता है।

3. बिक्री के लिए एक सार्वजनिक उद्यम की बिक्री के लिए निर्धारित मूल्य का निर्धारण, खुले बोलीकर्ताओं को आमंत्रित करने और बिक्री के लिए उच्चतम बोलीदाताओं के उद्धरण को स्वीकार करने की पेशकश।

16.8 विनिवेश का ढांचा/तंत्र

विनिवेश के लिए निम्नलिखित तंत्र हैं-

1. **विनिवेश पर कैबिनेट समिति-** केंद्र सरकार ने एक कैबिनेट रैंक के साथ विनिवेश के लिए एक अलग मंत्रालय की स्थापना की है। इसके अलावा सरकार ने विनिवेश मंत्री (सीसीडी) पर कैबिनेट आयोग बनाया है, जिसमें विनिवेश मंत्री, उद्योग मंत्री और वित्त मंत्री शामिल हैं।
2. **विनिवेश आयोग-** विनिवेश आयोग की स्थापना एक कार्यकारी निकाय के रूप में अगस्त 1996 में एक कार्यकारी आदेश द्वारा की गई थी, न कि वैधानिक आयोग के रूप में। यह उद्योग मंत्रालय में स्थित है और इसने इसके सुचारू संचालन में कुछ कठिनाइयों का सामना किया है। आयोग के अध्यक्ष श्री जी.वी. राम कृष्ण थे। टिप्पणी की प्राथमिक शर्तें एक समग्र दीर्घकालिक कार्यक्रम तैयार करना है जो विनिवेश के एक माध्यम की सिफारिश करता है, बिक्री प्रक्रिया की निगरानी करता है और विनिवेश की प्रगति की निगरानी करता है। प्रशासनिक सहायता, पेशेवर तकनीकी आदानों के संदर्भ में विनिवेश आयोग के पास उपलब्ध तंत्र पर्याप्त है और इसके सफल कामकाज पर सवाल उठाता है। इसके प्रकाश में एक अलग अधिनियम के तहत एक स्थायी वैधानिक विनिवेश निकाय का होना उचित होगा जो विकेंद्रीकृत तरीके से कार्य करे। इसकी सिफारिशों में विश्वसनीयता होनी चाहिए और विनिवेश की पारदर्शी प्रक्रिया के लिए सरकार को बाध्य करना चाहिए। नवंबर 1999 में विनिवेश आयोग को समाप्त कर दिया गया।
3. **सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम विभाग (पीएसई) (डीपीई)-** डीपीई विनिवेश प्रक्रिया को चलाने के लिए नोडल एजेंसी थी। विभाग को बोलियाँ तैयार करने, बोलियों का विज्ञापन करने, बोली लगाने वालों का चयन करने, मूल्य को अंतिम रूप देने और विनिवेश को प्रभावित करने का अधिकार दिया गया था। सचिवों की एक अधिकार प्राप्त समिति को डीपीई से प्रभावित विनिवेश की प्रक्रिया की देखरेख के लिए नियुक्त किया गया था। डीपीई को समिति की ओर से सिफारिशों को आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति को प्रस्तुत करना है, जिनकी मंजूरी लेनदेन को देखने के लिए आवश्यक थी।
4. **विनिवेश विभाग-** विनिवेश आयोग के कार्यकाल नवंबर, 1999 में समाप्त होने के बाद सरकार ने विनिवेश के लिए एक व्यवस्थित नीति दृष्टिकोण स्थापित करने और विनिवेश के कार्यक्रम के लिए नए प्रोत्साहन देने के लिए विनिवेश विभाग का एक नया विभाग स्थापित किया है, जिसने तेजी से पहचाने गये सार्वजनिक उपक्रमों की रणनीतिक बिक्री पर जोर दिया।

16.9 विनिवेश की प्रणाली

भारत में विनिवेश 1991-92 में शुरू हुआ और अगस्त 1996 से नवंबर 1999 तक पहले विनिवेश आयोग ने काम किया। हालांकि, 1999 तक सरकार ने विनिवेश विभाग की स्थापना की। विभाग के गठन के साथ विनिवेश प्रक्रिया पर पर्दा उठने लगा। विनिवेश पर शीर्ष निर्णय लेने वाली संस्था प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में विनिवेश पर कैबिनेट समिति है। कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में विनिवेश पर सचिवों का एक मुख्य समूह विनिवेश कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं पर निम्नलिखित तरीके से विचार-विमर्श करता है।

विनिवेश आयोग या अन्य विशेषज्ञ निकायों की सिफारिशों पर, या प्रशासनिक मंत्रालय के परामर्श से लिए गए निर्णयों के आधार पर, विनिवेश मंत्रालय प्रस्तावों की शुरुआत करता है और उन्हें विनिवेश के लिए सचिवों के मुख्य समूह के विचार के लिए रखता है। मुख्य समूह द्वारा लिए गए निर्णय, सिफारिशों के रूप में, फिर विनिवेश पर

कैबिनेट समिति के विचार के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं और विनिवेश के लिए एक अंतिम निर्णय प्रक्रिया प्राप्त की जाती है।

विनिवेश के लिए भारत सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया प्रशासनिक सादगी और निर्णय लेने की गति को बढ़ावा देने के लिए पारदर्शिता और निष्पक्ष खेल से समझौता किए बिना की नीति को बढ़ावा देती है। यह प्रणाली निम्न प्रकार है-

1. विनिवेश आयोग की सिफारिशों के आधार पर या सरकार की घोषित विनिवेश नीति के अनुसार किसी भी सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश के लिए प्रस्ताव, विनिवेश (सीसीडी) पर कैबिनेट समिति के विचारार्थ रखे जाते हैं।
2. सीसीडी के विनिवेश प्रस्ताव को मंजूरी देने के बाद, सलाहकार का चयन प्रतिस्पर्धी बोली प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है।
3. समाचार पत्र/वेबसाइट में विज्ञापन के अनुसरण में, ब्याज की अभिव्यक्ति (ईओआई) प्राप्त होने के बाद, घोषित मानदंडों/आवश्यकताओं के प्रकाश में उद्देश्य की जाँच के आधार पर सलाहकारों का चयन किया जाता है।
4. अपनी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने के लिए समाचार पत्रों/वेबसाइट में विज्ञापन के माध्यम से बोलीदाताओं को आमंत्रित किया जाता है। बोलीदाताओं से ईओआई प्राप्त करने पर, सलाहकार, पीएसयू के यथोचित परिश्रम के बाद, संबंधित पीएसयू के परामर्श से सूचना ज्ञापन तैयार करते हैं। यह संक्षिप्त सूचीबद्ध भावी बोलीदाताओं को दिया जाता है जिन्होंने गोपनीयता समझौते में प्रवेश किया है। बोली लगाने वालों की तैयार सूची ईओआई की जांच है और उन लोगों चुन लिया जाता है, जो निर्धारित योग्यता मानदंडों को पूरा करते हैं।
5. ड्राफ्ट अंश खरीद समझौता और अंशधारक समझौता भी कानूनी सलाहकारों की मदद से सलाहकार द्वारा तैयार किया जाता है, और अंतिम ड्राफ्ट बोलीदाताओं के साथ विस्तृत परामर्श के बाद अंतर-मंत्रालय समूह (आईएमजी) के परामर्श से तैयार किया जाता है।
6. संभावित बोलीदाता पीएसयू के लिए यथोचित परिश्रम करते हैं और किसी भी स्पष्टीकरण के लिए सलाहकार /सरकार /पीएसयू के प्रतिनिधियों के साथ चर्चा करते हैं।
7. समवर्ती, पीएसयू के मूल्यांकन का कार्य मानक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बोलीदाताओं के अनुसार किया जाता है।
8. भावी बोलीदाताओं से प्राप्त फीड बैक के आधार पर, आईएमजी द्वारा अंश खरीद समझौते (एसपीए) और अंशधारकों के समझौते (एसएचए) को अंतिम रूप दिया जाता है। कानून मंत्रालय द्वारा उन्हें वेट किए जाने के बाद, उन्हें सरकार (सीसीडी) द्वारा अनुमोदित किया जाता है। इसके बाद, उन्हें अपनी अंतिम बोली लगाने वाली वित्तीय बोलियों को आमंत्रित करने के लिए भावी बोलीदाताओं को भेजा जाता है।
9. आरक्षित कीमत को अंतिम रूप देने के लिए सामग्री वित्तीय बोलियों की प्राप्ति के बाद सलाहकारों से ली जाती है। बोली इस स्तर पर नहीं खोली जाती हैं और बोली लगाने वालों की उपस्थिति में, प्राप्ति के बाद मापी जाती हैं। इंटर-मिनिस्ट्रियल श्मूल्यांकन समितिश् और प्डळ द्वारा पूरा होने के बाद श्आरक्षित कीमतश् निर्धारण एक प्रयोग है। बिडर्स की उपस्थिति में और फिर श्आरक्षित कीमतश् के साथ तुलना करके, स्केल की गई बोलियाँ प्डळ द्वारा खोली जाती हैं।
10. यदि विनिवेश किए गए पीएसयू के अंशो को स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध किया जाता है, तो सेबी के दिशानिर्देशों के अनुसार लेनदेन बंद करने से पहले बोली लगाने वाले को एक खुला प्रस्ताव देना होगा।

11. उपर्युक्त विनिवेश में, एक विनिवेश मंत्रालय को प्डळ द्वारा सचिव (विनिवेश) की अध्यक्षता में और वित्त मंत्रालय, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम विभाग (PSE), प्रशासनिक मंत्रालय/विभाग को नियंत्रित करने वाले अधिकारियों से सलाह ली जाती है।
12. लेन-देन पूरा होने के बाद, इससे संबंधित सभी कागजात और दस्तावेज भारत के सीएजी के पास भेज दिए जाते हैं, कैग संसद को भेजने के लिए एक मूल्यांकन रिपोर्ट तैयार करता है और इसे जनता को जारी करता है।

विनिवेश आय के उपयोग के संबंध में, इसके उचित उपयोग के बारे में आशंका जताई गई है। या तो इसका उपयोग सरकारी ऋण के पुनर्भुगतान के लिए किया जाना चाहिए, जो शुरुआत में इस पीई को वित्त करने के लिए लिया गया था, या इस धन का उपयोग हानि उठाने वाली पीई के पुनर्गठन के लिए किया जाना चाहिए। तथ्य यह है कि विनिवेश की आय का इस्तेमाल मुख्य रूप से बजटीय घाटे को पूरा करने के लिए किया गया है। विनिवेश आयोग ने अपनी पहली रिपोर्ट में सिफारिश की थी कि संपूर्ण आय विनिवेश कोष में चली जानी चाहिए। इसका उपयोग बजटीय घाटे या राजस्व अंतराल को पूरा करने के लिए नहीं किया जाएगा। लगभग तीन साल पहले सरकार ने घोषणा की कि वह विनिवेश निधि स्थापित करेगी और विनिवेश की आय इस निधि में प्रवाहित होगी। इसके लिए फंड की स्थापना अब तक नहीं की गई है। विनिवेश के रूप में और बाद में वित्तीय स्थिति को और बेहतर बनाने के लिए इसे सरकारी रसीद में शामिल किया जाएगा। संबंधित मंत्री के इस वादे पर केवल वादे किए गए हैं कि निवेश आय का उपयोग सामाजिक क्षेत्रों में खर्च को पूरा करने के लिए, पीई के पुनर्गठन और सार्वजनिक ऋण का पुनरू उपयोग करने के लिए किया जाएगा। हालांकि, यह भी समय-समय पर दोहराया गया है कि विनिवेश प्रक्रिया का उपयोग योजना के लिए अतिरिक्त बजटीय सहायता प्रदान करने के लिए किया जाएगा, मुख्य रूप से सामाजिक और बुनियादी ढांचा क्षेत्रों में। लेकिन, व्यवहार में, यह लंबी बात और अधूरे वादे प्रतीत हुए। वास्तव में, विनिवेश से पाप्ति धन का भारत के समेकित फंड का एक हिस्सा बन गया है। परिणाम के साथ, यह अज्ञात है कि इस धन का उपयोग कहां किया गया है। इसलिए सरकार ने इस मुद्दे पर कोई स्पष्ट बयान नहीं दिया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना किसके बाद की घटना है?
2. तेहरहवी पंचवर्षीय योजना के अंत तक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में कुल निवेश कितना था?
3. प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की इकाइयों की संख्या कितनी थी?
4. एक ऐसी प्रक्रिया कौन सी है जिसके तहत सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (पीएसई) में अपने हिस्से या कुल इक्विटी को वापस लेती है?
5. विनिवेश प्रक्रिया सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया से संबंधित है, इस प्रक्रिया में ऐसे कौन से तौर-तरीके शामिल हैं?
6. किस विधि तकनीक का उपयोग निवेश प्रस्ताव की व्यवहार्यता का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है?
7. एक कार्यकारी निकाय के रूप में कब विनिवेश आयोग की स्थापना एक कार्यकारी आदेश द्वारा की गई थी?

16.10 सारांश

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना उच्च आर्थिक विकास, वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता, और कीमतों में स्थायित्व आदि उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए की गई थी। आर्थिक पिछड़ेपन पर

काबू पाने, सार्वजानिक अर्थव्यवस्था में विविधता लाने व भारत में कृषि व उद्योगों का विकास करने के लिए इन उद्यमों ने एक साधन के रूप में कार्य किया सके। सार्वजानिक क्षेत्र के उद्यम विश्व के अधिकांश देशों के राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में वहाँ की राजनीतिक उन्मुखीकरण के बाबजूद भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखते है। ढांचागत निवेश की आवश्यकता, भारी पूँजी निवेश, लम्बी स्थापना अवधि, भविष्य में लाभ की मंद सम्भावना, निजी उद्यमों पर अविश्वाश, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का आर्थिक व नैतिक रूप से निजी उद्यमों से अच्छा होना आदि ऐसे कई कारण है जिनके परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना की गई। आजादी से पहले सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम नहीं के बराबर थे। रेलवे डाक एवं दूरसंचार, तथा हथियार निर्माण से संबंधित कुछ ऐसे सरकारी उपक्रम थे, जिनकी स्थापना ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने और सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से की गई थी। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना आजादी के बाद की घटना है। विनिवेश सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में अपनी इक्विटी का एक हिस्सा या कुल इक्विटी को निकलने की एक प्रक्रिया है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश करने का निर्णय इस लिए लिया गया था ताकि सरकार के वित्तीय बोझ को कम किया जा सके, प्रतिस्पर्धा तथा बाजार अनुशासन का लागू किया जा सके, व स्वामित्व की व्यापक हिस्सेदारी को प्रोत्साहित किया जा सके।

विनिवेश का महत्व वास्तव में उससे प्राप्त होने वाली राशि के उपयोग करने में निहित है, यदि इसका उपयोग बढ़ रहे राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए, बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे के विकास के लिए व स्वास्थ्य व सामाजिक कार्यक्रमों के लिए वित्त-व्यवस्था करने के लिए किया जाये। आम जनता के लिए सार्वजानिक उपक्रमों की इक्विटी में हिस्सेदारी बढ़ाना भी विनिवेश के मुख्य उद्देश्यों में से एक है। जहाँ तक विनिवेश से जुटाई गई राशि के उपयोग का सम्बन्ध है, इन निधियों के उपयोग के सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया कि इसका उपयोग बढ़ते राजकोषीय वित्तीय घाटे को कम करने के लिए व बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे के वित्त-पोषण के लिए किया जायेगा। साथ ही इस निधि का उपयोग स्वास्थ्य, पानी और शिक्षा जैसी सामाजिक कार्यक्रमों के लिए भी उपयोग किया जायेगा।

16.11 शब्दावली

सार्वजानिक क्षेत्र के उद्यम- एक व्यावसायिक संगठन जो पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से राज्य के स्वामित्व में है और एक सार्वजनिक प्राधिकरण के माध्यम से नियंत्रित होता है।

विनिवेश- विनिवेश का अर्थ है सरकार द्वारा संपत्तियों की बिक्री या परिसमापन, यह सामान्यता पर केंद्र और राज्य के सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम, परियोजनाएं या अन्य अचल संपत्तियां के रूप में हो सकता है।

16.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. आजादी, **2.** 1640628, **3.** 5, **4.** विनिवेश, **5.** अंशो का मूल्यांकन और अंशो की बिक्री, **6.** बट्टागत नकदी प्रवाह, **7.** 1996

16.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. V.S. Singh, "Public Sector Enterprises (PSEs) in India," Deep and Deep Publications, New Delhi, 1986, pp. 19-20.
2. Praxy, J. Fernandes, "Corporate Planning in Public Sector Enterprises (PSEs)," Himalaya Publishing House, Bombay, 1985.

3. V.V. Ramanadham, "The Nature of Public Sector Enterprises (PSEs)," D.K. Publishers, New Delhi, 1984.
4. S.L. Jaiswal, "The Public Sector in India," Chand and Co. (Private Ltd.), New Delhi, 1971, p.5.
5. K.R. Gupta (Ed.), "Organisation and Management of Public Sector Enterprises (PSEs)," Vol., Atlantic Publishers and Distributors, New Delhi, 1978, p.24.
6. Dr. Kumar, Ramchandra, Prasad, Singh, "State and Industrialisation of Developing Countries with Special References to India," Sterling Publishers (Pvt. Ltd.), Delhi, 1969, p.47.
7. Sudhir, Naib, "Disinvestment in India, Policies, Procedures, Practices', Sage Publications New Delhi 2004, pp. 372-373.
8. D.M., Nanjundappa, "Disinvestment: Dimensions and Policy Imperatives', Yojna, December, 1998, pp. 5-9
9. V. Gangadhar, and M., Yadagiri, "Disinvestment in Public Sector Enterprises', The Management Accountant, May, 2003, pp. 325-327
10. Website: www.Indiabudget.nic.in.
11. Ministry of Disinvestment, Department of Disinvestment, www.divest.nic.in.
12. Economic Survey, Various Issues.

16.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Praxy, J. Fernandes, "Corporate Planning in Public Sector Enterprises (PSEs)," Himalaya Publishing House, Bombay, 1985.
2. V.V. Ramanadham, "The Nature of Public Sector Enterprises (PSEs)," D.K. Publishers, New Delhi, 1984.

16.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विनिवेश को स्पष्ट करते हुए इसके औचित्य पर प्रकाश डालिए।
2. विनिवेश की प्रणाली को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 17 विधायी नियंत्रण

इकाई की संरचना

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में नियंत्रण की आवश्यकता
17.3 विधायी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व
17.4 भारत में विधायी नियंत्रण की व्यवस्था
17.4.1 भारतीय संसदीय लोकतंत्र में विधायी नियंत्रण की प्रासंगिकता और व्यवस्था
17.4.2 वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण की क्रियाविधियां
17.5 विधायी नियंत्रण की भारतीय व्यवस्था का विश्लेषण
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
17.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसाम्रगी
17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

17.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 'विधायी नियंत्रण' वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में खण्ड-6 'विधायी, वित्तीय और कार्यकारी नियंत्रण' की प्रथम इकाई है। इस से पूर्व की इकाईयों में आप वित्तीय प्रशासन से संबंधित आधारभूत तत्वों से भलीभांति परिचित हो चुके हैं। वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में नियंत्रण की आवश्यकता और नियंत्रणकारी प्राधिकारियों पर उपयुक्त रूप से निरंतर चर्चा होती आयी है। प्रस्तुत इकाई में इस सम्बंध में, विशेषकर विधायी नियंत्रण के बारे में जोकि इकाई का मुख्य विषय हैं, विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह समझा सकने की स्थिति में होगे कि वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में नियंत्रण की आवश्यकता क्यों होती है, विधायी नियंत्रण क्या होता है और उसका महत्व क्यों है, भारत में विधायी नियंत्रण की कैसी व्यवस्था पायी जाती है, विधायी नियंत्रण की कौन सी क्रियाविधियां होती हैं और यह नियंत्रण वर्तमान समय में कितना प्रभावशाली है।

17.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विधायी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व को समझ पायेंगे।
- वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण की आवश्यकता क्यों पड़ती है; इसे समझ सकेंगे।
- भारतीय संसदीय लोकतंत्र में विधायी नियंत्रण की क्या व्यवस्था है; इसका बोध कर सकेंगे
- जान सकेंगे कि विधायी नियंत्रण कौन सी क्रियाविधियों के द्वारा रखा जाता है; और
- वर्तमान दौर में विधायी नियंत्रण कितना प्रभावकारी रह गया है, इसका विश्लेषण कर सकेंगे

17.2 वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में नियंत्रण की आवश्यकता

लोक वित्तीय प्रबंधन अभिशासन की प्रक्रिया का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और आवश्यक पहलू होता है। वित्तीय संसाधनों के अधिकांशतः न्यून होने के कारण उनका इष्टतम प्रयोग सुनिश्चित करना सरकार के लिए काफी चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। जनता की बढ़ती हुई अभिलाषाएं तथा धन के पूर्ण मूल्य को प्राप्त करने पर उनका बल सीमित वित्तीय संसाधनों पर अधिक दबाव बनाता जा रहा है। इस कारण से सरकारें युक्तिसंगत वित्तीय प्रबंधन को समय के साथ अधिक से अधिक महत्व देती जा रही है। लोक वित्तीय प्रबंधन के कुछ आवश्यक संघटक होते हैं जिनमें सम्मिलित हैं संसाधनों को एकत्र करना, कार्यक्रमों व गतिविधियों की प्राथमिकता निर्धारित करना, वृहत् बजटीय प्रकिया को संचालित करना, संसाधनों का कार्यकुशल प्रबंधन करना तथा नियंत्रण रखना।

अभिशासन का एक मुख्य प्रबंधकीय कार्य नियंत्रण रखना होता है। शासन और प्रशासन की सफलता बहुत अधिक सीमा तक नियंत्रण की प्रभावकारी व्यवस्था पर निर्भर करती है। नियंत्रण किसी संगठन में की जा रही कार्यवाहियों में समन्वय को लाने, व्यवस्था और अनुशासन के वातावरण को विकसित करने, संसाधनों का कार्यकुशल उपयोग करने तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने को सुनिश्चित करती है। यह नियंत्रण ही होता हैं जिसके कारण से त्रुटियों का पता लगाना और नित्य उभरती चुनौतियों का सामना करना संभव होता है। नियंत्रण के सर्वव्यापी स्वरूप होने के कारण यह प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता हैं जिसमें वित्तीय प्रशासन एक अहम क्षेत्र है। वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में रखे जा रहे नियंत्रण को बाहरी और आंतरिक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। बाहरी नियंत्रण की क्षेणी में विधायिका, न्यायपालिका तथा नागरिकों के द्वारा रखे जाने वाले नियंत्रण और आंतरिक नियंत्रण की क्षेणी में कार्यपालिका के द्वारा रखे जाने वाले नियंत्रण को सम्मिलित किया जाता है।

17.3 विधायी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व

विधायिका के द्वारा कार्यपालिका/प्रशासन पर रखे जाने वाले नियंत्रण को विधायी नियंत्रण कहते है। शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के अनुसरण में शासन के जो तीन अंग- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका बने हैं। उनमें से विधायिका व्यक्तियों का एक प्रतिनिधिक विमर्शी निकाय या सभा होती है, जिसके पास देश के लिये विधायन के माध्यम से विधि को अधिनियमित और संशोधित करने तथा बजट को पारित करने का प्राधिकार होता है। विधायिका की संरचना और शक्तियों में देश-देश में भिन्नता दिखायी देती है। कार्यपालिका/प्रशासन को विधायिका द्वारा अधिनियमित की गयी विधि को उत्तरवर्ती के द्वारा निर्धारित की गयी सीमाओं के अंतर्गत रहते हुये क्रियान्वित करना होता है तथा जब तक विधायिका द्वारा बजट पारित नहीं हो जाता है, तब तक प्रशासन द्वारा न तो कोई कर राजस्व का संग्रहण हो सकता है और न कोई व्यय हो सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में विधायिका कार्यपालिका/प्रशासन के कार्यकलापों का पर्यवेक्षण करके और नियंत्रण रख कर यह सुनिश्चित करती है कि परवर्ती अपने दायित्वों का निर्वहन यथेष्टतापूर्वक कर रहा है।

17.4 भारत में विधायी नियंत्रण की व्यवस्था

भारत में विधायी नियंत्रण की व्यापक व्यवस्था पायी जाती है। यह व्यवस्था संविधान, जोकि देश की सर्वोच्च विधि है, तथा लोक सभा एवं राज्य सभा द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार शासित होती है।

17.4.1भारतीय संसदीय लोकतंत्र में विधायी नियंत्रण की प्रासंगिकता और व्यवस्था

संविधान निमार्ताओं द्वारा देश में प्रतिनिधिक संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था को अपनाया गया है जो भारतीय लोकतंत्र में संसद की केन्द्रीय, महान और उत्कर्ष स्थान को दर्शाता है। संसद के निर्वाचित प्रतिनिधि देश के

नागरिकों, जोकि सभी प्राधिकार के आधारभूत स्रोत होते हैं, का प्रतिनिधित्व करते हैं। संविधान की उद्देशिका में यह पूर्णतयः स्पष्ट किया गया है कि देश की सम्प्रभुता उसके नागरिकों में निहित है। संसद, शासन के तीन अंगों में से एक, देश के नागरिकों की सम्प्रभु इच्छा-शक्ति को मूर्त्त रूप प्रदान करती है। संसद का यह अधिभावी सरोकार है कि वह सुनिश्चित करें कि नागरिकों की इच्छा-शक्ति एवं उनकी अभिलाषाओं को उचित महत्व दिया जा रहा है और उनको वास्तविकता में लाने के लिये कार्यपालिका के द्वारा यथोचित प्रयास किये जा रहे हैं। संसदीय लोकतंत्र की एक प्रमुख विशेषता है कि इसमें देश की वास्तविक कार्यपालिका, जोकि प्रधानमंत्री के नेतृत्व में संघ की मंत्रि-परिषद् होती है, संसद से ली गयी होती है। मंत्रि-परिषद् के सदस्य वैयक्तिक रूप से तथा मंत्रि-परिषद् सामूहिक रूप से संसद के प्रति जवाबदेह होते/होती है। मंत्रि-परिषद् का अस्तित्व तभी तक है जब तक उसे लोक सभा का विश्वास प्राप्त होता हैं। संसद नियमों के अंतर्गत प्रदान की गयी अपनी क्रियाविधियों के द्वारा कार्यपालिका पर नियंत्रणकारी शक्तियों का प्रयोग करती है और उसका उत्तरदायित्व अपने प्रति सुनिश्चित करती है। ये नियम लोक सभा एवं राज्य सभा द्वारा संविधान के अनुच्छेद- 118 (1) के प्रावधानुसार बनाये गये हैं, जिसमें यह प्रदान किया गया हैं कि संसद का प्रत्येक सदन अपनी प्रक्रिया और अपने कार्य संचालन के विनियमन के लिये नियम बना सकेगा। लोक सभा व राज्य सभा दोनों के द्वारा ये नियम बना लिये गये हैं जिनका शीर्षक हैं क्रमशः 'लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम' और 'राज्य सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम'। लोक सभा के मामले में 'संविधान सभा (विधायी) कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम' पहले प्रभावी थे। संविधान के सूत्रपात होने के पश्चात् लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा इन नियमों को संशोधित किया गया और 'लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम' के शीर्षक से इनको अपनाया गया। अपनाये गये इन नियमों को भारत के राजपत्र 'असाधारण' में अप्रैल 17, 1952 को प्रकाशित किया गया। राज्य सभा के मामले में 'राज्य सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम' सदन के द्वारा जून 02, 1964 को अपनाये गये और ये नियम जुलाई 01, 1964 से प्रभावी हुये। इन नियमों में समय-समय पर संबंधित सदन के द्वारा संशोधन किया जाता रहा है।

संसद अपनी विविध क्रियाविधियों का प्रयोग करते हुये लोक प्रशासन के सभी क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण रखती है और इन क्षेत्रों में एक क्षेत्र वित्तीय प्रशासन का है।

17.4.2 वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण की क्रियाविधियां

संसद विभिन्न क्रियाविधियों से वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है, जोकि निम्नलिखित हैं-

1. **सदनों में राष्ट्रपति का अभिभाषण एवं संदेश-** संविधान के अनुच्छेदों- 86 एवं 87 में राष्ट्रपति को सदनों में अभिभाषण करने व संदेश भेजने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद- 86 के अनुसार- राष्ट्रपति संसद के किसी एक सदन में या एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण कर सकेगा और इस प्रयोजन के लिये सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकेगा, राष्ट्रपति संसद में उस समय लंबित किसी विधेयक के सम्बंध में संदेश या कोई अन्य संदेश संसद के किसी सदन को भेज सकेगा और जिस सदन को कोई संदेश इस प्रकार भेजा गया है, वह सदन उस संदेश द्वारा विचार करने के लिये अपेक्षित विषय पर सुविधानुसार शीघ्रता से विचार करेगा। अनुच्छेद- 87 में राष्ट्रपति को सदनों में विशेष अभिभाषण कर सकने का अधिकार दिया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार- राष्ट्रपति लोक सभा के लिये प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के आरम्भ में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरम्भ में एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करेगा और संसद को उसके आह्वान के कारण बतायेगा, प्रत्येक सदन की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों द्वारा ऐसे अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के लिये समय नियत करने के लिये उपबंध किया जायेगा। राष्ट्रपति के उपरोक्त

अभिभाषण पर चर्चा करने के लिये लोक सभा के कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम में अध्याय- V की अनुच्छेद-16 से 24 में तथा राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम में अध्याय- V की अनुच्छेद14 से 21 में प्रावधान किया गया है। नियम यह प्रावधान करते हैं कि लोक सभा का अध्यक्ष, सदन के नेता के साथ परामर्श में, और राज्य सभा का सभापति, सदन के नेता के साथ परामर्श में, राष्ट्रपति के अभिभाषण में उल्लिखित विषयों पर चर्चा करने के लिये समय आवंटित करेगा। चर्चा करने के लिये कोई सदस्य धन्यवाद प्रस्ताव को लेकर आता है जिसका अनुमोदन कोई अन्य सदस्य करता है। चर्चा की समाप्ति के पश्चात् प्रधानमंत्री या किसी अन्य मंत्री को यह अधिकार होता है कि वह सरकार की स्थिति को समझाये। जब किसी भी सदन के लिये राष्ट्रपति का संदेश प्राप्त होता है तब उस सदन का पीठासीन अधिकारी उस संदेश को पढ़ता है और उसमें उल्लिखित विषयों पर विचार करने के लिये अनुपालन की जाने वाली क्रियाविधि के सम्बंध में आवश्यक निर्देश देता है।

2. **प्रश्नकाल-** प्रश्नकाल लोक सभा और राज्य सभा दोनों में लोक प्रशासन पर विधायी निगरानी रखने की एक तकनीक है, जिसका प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों; लोक सभाः नियम संख्या 32-54; राज्य सभाः नियम संख्या 38-59 में किया गया है। सामान्य तौर पर दोनों सदनों में प्रत्येक बैठक का प्रथम घंटा प्रश्नकाल का होता है, जिसमें लोक महत्व के प्रश्नों को आमतौर पर मंत्रियों से पूछा जाता है और उनका उत्तर दिया जाता है। किसी भी सदन का कोई भी सदस्य जो प्रश्न को पूछना चाहता है उसे साधारणतयः कम से कम 15 दिनों पहले इस सम्बंध में सदन के महा-सचिव को नोटिस देना होता है। महा-सचिव उस नोटिस को उस मंत्री को देता है जिसको प्रश्न संबोधित होता है। जिस तिथि को नोटिस मंत्री को दिया जाता है उस से 5 दिनों के अवसान के पश्चात् ही उस प्रश्न को उत्तर दिये जाने वाले प्रश्नों की सूची में रखा जाता हैं । प्रश्नकाल के दौरान पूछे जाने वाले प्रश्न 4 प्रकार के होते हैं- तारांकित प्रश्न, अतारांकित प्रश्न, अल्पकालीन नोटिस वाले प्रश्न, तथा गैर-सरकारी सदस्यों से पूछे जाने वाले प्रश्न। तारांकित प्रश्न वे प्रश्न होते हैं जिनका मौखिक उत्तर दिया जाना होता है और ये प्रश्न तारक चिन्ह द्वारा पहचाने जाते है। इन प्रश्नों के उत्तर के पश्चात् पूरक प्रश्न पूछे जा सकते हैं। किसी एक दिन अधिकतम 20 तारांकित प्रश्न पूछे जा सकते हैं। अतारांकित प्रश्न वे प्रश्न होते हैं जिनका लिखित उत्तर दिया जाना होता है और इन में कोई तारक चिन्ह नहीं होता है। इनमें कोई पूरक प्रश्न पूछे नहीं जा सकते हैं। अल्पकालीन नोटिस वाले प्रश्न वे प्रश्न होते हैं जो 15 दिन की विहित की गई अवधि से कम की नोटिस देकर पूछे जा सकते हैं। ये प्रश्न अत्यावश्यक लोक महत्व के मामलों से संबंधित होते हैं और इनका उत्तर मौखिक दिया जाता है। सदन का कोई सदस्य किसी गैर-सरकारी सदस्य से कोई प्रश्न पूछ सकता है परन्तु नियम के अनुसार शर्त्त यह हैं कि उस प्रश्न की विषय-वस्तु का सरोकार किसी ऐसे विधेयक, संकल्प तथा सदन के कार्य के साथ संबंधित किसी ऐसे मामले के साथ होना चाहिये जिसके लिये वह सदस्य उत्तरदायी हैं। इन प्रश्नों पर भी वही क्रियाविधि लागू होती है जो मंत्रियों से पूछे गये प्रश्नों पर लागू हो रही होती है। लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति के पास प्रश्नों की स्वीकार्यता का अधिकार होता है। यदि सदन के संबंधित पीठासीन अधिकारी को लगता है कि किसी सदस्य के द्वारा पूछा गया कोई प्रश्न प्रश्न पूछने के अधिकार का दुरूपयोग है या वह सदन की कार्यवाही में बाधा डाल सकता है या उसे अपकारक तरीके से प्रभावित कर सकता है या वह नियमों का उल्लंघन करता है तो वह ऐसे प्रश्न को अस्वीकार्य कर सकता है।

3. **शून्य काल-** शून्य काल किसी संसद सदस्य के पास उपलब्ध एक अनूठी युक्ति है, जिसके द्वारा वह अत्यावश्यक लोक महत्व के मामलों को सदन में उठा सकता है। शून्य काल प्रश्न काल और सदन में प्रत्रादियों को रखने के तत्काल पश्चात्, अर्थात् दोपहर 12 बजे, होता है। शून्य काल एक भारतीय देन है,

जिसका कोई प्रावधान संसदीय नियमों में नहीं किया गया है। यह कोई औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त क्रियाविधि नहीं है तथा यह परम्पराओं और परिपाटियों से विकसित हुई है। शून्य काल का आरम्भ 1960 के दशक के आरम्भिक वर्षों में हुआ जब प्रश्न काल के तत्काल उपरांत सदस्यों के द्वारा लोक हित के मामलों को उठाया जाता था। कोई सदस्य जो किसी विशिष्ट दिन अत्यावश्यक लोक हित के किसी मामले को उठाना चाहता हैं उसे अपने इस आशय के संबंध में नोटिस प्रातःकाल 10 बजे तक महा-सचिव को देना होता है। इन नोटिसों का परीक्षण करने के बाद लोक सभा का अध्यक्ष किसी एक दिन अधिकतम 20 मामलों तथा राज्य सभा का सभापति अधिकतम 10 मामलों को प्राथमिकतानुसार उठाने की अनुमति देता है और ऐसा उस दिवस की कार्य सूची में दिये गये किसी विषय को उठाये जाने से पूर्व होता है। शून्य काल दो चरणों में होता हैं- प्रथम चरण जोकि प्रश्न काल के तत्काल उपरांत होता है, में राष्ट्रीय और अंतर-राष्ट्रीय महत्व के 05 अत्यावश्यक मामलों को उठाया जाता है, तथा द्वितीय चरण जोकि सायंकालीन 06 बजे या सदन के नियमित कार्य की समाप्ति पर होता है, में अत्यावश्यक लोक हित के स्वीकार किये गये मामलों को उठाया जाता है।

4. **आधे घंटे की चर्चा-** आधे घंटे की चर्चा का प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा दोनों के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों; लोक सभाः नियम संख्या 55; राज्य सभाः नियम संख्या 60 में है। आधे घंटे की चर्चा किसी ऐसे विषय पर चर्चा करने के लिये होती है जो कि हाल के समय में पर्याप्त लोक महत्व का विषय रहा है तथा जिसके उत्तर के लिये तथ्य को समझाना और उसका विवरण देने की आवश्यकता होती है। इसके संबंध में नियम यह प्रदान करते हैं कि लोक सभा का अध्यक्ष किसी सप्ताह में तीन बैठकों में; तथा राज्य सभा का सभापति किसी भी दिन सायंकाल 05 से 05:30 बजे तक आधा घंटा चर्चा करने के लिये आंवटित कर सकता है। किसी भी सदन का कोई भी सदस्य जो किसी ऐसे विषय को उठाना चाहता है, उसे इस संबंध में सदन के महा-सचिव को तीन दिन अग्रिम में लिखित में नोटिस देना होता है। नोटिस के साथ एक व्याख्यात्मक टिप्पणी देनी होती है, जिसमें प्रश्नगत विषय पर चर्चा करने के लिये कारणों को बतलाना होता है। चर्चा के दौरान सदन में न तो कोई औपचारिक प्रस्ताव लाया जाता है और न ही कोई मतदान होता है। वह सदस्य जिसने चर्चा करने के लिये नोटिस दिया होता है। सदन में एक संक्षिप्त वक्तव्य देता है। इसके पश्चात् वे सदस्य जिन्होंने सभा के अध्यक्ष/सभापति को पूर्व में सूचित किया होता हैं प्रश्न पूछ सकते हैं और तत्पश्चात् संबंधित मंत्री संक्षिप्त में उत्तर देता है। चर्चा के दौरान अधिकतम चार सदस्य मंत्री से प्रश्न पूछ सकते हैं।
5. **अल्प अवधि की चर्चा-** अल्प अवधि की चर्चा का प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों; लोक सभाः नियम संख्या 193-196; राज्य सभाः नियम संख्या 176-179 में किया गया है। नियमों के अंतर्गत संसद सदस्य, महा-सचिव को पूर्व लिखित नोटिस देकर, अत्यावश्यक लोक महत्व के मामलों पर अल्प अवधि के लिये चर्चा कर सकते है। लोक सभा का अध्यक्ष सप्ताह में दो बैठकें अल्प अवधि की चर्चा के लिये आवंटित कर सकता है और यह चर्चा अधिकतम दो घंटे के लिये हो सकती है। राज्य सभा का सभापति आवश्यकतानुसार सदन की बैठक चर्चा के लिये आवंटित कर सकता है और यह चर्चा अधिकतम ढाई घंटे के लिये हो सकती है। इस चर्चा में सदन के समक्ष न तो कोई औपचारिक प्रस्ताव लाया जाता है और न ही कोई मतदान होता है। नोटिस देने वाला सदस्य एक लघु वक्तव्य देता है और उसके कुछ समय के पश्चात् मंत्री उसका उत्तर देता है।
6. **बजट-** बजट को शासकीय वित्तीय मामलों पर विधायी नियंत्रण रखने का एक अत्यंत प्रभावशाली साधन माना जाता हैं। ऐसा इसलिये क्योंकि संविधान के अनुच्छेद- 114 (3) के अनुसार भारत की संचित निधि में से पारित विधि द्वारा किये गये विनियोग के अधीन ही कोई धन निकाला जायेगा, अन्यथा नहीं। इसी

प्रकार से अनुच्छेद- 265 के अनुसार कोई कर विधि के प्राधिकार से ही अधिरोपित या संगृहीत किया जायेगा, अन्यथा नहीं। उपरोक्त को सुनिश्चित करने हेतु अनुच्छेद-112 (1) यह प्रदान करता है कि राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में संसद के दोनों सदनों के समक्ष भारत सरकार की उस वर्ष के लिये प्राक्कलित प्राप्तियों और व्यय का विवरण रखवायेगा जिसे 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहा गया है। लोक सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियम संख्या 204 से 221 तक में सदन में वार्षिक वित्तीय विवरण या बजट की सम्पूर्ण क्रियाविधि के संबंध में विस्तृत प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। बजट सदन में उस प्रारूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसा कि वित्त मंत्री, प्राक्कलन समिति के सुझावों, यदि कोई है, को विचारित करते हुये निश्चय करता है। जिस दिन बजट सदन में प्रस्तुत किया जाता है उस दिन उस पर कोई चर्चा नहीं होती है। बजट को प्रस्तुत करने के पश्चात् जो दिन अध्यक्ष के द्वारा निर्धारित किया जाता है और उतने समय के लिये जो अध्यक्ष आवंटित करता है। सदन समूचे बजट या उसमें सम्मिलित सिद्धांत के किसी प्रश्न पर चर्चा करता है। चर्चा की समाप्ति पर वित्त मंत्री को उत्तर देने का सामान्य अधिकार होता है। बजट में मंत्रालयवार सम्मिलित अनुदान मांगों, जोकि संचित निधि से किये जाने वाले व्यय के अनुमान होते हैं, पर चर्चा और मतदान करने के लिये आवश्यक दिवसों का आवंटन अध्यक्ष, सदन के नेता के साथ परामर्श में, करता है। सदन में अनुदान मांगों को कम करने के प्रस्ताव या कटौती प्रस्ताव लाये जा सकते है, जिन पर चर्चा व मतदान होता है। आंवटित दिवसों के अंतिम दिन सायंकालीन 05 बजे या किसी अन्य समय, जो अध्यक्ष अग्रिम में निर्धारित कर सकता है, अध्यक्ष प्रत्येक ऐसे प्रश्न को तत्काल रखता है, जोकि अनुदान मांगों के संबंध में सभी बाकी मामलों को निस्तारित करने के लिये आवश्यक होते हैं। सदन में जब अनुदान मांगें पारित हो जाती हैं तब संविधान के अनुच्छेद- 114 के अंतर्गत विनियोग विधेयक यथाशक्य शीघ्र लाया जाता है, जिस पर बहस तो होती है, पर उसको संशोधित नहीं किया जा सकता है। भारत की संचित निधि में से विनियोग विधेयक के पारित होने पर ही कोई धन निकाला जा सकता है, अन्यथा नहीं। संविधान के अनुच्छेद-115 के अंतर्गत अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान; तथा अनुच्छेद-116 के अंतर्गत लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान के संबंध में जो प्रावधान किये गये हैं उन पर अनुदान मांगों की भांति ही कार्यवाही की जाती है। भारत सरकार के वित्तीय प्रस्तावों को आगामी वित्तीय वर्ष में प्रभावी बनाने के लिये वित्त विधेयक संविधान के अनुच्छेद- 117 के अंतर्गत लोक सभा में राष्ट्रपति की सिफारिश से प्रत्येक वर्ष लाया जाता है। संसद के द्वारा विनियोग और वित्त विधेयकों को पारित करने के साथ ही बजट को पारित माना जाता है।

7. **प्रस्ताव-** प्रस्ताव विधायी नियंत्रण का एक साधन हैं जिसका प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (लोक सभाः नियम संख्या 184-192; राज्य सभाः नियम संख्या 228-233) में किया गया है। प्रस्ताव किसी भी सदस्य के द्वारा सदन में लाया जा सकता है और इसका अभिप्रेत यह होता है कि किसी मामले के संबंध में सदन या तो कुछ करे या कुछ करने के लिये आदेश दे या कोई मत अभिव्यक्त करें। प्रस्ताव मोटे तौर पर दो प्रकार के होते हैं- सरकारी प्रस्ताव एवं निजी सदस्य के प्रस्ताव। सरकारी प्रस्ताव पर सदन में चर्चा किये जाने को प्राथमिकता दी जाती है। प्रस्ताव के संबंध में सामान्य नियम यह है कि व्यापक लोक हित के किसी मामले में लोक सभा/राज्य सभा में कोई चर्चा सदन के अध्यक्ष/सभापति की सहमति के साथ लाये गये किसी प्रस्ताव से ही हो सकती है। सदन का जो सदस्य प्रस्ताव लाना चाहता है उसे इस से संबंधी लिखित नोटिस विहित किये गये प्रारूप में महा-सचिव को देना होता है। प्रस्ताव को स्वीकार करने या नहीं करने के बारे में निर्णय लोक सभा/राज्य सभा के अध्यक्ष/सभापति के द्वारा लिया जाता है। प्रस्ताव को तभी स्वीकार किया जाता है,

जब वह नियमों में नियत की गयी शर्त्तों को पूरा करता हो। अध्यक्ष/सभापति के द्वारा जब प्रस्ताव के नोटिस को स्वीकार कर लिया जाता हैं तब सदन के बुलेटिन में उसको तत्काल अधिसूचित किया जाता है। यदि प्रस्ताव पर चर्चा किये जाने की तिथि निर्धारित हो रखी होती है तब बुलेटिन में उस तिथि को अधिसूचित किया जाता है अन्यथा बुलेटिन में उस को ऐसे प्रस्ताव के रूप में अधिसूचित किया जाता है जिस पर चर्चा किये जाने की तिथि निर्धारित नहीं हो रखी होती है (No-day-yet-named Motion)। अध्यक्ष/सभापति सदन के कार्य की स्थिति को दृष्टिगत रखते हुये और सदन के नेता के साथ परामर्श में प्रस्ताव पर चर्चा किये जाने के लिये दिवस/दिवसों को आवंटित करता है। प्रस्ताव पर चर्चा करने के समय का आवंटन सदन की कार्य सलाहकारी समिति में सामान्य तौर पर किया जाता है। नियत किये गये समय के आने पर अध्यक्ष/सभापति संबंधित सदस्य को बुलाता है कि वह प्रस्ताव के पाठ्य भाग को पढ़ते हुये औपचारिक रूप से प्रस्ताव को सदन में लेकर आये और अपना व्याख्यान दे। इसके पश्चात् अध्यक्ष/सभापति प्रस्ताव को सदन के समक्ष रखता है। यदि उसमें कोई संशोधन लाये जाने होते है तब अध्यक्ष/सभापति के द्वारा बुलाये जाने पर सदस्य उस संशोधन/उन संशोधनों के प्रस्ताव को ले कर आते है और फिर उस पर चर्चा होती हैं। चर्चा के समाप्त होने पर प्रस्तावकर्ता को उत्तर देने का अधिकार होता है। यदि प्रस्ताव में कोई संशोधन किये जाने होते है तब प्रस्तावित किये गये संशोधन/संशोधनों पर सदन में मतदान होता है तथा उसके/उनके निस्तारित होने पर मुख्य प्रस्ताव पर सदन में मतदान होता है। सदन में प्रस्ताव को स्वीकार किये जाने की स्थिति में संबंधित मंत्री को सूचित कर दिया जाता है।

8. **कार्य-स्थगन प्रस्ताव-** कार्य-स्थगन प्रस्ताव वह प्रस्ताव होता है जो अत्यावश्यक लोक हित के किसी निश्चित मामले पर चर्चा करने के लिये सदन के कार्य को स्थगित करने का प्रयोजन रखता है। कार्य-स्थगन प्रस्ताव के संबंध में लोक सभा के कार्य प्रक्रिया और संचालन के नियमों (संख्या 56-63) में विस्तृत प्रावधान किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सभा के कार्य प्रक्रिया और संचालन के नियमों में कार्य-स्थगन प्रस्ताव के संबंध में प्रावधान नहीं किया गया है। लोक सभा के नियमों के अनुसार कार्य-स्थगन प्रस्ताव अध्यक्ष की सहमति से लाया जाता है और इसको लाने के संबंध में नोटिस सदन के महा-सचिव को उस दिन के प्रातः10 बजे तक देनी होती है जिस दिन इस प्रस्ताव को लाया जाना प्रस्तावित होता है। यदि नोटिस प्रातः10 बजे के पश्चात् प्राप्त होता है तो यह माना जाता है कि यह नोटिस उस आगामी दिवस के लिये के लिये हैं जिस दिन सदन की बैठक होनी होती है। नोटिस की प्रतियां लोक सभा के अध्यक्ष, संबंधित मंत्री एवं संसदीय कार्य मंत्री को पृष्ठांकित होती है। कोई सदस्य सदन की किसी एक बैठक के लिये कार्य-स्थगन प्रस्ताव को लाने का केवल एक नोटिस दे सकता है उससे अधिक नहीं। कार्य-स्थगन प्रस्ताव को लाने के सदस्यों के अधिकार पर कुछ प्रतिबंध लगे होते हैं जो नियमानुसार निम्नवत हैं-

- सदन की किसी बैठक में एक से अधिक कार्य-स्थगन प्रस्ताव को नहीं लाया जा सकता है।
- किसी एक प्रस्ताव पर एक से अधिक मामले पर चर्चा नहीं की जा सकती है।
- प्रस्ताव हाल में घटित किसी विनिर्दिष्ट मामले, जिसमें भारत सरकार का उत्तरदायित्व सम्मिलित होता है, तक परिमित होता है।
- प्रस्ताव विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को उठा नहीं सकता है।
- प्रस्ताव में किसी ऐसे मामले पर दोबारा चर्चा कराया जाना सम्मिलित नहीं होता है, जिस पर उसी सत्र में चर्चा हो चुकी है।

- प्रस्ताव किसी ऐसे मामले का पूर्वानुमान नहीं लगा सकता है जो विचारार्थ हेतु पहले नियत किया जा चुका है।
- प्रस्ताव का सरोकार किसी ऐसे मामले के साथ नहीं हो सकता है जो किसी विधि न्यायालय में अधिनिर्णयन हेतु लंबित है।
- प्रस्ताव किसी ऐसे प्रश्न को उठा नहीं सकता है जो संविधान या सदन के कार्य प्रक्रिया और संचालन के नियमों के अंतर्गत किसी विशिष्ट प्रस्ताव पर ही उठाया जा सकता है।

कार्य-स्थगन प्रस्ताव को लाने से संबंधित नोटिस को अध्यक्ष तभी स्वीकार करेगा, जब वह उपरोक्त शर्तों को पूरा करे। अध्यक्ष जब प्रस्ताव को लाने की सहमति दे देता है तब वह संबंधित सदस्य को बुलाता है जो अपने स्थान से उठ कर सदन को स्थगित करने के प्रस्ताव को लाने की अनुमति प्रदान करने के लिये कहता है। ऐसा होने पर अध्यक्ष उन सदस्यों से अनुरोध करता हैं ज अनुमति प्रदान करने के पक्ष में होते हैं कि वे अपने स्थान से उठ जाये और यदि कम से कम 50 सदस्य उठ जाते हैं तब अध्यक्ष सदन को यह सूचित करता है कि कार्य-स्थगन प्रस्ताव को लाने की अनुमति प्रदान कर दी गयी है। प्रस्ताव 'कि सदन अब स्थगित होता हैं' सायंकाल 04 बजे या इससे पहले के किसी घंटे, जैसा कि अध्यक्ष निर्देशित करें, में लाया जाता है। इस प्रस्ताव पर कम से कम 02 घंटे और 30 मिनट तक सदन में चर्चा होती है। अध्यक्ष जब यह संतुष्ट हो जाता हैं कि प्रस्ताव पर पर्याप्त बहस हो चुकी हैं तब वह चर्चा का समापन करता है।

9. **ध्यानाकर्षण प्रस्ताव-** ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, एक अन्य भारतीय देन, का प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों में किया गया है, लोक सभाः नियम संख्या 197; राज्य सभाः नियम संख्या 180)। कोई सदस्य, अध्यक्ष/ सभापति की अनुमति से, किसी मंत्री का ध्यान लोक हित के किसी अत्यावश्यक मामले की ओर आकृष्ट कर सकता है। मंत्री चाहे तो कोई संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है या बाद के किसी घंटे या तिथि में अपना वक्तव्य देने के लिये समय मांग सकता है। मंत्री द्वारा जब ऐसा वक्तव्य दिया जाता है तब उस समय उस पर कोई बहस नहीं होती है, परन्तु वह सदस्य जिसके नाम पर वह विषय कार्य सूची में होता है। स्पष्टीकारक प्रश्न/प्रश्नों को पूछ सकता है और मंत्री ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर अंत में देता है।
10. **अविश्वास प्रस्ताव-** संविधान के अनुच्छेद- 75 (3) के अनुसार मंत्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगा। इस प्रकार मंत्रि-परिषद् तभी तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक उसे लोक सभा का विश्वास प्राप्त होता है। सदन के इस विश्वास को अभिनिश्चत करने के लिये लोक सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (संख्या 198-199) में इसका प्रावधान किया गया है। कोई सदस्य मंत्रि-परिषद् में विश्वास के अभाव को अभिव्यक्त करने वाले किसी प्रस्ताव को महा-सचिव को पूर्व में दिये गये लिखित नोटिस के उपरांत ला सकता है। यदि लोक सभा के अध्यक्ष का यह अभिमत होता है कि प्रस्ताव अनुक्रम में हैं तो वह उसको सदन में पढ़ता है और उन सदस्यों से अनुरोध करता है जो प्रस्ताव को अनुमति प्रदान किये जाने के पक्ष में होते हैं कि वे अपने स्थानों पर खड़े हो जाये। यदि कम से कम 50 सदस्य खड़े हो जाते हैं तब अध्यक्ष यह घोषित करता है कि प्रस्ताव को लाने की अनुमति प्रदान कर दी गयी है। उसके पश्चात् अध्यक्ष उस दिवस को निश्चित करता है जिस दिन प्रस्ताव को लाया जायेगा। निश्चित किये गये दिवस/ दिवसों को प्रस्ताव पर चर्चा होती है और अध्यक्ष प्रत्येक प्रश्न को उस के बारे में सदन के निर्णय को निर्धारित करने के लिये अविलंब रखता है। यदि यह अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता हैं तो मंत्रि-परिषद् को त्यागपत्र देना होता है।

11. **संकल्प-** कोई संकल्प विधायिका के मत, इच्छाशक्ति, अभिलाषा या कार्यवाही की औपचारिक अभिव्यक्ति होता हैं। कोई भी सदस्य सामान्य लोक हित के मामले से संबंधित संकल्प को सदन में ला सकता है। इसके लिये सदस्य को पूर्व में महा-सचिव को लिखित नोटिस देना होता है। संकल्प को स्पष्ट व सटीक रूप से अभिव्यक्त होना चाहिये तथा उसे मूलतः एक निश्चित मुद्दे को उठाना चाहिये। निर्धारित किये गये दिवस को सदस्य संकल्प को लेकर आता है और औपचारिक प्रस्ताव के द्वारा अपना भाषण आरम्भ करता है, जिसके बाद उस पर चर्चा होती है। चर्चा के उपरांत उस पर मतदान होता है। प्रत्येक उस संकल्प की प्रति जो सदन के द्वारा पारित किया जाता हैं संबंधित मंत्री को अग्रसारित की जाती है।
12. **याचिका-** कोई भी संसद सदस्य अपने से संबंधित सदन में पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष/सभापति) की सहमति से याचिकाओं को प्रस्तुत कर सकता है। याचिका से संबंधित प्रावधान लोक सभा व राज्य सभा के सदन में कार्य प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों में किये गये हैं (लोक सभा-नियम संख्याः 160-169, राज्य सभा-नियम संख्याः 137-153)। याचिका का सरोकार उस विधेयक के साथ हो सकता है जो सदन में पेश करने से पूर्व शासकीय राजपत्र में प्रकाशित हो चुका है या जो सदन में पेश हो चुका है; सदन में लम्बित किसी कार्य से जुड़े किसी मामले के साथ हो सकता हैं; और सामान्य लोक हित के किसी मामले के साथ हो सकता है। कोई भी याचिका जो धन विधेयक से संबंधी किसी मामले के साथ संबंधित है या जिसमें भारत की संचित निधि से व्यय किया जाना सम्मिलित है, राष्ट्रपति की सिफारिश के साथ ही सदन में प्रस्तुत की जा सकती है। यह महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक याचिका की भाषा सम्मानजनक, शालीन एवं शिष्ट होनी चाहिये; वह याचिकाकर्ता/याचिकाकर्ताओं द्वारा हस्ताक्षरित होनी चाहिये; उसको सदन में प्रस्तुत करने वाले सदस्य का प्रतिहस्ताक्षर उस पर होना चाहिये; और कोई सदस्य अपनी स्वयं की याचिका सदन में प्रस्तुत नहीं कर सकता है। कोई सदस्य जो सदन में याचिका प्रस्तुत करना चाहता हैं उसे अपने इस आाशय के संबंध में अग्रिम सूचना महा-सचिव को देनी होती है। कोई याचिका जब सदन में प्रस्तुत हो जाती है, तब उस पर कोई बहस नहीं होती है। प्रत्येक याचिका सदन में प्रस्तुत होने के उपरांत याचिका समिति के पास भेज दी जाती है।
13. **विशेष उल्लेख-** विशेष उल्लेख किसी संसद सदस्य के पास उपलब्ध एक ऐसी युक्ति है, जिसके द्वारा वह लोक हित के किसी मुद्दे को सदन में उठा सकता है। लोक सभा व राज्य सभा के सदन में कार्य प्रक्रिया तथा संचालन के नियम (लोक सभा-नियम संख्याः 377-377 ग; राज्य सभा-नियम संख्याः 180क-180ड) विशेष उल्लेख से संबंधित प्रावधान करते हैं। सदन में उन मामलों को विशेष उल्लेख के अंतर्गत उठाया जाता है जो 'प्वाइंटस ऑफ ऑडर' (Points of Order) नहीं होते हैं। ऐसा करने के लिये सदस्य को संबंधित सदन के महा-सचिव को लिखित में नोटिस देना होता है। नोटिस के साथ विशेष उल्लेख किये जाने वाले मामले का पाठ्य-भाग दिया जाता हैं जो अधिकतम 250 शब्दों में होता है। ऐसे मामले का सरोकार भारत सरकार के साथ प्राथमिक रूप से होना चाहिये। वह सदस्य जिसे कि अनुमति प्रदान की गयी है अध्यक्ष/सभापति के द्वारा अनुमोदित किये गये पाठ्य-भाग को सदन में पढ़ते हुये मामले का उल्लेख करता है। लोक सभा में एक दिन में विशेष उल्लेख के 20 मामले और राज्य सभा में 07 मामले उठाये जा सकते है। जब सदन में विशेष उल्लेख के मामले उठाये जाते हैं तब सामान्य व्यवहार के तौर पर उपस्थित मंत्री मामले पर तत्काल प्रतिक्रिया नहीं करते हैं और यदि वह उत्तर देना चाहता है तो वह दे सकता है।

17.5 विधायी नियंत्रण की भारतीय व्यवस्था का विश्लेषण

विधायी नियंत्रण की भारतीय व्यवस्था के बारे में स्पष्ट तौर पर यह कहा जा सकता है कि यह प्रभावकारी तो है परन्तु पूर्णतयः नहीं। इसका मुख्य कारण है कि संसद सदस्यों में गंभीरतापूर्वक कार्य करने की मनोवृत्ति में दृष्टिगोचर कमी हो रही है और उनका समय तुच्छ मामलों एवं संकीर्ण राजनीतिक कटुता में अधिक व्यतीत हो रहा है। संसद में चर्चा साधारणतयः दलगत आधारों पर होती है, जोकि प्रयोजनपरक और रचनात्मक चर्चा में कमी लाने लगता है। इससे नीति संबंधी महत्वपूर्ण मुद्दों की उपेक्षा होने लगती है जो व्यापक राष्ट्रीय हित को प्रतिकूल ढ़ंग से प्रभावित करता है। अनेक बार यह भी देखा गया है कि संसद द्वारा जो विधियां पारित की जाती है तथा कार्य संबंधी सिफारिशें की जाती है वे प्रशासनिक तंत्र द्वारा लगनशीलता के साथ क्रियान्वित नहीं की जाती है और यदा-कदा विधियों के उपबंधों में अस्पष्टता उनके क्रियान्वयन के मार्ग में बाधा लेकर आती है। यह कहा जा सकता हैं कि जब तक संसद में चर्चाएं विचारपूर्ण नहीं होगी, सांसद दलगत राजनीति से परे नहीं जायेगे और अपने कार्यो के प्रति संजीदा नहीं होंगे, शासकीय कार्यों के निष्पादन का वस्तुनिष्ठ आंकलन नहीं करेंगे तब तक विधायी नियंत्रण की प्रभावशीलता प्रतिकूल ढंग से प्रभावित होती रहेगी।

अभ्यास प्रश्न-

1. तारांकित प्रश्न किसको कहते हैं?
2. लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियमों में ‘विशेष उल्लेख’ का प्रावधान कौन से नियम में किया गया है?
   क. नियम संख्या 370 ख. नियम संख्या 373
   ग. नियम संख्या 377 घ. नियम संख्या 379
3. संविधान के अनुच्छेदों....................में राष्ट्रपति को सदनों में अभिभाषण करने व संदेश भेजने का अधिकार दिया गया है।
4. कार्य-स्थगन प्रस्ताव में विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को उठाया जा सकता है।

17.6 सारांश

प्रकट इकाई को पढ़ने के बाद आपको यह ज्ञात हो चुका है कि अभिशासन की प्रक्रिया का एक आवश्यक पहलू युक्तिसंगत लोक वित्तीय प्रबंधन होता है जो समय की मांग बन चुका है। इसको संभव बनाने के लिये वित्तीय पहलुओं पर प्रभावकारी नियंत्रण रखना अनिवार्य हो जाता है, जोकि बाहरी और आंतरिक दोनों होता है। बाहरी नियंत्रण रखने वाला शासन का एक मुख्य अंग विधायिका होता है और उसके द्वारा रखे जा रहे नियंत्रण को विधायी नियंत्रण कहा जाता है। भारत में जो विधायी नियंत्रण की व्यवस्था विहित की गयी है, उसमें देश के संविधान के प्रावधान तथा संसद के दोनों सदनों- लोक सभा एवं राज्य सभा के द्वारा बनाये गये नियम सम्मिलित होते हैं। इनमें विविध प्रकार की क्रियाविधियों को निरूपित किया गया हैं जिनका प्रयोग करते हुये सांसद वित्तीय प्रशासन पर नियंत्रण रखता है। इस इकाई के अध्ययन से आप विधायी नियंत्रण से सम्बद्ध सभी पहलुओं का वर्णन कर सकेंगे और अपने विचारों को व्यक्त कर सकेंगे।

17.7 शब्दावली

अनुदान मांग- अनुदान मांगों का सरोकार भारत के वार्षिक वित्तीय विवरण में सम्मिलित संचित निधि में से किये जाने वाले व्यय के प्राक्कलनों, जोकि संचित निधि पर भारित व्यय से संबंधित व्यय के प्राक्कलनों से भिन्न होते हैं, के साथ होता है। अनुदान मांगों का प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 113 में किया गया है। इस अनुच्छेद के

अनुसार अनुदान मांगें राष्ट्रपति की सिफारिश पर लोक सभा के समक्ष लायी जाती है जिसको की शक्ति होती है कि वह अनुदान मांग को चाहे तो मौलिक रूप में अनुमति दे सकता है या अनुमति देने से मना कर सकता है या उसमें विनिर्दिष्ट की गयी धनराशि को कम करके उसकी अनुमति दे सकता है।

बजट- बजट आगामी वित्तीय वर्ष के लिये एक वित्तीय योजना होती हैं जिसमें आय और व्यय के प्राक्कलनों को सम्मिलित किया जाता है। संविधान का अनुच्छेद- 112 बजट का प्रावधान 'वार्षिक वित्तीय विवरण' के रूप में करता है। इस अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में संसद के दोनों सदनों के समक्ष भारत सरकार की उस वर्ष के लिये प्राक्कलित प्राप्तियों और व्यय का विवरण रखवायेगा जिसे 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहा गया है।

राज्य सभा- राज्य सभा भारतीय द्विसदनीय संसद का द्वितीय या ऊपरी सदन है। संविधान का अनुच्छेद- 80 राज्य सभा की संरचना के संबंध में प्रावधान करता है जिसके खण्ड (1) के अनुसार राज्य सभा राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशित किये जाने वाले बारह सदस्यों और राज्यों के तथा संघ राज्य क्षेत्रों के 238 से अनधिक प्रतिनिधियों से मिलकर बनेगी। अनुच्छेद के खण्ड (3) के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशित किये जाने वाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे, जिन्हें निम्नलिखित विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है, अर्थात् साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा; तथा खण्ड (4) के अनुसार राज्य सभा में प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों का निर्वाचन उस राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जायेगा।

लोक वित्तीय प्रबंधन- लोक वित्तीय प्रबंधन का सरोकार सार्वजनिक क्षेत्र में वित्तीय पहलुओं, अर्थात् मुख्यतः संसाधनों का संग्रहण व व्यय को करना, का प्रबंधन करने के साथ होता है। यह सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि इसी के माध्यम से लोक धनराशियों एवं निधियों के प्रभावकारी उपयोग को सुनिश्चित किया जाता है। यह निर्णय निर्माण की गुणवत्ता, लोक सेवा के परिणामों तथा जनता के विश्वास को प्रभावित करता है।

लोक सभा- लोक सभा संसद का प्रथम या निचला सदन है। लोक सभा की संरचना के संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 81 में किया गया है। अनुच्छेद के खण्ड (1) के अनुसार लोक सभा राज्यों में प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने हुये 530 सदस्यों से अनधिक, और संघ राज्यक्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिये ऐसी रीति से, जो संसद विधि द्वारा उपबंधित करे, चुने हुये बीस सदस्यों से अनधिक से मिलकर बनेगी।

वित्तीय प्रशासन- वित्तीय प्रशासन लोक प्रशासन की वह शाखा हैं जिसका सरोकार उन सभी संचालनों के साथ होता हैं जो लोक धनराशियों एवं निधियों के विधिपूर्ण व कुशल उपयोग को सुनिश्चित करने के लिये होते हैं।

संचित निधि- संचित निधि का गठन संविधान के अनुच्छेद- 266 (1) के प्रावधानुसार किया जाता है। इस अनुच्छेद के अनुसार भारत सरकार को प्राप्त सभी राजस्व, उस सरकार द्वारा राज हुण्डियां निर्गमित करके, उधार द्वारा या अर्थोपाय अग्रिमों द्वारा लिये गये सभी उधार और उधारों के प्रतिसंदाय में उस सरकार को प्राप्त सभी धनराशियों की एक संचित निधि बनेगी जो ''भारत की संचित निधि'' के नाम से ज्ञात होगी।

संसदीय लोकतंत्र- संसदीय लोकतंत्र लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का वह रूप होता है, जिसमें संसद की स्थिति प्रबलकारी होती है। इसमें संसद के सदस्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रकार से जनता के द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं और वह दल या दलों का गठबंधन सरकार बनाता हैं जिसका/जिनका सबसे अधिक प्रतिनिधित्व संसद में होता है। इस प्रणाली में सरकार/कार्यपालिका संसद के प्रति जवाबदेह होती है।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अतारांकित प्रश्न, अल्पकालीन नोटिस वाले प्रश्न, तथा गैर-सरकारी सदस्यों से पूछे जाने वाले प्रश्न, **2.** 377, **3.** अनुच्छेद- 86 और 87, **4.** असत्य

17.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. लोक सभा, भारत की संसद, लोक सभा के बारे में प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्न, नई दिल्ली।
2. http://164.100.47.194/loksabha/FAQ.aspx
3. लोक सभा सचिवालय, (अप्रैल 2014) *Rules of Procedure and Conduct of Business in Lok Sabha*] पन्द्रहवां संस्करण, नई दिल्ली।
4. http://164.100.47.194/loksabha/rules.aspx
5. राज्य सभा, भारत की संसद, विशेष उल्लेख, नई दिल्ली।
6. https://rajyasabha.nic.in/rsnew/practice_procedure/book9.asp
7. राज्य सभा सचिवालय, (जनवरी 2010 Handbook for Members of Rajya Sabha, नई दिल्ली,
8. https://rajyasabha.nic.in/rsnew/handbook/hand_book_2010.pdf
9. राज्य सभा सचिवालय, (अगस्त 2016) Rules of Procedure and Conduct of Business in the Council of States (Rajya Sabha), नवां संस्करण, नई दिल्ली,
10. http://rajyasabha.nic.in/rsnew/rs_rule/rules_pro.pdf
11. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

17.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) Indian Public Administration: Institutions and Issues, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अवस्थी, अमरेश्वर एवं आनंद प्रकाश अवस्थी, (1995) Indian Administration, तीसरा संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. कश्यप, सुभाष सी. (1995) Our Parliament, An Introduction to the Parliament of India, तीसरा संस्करण, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
4. फाड़िया, बी.एल., (1997 संस्करण) Indian Government and Politics, साहित्य भवन पब्लिकेशनस्, आगरा।
5. राज्य सभा, भारत की संसद, राज्य सभा के बारे में प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्न, नई दिल्ली।
6. शर्मा, एम. पी. एवं बी. एल. सडाना (1992) Public Administration: In Theory and Practice, इक्कीसवां संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद।

17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वित्तीय प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता व महत्ता का वर्णन कीजिये।
2. विधायी नियंत्रण की तकनीकों के रूप में प्रश्नकाल एवं शून्य काल की विवेचना कीजिये।
3. भारत में वित्तीय प्रशासन पर विधायी नियंत्रण की प्रभावशीलता के बारे में टिप्पणी कीजिये।

इकाई-18 वित्तीय समितियों की व्यवस्था

इकाई की संरचना

18.0 प्रस्तावना

18.1 उद्देश्य

18.2 संसदीय समितियों की अवधारणा

18.3 संसदीय समितियों का महत्व एवं उनके कार्य

18.4 संसदीय समितियों के प्रकार

18.5 संसदीय वित्तीय समितियां

    18.5.1 लोक लेखा समिति

    18.5.2 प्राक्कलन समिति

    18.5.3 लोक उपक्रम समिति

18.6 सारांश

18.7 शब्दावली

18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

18.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

18.11 निबन्धात्मक प्रश्न

18.0 प्रस्तावना

इस से पिछली इकाई में आप वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण, उसके महत्व, भारत में विधायी नियंत्रण की व्यवस्था और उसकी क्रियाविधियों के बारे अच्छे से अवगत हो चुके हैं। संसदीय शासन प्रणाली में संसदीय समितियों के द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जा रही है। प्रस्तुत इकाई में इस से संबंधित उपादानों, विशिष्ट रूप से वित्तीय समितियों के संदर्भ में, सविस्तार परिचर्चा की गयी हैं।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह बेहतर तरीके से प्रकाश डाल सकते हैं कि संसदीय समितियां क्या होती हैं, उनका महत्व एवं कार्य क्या होते हैं, ये समितियां कितने प्रकार की होती हैं, संसदीय वित्तीय समितियां कौन-कौन सी है, उनकी संरचना, कार्य और कर्तव्य क्या हैं तथा उनका कार्यकरण कैसा रहा है।

18.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- समझ सकेंगे कि संसदीय समितियों का अर्थ, महत्व तथा कार्य क्या होते हैं;
- जान पायेंगे कि संसदीय समितियों के प्रकार क्या हैं;
- वर्णन कर सकेंगे कि संसदीय वित्तीय समितियां क्या होती हैं और ये कौन सी हैं;
- चर्चा कर पायेंगे कि संसदीय वित्तीय समितियों की संरचना, कार्य और कर्तव्य क्या हैं; और
- विश्लेषण कर सकेंगे कि वास्तविकता में वित्तीय समितियों का कार्यकरण कैसा रहा हैं और ये कैसा कार्य कर रही है।

18.2 संसदीय समितियों की अवधारणा

किसी संसदीय समिति से अभिप्राय ऐसी समिति से होता है जोकि या तो सदन (लोक सभा/राज्य सभा) के द्वारा नियुक्त या निर्वाचित की जाती है या लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति के द्वारा नामित की जाती है; जो अध्यक्ष/सभापति के दिशा-निर्देशन में कार्य करती है; और अपना प्रतिवेदन सदन या अध्यक्ष/सभापति को प्रस्तुत करती है। संबंधित सदन का सचिवालय संसदीय समिति के लिये भी सचिवालय की तरह कार्य करता है। संसदीय समितियों की निम्नलिखित विशिष्ट विशेषताएं होती हैं-

1. किसी संसदीय समिति के सदस्य लाये गये प्रस्ताव पर सदन के द्वारा नियुक्त या निर्वाचित किये जाते हैं या लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति के द्वारा नामित किये जाते हैं।
2. लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति के द्वारा नामित समिति या तो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट की गयी अवधि तक या नयी समिति के नामित होने तक बनी रहती है।
3. संबंधित सदन की समिति का कोई सदस्य लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपना पद त्याग कर सकता हैं।
4. संबंधित सदन की समिति का अध्यक्ष लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति के द्वारा समिति के सदस्यों में से नियुक्त किया जाता है। लोक सभा में सदन का उपाध्यक्ष यदि किसी समिति का सदस्य होता हैं तो उसे उस समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता हैं।
5. लोक सभा का अध्यक्ष/राज्य सभा का सभापति संबंधित सदन की समिति के अध्यक्ष को उसके कार्य के व्यवस्थापन एवं क्रियाविधि को विनियमित करने के लिये आवश्यक निर्देश जारी करता है।
6. संबंधित सदन की समिति की बैठक के लिये गणपूर्ति उसके कुल सदस्यों का लगभग एक-तिहाई होता है।
7. किसी समिति की किसी बैठक के सभी प्रश्न उपस्थित और मतदान कर रहे सदस्यों के मतों के बहुमत के द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। यदि किसी मामले पर पक्ष और विपक्ष में पड़े मतों की संख्या बराबर होती है तो समिति के अध्यक्ष का निर्णायक मत होता है।
8. कोई संसदीय समिति किसी मामले/किन्हीं मामलों का परीक्षण करने के लिये एक या अधिक उप-समिति/समितियां गठित कर सकती है।
9. किसी समिति की बैठकें उन दिवसों और उस घंटे पर आयोजित होती है, जैसा कि उसका अध्यक्ष निर्धारित करता है।
10. किसी समिति की बैठकें असार्वजनिक रूप से आयोजित होती है।
11. संबंधित सदन के महा-सचिव के हस्ताक्षर के द्वारा जारी किये गये किसी आदेश के द्वारा किसी समिति के समक्ष गवाही देने के लिये किसी गवाह को बुलाया जा सकता है।
12. किसी समिति के पास व्यक्तियों को बुलवाने, और प्रत्रादियों तथा अभिलेखों को मंगवाने की शक्ति होती है।
13. किसी समिति के निर्णयों से संबंधित किसी अभिलेख को उसके अध्यक्ष के दिशा-निर्देशन में बनाकर रखा जाता है और उसके सदस्यो में संचारित किया जाता हैं।
14. प्रत्येक समिति का अध्यक्ष संबंधित सदन को उसका प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। यदि समिति को उपयुक्त लगता है तो वह सदन में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने से पूर्व उसका कोई भाग सरकार को दे सकता है। प्रतिवेदन और उससे संबंधित किसी भाग को सदन में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व तक गोपनीय माना जाता है।
15. सदन का सत्रावसान होने की स्थिति में समिति के समक्ष किसी लम्बित कार्य का व्यपगमन नहीं होता है।

18.3 संसदीय समितियों का महत्व एवं उनके कार्य

संसदीय समितियों की आवश्यकता इस कारण से महसूस की जाती है कि वर्तमान समय के आधुनिक काल में संसद और उसके सदनों के द्वारा जो काम किया जाता है वह बहुत ही विविध तथा जटिल स्वरूप का हो चुका हैं; उसकी मात्रा एवं फैलाव में भी कालांतर में अत्यंत वृद्धि हो गयी हैं; और संसद के पास इन बढ़े हुये कार्यों को निपटाने के लिये समय बहुत सीमित होता है। स्थिति यह हो गयी हैं कि सदनों के समक्ष जो भी मामले आते हैं, चाहे वे विधायी हो या कोई अन्य, उन पर सावधानीपूर्ण एवं सतर्कतापूर्वक विचार करना उनके लिये संभव नहीं हो पाता है। एक प्रकार से यह कहा जा सकता हैं कि सदन में प्रत्येक मामले पर अच्छी तरह से और व्यवस्थित रूप से विचार करना तथा उसकी संवीक्षा करना दुष्कर होता जा रहा है। चूंकि विधायी मामले महत्वपूर्ण मामले होते हैं, उनका सचेत रूप से निपटारा करना आवश्यक होता है, और सदन पर्याप्त समय के अभाव के कारण उनको यथोचित प्रकार से निपटा नहीं पाता है। ऐसी दशा में उन मामलों को तर्कशील तरीके से देखने के लिये किसी ऐसे संगठन को गठित करना जिसमें सम्पूर्ण सदन का विश्वास हो और उसे संसदीय कार्यों को सौंपना समीचीन हो जाता है। यह संगठन संसदीय समिति का होता है। संसदीय समितियों को गठित करना तथा उनके माध्यम से यथेष्ट कार्यों को सम्पादित करना एक सामान्य परिपाटी हो चुका है।

संसदीय समितियां, संसदीय शासन प्रणाली में प्रमुख स्थान रखती हैं और महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये समितियां संसद, कार्यपालिका एवं आम जनता के मध्य एक गत्यात्मक कढ़ी प्रदान करती हैं। संसदीय समितियों की भूमिका सहायक अभिकरणों वाली होती है। ये समितियां संसद को आवश्यक सहायता प्रदान करती हैं, जिससे कि वह अपने कार्यों एवं कर्तव्यों को कुशलतापूर्वक, प्रभावपूर्ण तरीके से और शीघ्रता से निभा सके। संसद के द्वारा समितियों को जो भी मामले निर्दिष्ट किये जाते हैं उनको वे दक्षता एवं विशेषज्ञता के साथ देखती है, जिससे कि उन मामलों के साथ औचित्यपूर्ण ढंग से न्याय हो सके। संसदीय समितियां प्रायः शांत और निश्चल वातावरण में कार्य करती हैं, जिस कारण से उनके सदस्यों के लिये संभव होता है कि वे उल्लिखित मामलों पर गहनता तथा व्यावहारिक तरीके के साथ विचार-विमर्श कर सकें, उन पर विस्तारपूर्वक चर्चा कर सकें, और उदारता के साथ अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकें। संसदीय समितियों का कार्यपालिका के कार्यकरण पर हितकारी प्रभाव होता है। इनके माध्यम से संसद शासन और प्रशासन पर अपना प्रभाव एवं नियंत्रण रखती हैं तथा कार्यपालिका के द्वारा प्राधिकार के दुरूपयोग को रोकती हैं। अधिकांश समितियों में आम जनता भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध होती हैं। आम जनता की भूमिका इस प्रकार से आती हैं कि वे समितियों को ज्ञापन देते हैं जिसमें कि सुझाव दिये गये होते हैं और जब समितियों के द्वारा घटनास्थल पर अध्ययन किये जाते हैं तब लोगों से सूचनाएं ली जाती हैं तथा उनसे मौखिक प्रमाण लिया जाता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संसदीय समितियों की भूमिका प्रभाव डालने वाली, सलाह देने वाली, विवेचना एवं संवीक्षा करने वाली और जवाबदेही को सुनिश्चित करने वाली होती हैं। इन समितियों की सिफारिशों को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा जाता है और ऐसा इसलिये है, क्योंकि इनका कार्य करने का ढंग अपक्षपाती रहा है तथा इनमें होने वाले विचार-विमर्श और इनके निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ एवं निष्पक्ष रहे है।

18.4 संसदीय समितियों के प्रकार

भारतीय संसद के दोनों सदनों में समितियों की एक सुव्यवस्थित तथा संगठित व्यवस्था विद्यमान है। लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियम एवं अध्यक्ष/सभापति के द्वारा जारी निर्देश समितियों के संगठन, उनके सदस्यों की नियुक्ति, कार्यकाल, कार्यों तथा क्रियाविधियों को विनियमित करते हैं। संसदीय समितियों के स्वरूप के अनुसार उनको दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है- स्थायी एवं तदर्थ। स्थायी समितियां

नियमित तौर पर पायी जाने वाली और निरंतर कार्य करने वाली समितियां होती हैं। ये समितियां संसद के किन्हीं अधिनियमों या लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों के प्रावधानुसार गठित की जाती हैं। स्थायी समितियों के उदाहरण हैं- वित्तीय समितियां, विभागों से संबंधित स्थायी समितियां, कार्य सलाहकारी समिति (राज्य सभा व लोक सभा) विशेषाधिकार समिति (राज्य सभा व लोक सभा), सदन की बैठकों से सदस्यों के अनुपस्थित रहने से संबंधी समिति (लोक सभा), सरकारी आश्वासन समिति (राज्य सभा व लोक सभा), पटल पर रखे गये प्रत्रादि से संबंधीसमिति (राज्य सभा व लोक सभा), याचिका समिति (राज्य सभा व लोक सभा), गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों एवं संकल्पों से संबंधी समिति (लोक सभा), अधीनस्थ विधायन समिति (राज्य सभा व लोक सभा), सामान्य प्रयोजन समिति (राज्य सभा व लोक सभा), सदन समिति (राज्य सभा व लोक सभा), नियम समिति (राज्य सभा व लोक सभा), आचारनीति समिति (राज्य सभा व लोक सभा), पुस्तकालय समिति (लोक सभा), अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण से संबंधी समिति (लोक सभा), महिला सशक्तीकरण समिति (लोक सभा), लाभ के पद से संबंधी संयुक्त समिति, संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्तों से संबंधी संयुक्त समिति, संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना समिति (राज्य सभा), और राज्य सभा के सदस्यों को कम्प्यूटर की व्यवस्था करने संबंधी समिति।

तदर्थ समितियां अस्थायी स्वरूप वाली समितियां होती हैं जो किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिये गठित की जाती हैं। जब ये समितियां सौंपे गये कार्यों को समाप्त कर लेती हैं और अपने प्रतिवेदनों को संबंधित सदन को दे देती हैं तब इनका अस्तित्व समाप्त हो जाता हैं ।

तदर्थ समितियों के उदाहरण हैं- रेलवे उपक्रम द्वारा सामान्य राजस्व को देय लाभांश के दर की समीक्षा करने के लिये संसदीय समिति (रेलवे करार समिति) (लोक सभा), संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना समिति (लोक सभा), संसद भवन-समूह में खाद्य पदार्थों के प्रबंधन से संबंधी समिति (लोक सभा), संसद भवन-समूह में राष्ट्रीय नेताओं एवं सांसदों के चित्रों/प्रतिमाओं के प्रतिष्ठापन से संबंधी समिति (लोक सभा), लोक सभा के सदस्यों को कम्प्यूटर की व्यवस्था करने संबंधी समिति, संसद भवन-समूह में सुरक्षा से संबंधी समिति (लोक सभा), प्रोटोकाल के मानदण्ड़ों के उल्लंघन तथा लोक सभा के सदस्यों के साथ सरकारी अधिकारियों के तिरस्कारक व्यवहार से संबंधी समिति, अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण से संबंधी समिति (लोक सभा), किसी सदस्य के अनुचित आचरण की जांच करने के लिये समिति (लोक सभा), संसद भवन-समूह के धरोहर वाले चरित्र को बनाकर रखने एवं उसका विकास करने के लिये संयुक्त संसदीय समिति, भू अधिग्रहण, पुनर्वासन तथा स्थानांतरगमन (दूसरा संशोधन) विधेयक, 2015 में उचित क्षतिपूर्ति एवं पारदर्शिता के अधिकार से संबंधी संयुक्त समिति, नागरिकता अधिनियम, 1955 को संशोधित करने वाले विधेयक से संबंधी संयुक्त समिति, और वित्तीय संकल्प एवं निक्षेप बीमा विधेयक, 2017 से संबंधी संयुक्त समिति।

18.5 संसदीय वित्तीय समितियां

भारत की संसदीय लोकतंत्र व्यवस्था में चूंकि सरकार वित्तीय प्रबंधन के मामले में संसद के प्रति जवाबदेह होती है, इसलिये संसद के द्वारा लोक प्रशासन पर वित्तीय नियंत्रण रखा जाता है। संसद सरकार के वित्त और वित्तीय व्यवस्था का पर्यवेक्षण करती हैं, जिसमें कि उसकी वित्तीय नीतियों तथा प्रस्तावों की संवीक्षा किया जाना सम्मिलित होता है। यह संवीक्षा या तो लोक हित के मामलों को उठाने वाली संसदीय प्रक्रियात्मक युक्तियों के माध्यम से या संसदीय समितियों के माध्यम से की जाती है। संसद के द्वारा जब बजट पारित कर दिया जाता है, तब वह यह सुनिश्चित करती है कि सरकार के द्वारा वित्तीय विषयों का प्रबंधन युक्तिसंगत, विचारपूर्ण एवं नियत तरीकों से किया गया है। संसद तीन वित्तीय समितियों- लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, तथा लोक उपक्रम समिति

के माध्यम से उक्त के बारे में अपने आप को आश्वस्त करती है। तीनों वित्तीय समितियों में कुछ सामान्य विशेषतायें दृष्टिगोचर होती है-

1. वित्तीय समितियां वित्तीय प्रबंधन के क्षेत्र में संसद के रक्षक की भूमिका निभाती हैं।
2. ये समितियां संबंधित सदन के द्वारा एक वर्ष के लिये निर्वाचित की जाती हैं।
3. सरकार के मंत्री इन समितियों के सदस्य नहीं होते हैं। मंत्रियों को इन समितियों के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिये बुलाया नहीं जा सकता है।
4. सभी तीनों वित्तीय समितियों के अध्यक्ष लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।
5. ये समितियां कार्य प्रक्रिया के अपने आंतरिक नियमों को बना सकती है। इन नियमों का अनुमोदन लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा होना होता है।
6. ये समितियां दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के कार्यों के साथ हस्तक्षेप नहीं करती हैं और प्रशासनिक कार्यों का परीक्षण पूर्वव्यापी तौर पर करती है। इन समितियों के द्वारा केवल उन कार्यों का परीक्षण किया जाता है जो किये जा चुके है या नहीं किये गये है, जिन्हें कि अन्यथा किया जाना था।
7. इन समितियों के विष्कर्ष परिणाम सिफारिशों के रूप में होते हैं जिन्हें कि सम्मानजनक दृष्टिकोण से देखा जाता है।

वित्तीय समितियों का संगठन देश की संसदीय लोकतंत्र व्यवस्था का अनूठा संगठन है, जिन्हें कि गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। एक तरीके से यह कहा जा सकता है कि ये समितियां लोक प्रशासन की संसद के प्रति जवाबदेही सीधे तौर पर लेकर आती है, क्योंकि इनमें लोक सेवक समितियों के अध्यक्ष और सदस्यों के साथ आमने-सामने आते है। इन समितियों के द्वारा वित्तीय मामलों में निरंतर तथा विस्तृत नियंत्रण रखा जाता है। ये समितियां अपने कार्यकरण से सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में व्याप्त अकार्यकुशलताओं, असावधानियों, अपव्ययों और अविवेकपूर्ण कार्यों को उजागर करती आयी हैं। इनके द्वारा रखी जा रही वित्तीय चौकसी में सजगता रही है और इस से प्रशासन में भी वित्तीय कार्यों के प्रति सतर्कता दिखायी देती हैं। समितियों के प्रतिवेदनों को सभी पक्षों के द्वारा सम्मान भाव के साथ देखा जाता रहा है। इन प्रतिवेदनों के महत्व को इस बात से समझा जा सकता है कि सरकार के द्वारा समितियों की अधिकांश सिफारिशों को स्वीकार किया जाता रहा है। इन समितियों ने भी समुचित क्रियाविधियां विकसित की है, जिनका प्रयोग करते हुये उनके लिये यह सुनिश्चित कर पाना संभव हो पाता है कि सरकार इनकी सिफारिशों पर यथोचित सोच-विचार कर रही हैं या नहीं। सरकार संबंधित समिति को उसकी सिफारिशों पर की गयी कार्यवाही के संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है, जिसमें कि सिफारिशों के क्रियान्वयन की प्रगति का सम्पूर्ण विवरण दिया जाता है। इस प्रकार से समितियां अपने प्रतिवेदनों पर अनुवर्तन कार्यवाहियां करती आयी हैं।

18.5.1 लोक लेखा समिति

लोक लेखा समिति की स्थापना मोन्टेग्यू-चेलम्सफोर्ड सुधारों तथा भारत सरकार अधिनियम, 1919 के परिणामस्वरूप वर्ष 1921 में हुयी थी। उस समय इस समिति का अध्यक्ष वॉयसराय की कार्यकारी परिषद का वित्त सदस्य होता था और वित्त विभाग के द्वारा समिति को सचिवालीय सहायता प्रदान की जाती थी। अंतरिम शासन के दौरान वित्त मंत्री समिति का अध्यक्ष होता था और स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार का वित्त मंत्री इसका अध्यक्ष हो गया। इस प्रकार से समिति की संरचना में आधिकारिक तत्व की प्रबलता वर्ष 1949 तक बनी रही। देश के संविधान के प्रभावी होने के साथ ही समिति की संरचना में आमूल परिवर्तन आया और उसका आधिकारिक तत्व हट गया। अब यह समिति वास्तविक संसदीय समिति बन गयी और लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों के नियम संख्या 308 एवं 309 में क्रमशः इसके कार्यों तथा गठन का प्रावधान किया गया।

1. **समिति की संरचना-** लोक लेखा समिति में वर्ष 1954-55 तक लोक सभा के 15 सदस्य होते थे और उस वर्ष से राज्य सभा के 07 सदस्य भी इसमें सम्बद्ध कर दिये गये। परिणामस्वरूप समिति के सदस्यों की संख्या बढ़कर 22 हो गयी।

   लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 309 के अनुसार समिति में 22 से अनधिक सदस्य होंगे, जिसमें से 15 सदस्य लोक सभा से उसके सदस्यों में से प्रत्येक वर्ष आनुपातिक प्रतिनिधित्व सिद्धांत के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे, और राज्य सभा के 07 से अनधिक सदस्य होंगे जो उस सदन के द्वारा समिति के साथ सम्बद्ध होने के लिये नामित किये जायेंगे। कोई मंत्री समिति के सदस्य के तौर पर निर्वाचित नहीं किया जायेगा और यदि कोई सदस्य, समिति में निर्वाचित होने के उपरांत, मंत्री नियुक्त हो जाता है तो वह सदस्य ऐसी नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रह जायेगा। तथा समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक का नहीं होगा।

   समिति के अध्यक्ष के तौर पर वर्ष 1966-67 तक शासित दल के किसी वरिष्ठ सदस्य को लोक सभा के अध्यक्ष के द्वारा नियुक्त किया जाता था। वर्ष 1967 में लोक सभा में विपक्षी दल के किसी सदस्य को लोक सभा के अध्यक्ष के द्वारा समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। तब से यह परम्परा चली आ रही है। समिति की बैठक के लिये गणपूर्ति 04 सदस्यों की होती है।
2. **समिति के कार्य एवं कर्तव्य-** लोक लेखा समिति का मुख्य कार्य भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन, जोकि राष्ट्रपति के माध्यम से संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाता हैं, का परीक्षण करना होता है। समिति नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक की सहायता से सरकार के लेखा-परीक्षण किये गये लेखाओं की संवीक्षा करती है। इस विस्तृत रूप संरचना के अंतर्गत लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 308 लोक लेखा समिति के निम्नलिखित कार्यों एवं कर्तव्यों को वर्णित करते हैं-
   - भारत सरकार के व्यय के लिये सदन के द्वारा प्रदान की गयी धनराशि के विनियोग को दिखाने वाले लेखाओं, भारत सरकार के वार्षिक वित्त लेखाओं और ऐसे अन्य लेखाओं जो सदन के समक्ष रखे गये हैं, जैसा की समिति को उपयुक्त लगे, का परीक्षण करना।
   - भारत सरकार के विनियोग लेखाओं और उस पर नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की संवीक्षा करने में समिति का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने आप को निम्नलिखित के बारे में समाधान करे।
   - कि लेखाओं में जो धन संवितरित हो चुके के तौर पर दिखाया गया हैं वह उस सेवा या प्रयोजन के लिये विधिक रूप से उपलब्ध था और प्रयोज्य था जिसके लिये उसे प्रयोग या भारित किया गया।
   - कि व्यय उसको शासित करने वाले प्राधिकार के अनुरूप हैं; और
   - कि प्रत्येक पुनर्विनियोग सक्षम प्राधिकारी के द्वारा बनाये गये नियमों के अंतर्गत इस संबंध में किये गये प्रावधानों के अनुसार किया गया है।

इसके अतिरिक्त समिति का कर्तव्य निम्नलिखित भी होगा-

- राजकीय निगमों, व्यापारिक और विनिर्माणक योजनाओं, प्रतिष्ठानों तथा परियोजनाओं के आय और व्यय को दिखाने वाले लेखाओं के विवरण साथ ही में तुलन पत्रों तथा लाभ और हानि के लेखाओं के विवरण, जो राष्ट्रपति ने किसी विशिष्ट निगम, व्यापारिक या विनिर्माणक योजना या

प्रतिष्ठान या परियोजना के वित्तीयन को विनियमित कर रहे संविधिक नियमों के अंतर्गत तैयार करना अपेक्षित किया था या जिनको तैयार किया जा रहा है, तथा उन पर नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन का परीक्षण करना;

- स्वायत्त और अर्द्ध-स्वायत्त निकायों के आय और व्यय को दिखा रहे लेखाओं के विवरण, जिनका लेखा-परीक्षण या तो राष्ट्रपति के निर्देशों या संसद कि किसी संविधि के अंतर्गत नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के द्वारा किया गया हैं, का परीक्षण करना;
- ऐसे मामलों में नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन पर विचार करना जहां राष्ट्रपति ने नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक से अपेक्षित किया होगा कि वह किन्हीं प्राप्तियों का लेखा-परीक्षण करे या स्टोर्स एवं स्टॉकस के लेखाओं का परीक्षण करे।
- यदि किसी वित्तीय वर्ष के दौरान किसी सेवा पर कोई धन सदन के द्वारा प्रदान की गयी धनराशि से अतिरेक खर्च हो गया हैं तो समिति प्रत्येक मामले के तथ्यों के संबंध में उन परिस्थितियों का परीक्षण करेगी, जिनके कारण ऐसा अतिरेक हो गया हैं औ ऐसी सिफारिश करेगी जैसा उसे उपयुक्त लगे।

नियम यह प्रदान करते हैं कि लोक लेखा समिति अपने कार्यो को उन लोक उपक्रमों के संबंध में नहीं करेगी, जिन्हें लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियमों या सदन के अध्यक्ष के द्वारा लोक उपक्रम समिति को आवंटित किया गये हैं।

3. **समिति के कार्यकरण का विश्लेषण-** लोक लेखा समिति के बारे में कहा जा सकता है कि यह कदाचित वह उत्तम माध्यम है, जिसके निमित्त करदाताओं के लिये यह संभव होता है कि वे ज्ञात कर सके कि उनके धन का व्यय सरकार द्वारा किस प्रकार से और कहां पर किया गया है। समिति का कार्य दलीय संबंधों से परे रहा है और उसके द्वारा सभी मामलों का परीक्षण राष्ट्रीय हित के मनोयोग किया जाता रहा है। समिति अपने कार्य को सुसाध्य तरीके से करने के लिये उप-समितियों, कार्य समूहों और घटनास्थलीय अध्ययन समूहों को गठित करती रही है।

   समिति को अपने कार्यकरण में सदैव ही नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक, जो सरकार के वार्षिक लेखाओं का परीक्षण करता है, का साथ प्राप्त रहता है तथा उसे समिति का 'मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक' कहा जाता है। वह समिति की सहायता जांच-पड़ताल करने, साक्षियों से पूछताछ करने, तथा प्रतिवेदन को तैयार करने में करता है। प्रत्येक वर्ष अपने कार्यकाल के आरम्भ में समिति नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदनों में सम्मिलित अंकेक्षण के महत्वपूर्ण परिच्छेदों को गहन परीक्षण के लिये चुनती है और समय-समय पर उन से संबंधित प्रतिवेदनों को सदन में प्रस्तुत करती है। समिति अप्रैल 2018 तक 1,596 प्रतिवेदन प्रस्तुत कर चुकी है।

   लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन अर्थपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डालते रहे हैं और सरकारी क्रियाविधियों में सुधार सुझाते रहे हैं। सरकार से अपेक्षित होता है कि प्रतिवेदन में सम्मिलित सिफारिशों के संबंध में जो उसने कार्यवाही की है या करनी प्रस्तावित की है उसके बारे में समिति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के छः माह के भीतर अवगत कराये। समिति सरकार के द्वारा दिये गये प्रत्युतरों पर विचार करती है और उसके पश्चात् 'की गयी कार्यवाही का प्रतिवेदन'(action taken report) संसद को प्रस्तुत करती है। यह व्यवस्था संसद के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही को सुनिश्चित करती है।

18.5.2 प्राक्कलन समिति

प्राक्कलन समिति की उत्पति वर्ष 1921 में स्थापित स्थायी वित्त समिति से देखी जा सकती है जो वित्त विभाग के अधीन कार्य करती थी। स्वतंत्रता से पूर्व जेम्स ग्रिग, एक ब्रिटिश सिविल सेवक जो वर्ष 1934 में तत्कालीन भारत सरकार के वित्त सदस्य नियुक्त हुये, ने यह प्रस्ताव रखा था कि यूनाइटेड किंगडम के प्रतिरूप पर भारत में भी एक प्राक्कलन समिति गठित की जानी चाहिये, परन्तु उनका यह प्रस्ताव उस समय स्वीकार नहीं हो सका। देश की स्वतंत्रता के पश्चात् वर्ष 1950 में तत्कालीन वित्त मंत्री जॉन मथायी ने प्राक्कलन समिति का गठन करने का सुझाव दिया था। उनके सुझाव को स्वीकार करते हुये प्रथम संसदीय प्राक्कलन समिति अप्रैल 1950 को गठित की गयी। इस समिति के कार्यों, गठन तथा प्राक्कलनों के परीक्षण का प्रावधान लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों के नियम संख्या 310, 311 एवं 312 में किया गया है।

1. **समिति की संरचना-** प्राक्कलन समिति में आरम्भ में 25 सदस्य होते थे। वर्ष 1956-57 में सदस्यों की संख्या में 05 की वृद्धि कर दी गयी और तब से समिति में 30 सदस्य हैं। ये सभी सदस्य लोक सभा से होते हैं। लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 311 के अनुसार, समिति में 30 से अनधिक सदस्य होंगे जो सदन (लोक सभा) के द्वारा अपने सदस्यों में से प्रत्येक वर्ष आनुपातिक प्रतिनिधित्व सिद्धांत के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे। कोई मंत्री समिति के सदस्य के तौर पर निर्वाचित नहीं किया जायेगा और यदि कोई सदस्य, समिति में निर्वाचित होने के उपरांत, मंत्री नियुक्त हो जाता है तो वह सदस्य ऐसी नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रह जायेगा। समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक का नहीं होगा। वर्ष 1956-57 से एक परम्परा चली आ रही है कि समिति के एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक वर्ष पद से हट जाते हैं और शेष सदस्य पुनः निर्वाचित हो जाते हैं। ऐसा होने से समिति की कार्य-विधियों एवं कसौटियों में निरंतरता बनी रहती है।

   प्राक्कलन समिति का अध्यक्ष लोक सभा के अध्यक्ष के द्वारा नियुक्त किया जाता है और यदि लोक सभा का उपाध्यक्ष समिति का सदस्य होता है तो वह स्वतः उसका अध्यक्ष बन जाता है। अन्यथा, शासित दल के किसी वरिष्ठ सदस्य को समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।
2. **समिति के कार्य-** प्राक्कलन समिति का मुख्य ध्येय सरकार के वार्षिक वित्तीय विवरण अर्थात् बजट में सम्मिलित प्राक्कलनों की संवीक्षा करना तथा सरकारी व्यय में मितव्ययता को लाने और उसे अधिक प्रयोजनपरक बनाने के लिये सुझाव देना होता है। ये उन प्राक्कलनों की संवीक्षा करती है जो उसे उपयुक्त लगते हैं या उसे सदन या लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से सौंपे जाते है। उक्त ध्येय को प्राप्त करने के लिये लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 310 प्राक्कलन समिति के निम्नलिखित कार्यों को वर्णित करते हैं-
   - यह रिर्पोट करना कि कौन सी मितव्ययताओं, संगठन में सुधारों, कार्यकुशलताओं या प्रशासनिक सुधार, जोकि प्राक्कलनों में अंतर्निहित नीति के अनुरूप हैं, को प्रभावी बनाया जा सकता है।
   - वैकल्पिक नीतियों को सुझाना ताकि प्रशासन में कार्यकुशलता और मितव्ययता को लाया जा सके।
   - यह परीक्षण करना कि क्या धनराशि प्राक्कलनों में अंतर्निहित नीति की सीमाओं के अंतर्गत है और
   - उस अभिरूप को सुझाना जिसके अनुसार प्राक्कलनों को संसद को प्रस्तुत किया जायेगा।

नियम यह प्रदान करते है कि प्राक्कलन समिति अपने कार्यों को उन लोक उपक्रमों के संबंध में नहीं करेगी, जिन्हें लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियमों या सदन के अध्यक्ष के द्वारा लोक उपक्रम समिति को आवंटित किया गया है।

3. **समिति द्वारा प्राक्कलनों का परीक्षण-** लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 312 के अनुसार समिति पूरे वित्तीय वर्ष के दौरान समय-समय पर प्राक्कलनों का परीक्षण करती रह सकती है और जैसे-जैसे उसका परीक्षण आगे बढ़ता रहता है, वह सदन को रिर्पोट करती रह सकती है। समिति के लिये यह अवलंबी नहीं होगा कि वह किसी एक वर्ष के समूचे प्राक्कलनों का परीक्षण करे। अनुदान मांगों पर इस तथ्य के रहते हुये भी कि समिति ने कोई प्रतिवेदन नहीं दिया हैं अंततः मतदान हो सकता है।
4. **समिति के कार्यकरण का विश्लेषण-** समिति का गठन होने के शीघ्र बाद ही वह केन्द्र सरकार के किसी मंत्रालय/विभाग या निकाय से संबंधित ऐसे प्राक्कलनों का चयन परीक्षण करने के लिये करती है जो उसको उपयुक्त लगते है। समिति चयन किये गये विषयों से संबंधित प्रारंभिक सामग्री मंत्रालय/विभाग या निकाय से मंगाती है और गैर-शासकीय व्यक्तियों से ज्ञापन भी लेती है। समिति आवश्यकतानुसार उप-समितियों, कार्य समूहों और घटनास्थलीय अध्ययन समूहों का गठन करती है। समिति की औपचारिक बैठकों में शासकीय एवं गैर-शासकीय साक्षियों को साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिये बुलाया जाता है। विभिन्न तरीकों से एकत्र की गयी सूचना के आधार पर वह अपने अवलोकन तथा सिफारिशों को लेकर आती है जो उसके प्रतिवेदनों में समाहित किये जाते है जिनको लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। संबंधित मंत्रालय/विभाग या निकाय को प्रतिवेदन को सदन में प्रस्तुत करने के छः माह के भीतर उसमें दिये गये अवलोकनों/सिफारिशों पर कार्यवाही करनी होती है और समिति को 'की गयी कार्यवाही का प्रतिवेदन' (action taken report) देना होता है। समिति सरकार के द्वारा दिये गये प्रत्युतरों का परीक्षण करती है और सदन को रिर्पोट करती है। समिति अपने आरम्भ से मार्च 2018 तक 1,118 प्रतिवेदन प्रस्तुत कर चुकी है।

18.5.3 लोक उपक्रम समिति

भारत की संसदीय लोक उपक्रम समिति ब्रिटिश संसद की पहले की राष्ट्रीयकृत उद्योगों पर प्रवर समिति के प्रारूप पर आधारित है। लोक उपक्रम समिति को स्थापित करने की इच्छा से लोक सभा के स्वतंत्र सदस्य डॉ0 लंका सुन्दरम ने दिस्मबर 1953 में सदन में एक प्रस्ताव को लेकर आये, जोकि अपना लिया गया था। एक लंबे समय तक चर्चा चलने के पश्चात् लोक सभा ने अंततः नवम्बर 1963 में लोक उपक्रम समिति को स्थापित करने के प्रस्ताव को अपना लिया जो मई 01, 1964 को अस्तित्व में आयी। इस समिति ने वर्ष 1965 में कार्य करना आरम्भ किया। लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) के नियम संख्या 312 'क' एवं 312 'ख' में क्रमशः इसके कार्यों तथा गठन का प्रावधान किया गया है।

1. **समिति की संरचना-** लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों की नियम संख्या 312 'ख' के अनुसार- समिति में 22 से अनधिक सदस्य होंगे, जिसमें से 15 सदस्य लोक सभा से उसके सदस्यों में से प्रत्येक वर्ष आनुपातिक प्रतिनिधित्व सिद्धांत के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे, और राज्य सभा के 07 से अनधिक सदस्य होंगे जो उस सदन के द्वारा समिति के साथ सम्बद्ध होने के लिये नामित किये जायेंगे। कोई मंत्री समिति के सदस्य के तौर पर निर्वाचित नहीं किया जायेगा और यदि कोई सदस्य, समिति में निर्वाचित होने के उपरांत, मंत्री नियुक्त हो जाता है तो वह

सदस्य ऐसी नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रह जायेगा। समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक का नहीं होगा।

2. **समिति के कार्य-** लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों की नियम संख्या 312 'क' में लोक उपक्रम समिति के निम्नलिखित कार्यों को वर्णित किया गया है-
    - लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों की चौथी अनुसूची (लोक उपक्रमों की सूची) में विनिर्दिष्ट किये गये लोक उपक्रमों के प्रतिवेदनों और लेखाओं का परीक्षण करना।
    - लोक उपक्रमों से संबंधित नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों, यदि कोई हो, का परीक्षण करना।
    - लोक उपक्रमों की स्वायत्ता और कार्यकुशलता के संदर्भ में यह परीक्षण करना कि क्या लोक उपक्रमों के कार्यकलापों का प्रबंधन व्यवसाय के ठोस सिद्धांतों तथा विवेकी व्यवसायिक क्रियाओं के अनुसार हो रहा हैं; और
    - ऐसे अन्य कार्यों को करना जो समिति को समय-समय पर लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा आवंटित किये जायें।

नियम संख्या 312 'क' उन मामलों को भी वर्णित करता है, जिनका परीक्षण और निरूपण समिति नहीं करेगी जोकि निम्नवत हैं-

- प्रमुख सरकारी नीति के मामले जो लोक उपक्रमों के व्यापारिक या व्यवसायिक कार्यों से भिन्न होते हैं;
- दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के मामले; और
- मामले जिन पर विचारण करने के लिये कोई तंत्र उस विशेष संविधि के द्वारा स्थापित किया गया है, जिसके अंतर्गत कोई विशिष्ट लोक उपक्रम स्थापित हुआ है।

3. **समिति के कार्यकरण का विश्लेषण-** समिति के द्वारा समय-समय पर ऐसे लोक उपक्रमों या विषयों का चयन किया जाता है जो उसे उपयुक्त लगते हैं और जो उसकी संदर्भ की शर्त्तों के अंतर्गत आते हैं। संबंधित मंत्रालय/लोक उपक्रम को आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करने के लिये कहा जाता है। समिति को जैसी आवश्यकता लगती है उसी के अनुसार वह उप-समितियों, कार्य समूहों और घटनास्थलीय अध्ययन समूहों को गठित करती है। समिति के सदस्य संबंधित मंत्रालयों/विभागों/लोक उपक्रमों, गैर-सरकारी संगठनों, श्रम यूनियनों आदि के प्रतिनिधियों के साथ परिचर्चाएं करते हैं। संबंधित पक्षों का परीक्षण पूरा करने के उपरांत समिति अपने अवलोकन तथा सिफारिशों को अपने प्रतिवेदनों में सम्मिलित करती है जो संसद में प्रस्तुत किये जाते हैं। संसद में प्रतिवेदन के प्रस्तुत होने के पश्चात् संबंधित मंत्रालय/विभाग/लोक उपक्रम को प्रतिवेदन में निकाले गये निष्कर्षों और दी गयी सिफारिशों पर कार्यवाही करनी होती है तथा उसको 'की गयी कार्यवाही का प्रतिवेदन' (action taken report) सौंपना होता है। समिति इस सौंपे गये प्रतिवेदन का परीक्षण करती है और फिर संसद को रिर्पोट करती है। समिति के द्वारा 604 प्रतिवेदन संसद को प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. सरकार के मंत्री वित्तीय समितियों के सदस्य होते हैं।
2. लोक लेखा समिति के सदस्यों की संख्या 15 से बढ़कर .... हो गयी।

3. प्राक्कलन समिति के कार्यों, गठन तथा प्राक्कलनों के परीक्षण का प्रावधान लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों के कौन से नियमों में किया गया है?
   क. 301, 302 व 303 ख. 304, 305 व 306
   ग. 307, 308 व 309 घ. 310, 311 व 312
4. लोक उपक्रम समिति के कितने सदस्य लोक सभा से निर्वाचित किये जाते हैं?

18.6 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आपको सर्वविदित हो चुका हैं कि संसदीय समितियां संसद के दोनों सदनों में पायी जाती है और उनकी कुछ विशिष्ट विशेषताएं होती हैं। ये समितियां सहायक अभिकरणों वाली भूमिका को निभाती हैं जो संसद को उसके कार्यों एवं कर्तव्यों को शीघ्रतापूर्वक व प्रभावशीलता के साथ निपटाने में सुविधाजनक बनाता है। भारतीय संसद में संसदीय समितियों की एक संगठित व्यवस्था अस्तित्व में है। ये समितियां विभिन्न प्रकारों की होती हैं जिनको की मोटे तौर पर स्थायी एवं तदर्थ समितियों में वर्गीकृत किया जाता है। स्थायी समितियों में जो प्रमुख हैं उनमें वित्तीय समितियां सम्मिलित हैं। वित्तीय समितियों की संख्या तीन हैं- लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, व लोक उपक्रम समिति और ये वित्तीय प्रबंधन के क्षेत्र में रक्षात्मक भूमिका में रहती हैं। देश की संसदीय लोकतंत्र व्यवस्था में इन समितियों का प्रतिष्ठित स्थान है और वित्तीय मामलों में ये विस्तृत नियंत्रण रखती हैं। इस इकाई का अध्ययन करने से आप वित्तीय समितियों की व्यापक व्यवस्था को समझते हुये विश्लेषात्मक तरीके से उस पर विचार-मंथन कर सकेंगे।

18.7 शब्दावली

गणपूर्ति- गणपूर्ति से अभिप्राय किसी सभा के पात्र सदस्यों की उस न्यूनतम संख्या से होता हैं जो उसकी किसी भी बैठक में उपस्थित होने चाहिये जिससे कि उस बैठक के कार्यों को आधिकारिक रूप से सम्पन्न किया जा सके और उस की कार्यवाहियां वैध हो सके। गणपूर्ति का प्रावधान संबंधित सभा के विधायनों/नियमों में किया गया होता हैं।

तुलन-पत्र- तुलन-पत्र किसी संगठन का वित्तीय विवरण होता है, जिसमें कि किसी विशिष्ट समय पर उसकी पूंजी, परिसम्पत्तियों, देनदारियों, ऋण आदि को सम्मिलित किया जाता हैं। तुलन-पत्र तिमाही, छमाही या वार्षिक आधार पर बनाया जा सकता है।

निर्णायक मत- निर्णायक मत वह मत होता हैं जिसका प्रयोग किसी सभा, परिषद, निकाय या समिति के पीठासीन अधिकारी के द्वारा उसकी बैठक के गतिरोध को दूर करने के लिये किया जाता है। यह एक असाधारण मत होता है, जो किसी बैठक में उस स्थिति में किसी मामले पर निर्णय लेने के लिये किया जाता है, जब उसके पक्ष और विपक्ष दोंनो में मतों की संख्या बराबर होती है।

भारत सरकार अधिनियम, 1919- भारत सरकार अधिनियम ब्रिटिश संसद द्वारा वर्ष 1919 में भारत सरकार के संबंध में और अधिक प्रावधान करने के लिये पारित किया गया था। इस अधिनियम से भारत में उत्तरदायी शासन का आरम्भ माना जाता है। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान थेः प्रांतों में द्वैध-व्यवस्था को लागू किया जाना; विषयों को केन्द्रीय व प्रांतीय एवं प्रांतीय विषयों को प्रारक्षित व अंतरित में वर्गीकृत किया जाना; केन्द्रीय विधायिका को द्विसदनीय बनाया जाना; तथा भारत में लोक सेवा आयोग को स्थापित किया जाना।

मोन्टेग्यू-चेलम्सफोर्ड सुधार- मोन्टेग्यू-चेलम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा एडविन सैमुयल मोन्टेग्यू, तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया, और लॉर्ड चेलम्सफोर्ड, तत्कालीन वॉयसरॉय ऑफ इंडिया, के द्वारा वर्ष 1918 में की गयी

थी। इन सुधारों की घोषणा करने का प्रमुख आशय भारत में स्व-शासी संस्थाओं को उत्तरोत्तर स्थापित करना था। ये सुधार भारत सरकार अधिनियम, 1919 के आधार बने थे।

लोक उपक्रम- लोक उपक्रम वह उद्यम होता हैं जिसका स्वामित्व राज्य के पास होता है और इसके स्टॉक का अधिकांश भाग सरकार का होता है। ये उपक्रम सामान्य तौर पर तीन प्रकार के होते हैं- विभागीय उपक्रम, सरकारी कम्पनी एवं लोक निगम।

सहायक अभिकरण- किसी संगठन में सहायक अभिकरण वे अभिकरण होते हैं जो उसके सूत्र अभिकरण की सहायता संगठनात्मक प्रयोजनों को पूरा करने में करते हैं।

18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य, **2.** 22, **3.** घ, **4.**15 सदस्य

18.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) Indian Public Administration: Institutions and Issues, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अवस्थी, अमरेश्वर एवं आनंद प्रकाश अवस्थी, (1995) Indian Administration, तीसरा संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. कश्यप, सुभाष सी. (1995) Our Parliament, An Introduction to the Parliament of India, तीसरा संस्करण, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
4. राज्य सभा, भारत की संसद, राज्य सभा की समितियां, सामान्य सूचना, नई दिल्ली।
5. https://rajyasabha.nic.in/rsnew/committees/general_introduction.asp
6. राज्य सभा, भारत की संसद, राज्य सभा की स्थायी समितियां, नई दिल्ली।
7. http://164.100.47.5/webcom/typewise.aspx?type=RS
8. लोक सभा, भारत की संसद, वित्तीय समितियां, प्राक्कलन समिति, नई दिल्ली।
9. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/CommitteeInformation.aspx?comm_code=10&tab=0
10. लोक सभा, भारत की संसद, वित्तीय समितियां, लोक उपक्रम समिति, नई दिल्ली।
11. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/CommitteeInformation.aspx?comm_code=27&tab=0
12. लोक सभा, भारत की संसद, वित्तीय समितियां, लोक लेखा समिति, नई दिल्ली।
13. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/CommitteeInformation.aspx?comm_code=26&tab=0
14. लोक सभा, भारत की संसद, समितियां, प्रस्तावना, नई दिल्ली।
15. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/CommitteeHome.aspx
16. लोक सभा, भारत की संसद, Parliamentary Committees, Introduction, नई दिल्ली।
17. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/Comm_Introductionnew.pdf#page=3
18. लोक सभा सचिवालय, (अप्रैल 2014) Rules of Procedure and Conduct of Business in Lok Sabha, पन्द्रहवां संस्करण, नई दिल्ली,
19. http://164.100.47.194/loksabha/rules.aspx
20. विकीपीडिया, भारत सरकार अधिनियम, 1919,

21. https://en.wikipedia.org/wiki/Government_of_India_Act,_1919
22. विकीपीडिया, मोन्टेग्यू-चेलम्सफोर्ड सुधार,
23. https://en.wikipedia.org/wiki/Montagu%E2%80%93Chelmsford_Reforms

18.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. बर्मन, अनिरूद्ध, (नवम्बर 15, 2010) Financial Oversight by Parliament, Background Note for the Conference on eff~ective Legislatures, PRS Legislative Research, http://www.prsindia.org/administrator/uploads/general/1370585243_Financial%20Oversight%20by%20Parliament.pdf

18.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संसदीय समितियों की अवधारणा को विस्तार से समझाईये।
2. संसदीय वित्तीय समितियों की सामान्य विशेष ताओं एवं महत्व का वर्णन कीजिये।
3. लोक लेखा समिति की वित्तीय नियंत्रण में भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

इकाई- 19 कार्यकारी नियंत्रण

इकाई की संरचना

19.0 प्रस्तावना
19.1 उद्देश्य
19.2 कार्यकारी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व
19.3 केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा वित्तीय नियंत्रण
19.4 वित्त मंत्रालय द्वारा वित्तीय नियंत्रण
19.5 विभागीय अधिकारियों द्वारा वित्तीय नियंत्रण
19.6 सारांश
19.7 शब्दावली
19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
19.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
19.11 निबन्धात्मक प्रश्न

19.0 प्रस्तावना

इस से पिछली इकाई में आप वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण के एक भाग के रूप में संसदीय समितियों के अर्थ, विशेषताओं, महत्व, कार्यों एवं प्रकारों; संसदीय वित्तीय समितियों की विशेषताओं, उनके प्रकारों, उनकी संरचना, कार्यों एवं कतर्व्यों तथा उनके कार्यकरण की प्रभावशीलता की सीमा के संबंध में बखूबी परिचित हो चुके हैं। प्रत्येक शासन प्रणाली में विधायिका के साथ-साथ कार्यपालिका के द्वारा भी लोक संसाधनों के प्रबंधन पर नियंत्रण रखा जाता है। प्रस्तुत इकाई में कार्यपालिका के द्वारा वित्तीय प्रशासन पर रखे जा रहे कार्यकारी नियंत्रण के विभिन्न पहलुओं व अवयवों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से आप कार्यकारी नियंत्रण क्या होता है, उसका महत्व क्या होता है तथा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल, वित्त मंत्रालय और विभागीय अधिकारियों द्वारा वित्तीय नियंत्रण कैसे रखा जाता है, के बारे में बेहतर प्रकार से विचारों को व्यक्त कर सकते हैं।

19.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- समझ सकेंगे कि कार्यकारी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व क्या होता हैं; और
- ज्ञात कर पायेंगे कि केन्द्रीय मंत्रिमण्डल, वित्त मंत्रालय तथा विभागीय अधिकारियों द्वारा वित्तीय नियंत्रण कैसे रखा जाता है।

19.2 कार्यकारी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व

वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में कार्यकारी नियंत्रण कार्यपालिका के द्वारा लोक संसाधनों के प्रबंधन पर रखे जाने वाले नियंत्रण को कहते हैं। कार्यकारी नियंत्रण आंतरिक नियंत्रण होता हैं जो संगठनात्मक पदसोपान में उच्चाधिकारियों द्वारा अधीनस्थों पर रखा जाता है। इस अर्थ में यह कार्यकारी नियंत्रण के लम्ब रूप को दर्शा रहा है। लम्ब रूप के अतिरिक्त कार्यकारी नियंत्रण क्षैतिज रूप में भी पाया जाता है। इस रूप में यह नियंत्रण अन्य समानातंर कार्यकारी

अभिकरणों के द्वारा रखा जाता है। यद्यपि लोक संसाधनों पर बाहरी और आंतरिक दोंनो प्रकार का नियंत्रण आवश्यक होता है, परन्तु पूर्ववर्ती की तुलना में उत्तरवर्ती को अधिक प्रभावकारी माना जाता है। कार्यकारी नियंत्रण में स्पष्ट रूप से निरंतरता दिखाई देती है और यह व्यवस्था में सन्निहित होता है। लोक संसाधनों के प्रबंधन पर रखे जा रहे कार्यकारी नियंत्रण में मंत्रिमण्डल, वित्त मंत्रालय तथा विभागीय अधिकारियों का नियंत्रण सम्मिलित होता है।

19.3 केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा वित्तीय नियंत्रण

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल शासन की कार्यपालिका शाखा के शीर्ष पर होता है। इस कारण से यह शासन में नीति निर्माण करने वाला सर्वोच्च निकाय होता है। मंत्रिमण्डल शासकीय गतिविधियों के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में, जिसमें वित्तीय प्रशासन भी सम्मिलित हैं, लोक नीति संबंधी पहल करता है और नीतियों को निर्धारित करता है। चूंकि शासन में वित्तीय नीतियों का मुख्य उत्तरदायित्व कार्यपालिका का होता है। अतः समस्त महत्वपूर्ण वित्तीय मामलों पर मंत्रिमण्डल द्वारा विचार और उनको संस्वीकृत किया जाना होता है। वे सभी वित्तीय मामले जिनकी मंत्रिमण्डल में चर्चा होती है और जिन पर आगे की आवश्यक कार्यवाही करने को महत्वपूर्ण समझा जाता है, उनको केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की आर्थिक मामलों की समिति को संदर्भित किया जाता हैं । केन्द्रीय मंत्रिमण्डल सचिवालय द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन संख्या ओ.एम. 1/11/2017, दिनांक 11.09.2017 के अनुसार मंत्रिमण्डल की आर्थिक मामलों की समिति की संरचना में अध्यक्ष- नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री सहित मंत्री मण्डल के कई सदस्य हैं।

आर्थिक मामलों की समिति आर्थिक क्षेत्र में सरकार की गतिविधियों का निर्देशन एवं समन्वय करती है, विकासीय गतिविधियों की प्राथमिकता निर्धारित करती है, तथा वित्तीय संसाधनों का संवर्धन करने के संबंध में सिफारिशें करती है। इस प्रकार से आर्थिक मामलों की समिति के माध्यम से मंत्रिमण्डल/सरकार द्वारा वित्तीय मामलों पर नियंत्रण रखा जाता है।

19.4 वित्त मंत्रालय द्वारा वित्तीय नियंत्रण

भारत सरकार का वित्त मंत्रालय एक ब्रिटिश विरासत है। वित्त विभाग की स्थापना सर्वप्रथम वर्ष 1810 में हुई थी। स्वतंत्रता के पश्चात् ब्रिटिश काल का वित्त विभाग स्वतंत्र देश का वित्त मंत्रालय बन गया। इस मंत्रालय का सदैव से ही शासन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वर्तमान समय में वित्त मंत्रालय अभिशासन की प्रक्रिया में एक सशक्त भूमिका को निभा रहा है और इसके अंतर्गत 5 विभाग कार्य कर रहे हैं- व्यय विभाग, राजस्व विभाग, वित्तीय सेवाएं विभाग, निवेश एवं लोक परिसम्पत्ति प्रबंधन विभाग, तथा आर्थिक कार्य विभाग।

वित्त मंत्रालय का सरोकार शासन के वित्तीय कार्य के साथ होता है। यह सम्पूर्ण राष्ट्र की अर्थव्यवस्था तथा वित्तीय मामलों का प्रबंधन करता है। भारत सरकार (कार्य आवंटन) नियम, 1961 के अंतर्गत शासन की वित्तीय शक्तियां वित्त मंत्रालय में निहित की गई है। यद्यपि भारत सरकार के वित्तीय शक्तियां प्रत्यायोजन नियम, 1978 के अंतर्गत अधीनस्थ प्राधिकारियों को शासन की वित्तीय शक्तियां प्रत्यायोजित की गई हैं पर इसके साथ ही नियम यह भी प्रावधान करते हैं कि वे वित्तीय शक्तियां जो किसी अधीनस्थ प्राधिकारी को प्रत्यायोजित नहीं की गई हैं, वित्त मंत्रालय में निहित होगी। वित्त मंत्रालय निरंतर रूप से केन्द्र सरकार के वार्षिक वित्तीय विवरण अर्थात बजट को तैयार करने, उसे संसद में पारित करवाने, पारित हो जाने के उपरांत विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा उसके प्रावधानों के अनुसार क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण करने, राजस्व को एकत्र एवं संसाधनों को संघटित करने, तथा लोक व्यय का नियंत्रण करने के लिए उत्तरदायी होता हैं। वित्त मंत्रालय को प्रस्तावित लोक व्यय को पूरा करने के तरीकों एवं साधनों का पता लगाना होता है। वित्त मंत्रालय ने वित्तीय कार्यों को सुसाध्य बनाने के लिए महत्वपूर्ण

नियमों और विवरणिकाओं को तैयार किया है। इसके संबंध में सबसे उल्लेखनीय है- सामान्य वित्तीय नियम, 2005 तथा बजट विवरणिका, 2010

वित्त मंत्रालय को सभी लोक निधियों का संरक्षक बनाया गया है। यह वित्तीय मामलों में नियंत्रणकारी एवं समन्वयकारी शक्तियों का प्रयोग करता है। लोक व्यय पर वित्त मंत्रालय का नियंत्रण मुख्यतः तीन चरणों में होता है- सैद्धान्तिक रूप से नीतियों एवं कार्यक्रमों का अनुमोदन करने, बजट अनुमानों के प्रावधानों को स्वीकार करने, और लोक व्यय करने से पूर्व संस्वीकृति देने के दौरान।

वित्त मंत्रालय सभी वित्तीय नियमों, विनियमों और वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन से जुड़े मामलों को प्रशासित करता है। यह केन्द्र और राज्य सरकारों से संबंधी शासकीय लेखांकन के सामान्य सिद्धांतों तथा लेखाओं के प्रारूप को निर्धारित करता है। उदाहरण के तौर पर वित्त मंत्रालय के द्वारा शासकीय लेखांकन नियम वर्ष 1990 में निर्धारित किये गए। यह केन्द्रीय सिविल लेखा कार्यालयों में लेखांकन के समुचित मापदण्डों के रखरखाव को सुनिश्चित करता है। वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग में स्थित महा लेखा नियंत्रक केन्द्र सरकार के मासिक लेखाओं को समेकित करने और वार्षिक लेखाओं को तैयार करने के लिए उत्तरदायी होता है। वित्त मंत्रालय मंत्रालयों और विभागों में प्रबंधन लेखा प्रणाली को लाने में सहायता करता है।

वित्त मंत्रालय के पास बजट को तैयार करने का समूचा उत्तरदायित्व होता है। यह मंत्रालय बजट अनुमानों को तैयार करने की पहल करता है। इस संबंध में वह प्रशासनिक मंत्रालयों और विभागों को एक परिपत्र जारी करता है। इसके माध्यम से उन्हें अपने बजट अनुमानों को तैयार करने के लिए कहा जाता है। प्रशासनिक मंत्रालय बजट के अपने अनुमानों को तैयार करते हैं और उन्हें वित्त मंत्रालय के आर्थिक कार्य विभाग के बजट प्रभाग में भेज देते हैं। बजट प्रभाग वित्तीय दृष्टिकोण से बजट अनुमानों की संवीक्षा करता है। इस संवीक्षा में मुख्यतः धनराशि की उपलब्धता और मितव्ययता को देखा जाता है। यह संवीक्षा केवल नये प्रस्तावों पर लागू की जाती है। नियमानुसार किसी भी विभाग के लिए नये या अधिक लोक व्यय के किसी प्रस्ताव को वित्त मंत्रालय की सहमति के बिना बजट में समाहित नहीं किया जा सकता है। वित्त मंत्रालय प्रशासनिक मंत्रालयों की वित्तीय मांगों को स्वीकार/अस्वीकार करता है, उनसे उनके द्वारा प्रस्तावित व्यय के संबंध में स्पष्टीकरण मांगता है और ये सब करने के उपरांत प्रत्येक मंत्रालय के लिए शुद्ध धनराशि को निर्धारित करता है। विभिन्न प्रशासनिक मंत्रालयों के बजटीय अनुमानों को समेकित करने के द्वारा वित्त मंत्रालय आगामी वर्ष के लिए वार्षिक वित्तीय विवरण अर्थात् बजट को तैयार करता है। इसके पश्चात् वित्त मंत्रालय की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका संसद में बजट को पारित करवाने में होती है। वित्त मंत्री लोक सभा में बजट भाषण के साथ बजट को प्रस्तुत करता है। संसद द्वारा विनियोग विधेयक एवं वित्त विधेयक को पारित करने तथा राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होने के उपरांत बजट संसद में पारित माना जाता है। वित्त मंत्रालय की भूमिका एवं नियंत्रण बजट अनुमानों की संसद के द्वारा अनुमोदन के पश्चात् भी निरंतर बनी रहती है।

संसद, अनुदान की धनराशि सरकार को समूचे तौर पर, तकनीकी रूप में राष्ट्रपति, को देती है। चूंकि वित्त मंत्रालय वह अभिकरण होता है जो सरकार के वित्तीय संसाधनों का प्रबंधन करने के लिए जिम्मेदार होता है। अतः उसको प्रस्तावित व्यय की वांछनीयता और औचित्य के बारे में विश्वास दिलाया जाना होता है। आश्वस्त होने के उपरांत ही वित्त मंत्रालय संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय को प्रस्तावित व्यय करने की अनुमति प्रदान करता है। वित्त मंत्रालय का यह नियंत्रण प्रशासनिक अभिकरणों के दिन-प्रतिदिन के कार्यकरण को प्रभावित करता है। वित्त मंत्रालय यह नियंत्रण तीन साधनों के माध्यम से रखता है- कार्य संबंधी नियम; एकीकृत वित्तीय सलाहकार; तथा आंतरिक लेखा-परीक्षण।

विद्यमान कार्य संबंधी नियम यह प्रदान करते हैं कि, किसी मंत्रालय द्वारा जारी विनिर्दिष्ट आदेशों को छोड़कर, कोई विभाग वित्त मंत्रालय की पूर्व सहमति के बिना किन्हीं ऐसे आदेशों को जारी नहीं कर सकता है, जिनमें निम्नलिखित सम्मिलित हों-

1. किसी ऐसे राजस्व का परित्याग करना या किसी ऐसे व्यय को करना जिसका प्रावधान विनियोग विधेयक में नहीं किया गया है।
2. कोई भू-अनुदान, या राजस्व का समनुदेशन, या खनिज या वन अधिकारों या जल शक्ति के अधिकारों की रियायत करना, दिया जाना, पट्टे पर प्रदान किया जाना या लाईसेंस दिया जाना या कोई ऐसी सुविधा या विशेषाधिकार दिया जाना
3. पदों के ग्रेडों की संख्या या किसी सेवा में सदस्यों की संख्या या शासकीय सेवकों के वेतन या भत्तें या उनकी कोई अन्य सेवा शर्तें जिनके वित्तीय आशय है।
4. कोई अन्य वित्तीय पहलू।

उपरोक्त के अतिरिक्त, वित्तीय संहिता में यह भी प्रदान किया गया है कि कोई लोक सेवक लोक निधियों से तब तक कोई पैसा खर्च नहीं कर सकते हैं जब तक कि सक्षम प्राधिकारी के द्वारा व्यय संस्वीकृत नहीं किया गया है। तथा किया गया व्यय वर्तमान वर्ष के लिए संसद द्वारा प्रदान किये गये विनियोग की सीमा के अंतर्गत है।

एकीकृत वित्तीय सलाहकार, केन्द्र सरकार के प्रशासनिक मंत्रालयों में वर्ष 1976 से नियुक्त किये जा रहे हैं। उसका चयन प्रशासनिक मंत्रालय और वित्त मंत्रालय द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता है। इसलिए वह दोनों मंत्रालयों के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रत्यायोजित वित्तीय शक्तियों का प्रयोग प्रशासनिक मंत्रालय उसकी सहायता से करता है। परन्तु उन वित्तीय मामलों में जहां पर वित्तीय शक्तियां प्रत्यायोजित नहीं की गयी हैं, वह वित्त मंत्रालय के सामान्य मार्गदर्शन में कार्य करता है। वह प्रशासनिक मंत्रालय की सहायता उसके बजट को तैयार करने में करता है। इसके साथ ही वह बजटीय प्रावधानों के सापेक्ष विभिन्न योजनाओं की प्रगति का अनुश्रवण भी करता है। वह प्रशासनिक मंत्रालय के विभिन्न प्रकार के लेखाओं जैसे कि भविष्य निधि लेखा, ऋण लेखा आदि को बनाकर रखता है। साथ ही में वह मंत्रालय के लेखाओं को समेकित भी करता है। वह स्वायत्त निकायों, सहकारी संस्थाओं, अन्य प्राधिकारियों को किये जाने वाले भुगतान तथा मंत्रालय के लिए सहायता अनुदान, ऋण आदि की व्यवस्था करता है। वह मंत्रालय में आंतरिक जांच की युक्तिसंगत व्यवस्था को बनाकर रखता है और प्रबंधन लेखांकन की कार्यकुशल व्यवस्था को लेकर आता है।

आंतरिक लेखा-परीक्षण में वित्त मंत्रालय के महालेखा नियंत्रक के कार्यालय में स्थित आंतरिक लेखा-परीक्षण प्रभाग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह प्रभाग सिविल मंत्रालयों के आंतरिक लेखा-परीक्षण खण्डों को विभागीकृत लेखांकन कार्यालयों में लेखांकन के अपेक्षित तकनीकी मापदण्डों को बनाकर रखने के लिये मार्गदर्शन एवं सहायता प्रदान करता है। इस प्रभाग में तीन अनुभाग हैं- उत्कृष्टता का केन्द्र, नियोजन एवं समन्वय, तथा निरीक्षण।

वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में वित्त मंत्रालय की नियंत्रणकारी भूमिका काफी प्रभावकारी रही है। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में वित्त मंत्रालय की स्थिति अत्यंत प्रबल है। यदि किसी प्रशासनिक मंत्रालय और वित्त मंत्रालय के मध्य कोई असहमति हो जाती है तो मामले को मंत्रिमण्डल के समक्ष लाया जाता है, जिसका निर्णय बाध्यकारी होता है। परन्तु किसी निर्णय तक पहुंचने से पहले मंत्रिमण्डल वित्त मंत्री के विचारों को यथोचित महत्व देता है। यह मंत्रिमण्डल में वित्त मंत्रालय की सुद्दढ स्थिति को दर्शाता है।

19.5 विभागीय अधिकारियों द्वारा वित्तीय नियंत्रण

सरकार का प्रत्येक प्रशासनिक मंत्रालय शासकीय योजनाओं एवं गतिविधियों पर व्यय करने वाला तथा राजस्व को एकत्र करने वाला प्राधिकारी होता है। अतः वित्तीय प्रबंधन में उस प्रशासनिक मंत्रालय के अधिकारियों व कार्मिकों का प्राथमिक उत्तरदायित्व होता है। वित्त मंत्रालय द्वारा वर्ष 2005 में जारी किये गये सामान्य वित्तीय

नियमों में इनके संबंध में नियमों को स्पष्ट रूप से बतलाया गया है। इन नियमों का पालन भारत सरकार के सभी कार्यालयों के द्वारा वित्तीय स्वरूप के मामलों को देखने व संभालने के दौरान करना होगा।

प्रत्येक मंत्रालय/विभाग में मुख्य लेखांकन अधिकारी होगा जो उस मंत्रालय/विभाग का सचिव होगा। सामान्य वित्तीय नियमों में उसके कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का उल्लेख किया गया है। वह अपने मंत्रालय या विभाग के वित्तीय प्रबंधन के लिए उत्तरदायी एवं जवाबदेह होगा। वह सुनिश्चित करेगा कि वे लोक धनराशि जिन्हें मंत्रालय या विभाग को विनियोग किया गया है, उनका प्रयोग उस प्रयोजन के लिए किया गया है जिसके लिए वे थी। वह उस मंत्रालय या विभाग के कथित परियोजना उद्देश्यों को प्राप्त करने में, निष्पादन मापदण्डों का पालन करते हुए, संसाधनों के प्रभावकारी, कार्यकुशल, मितव्ययी और पारदर्शी उपयोग के लिए उत्तरदायी होगा। वह परीक्षण के लिए लोक लेखा समिति या किसी अन्य संसदीय समिति के समक्ष उपस्थित होगा। वह अपने मंत्रालय या विभाग को सौंपे गए कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं की नियमित रूप से समीक्षा तथा अनुश्रवण करेगा। वह वित्त मंत्रालय द्वारा जारी किये गए विनियमों, दिशा-निर्देशों या निर्देशों द्वारा अपेक्षित उसके मंत्रालय या विभाग से संबंधित व्यय एवं अन्य विवरणों को तैयार करने के लिए उत्तरदायी होगा। वह सुनिश्चित करेगा कि उसका मंत्रालय या विभाग वित्तीय लेन-देनों के पूर्ण एवं उचित लेखा बनाकर रख रहे हैं और ऐसी व्यवस्थाओं एवं क्रियाविधियों को अपना रहे हैं जो हर समय आंतरिक नियंत्रणों को प्रदान करेंगे। वह सुनिश्चित करेगा कि उसका मंत्रालय या विभाग कार्यों के क्रियान्वयन के लिए तथा सेवाओं एवं आपूर्तियों की अधिप्राप्ति के लिए शासकीय अधिप्राप्ति की क्रियाविधि का पालन कर रहे है। वह यह सुनिश्चित करने के लिए प्रभावकारी एवं उपयुक्त कदम उठायेगा कि उसका मंत्रालय या विभाग शासन को देय समस्त धनराशि को एकत्र कर रहा है तथा अनाधिकृत, अनियमित एवं खर्चीले व्यय को करने से बच रहा है।

नियम यह प्रावधान करते हैं कि सभी धनराशि जो सरकार द्वारा या उसकी ओर से प्राप्त हुई है। चाहे तो शासकीय देय या निक्षेप, अदायगी या अन्यथा धनराशि के रूप में उन्हें शासकीय लेखा में बिना किसी विलंब के दर्शाया जायेगा। यह केन्द्र सरकार के संबंधित विभाग का कर्तव्य होगा कि वह सुनिश्चित करे कि शासन की प्राप्तियों एवं देय धनराशि का सही से व तुरंत मूल्यांकन किया गया है, उन्हें एकत्र किया गया है तथा उन्हें उचित रीति से और समय पर संचित निधि या लोक लेखा, जैसा कि मामला हो, में जमा किया गया है। नियंत्रक अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारियों से उपयुक्त रूप में मासिक लेखाओं एवं विवरणों को प्राप्त करने की व्यवस्था करेगा और उनकी तुलना लेखा अधिकारी द्वारा उपलब्ध कराये गए जमा के विवरण के साथ करेगा ताकि यह देखा जा सके कि जिस धनराशि को एकत्र किए गए के रूप में दिखाया गया है, उसे विधिवत जमा किया गया है। कोई भी विभागाध्यक्ष, जो संबंधित विभाग के राजस्व को एकत्र करने के लिए उत्तरदायी है, अपने नियंत्रण के अंतर्गत एकत्र होने वाले राजस्व की प्रगति तथा बजट अनुमानों की तुलना में एकत्र किये जा रहे ऐसे राजस्व में होने वाले सभी महत्वपूर्ण बदलावों के संबंध में वित्त मंत्रालय को पूर्ण रूप से अवगत रखेगा। प्रत्येक अधिकारी जो लोक धनराशि से व्यय कर रहा है या व्यय को प्राधिकृत कर रहा है उसे वित्तीय औचित्य/उपयुक्तता के उच्च मापदण्डों द्वारा दिशा-निर्देशित होना चाहिए। प्रत्येक अधिकारी को वित्तीय व्यवस्था एवं पूर्णतयः मितव्ययता को भी प्रभावी बनाना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उसके अपने कार्यालय और अधीनस्थ वितरण अधिकारियों द्वारा सभी प्रासंगिक नियमों व विनियमों का पालन किया जा रहा हैं। वित्तीय औचित्य/उपयुक्तता के निम्नलिखित मापदण्ड होते हैं-

1. प्रत्येक अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती हैं कि लोक धनराशि से किए गये व्यय के संबंध में वह वैसी ही समान सतर्कता रखेगा जैसी कि कोई सामान्य विवेकपूर्णता वाला व्यक्ति अपने स्वयं के धन में से किए गये व्यय के संबंध में रखता है।
2. व्यय को प्रथम दृष्टि में अवसर की मांग से अधिक नहीं होना चाहिए।

3. किसी प्राधिकारी को व्यय को संस्वीकृत करने संबंधी अपनी शक्तियों का प्रयोग किसी ऐसे आदेश को पारित करने के लिए नहीं करना चाहिए जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसके लिए लाभकारी होगा।
4. सामान्य तौर पर लोक धनराशि से कोई व्यय किसी विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग के हित के लिए नहीं होना चाहिए।
5. भत्तों की वे धनराशि जो किन्हीं विशिष्ट प्रकार के व्यय को पूरा करने के लिए दी गयी है, उन्हें इस प्रकार से विनियमित किया जाना चाहिए, ताकि वे भत्तें प्राप्तकर्ताओं के लिए लाभ का स्रोत न हो।

वित्तीय नियम बजट आंवटन के संबंध में नियंत्रक अधिकारी के उत्तरदायित्व को निर्धारित करते है। कोई नियंत्रक अधिकारी जिसके अधिकार-क्षेत्र में धनराशि रखी गई है। उसके उस धनराशि के संबंध में निम्नलिखित कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व होते हैं-

- व्यय बजट आवंटन से अधिक नहीं हैं।
- व्यय उस प्रयोजन के लिए किया गया हैं जिसके लिए धनराशि प्रदान की गई है।
- व्यय लोक हित में किया गया है।
- उसके अधीनस्थ कार्यालयों की वित्तीय कार्यवाहियों में त्रुटियों एवं अनियमितताओं से बचाव करने, पता लगाने के लिए और लोक धनराशि के अपव्यय एवं नुकसान से बचने के लिए उसके विभाग में नियंत्रण की पर्याप्त क्रियाविधि कार्य कर रही है।
- नियंत्रण की उपरोक्त विचारित की गई क्रियाविधि को प्रभावकारी तरीके से लागू किया गया है।

संस्वीकृत करने के लिए धनराशि के संबंध में नियम निम्नलिखित प्रावधान करते हैं-

- व्यय को करने के लिए दी गई सभी संस्वीकृतियों में उस प्रासंगिक अनुदान या विनियोग, जिससे ऐसा व्यय पूरा किया जायेगा, में किए गए प्रावधानों के विवरण दिये जायेंगे।
- व्यय की संस्वीकृति देने संबंधी सभी प्रस्ताव यह बतलायेगें कि क्या ऐसे व्यय को वैध विनियोग या पुनर्विनियोग द्वारा पूरा किया जा सकता है।
- ऐसे मामलों में जहां धनराशि को अभी सम्प्रेषित नहीं किया गया है। परन्तु व्यय की संस्वीकृति देना आवश्यक हो जाता है, वहां पर संस्वीकृति प्रदान करने वाले आदेश को यह विनिर्दिष्ट करना चाहिए कि ऐसा व्यय उस वर्ष के बजट में धनराशि को सम्प्रेषित किये जाने के अधीन होगा।

केन्द्र सरकार के विभाग अपने अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले संस्वीकृत किये अनुदानों एवं विनियोगों के सापेक्ष व्यय का नियंत्रण करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। नियंत्रण विभागाध्यक्षों और अन्य नियंत्रक अधिकारियों, यदि कोई है, तथा उनके अधीनस्थ वितरण अधिकारियों के माध्यम से रखा जाता है। किसी अनुदान या विनियोग का उपयोग केवल उन प्रभारों/व्यय (जिनमें पिछले वर्ष की देनदारियां, यदि कोई है, सम्मिलित है) को पूरा करने के लिए किया जाता है, जिनका भुगतान अनुदान या विनियोग के वित्तीय वर्ष के दौरान किया जाना है और जिनका समायोजन वर्ष के लेखा में किया जाना है। संसद द्वारा विधि द्वारा प्राधिकृत किये गए कुल अनुदान या विनियोग से अधिक कोई व्यय नहीं किया जाता है, परन्तु अनुपूरक अनुदान या विनियोग या आकस्मिकता निधि से अग्रिम धनराशि प्राप्त होने की स्थिति में ऐसा किया जा सकता है। व्यय पर प्रभावकारी नियंत्रण रखने के लिए नियंत्रक अधिकारी एवं उनके अधीनस्थ वितरण अधिकारी विहित की गई क्रियाविधि का पालन करते हैं। धनराशि को आहरित करने के लिये आहरण एवं वितरण अधिकारी भारित एवं मतदान व्यय के लिये पृथक-पृथक बिल तैयार करते हैं और उनको प्रस्तुत करते हैं। वे प्रत्येक बिल में लेखा के पूर्ण वर्गीकरण तथा विनियोग की प्राथमिक इकाई के अंतर्गत व्यय के अद्यतन क्रमिक योग की प्रविष्टि करते हैं। सभी वितरण अधिकारी लेखा के प्रत्येक लघु शीर्ष

या उप-शीर्ष के अंतर्गत आवंटन करने के लिये जी0एफ0आर0 9 प्रारूप में पृथक व्यय रजिस्टर को बनाकर रखते हैं। इस रजिस्टर को बनाकर रखने वाला अधिकारी प्रत्येक माह के तीसरे दिन पिछले माह के दौरान इसमें की गई प्रविष्टियों की एक प्रति विभागाध्यक्ष या अन्य निर्दिष्ट नियंत्रक अधिकारी के पास भेजता है। नियंत्रक अधिकारी प्रतिगम का अनुश्रवण करने के लिये जी0एफ0आर0 10 प्रारूप में ब्रॉडशीट को बनाकर रखता है। नियंत्रक अधिकारी वितरण अधिकारियों से प्रतिगमों की प्राप्ति पर उनका परीक्षण करता है और ये देखता है कि लेखाओं का वर्गीकरण उचित प्रकार से दिया गया है; क्रमिक व्यय को उचित प्रकार से नोट किया गया है और शेष धनराशि की गणना सही प्रकार से की गई है; अद्यतन व्यय अनुदान या विनियोग के अंतर्गत हैं; और प्रतिगमों पर वितरण अधिकारियों द्वारा हस्ताक्षर किये गए हैं। यदि नियंत्रक अधिकारी इनमें से किसी/किन्हीं के संबंध में त्रुटियों को पाता है तो उनको सही करने के लिये उसको आवश्यक कदम उठाने होता है। जब वितरण अधिकारियों से किसी विशिष्ट माह के सभी प्रतिगम प्राप्त हो जाते हैं और उन्हें क्रम में पाया जाता है, तब नियंत्रक अधिकारी जी0 एफ0आर0 11 प्रारूप में एक विवरण संकलित करता है तथा इस विवरण में वितरण अधिकारियों से प्राप्त आंकड़ों के योग, जी0एफ0आर0 9 प्रारूप में उसके अपने रजिस्टरों से लिये गए योग, तथा विभिन्न विस्तृत शीर्षों के अंतर्गत ऐसे समायोजनों के योग जो उसको लेखा अधिकारी द्वारा सम्प्रेषित किये गए थे, को समाविष्ट करता है। सभी आवश्यक प्रतिगमों के प्राप्त होने पर विभागाध्यक्ष जी0एफ0आर0 12 प्रारूप में एक समेकित लेखा तैयार करता है, जिसमें पिछले माह की समाप्ति तक उसके अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले अनुदान या विनियोग से हुए पूर्ण व्यय को दिखाया जाता है। विभागाध्यक्ष के द्वारा इस मासिक लेखा को प्रशासनिक मंत्रालय के सचिव के पास भेजा जाता है जो सभी विभागाध्यक्षों से प्राप्त लेखाओं को समेकित करके पूरे मंत्रालय के मासिक लेखा को तैयार करता है। मंत्रालय के मासिक लेखा को वित्त मंत्रालय में स्थित महा लेखा नियंत्रक के पास भेजा जाता है जो सभी प्रशासनिक मंत्रालयों के सचिवों से प्राप्त लेखाओं को समेकित करके पूरे भारत सरकार के मासिक लेखा को तैयार करता है। मासिक लेखाओं के अतिरिक्त वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पश्चात् वार्षिक लेखाओं को इसी प्रकार से तैयार किया जाता है। नियम ये भी प्रावधान करते हैं कि नियंत्रक अधिकारी को प्रत्येक माह जी0एफ0आर0 6ए प्रारूप में व्यय करने वाले प्राधिकारियों से देनदारी विवरण प्राप्त करने चाहिए और देनदारी रजिस्टर को बनाकर रखना चाहिए। एक विभागाध्यक्ष या नियंत्रक अधिकारी को इस स्थिति में होना चाहिए कि वह प्रत्येक माह होने वाली बचत या अतिरेक की संभावना का अनुमान लगा सके और उनका विनियिमितीकरण कर सके।

वित्तीय नियम विभागों द्वारा बचत को अभ्यर्पित करने के संबंध में उचित प्रावधान करते है। नियमों के अनुसार केन्द्र सरकार के विभाग वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व वित्त मंत्रालय द्वारा विहित की तिथि तक उसको अपने द्वारा नियंत्रित किये गए अनुदानों या विनियोगों में देखे गये सभी अनुमानित बचत अभ्यर्पित करेगें; वित्तीय वर्ष के दौरान प्रदान की गई धनराशि का उपयोग उस वित्तीय वर्ष की समाप्ति से पूर्व तक नहीं होने पर उसका व्यपगमन वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर हो जायेगा और किसी भी बचत को संभावित भावी अतिरेक के लिए सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है।

उक्त प्रावधानों के अतिरिक्त नियमों में वित्तीय नियंत्रण संबंधी अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान भी किये गए हैं। कोई प्राधिकारी शासकीय लेखा से तब तक किसी ऐसे व्यय को नहीं कर सकता है या किसी ऐसी देनदारी में नहीं पड़ सकता है, जिसमें निवेश या निक्षेप के लिए धनराशि का व्यय या अंतरण किया जाना सम्मिलित हैं जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसको संस्वीकृत न कर दिया जाए। किसी नये व्यय के लिए दी गई संस्वीकृति, जब तक कि उसका विनिर्दिष्ट रूप से नवीनीकरण नहीं किया गया है, का व्यपगमन हो जायेगा यदि ऐसी संस्वीकृति की जारी होने की तिथि से बारह माह की अवधि के दौरान सम्पूर्ण या आंशिक रूप में कोई भुगतान नहीं किया गया है। किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी सभी वित्तीय संस्वीकृतियां एवं आदेश लेखा-परीक्षण अधिकारी और लेखा अधिकारी को सम्प्रेषित किये जायेंगे। कोई अधीनस्थ प्राधिकारी लेखा-परीक्षण अधिकारी या लेखा अधिकारी को

सभी युक्तिसंगत सुविधाएं उसके कार्य के निर्वाहन हेतु प्रदान करेगा तथा किसी शासकीय लेखा या प्रतिवेदन को तैयार करने के लिए उसके द्वारा अपेक्षित जहां तक संभव हो उतनी पूर्ण सूचना उपलब्ध करायेगा।

वित्तीय नियम शासकीय नुकसान के संबंध में भी उचित प्रावधान करते हैं। नियमों के अनुसार शासन के द्वारा या उसकी ओर से रखे गए/ रखी गई किसी/किन्हीं लोक धनराशि, विभागीय राजस्व या प्राप्तियों, स्टाम्प, अफीम, स्टोर्स या अन्य सम्पतियों में होने वाला कोई नुकसान या कमी, नुकसान का कारण और उसका पता लगाने का तरीका चाहे जो भी हो, संबंधित अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा अगले उच्च प्राधिकारी, संविधिक लेखा-परीक्षण अधिकारी तथा प्रमुख लेखा अधिकारी को तत्काल रिर्पोट किया जायेगा; गंभीर अनियमितताओं वाले मामलों के बारे में संबंधित मंत्रालय या विभाग के वित्तीय सलाहकार या मुख्य लेखांकन प्राधिकारी तथा वित्त मंत्रालय के महा लेखा नियंत्रक को सूचित किया जाना चाहिए; जब नुकसान के कारण एवं उसकी सीमा के बारे में पूर्ण जांच हो गई है, तब संबंधित अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा उसकी विस्तृत रिर्पोट शासन को उचित माध्यम से भेजी जानी चाहिए, उसी समय रिर्पोट की प्रति या उसका साराशं लेखा-परीक्षण या लेखा अधिकारी को अग्रसारित की जानी चाहिए; तथा नुकसान के मामलों में पता लगाने, रिर्पोटिंग करने, नकारने, अंतिम निस्तारण करने के प्रत्येक चरण में कार्यवाही यथासमय पर पूरी होनी चाहिए। नियम यह भी प्रदान करते हैं कि कोई अधिकारी छल/कपट या उसकी ओर से लापरवाही के कारण शासन को होने वाले किसी नुकसान के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. वित्त विभाग को वर्ष.............में स्थापित किया गया था।
2. भारत सरकार के वित्तीय शक्तियां प्रत्यायोजन नियम कौन से वर्ष के हैं?
   क. 1976 ख. 1978
   ग. 1980 घ. 1982

19.6 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आप यह भली-भांति समझ चुके हैं कि कार्यकारी नियंत्रण आंतरिक नियंत्रण होता जो व्यवस्था में अंतनिर्हित होता है और जिसमें कि निरंतरता होती है। यह नियंत्रण मंत्रिमण्डल, वित्त मंत्रालय तथा विभागीय अधिकारियों द्वारा रखा जाता है। मंत्रिमण्डल शासन में नीति निर्माण करने वाला सर्वोच्च निकाय होता है। यह सभी मुख्य वित्तीय मामलों पर विचार करता है और उनको संस्वीकृत करता है। वित्त मंत्रालय की भूमिका अभिशासन की प्रक्रिया में अत्यंत सशक्त है और इसका प्रमुख उत्तरदायित्व सम्पूर्ण राष्ट्र की अर्थव्यवस्था तथा वित्तीय मामलों का प्रबंधन करना होता है। प्रत्येक प्रशासनिक मंत्रालय के अधिकारियों व कार्मिकों की मुख्य जिम्मेदारी अपने मंत्रालय का वित्तीय प्रबंधन करना होता है। इस इकाई का अध्ययन करने से आप कार्यकारी नियंत्रण की व्यवस्था के बारे में अपना ज्ञान-वर्धन करते हुये उस पर तर्कशील दृष्टिकोण को अपना सकेंगे।

19.7 शब्दावली

पदसोपान- पदसोपान संगठन का एक सिद्धांत व व्यवस्था है, जिसमें उसके सदस्यों को उनकी सापेक्षिक प्रस्थिति या प्राधिकार के अनुसार भिन्न श्रेणीबद्ध पदों में वर्गीकृत किया जाता है। एक पदसोपानिक संगठन पिरामिड के आकार की भांति होता है, जिसका आधार विस्तीर्ण और शीर्ष संकुचित होता है।

प्रत्यायोजन- प्रत्यायोजन संगठन का वह सिद्धांत होता है, जिसमें किसी विनिर्दिष्ट कार्य को करने के लिये एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को प्राधिकार सौंपा जाता है। प्रत्यायोजन में प्राधिकार प्रत्यायोजित करने वाले व्यक्ति और व्यक्ति जिसको प्राधिकार प्रत्यायोजित किया गया है। दोनों का उत्तरदायित्व उस विनिर्दिष्ट कार्य के लिये रहता है।

मंत्रिमण्डल समिति- मंत्रिमण्डल समिति मंत्रियों का एक समूह होता है जो मंत्रिमण्डल के द्वारा गठित किया जाता है। यह समिति मंत्रिमण्डल के कार्यभार को कम करती है, सौंपे गये कार्य का गहन परीक्षण करती है और उस पर निर्णय लेती है, तथा अंतर-विभागीय समन्वय को लेकर आती है। विभिन्न प्रकार की मंत्रिमण्डल समितियां पायी जाती है। जैसे कि राजनीतिक मामलों की समिति, आर्थिक मामलों की समिति, संसदीय मामलों की समिति, नियुक्ति समिति, सुरक्षा समिति आदि।

वित्तीय वर्ष- वित्तीय वर्ष वह वर्ष होता है, जिसमें कि सरकार के वित्तीय विवरणों को तैयार किया जाता है। वित्तीय वर्ष की अवधि भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग होती है। जैसे कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में अक्टूबर 01 से सितम्बर 30 तक; आस्ट्रेलिया में जुलाई 01 से जून 30 तक; चीन में जनवरी 01 से दिसम्बर 31 तक; तथा भारत, कनाडा, यूनाइटेड किंगडम, जापान व दक्षिण अफ्रीका में अप्रैल 01 से मार्च 31 तक

19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1810, **2.** ख,

19.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) Indian Public Administration: Institutions and Issues, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अवस्थी, अमरेश्वर एवं आनंद प्रकाश अवस्थी, (1995) Indian Administration, तीसरा संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
3. अवस्थी, अमरेश्वर एवं श्रीराम महेश्वरी, (1994) Public Administration, बीसवां संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. महा लेखा नियंत्रक, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, आंतरिक लेखा-परीक्षण, नई दिल्ली,
5. http://www.cga.nic.in/Page/Internal-Audit.aspx
6. मंत्रिमण्डल सचिवालय, भारत सरकार, (11.09.2017) मंत्रिमण्डल समितियों की संरचना, कार्यालय ज्ञापन संख्या ओ.एम. 1/11/2017, नई दिल्ली।
7. https://cabsec.gov.in/writereaddata/cabinetcommittees/english/1_Upload_1285.pdf
8. व्यय विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, (2005) General Financial Rules, नई दिल्ली।
9. http://cgda.nic.in/pdf/gfr2005.pdf
10. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, https://finmin.nic.in/

19.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. चांद, एस. एन., (2008) Public Finance, खण्ड-2, अटलांटिक पब्लिकेशनस् एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
2. फाड़िया, बी.एल., (1997 संस्करण) Indian Government and Politics, साहित्य भवन पब्लिकेशनस्, आगरा।
3. भारतीय रिजर्व बैंक, भारत सरकार, प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्न - भारतीय रिजर्व बैंक सरकार के बैंकर के रूप में, मुम्बई।
4. https://www.rbi.org.in/scripts/FAQView.aspx?Id=61

5. शर्मा, एम. पी. एवं बी. एल. सडाना (1992) Public Administration: In Theory and Practice, इक्कीसवां संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद।

19.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्यकारी नियंत्रण की अवधारणा एवं महत्व की विवेचना कीजिये।
2. वित्त मंत्रालय में शासन की वित्तीय शक्तियां निहित की गई हैं, टिप्पणी कीजिये।
3. विभागीय अधिकारियों की वित्तीय नियंत्रण में भूमिका की व्याख्या कीजिये।

इकाई- 20 भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली

इकाई की संरचना

20.0 प्रस्तावना
20.1 उद्देश्य
20.2 लेखाशास्त्र का अर्थ एवं महत्व
20.3 भारत में लेखाशासत्र की प्रणाली
20.4 भारत सरकार की लेखाशास्त्र प्रणाली की विशेषताएं
20.5 सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया
20.6 सरकारी लेखाओं के विभाजन
20.7 सरकारी लेखाओं में लेन-देन का वर्गीकरण
20.8 लेखांकन के लिये बैंकिंग व्यवस्था
20.9 वार्षिक लेखा
20.10 व्यक्तिगत निक्षेप खाता
20.11 पूंजी एवं राजस्व लेखा
20.12 भारतीय लेखाशास्त्र प्रणाली का मूल्यांकन
20.13 सारांश
20.14 शब्दावली
20.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.16 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
20.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
20.18 निबन्धात्मक प्रश्न

20.0 प्रस्तावना

इससे पिछली की इकाईयों में आप वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण, वित्तीय समितियों की व्यवस्था तथा कार्यकारी नियंत्रण के बारे में अच्छे से अवगत हो चुके हैं। भारत में लेखा शास्त्र की विस्तृत प्रणाली विद्यमान है, जिसे संविधान, विभिन्न अधिनियम, नियम व विनियम शासित करते हैं। प्रस्तुत इकाई में भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली से संबंधित विविध पहलुओं का विवरण दिया गया हैं और उन की चर्चा की गयी है।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से लेखाशास्त्र क्या होता है, उसका महत्व क्या होता है, भारत सरकार की लेखाशास्त्र प्रणाली की क्या विशेषतायें हैं, सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया कैसी होती है, सरकारी लेखा के कितने भाग होते हैं, सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है, लेखांकन के लिये बैंकिंग व्यवस्था क्या हैं, वार्षिक लेखा क्या होते हैं, व्यक्तिगत निक्षेप खाता क्या होता हैं, पूंजी एवं राजस्व लेखा क्या होते हैं, और देश की लेखा शास्त्र प्रणाली कैसी रही हैं के संबंध में आपकी जागरूकता में वृद्धि होगी।

20.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

1. जान सकेंगे कि लेखा शास्त्र का अर्थ एवं महत्व क्या होता हैं;
2. बूझ सकेंगे कि भारत में लेखा शास्त्र की प्रणाली कैसी हैं और उसकी क्या विशेषतायें हैं;

3. समझ सकेंगे कि सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया में कौन से चरण सम्मिलित होते हैं;
4. वर्णन कर पायेंगे कि सरकारी लेखाओं का विभाजन तथा सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण किस प्रकार से किया जाता हैं;
5. आंकलन कर पायेंगे कि लेखांकन के लिये बैंकिंग व्यवस्था कैसी हैं; और
6. स्पष्ट कर सकेंगे कि वार्षिक लेखा, व्यक्तिगत निक्षेप खाता, पूंजी एवं राजस्व लेखा क्या होते हैं।

20.2 लेखाशास्त्र का अर्थ एवं महत्व

लेखा वित्तीय शब्दावली में अभिव्यक्त की गयी विभिन्न गतिविधियों एवं कार्यों के व्यवस्थित अभिलेख होते हैं। लेखा गतिविधि केन्द्रों के द्वारा बनाकर रखे जाते हैं और इनको बनाकर रखने के कार्य एवं प्रक्रिया को लेखाशास्त्र या लेखांकन कहा जाता है। लेखाशास्त्र प्रबंधन का एक अत्यंत उपयोगी साधन है, जिसके द्वारा आंकड़ों को वित्तीय स्वरूप में विश्लेषित किया जाता हैं; उनको व्यवस्थित विस्तृत रूप से अभिलेखबद्ध, वर्गीकृत और सत्यापित किया जाता है; तथा उनका सार सुगम्यतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है। शासन में लेखाशास्त्र वित्तीय निर्णय-निर्माण को सुसाध्य बनाता है और बजट संबंधी योजनाओं को बनाने में सहायता करता है। इस प्रकार से लेखा शास्त्र आर्थिक नीतियों को प्रतिपादित करने एवं बजट को निर्मित करने और उसको अधिनियमित करने की प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता है। लेखाशास्त्र की प्रणाली उन सभी ऐसी आवश्यक सूचना को प्रदान करती है जो सरकार की आर्थिक नीतियों व कार्यक्रमों का आगणन एवं उनके क्रियान्वयन की कार्यकुशलता का विश्लेषण करने को सुसाध्य बनाती है और ऐसा करते हुये यह वित्तीय नियंत्रण को सुकर बनाती है। ये लोक प्राप्तियों व व्यय पर प्रभावकारी तरीके से नियंत्रण रखने को संभव बनाती है, जिससे कि उनकी उचित प्रकार से गणना की जा सके, यह समर्थ किया जा सके कि लोक धनराशि का प्रयोग केवल सार्वजनिक प्रयोजनों हेतु अधिकृत किया गया है, और लोक संगठनों में आंतरिक लेखापरीक्षण को किया जा सके। ये सब सरकार और लोक प्राधिकारियों की वित्तीय मामलों में उत्तरदायित्व तथा जवाबदेही को सुनिश्चित करते हैं।

20.3 भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली

भारत में लेखा शास्त्र की प्रणाली संविधान, विभिन्न अधिनियमों, नियमों व विनियमों के प्रावधानों के द्वारा शासित होती है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद-150 यह परिकल्पित करता है कि संघ के और राज्यों के लेखाओं को ऐसे प्रारूप में रखा जायेगा जो राष्ट्रपति भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की सलाह पर विहित करें। संविधान में लेखाओं के प्रारूप के संबंध में प्रासंगिक अनुच्छेद हैं- अनुच्छेद-112- वार्षिक वित्तीय विवरण (संघ का); अनुच्छेद-114- विनियोग विधेयक (संघ का); अनुच्छेद-115- अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान (संघ का); अनुच्छेद-116- लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान (संघ का); अनुच्छेद- 202- वार्षिक वित्तीय विवरण (राज्यों का); अनुच्छेद-204- विनियोग विधेयक (राज्यों का); अनुच्छेद-205- अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान (राज्यों का); अनुच्छेद- 206- लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान (राज्यों का); अनुच्छेद-266- भारत और राज्यों की संचित निधियां और लोक लेखे; अनुच्छेद- 267- आकस्मिकता निधि; तथा अनुच्छेद- 283- संचित निधियों, आकस्मिकता निधियों और लोक लेखाओं में जमा राशियों और अन्य धनराशियों की अभिरक्षा आदि। संविधान के उपरोक्त सभी अनुच्छेदों का सरोकार संघ एवं राज्यों के साथ है। चूंकि देश में राज्यों के साथ-साथ संघ राज्य क्षेत्र भी हैं, अतः संविधान द्वारा उनके संबंध में भी भाग- VII (अनुच्छेद- 239 से 242) में प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद- 239- संघ राज्य क्षेत्रों का प्रशासन में वर्णित प्रावधान के अनुपालन में संसद के द्वारा वर्ष 1963 में संघ राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम की विभिन्न धाराएं संघ राज्य क्षेत्रों के लेखाओं के प्रारूप के साथ संबंध रखती हैं, जैसे कि भाग- II

(विधान सभाएं) की अनुच्छेद-27- वार्षिक वित्तीय विवरण, अनुच्छेद-29- विनियोग विधेयक, अनुच्छेद-30- अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान, एवं अनुच्छेद-31- लेखानुदान; तथा भाग-V (प्रकीर्ण और संक्रमणकालीन उपबंध) का अनुच्छेद-47- संघ राज्य क्षेत्र की संचित निधि, अनुच्छेद-47 क- संघ राज्य क्षेत्र का लोक लेखा और उसमें जमा की गयी धनराशियां, अनुच्छेद-48- संघ राज्य क्षेत्र की आकस्मिकता निधि, अनुच्छेद-48 ख- संघ राज्य क्षेत्र के लेखाओं का प्रारूप एवं अनुच्छेद-48- लेखापरीक्षण के प्रतिवेदन।

भारत सरकार की लेखाशास्त्र की प्रणाली के संबंध में कुछ मुख्य सिद्धांतों का पालन किया जाता हैं। वे सिद्धांत जिनका पालन करते हुए सरकार के लेखाओं को बनाकर रखा जायेगा शासकीय लेखांकन नियम, 1990; कोषागारों के लिये लेखांकन नियम; व लेखांकन कोड, खण्ड- III में दिये गए हैं।

20.4 भारत सरकार की लेखा शास्त्र प्रणाली की विशेषताएं

भारत सरकार की लेखाशास्त्र की प्रणाली की कुछ विशिष्ट विशेषतायें हैं, जो लेखांकन के संबंध में सरकार के द्वारा बनाये गए नियमों में दृष्टिगोचर होती हैं। केन्द्र सरकार के लेखा प्रत्येक वर्ष बनाये जाते हैं। वार्षिक लेखाओं में उन वित्तीय लेन-देनों को अंकित किया जाता है, जो 1 अप्रैल से 31 मार्च तक के सम्पूर्ण वित्तीय वर्ष के दौरान हुए होते हैं। वार्षिक लेखाओं के अतिरिक्त मासिक लेखा भी तैयार किये जाते हैं, जिनमें कि लेखा तैयार किये जाने वाले माह से तत्काल पूर्व वाले माह के दौरान हुए वित्तीय लेन-देनों को अंकित किया जाता है। मासिक एवं वार्षिक लेखाओं को बनाकर रखने के लिये एक व्यापक शासकीय तंत्र होता है जो कार्यालयों में आहरण एवं वितरण अधिकारियों से आरंभ हो कर वित्त मंत्रालय में महा लेखा नियंत्रक तक जाता है।

सरकारी लेखाओं को देश की बजटीय संरचना को आवश्यक रूप से स्वीकार करना होता है। चूंकि बजट वार्षिक आधार पर बनाया जाता है, इसलिये लेखाओं में शासकीय लेन-देनों को अंतिम रूप भी वार्षिक आधार पर दिया जाता है। इसी के साथ बजट के शीर्षों एवं लेखाओं के शीर्षों के मध्य अनुरूपता पायी जाती है। लेखाओं एवं बजट प्रलेखों में भारित व्यय को मतदान व्यय से, योजना व्यय को गैर-योजना व्यय से, तथा पूंजी व्यय को राजस्व व्यय से अलग दिखाया जाता है। पूंजी व्यय तथा राजस्व व्यय के मध्य अंतर का बजटीय प्रयोजनों हेतु अत्यधिक महत्वपूर्ण होने के कारण केन्द्र और राज्यों में इन व्ययों के मध्य अंतर करने के एक समान सिद्धांतों का अनुपालन किया जाता है। लेन-देन का एक समान वर्गीकरण केन्द्र और राज्य सरकारों के मध्य वित्तीय तुलना करने को संभव बनाता है।

सरकारी लेखाओं में वित्तीय लेन-देनों को ब्योरेवार विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है। शासकीय प्राप्तियों व भुगतानों का सविस्तार तरीके से विभेदन और वर्गीकरण किया जाता है।

सरकारी लेखा नकद आधार पर बनाकर रखे जाते हैं। इसका अभिप्राय है कि सरकारी लेखा में अंकित लेन-देन किसी वित्तीय वर्ष के दौरान नकद की वास्तविक प्राप्तियों एवं संवितरणों को दर्शाते हैं। लेखाओं में वे धनराशि नहीं दिखायी जाती है जो किसी वित्तीय वर्ष के दौरान सरकार को देय है या उसके द्वारा देय हैं। यद्यपि लेखाओं को नकद आधार पर बनाकर रखा जाता है फिर भी यह आवश्यकता महसूस की गयी है कि उन सरकारी विभागों के मामले में जहां कार्य विशुद्ध रूप से या अधिकांशतः वाणिज्यिक स्वरूप के हैं प्रासंगिक लेखाओं को प्रोद्भवन लेखांकन के संशोधित सिद्धातों के अनुसार वाणिज्यिक आधार पर रखा जाना चाहिये। इस प्रयोजन हेतु किसी मंत्रालय या विभाग के अंतर्गत कार्यरत वाणिज्यिक इकाईयों के लिए प्रोफोर्मा लेखाओं को वाणिज्यिक लेखांकन के सिद्धातों के अनुसार बनाकर रखा जाता है। प्रोफोर्मा लेखा वाणिज्यिक या अर्ध-वाणिज्यिक गतिविधियों को करने वाले सरकारी विभागीय उपक्रमों, जैसे कि औद्योगिक कारखानों या भण्डार घरों के सहायक लेखा होते हैं। इन उपक्रमों के प्रमुखों का उत्तरदायित्व होता है कि प्रोफोर्मा लेखाओं को ऐसे प्रारूप में बनाकर रखें, जैसा कि सरकार तथा नियंत्रक और महा-लेखा परीक्षक के मध्य सहमति हुयी होती है। इसमें विनिर्माण, व्यापारिक, लाभ तथा हानि

लेखा और तुलन-पत्र सम्मिलित होते हैं। प्रोफोर्मा लेखाओं को विभागीय उपक्रमों के प्रमुखों के द्वारा लेखा अधिकारी को उस तिथि तक प्रस्तुत किया जाना होता है जैसा कि उसके द्वारा अपेक्षित होता है। प्रोफोर्मा लेखाओं को प्रत्येक वर्ष के विनियोग लेखा के साथ संलग्न किया जाता है।

सरकारी लेखा भारतीय रूपये में बनाकर रखे जाते हैं। विदेशी मुद्रा में सभी लेन-देन एवं विदेशी सहायता भारतीय रूपये में रूपांतरित करने के पश्चात् ही लेखाओं में अंकित की जाती है।

प्रत्येक अधिकारी जो शासकीय देय को एकत्र करने या शासकीय धन का व्यय करने के लिये उत्तरदायी होता है। उसे देखना होता है कि प्राप्तियों एवं व्यय के उचित लेखा ऐसे प्रारूप में बनाकर रखे गए हैं जो सरकारी लेन-देनों के लिये विहित किये गए हैं। उसे सरकार, नियंत्रक अधिकारी या लेखा अधिकारी को उनके द्वारा अपेक्षित सभी लेखाओं और उनसे संबंधित प्रतिगमों को सही ढंग से तथा शीघ्रता से देना होता है।

आहरण अधिकारियों को अपने द्वारा आहरित सभी बिलों पर तथा उन चालानों पर जिनसे वे बैंक में शासकीय धनराशि को जमा करते है, उपयुक्त वर्गीकरण को रिकार्ड करना होता है।

लेखाशास्त्र की प्रणाली में अंतर-शासकीय तथा अंतर-विभागीय वित्तीय समायोजनों का प्रावधान किया गया है। इन समायोजनों को करने के लिये प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लेखाओं को आगामी वित्तीय वर्ष में निश्चित अवधि के लिये खुला रखा जाता है। राज्य सरकारों के साथ वित्तीय लेन-देनों के संबंध में समायोजन ऐसी रीति में और उस सीमा तक किया जाता है, जैसा कि केन्द्र सरकार और संबंधित राज्य सरकार के मध्य पारस्परिक रूप से सहमति हुयी होती है। अंतर-शासकीय समायोजन प्रत्येक वर्ष की 15 अप्रैल तिथि तक होते है। यह वह तिथि है, जिस दिन भारतीय रिजर्व बैंक के मार्च माह के लेखा बंद होते हैं। अंतर-विभागीय वित्तीय समायोजनों के संबंध में नियमों में यह प्रावधान किया गया है कि कोई सेवा विभाग अन्य विभागों से प्रदान की गयी उन सेवाओं या की गयी उन आपूत्तियों के लिये जो उसके कर्तव्यों की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं कोई शुल्क नहीं ले सकता है। हालांकि कोई वाणिज्यिक विभाग या उपक्रम अन्य विभागों को प्रदान की गयी सेवाओं या की गयी आपूत्तियों के लिये शुल्क ले सकता है। इसी प्रकार से अन्य विभाग किसी वाणिज्यिक विभाग या उपक्रम को प्रदान की गयी सेवाओं या की गयी आपूत्तियों के लिये उस से शुल्क ले सकता है। अंतर-विभागीय समायोजन साधारणतयः वित्तीय लेन-देन वाले समान वित्तीय वर्ष में किये जाते है। ये समायोजन वित्तीय लेन-देन की तिथि से तीन वर्ष की अधिक अवधि में नहीं किये जा सकते हैं।

20.5 सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया

केन्द्र और राज्य सरकारों दोनों में लेखाओं को बनाकर रखने का कार्य वास्तव में अत्यंत जटिल तथा विकट होता है। देश का व्यापक आकार, उसका भौगोलिक विस्तार और सरकार के द्वारा की जा रही विविध एवं विस्तृत गतिविधयां लेखांकन के कार्य को बहुत चुनौतीपूर्ण बनाते हैं। विद्यमान उलझनकारी परिस्थितियों में सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया का व्यवस्थित होने का महत्व काफी बढ़ जाता है। लेखांकन की प्रक्रिया को यथासंभव सुनियोजित बनाने के प्रयास किये गये हैं। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण सम्मिलित होते हैं-

1. लेखांकन संबंधी लेन-देनों का आरम्भिक अभिलेखिन करना, किसी कार्य या गतिविधि के संदर्भ में उनका वर्गीकरण करना, प्रशासनिक मंत्रालय/विभाग के साथ उनका सह-संबंध स्थापित करना, और उनका समेकन करना;
2. विधिक रूप से अनुमोदित किये गये विनियोगों के साथ वित्तीय लेन-देनों का मेल करना ताकि विधायी संवीक्षा को समर्थ बनाया जा सके; और
3. लेखांकन संबंधी समस्त आंकड़ों का विश्लेषण करना तथा उनको संबंधित सरकारों को प्रस्तुत करना, जिससे कि वे प्रबंधन के साधन के रूप में प्रयोग हो सके।

20.6 सरकारी लेखाओं के विभाजन

सरकारी लेखा संवैधानिक आवश्यकताओं के अनुसार तीन भागों में रखे जाते हैं। भाग-1 के लेखा संचित निधि के साथ, भाग-2 के आकस्मिकता निधि के साथ, तथा भाग-3 के लोक लेखा के साथ संबंधित होते हैं।

भाग-1 के संचित निधि वाले लेखा में दो खण्ड होते हैं- राजस्व एवं पूंजी खण्ड। राजस्व लेखा खण्ड में दो अंश होते हैं- प्राप्ति शीर्ष (राजस्व लेखा) और व्यय शीर्ष (राजस्व लेखा)। प्राप्ति शीर्ष (राजस्व लेखा) कराधान से प्राप्त धनराशियों और अन्य प्राप्तियों जिन्हें राजस्व के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, के साथ संबंधित होता है। व्यय शीर्ष (राजस्व लेखा) का सरोकार उन प्राप्तियों से किये गए व्यय के साथ होता है। पूंजी लेखा खण्ड में तीन अंश होते हैं- प्राप्ति शीर्ष (पूंजी लेखा), व्यय शीर्ष (पूंजी लेखा), और लोक उधार, ऋण एवं अग्रिम धन आदि शीर्ष। प्राप्ति शीर्ष (पूंजी लेखा) का सरोकार पूंजी स्वरूप वाली प्राप्तियों के साथ होता है। व्यय शीर्ष (पूंजी लेखा) का सरोकार उस व्यय के साथ होता है जो या तो भौतिक और स्थायी स्वरूप वाली मूर्त परिसम्पतियों को बढ़ाने या आवर्ती देनदारियों को कम करने के लिये किया जाता है। लोक उधार, ऋण एवं अग्रिम धन आदि शीर्ष में लिये गये ऋण और उनकी अदायगी जैसे कि आंतरिक ऋण, बाहरी ऋण तथा उनकी वसूली सम्मिलित होते हैं। पूंजी लेखा खण्ड वाले अंश बदले में विभिन्न सेक्टरों में विभाजित होते हैं, जैसे कि सामान्य सेवायें, सामाजिक एवं सामुदायिक सेवायें, आर्थिक सेवायें आदि। इन सेक्टरों के अंतर्गत विनिर्दिष्ट कार्यों या सेवाओं को वर्गबद्ध किया जाता है। ये समूहीकरण योजना वर्गीकरण के सेक्टरों के तदनुरूप होते हैं, जो मुख्य शीर्षों द्वारा निरूपित होते हैं।

भाग-2 के आकस्मिकता निधि वाले लेखा में उन लेन-देनों को अभिलिखित किया जाता है जो भारत सरकार द्वारा स्थापित आकस्मिकता निधि के साथ संबंधित होते हैं। इसमें एक मुख्य शीर्ष होता है, जिसके अंतर्गत आकस्मिकता निधि के सभी लेन-देनों को अभिलिखित किया जाना होता हैं।

भाग-3 के लोक लेखा वाले लेखा में उधार, ऋण, प्रारक्षित निधि, निक्षेपों, अग्रिम धन, निलम्बन खातों, विप्रेषित धन तथा नकदी शेष से संबंधित लेन-देनों को अभिलिखित किया जाता है। लोक लेखा वाले लेन-देनों का समूहन सेक्टरों एवं उप-सेक्टरों के अनुसार किया जाता है। ये सेक्टर एवं उप-सेक्टर लेखा के मुख्य शीर्ष और अन्य शीर्षों में विभाजित होते हैं।

20.7 सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण

सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण लेखांकन के नियमों में उसके संबंध में किये गए प्रावधानों के अनुसार किया जाता है। लेखाओं में लेन-देनों के वर्गीकरण का अभिन्न सन्दर्भ सरकार के प्रकार्यों, कार्यक्रमों और गतिविधियों, तथा राजस्व या व्यय के प्रयोजन के साथ होता है। लेखाओं में लेन-देनों का समूहन सेक्टरों में होता है जो आगे उप-सेक्टरों में विभाजित होते हैं। इनके पश्चात् लेन-देनों का वर्गीकरण विभिन्न शीर्षों के अंतर्गत किया जाता हैं जो क्रमानुसार हैं- मुख्य शीर्ष, उप-मुख्य शीर्ष, लघु शीर्ष, उप शीर्ष, विस्तृत शीर्ष, और मद शीर्ष। ये लेखाओं के छः प्रमाणित स्तर हैं जो 15 अंक के अनूठे निम्नलिखित संख्यावाचक कूट के द्वारा दर्शाये जाते हैं-

- मुख्य शीर्षः 4 अंक (प्रकार्य)
- उप-मुख्य शीर्षः 2 अंक (उप-प्रकार्य)
- लघु शीर्षः 3 अंक (कार्यक्रम)
- उप शीर्षः 2 अंक (योजना)
- विस्तृत शीर्षः 2 अंक (उप-योजना)
- मद शीर्षः 2 अंक (विनियोग की प्राथमिक इकाई)

मुख्य शीर्ष सामान्य तौर पर सरकार के किसी विशिष्ट विभाग के प्रत्येक सेक्टर/उप-सेक्टर के अंतर्गत आने वाले व्यापक प्रकार्यों के तदनुरूप होते हैं। उप-मुख्य शीर्ष मुख्य शीर्ष के अंतर्गत खोले जाते हैं उन लेन-देनों का अभिलेखिन करने के लिये जो विशिष्ट स्वरूप के होते है और जिनका इतना पर्याप्त महत्व होता है कि उनको अनन्य रूप से अभिलेखबद्ध किया जाये। लेकिन इसके साथ ही यह शीर्ष मुख्य शीर्ष के प्रकार्य के साथ सम्बद्ध होता है। प्रकार्यों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जो कार्यक्रम चलाये जाते है, वे लघु शीर्षें में दर्शाये जाते हैं। लघु शीर्ष निर्गत उन्मुख होते हैं। उप शीर्ष और विस्तृत शीर्ष क्रमशः योजनाओं और उप-योजनाओं को दर्शाते हैं। मद शीर्ष विनियोग की प्राथमिक इकाई का प्रतिनिधित्व करते हैं जो व्यय के आर्थिक स्वरूप जैसे कि वेतन, भत्ते, कार्यालय व्यय, सहायता अनुदान आदि को दिखाते हैं।

संघ एवं राज्यों के लेखाओं के मुख्य और लघु शीर्षें की सूची महालेखा नियंत्रक (व्यय विभाग, वित्त मंत्रालय) के द्वारा बनाकर रखी जाती है। महालेखा नियंत्रक भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सलाह पर लेखा के नये शीर्ष को खोलने के लिये प्राधिकृत है। इस संबंध में शक्तियां संविधान के अनुच्छेद-150 से निकली हुई हैं। महालेखा नियंत्रक द्वारा बनाकर रखी गई सूची में लेखाओं के शीर्षें को खोलने के सामान्य दिशा-निर्देश; तथा लेखाओं के सेक्टरों, मुख्य, उप मुख्य और लघु शीर्षों की पूर्ण सूची दी गई हुई है। मंत्रालय/विभाग वित्त मंत्रालय के बजट प्रभाग के परामर्श के साथ उप एवं विस्तृत शीर्षों को अपनी आवश्यकतानुसार खोल सकते हैं। वित्त मंत्रालय का व्यय विभाग भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सलाह पर मद के नये शीर्षें को खोल सकता है या विद्यमान मद शीर्षें को संशोधित कर सकता है।

20.8 लेखांकन के लिये बैंकिंग व्यवस्था

भारतीय रिजर्व बैंक सरकार का बैंकर होता है। वह ऐसा भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के अध्याय- III केन्द्रीय बैंकिंग कार्यों की अनुच्छेद 20 एवं 21 के अंतर्गत करता है। अनुच्छेद-20 के अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक का दायित्व है कि वह केन्द्र सरकार की प्राप्तियों एवं भुगतान के उत्तरदात्विों को ले तथा विनिमय, विप्रेषण और अन्य बैंकिंग संचालनों को करे। अनुच्छेद-21 के अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक का अधिकार है कि वह भारत में संघ के शासकीय कार्यों को करे। राज्य सरकारों के साथ लेन-देनों के संबंध में प्रावधान अनुच्छेद-21 ‘क’ में किया गया है, जिसके अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक किसी भी राज्य सरकार के साथ इस संबंध में समझौता कर सकता है। वर्तमान में सिक्किम राज्य को छोड़कर भारतीय रिजर्व बैंक और सभी राज्य सरकारों के मध्य इस तरह के समझौते हुये हैं। इस प्रकार विधिक रूप से सरकार के बैंकर के तौर पर कार्य करना भारतीय रिजर्व बैंक का दायित्व एवं अधिकार दोनों हैं। सरकार के बैंकर के तौर पर वह सरकार का नकदी शेष बनाकर रखता है। इसके अतिरिक्त वह मंत्रालयों एवं उनके संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों को बैंकिंग सुविधायें भी प्रदान करता है। वह ऐसा या तो सीधे अपने कार्यालयों के माध्यम से या अपने एजेन्ट बैंकों के माध्यम से करता है। एजेन्ट बैंकों के स्थापन का प्रावधान अधिनियम की अनुच्छेद- 45 में किया गया है। भारतीय रिजर्व बैंक महा लेखा नियंत्रक के साथ परामर्श में किसी बैंक को नामित करता है जो किसी मंत्रालय या विभाग के अधिकृत बैंक के रूप में कार्य करता है। यह बैंक व्यावसायिक बैंक होता है जो सार्वजनिक क्षेत्र या निजी क्षेत्र का हो सकता है। भुगतान एवं लेखा कार्यालयों तथा चैक आहरण एवं वितरण अधिकारियों के किसी मंत्रालय या विभाग के अधिकृत बैंक की निर्धारित शाखाओं में समनुदेशन लेखा होते हैं। ये शाखायें विभागीय प्राप्तियों एवं अन्य प्राप्तियों को भी एकत्र करती है। भारतीय रिजर्व बैंक अपने केन्द्रीय लेखा अनुभाग, नागपुर में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के प्रमुख लेखाओं को बनाकर रखता है। भारतीय रिजर्व बैंक ने सम्पूर्ण देश में सरकार की ओर से राजस्व को एकत्र करने और भुगतान करने की सुसंरचित व्यवस्था को स्थापित किया है। भारतीय रिजर्व बैंक के शासकीय बैंकिंग प्रभागों तथा अधिकृत बैंकों की शाखाओं

का नेटवर्क शासकीय लेन-देनों को करता है। भारतीय रिजर्व बैंक अधिकृत बैंकों को केन्द्र/राज्य सरकारों के लेन-देनों को करने के लिये पारितोषिक का भुगतान करता है।

20.9 वार्षिक लेखा

केन्द्र सरकार के द्वारा प्रत्येक वर्ष दो प्रकार के लेखा तैयार किये जाते हैं- वित्त लेखा एवं विनियोग लेखा। केन्द्र सरकार के वित्त लेखा महा-लेखा नियंत्रक द्वारा तैयार किये जाते हैं। वित्त लेखा में केन्द्र सरकार के प्रयोजन हेतु संबंधित शीर्षों के अंतर्गत तीनों निधियों- संचित निधि, लोक लेखा और आकस्मिकता निधि की वार्षिक प्राप्तियों एवं संवितरणों के विवरणों को दिखाया जाता है। यह लेखा संबंधित वित्तीय वर्ष के लिये केन्द्र सरकार की प्राप्तियों एवं व्यय के हिसाब को प्रस्तुत करता है। इसी के साथ-साथ यह लेखा भिन्न लेखाओं के द्वारा स्पष्ट किये गये वित्तीय परिणामों और अन्य आंकड़ों, जिनका परीक्षण हुआ हैं, को भी दिखाता है। इन लेखाओं में राजस्व लेखा, पूंजी लेखा, लोक ऋण लेखा, तथा अन्य देनदारियां और परिसम्पतियां जो लेखाओं में शेष भागों से निकाले जाते हैं, सम्मिलित होते हैं। वित्त लेखा शुद्ध आधार पर तैयार किया जाता है जो सकल व्यय से वसूलियों के घटाव को दर्शाता है। वित्त लेखा में डाक विभाग, रक्षा मंत्रालय और रेल मंत्रालय के लेन-देन तथा संघ राज्य क्षेत्रों के शासन के भारत के लोक लेखा के अंतर्गत किये गये लेन-देन भी दिखाये जाते है। वित्त लेखा के दो भाग होते हैं- भाग I और भाग II, भाग I राजस्व, पूंजी, ऋण, निक्षेप, निलम्बन और विप्रेषित धन से संबंधित लेन-देनों तथा आकस्मिकता निधि के संक्षिप्त विवरणों को प्रस्तुत करता है। भाग II में उक्त लेन-देनों से संबंधित विस्तृत विवरण और साथ ही में अन्य संबंधित विवरण भी दिये गये होते हैं।

विनियोग लेखा, जो वित्त लेखा के पूरक होते हैं, सरकार के प्रत्येक वित्तीय वर्ष के मतदान एवं भारित व्यय के लेखा होते हैं। इन लेखाओं में मतदान एवं भारित व्यय की तुलना मतदान की गयी अनुदानों और भिन्न प्रयोजनों, जोकि विनियोग अधिनियम के साथ संलग्न अनुसूचियों में विनिर्दिष्ट किये गये होते हैं, के लिये भारित विनियोगों की धनराशियों के साथ होती है। विनियोग लेखा ये प्रकट करने के लिये अभिप्रेत होते हैं कि व्यय उसको शासित करने वाले प्राधिकारी के अनुरूप है। इस के अतिरिक्त विनियोग लेखा मंत्रालय/विभाग के द्वारा आदेशित किये गये पुनर्विनियोगों के प्रभावों को भी स्पष्ट करते हैं। भारत सरकार के मंत्रालयों (रेलवे मंत्रालय के अतिरिक्त) तथा सिविल विभागों (डाक एवं रक्षा सेवा विभागों को छोड़कर) के विनियोग लेखा संबंधित मंत्रालयों/विभागों के प्रमुख लेखा अधिकारियों द्वारा, महालेखा नियंत्रक के दिशा-निर्देशन एवं पर्यवेक्षण में, बनाये जाते हैं। प्रत्येक प्रमुख लेखा अधिकारी को विहित प्रारूप में मंत्रालय/विभाग के प्रत्येक अनुदान/विनियोग के लिये शीर्षवार विनियोग लेखाओं को तैयार करना होता है। विनियोग लेखाओं पर संबंधित मंत्रालय/विभाग के मुख्य लेखांकन अधिकारी अर्थात् सचिव द्वारा हस्ताक्षर किये जाते हैं। ये लेखा संबंधित मंत्रालयों/विभागों द्वारा महालेखा नियंत्रक को भेजे जाते हैं जो इन सभी लेखाओं को समेकित कर के संघ शासन विनियोग लेखा (सिविल) को तैयार करता है। डाक विभाग एवं रक्षा विभाग के विनियोग लेखा इन विभागों के सचिव तैयार करते है और उन पर हस्ताक्षर करते है। रेलवे मंत्रालय के विनियोग लेखा रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष तैयार करते है और उन पर हस्ताक्षर करते हैं। इसी प्रकार से बिना विधान-मंडल वाले संघ राज्य-क्षेत्रों, राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के सचिवालयों, लोक सभा एवं राज्य सभा के सचिवालयों, संघ लोक सेवा आयोग, भारत के नियंत्रक और महा-लेखा परीक्षक, भारत के सर्वोच्च न्यायालय, निर्वाचन आयोग के लेखाओं पर निर्दिष्ट प्राधिकारियों द्वारा हस्ताक्षर किये जाते हैं।

वित्त लेखा एवं विनियोग लेखा संबंधित प्राधिकारियों के द्वारा उस तिथि तक तैयार कर लिये जाते हैं जो भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के साथ पारस्परिक रूप से निर्धारित की जाती है। इन लेखाओं को उन प्रारूपों में तैयार किया जाता है जो संविधान के अनुच्छेद- 150 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की सलाह पर विहित किये जाते हैं। तैयार किये गये लेखाओं को नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के पास

उसके अभिनिश्चयन एवं प्रमाण-पत्र के लिये भेजा जाता है। प्रमाणित किये गये वार्षिक लेखाओं तथा उनसे संबंधित प्रतिवेदनों को नियंत्रक और महा-लेखा परीक्षक के द्वारा संविधान के अनुच्छेद- 151 के अंतर्गत राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जो उनको संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाता है। विनियोग लेखा के माध्यम से संसद को पिछले वित्तीय वर्ष में उसके द्वारा किये गये विनियोगों के सापेक्ष कार्यपालिका के द्वारा व्यय की गई धनराशि के बारे में अवगत कराया जाता है।

20.10 व्यक्तिगत निक्षेप खाता

वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग द्वारा वर्ष 2005 में जारी किये गये सामान्य वित्तीय नियमों में व्यक्तिगत निक्षेप खाता के संबंध में प्रावधान किया गया है। व्यक्तिगत निक्षेप खाता प्रधिकृत किये गये बैंक में निर्दिष्ट अधिकारी के लिये खोला जाता है। यह खाता वह युक्ति होता है जो निर्दिष्ट अधिकारी के लिये सुसाध्य बनाता है कि वह इस खाते में सीधे प्राप्तियों को जमा कर सके और धनराशि आहरित कर सके। इस खाते में किये गये लेन-देनों पर समग्र नियंत्रण उस प्रधिकृत बैंक का रहता है जिसमें इस खाते को खोला जाता है। निर्दिष्ट अधिकारी केवल वे सरकारी अधिकारी हो सकते हैं जो अपनी आधिकारिक क्षमता या किसी अन्य क्षमता में कार्य कर रहे होते हैं।

20.11 पूंजी एवं राजस्व लेखा

शासकीय लेखाओं में पूंजी एवं राजस्व व्यय को पृथक्-पृथक दिखाया जाता है। पूंजी व्यय वह व्यय होता है जो किन्हीं स्थायी स्वरूप वाले भौतिक/मूर्त्त आस्तियों को अर्जित करने या विद्यमान आस्तियों की उपयोगिता को बढ़ाने के लिये किया जाता है। इन आस्तियों को चलायमान स्थिति में बनाकर रखने के लिये जो रख-रखाव, मरम्मत, अनुरक्षण और कार्यशील व्यय किया जाता हैं; तथा अन्य सभी व्यय जो किसी संगठन के दिन-प्रतिदिन के कार्यकरण, जिसमें स्थापना व प्रशासनिक व्यय सम्मिलित होते हैं, को सुनिश्चित करने के लिये किया जाता है, राजस्व व्यय की श्रेणी में आता है। किसी अस्थायी परिसम्पत्ति या सहायता अनुदान पर किये गये व्यय को साधारणतयः पूंजी व्यय नहीं माना जाता है तथा किसी पूंजी शीर्ष के नामे नहीं लिखा जाता है, लेकिन यदि नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा ऐसा किया जाना प्राधिकृत किया जाता है तो ऐसे मामलों में उपरोक्त किये गये व्यय को पूंजी शीर्ष के नामे लिखा जा सकता है।

पूंजी व्यय को आमतौर पर पूंजी स्वरूप वाली प्राप्तियों से पूरा किया जाता है। पूंजी स्वरूप वाली प्राप्तियां कर, शुल्क, फीस, अर्थ दण्ड और चालू आय के समान मदों से प्राप्त साधारण प्राप्तियों से भिन्न होती है। सरकार यदि चाहे तो साधारण प्राप्तियों/राजस्वों से पूंजी व्यय को कर सकती है, परन्तु शर्त यह है कि इस व्यय को करने के लिये पर्याप्त राजस्व संसाधन होने चाहिये। पूंजी स्वरूप वाले किसी व्यय को शासकीय लेखाओं में पूंजी व्यय के तौर पर तभी वर्गीकृत किया जा सकता है, जब शासकीय आदेशों के द्वारा ऐसा किया जाना स्पष्ट रूप से प्राधिकृत किया गया है।

किसी पूंजीगत योजना पर पूंजी और राजस्व व्यय के मध्य आवंटन नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के साथ विचार-विमर्श के पश्चात् सरकार के द्वारा विहित किये गये किन्हीं आदेशों के अनुसार निर्धारित किये जाते हैं। अनुत्पादक स्वरूप वाले कार्यों की पूंजी लागत साधारण राजस्व से पूरी की जाती है। उधार ली गयी धनराशियों तथा राजस्व लेखा से परे अन्य संसाधनों को अनुत्पादक प्रयोजनों के लिये साधारणतयः खर्च नहीं किया जाता है। इसी के साथ नियम यह भी प्रदान करते हैं कि ऐसा किया जा सकता है यदि वे प्रयोजन जिनके लिये धनराशि की आवश्यकता होती है, इतने अत्यावश्यक और अविलंब्य होते है कि व्यय को आगामी वर्षों तक के लिये टाला नहीं जा सकता है। यदि व्यय की जाने वाली प्रस्तावित धनराशि इतनी अधिक हैं कि उसे चालू राजस्व से पूरा नहीं

किया जा सकता है तब भी उधार ली गयी धनराशियों तथा राजस्व लेखा से परे अन्य संसाधनों का प्रयोग प्रस्तावित व्यय को पूरा करने हेतु किया जा सकता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के पूंजी आधार को सुद्वढ़ बनाने या उसको पुनःसंरचित करने के लिये सरकार उनके बकाया ऋण को ईक्विटी निवेश या सहायता अनुदान में परिवर्तित कर सकती है। जब ऐसा किया जाना प्रस्तावित होता है तब संसद का अनुमोदन लेने की आवश्यकता होती है, जोकि प्रासंगिक अनुदान मांगों या पूरक अनुदान मांगों, जो भी समीचीन हो, में प्रतीकात्मक/सांकेतिक प्रावधान करने के द्वारा प्राप्त किया जाता है। संसद का अनुमोदन मिलने के पश्चात् ऋण के शेष भाग और लेखा के पूंजी शीर्ष के क्रमिक व्यय को केन्द्र सरकार के प्रासंगिक वित्त लेखा में पूर्व अवधि समायोजन लेखा के माध्यम से सही किया जाता है। सभी वाणिज्यिक विभागों या इकाईयों के लेखाओं, जिन के लिये शासकीय लेखाओं में पृथक् पूंजी एवं राजस्व लेखाओं को बनाकर रखा जाता हैं, में ब्याज समय-समय पर विनिर्दिष्ट किये गये दरों के अनुसार प्रभारित किया जाता है।

20.12 भारतीय लेखा शास्त्र प्रणाली का मूल्यांकन

भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली का क्रमिक विकास हुआ है। इस प्रणाली को यथासंभव सुव्यवस्थित बनाया गया है। सरकारी लेखा विभिन्न सेक्टरों, उप-सेक्टरों, प्रकार्यों, उप-प्रकार्यों, कार्यक्रमों, योजनाओं, उप-योजनाओं तथा मदों पर किये गये व्यय को स्पष्ट रूप से दिखाते हैं। देश में लेखाशास्त्र की प्रणाली ने संसद, राज्य विधानमण्डलों और आम जनता को शासन की जवाबदेही के बारे में अधिक सचेत बनाया है। सरकार के लिये लेखा वे साधन होते है, जिसका प्रयोग उसके द्वारा पर्याप्त और समय पर आगत प्राप्त करने के लिये किया जाता है। इन आगतों का प्रयोग वित्तीय लेन-देनों से जुड़ी हुई गतिविधियों का मूल्यांकन करने, उपचारात्मक कार्यवाही करने, तथा भावी नीति निर्णयों को लेने के लिये किया जाता है। सरकारी लेखांकन प्राधिकारियों के द्वारा जो वित्त एवं विनियोग लेखा तैयार किये जाते हैं, उनमें पर्याप्त वित्तीय आंकड़ें होते हैं। इसी के साथ उन में सरकार के वित्तीय निष्पादन का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी दिया गया होता है। सरकारी लेखांकन प्राधिकारी इलेक्ट्रोनिक डेटा प्रोसेसिंग की पद्धतियों का अधिक प्रयोग कर रहे हैं, जिससे कि अंतिम लेखाओं को उपलब्ध कराने की प्रक्रिया को तेज और सूचना को आवश्यकतानुसार शीघ्र प्राप्त किया जा सके। यह कहना अतिशोयक्ति नहीं होगा कि लेखांकन की प्रणाली व्यावहारिक जगत में अनेक चुनौतियों का सामना करती है, जिससे कि समय पर लेखाओं को तैयार करने, उनको प्रस्तुत करने, उनका लेखा-परीक्षण करने और लेखा-परीक्षण के निष्कर्षों के अनुपालन करने में कठिनाईयों का सामना सदैव ही होता रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संविधान के किस अनुच्छेद में अतिरिक्त अनुदान का उपबंध किया गया है?
   क. अनुच्छेद-114 ख. अनुच्छेद-115
   ग. अनुच्छेद- 116 घ. अनुच्छेद-117
2. सरकारी लेखा के नकद आधार से क्या अभिप्राय होता है?
3. संचित निधि वाले लेखा के दो खण्ड...................... होते हैं।
4. लेखा के मुख्य शीर्ष प्रकार्यों के तदनुरूप होते हैं।

20.13 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आप यह सुपरिचित हो चुके हैं कि लेखा गतिविधि केन्द्र के द्वारा बनाये जाते हैं और ये विभिन्न गतिविधियों तथा कार्यों के व्यवस्थित अभिलेख होते हैं। भारत में लेखाशास्त्र की व्यापक प्रणाली

पायी जाती है और इसका प्रारूप संविधान, विभिन्न अधिनियमों, नियमों व विनियमों के प्रावधानों के द्वारा विहित किया गया हैं। इस प्रणाली की अनूठी विशेषतायें हैं और यह कुछ मुख्य सिद्धांतों का पालन करती है। केन्द्र और राज्य सरकारों में लेखाओं को बनाकर रखने के कार्य में जटिलता होती है जो चुनौतियों से भरपूर होता है। सरकारी लेखाओं के विविध प्रकार होते हैं और उन को तीन भागों में बनाकर रखा जाता है। सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण का सन्दर्भ सरकार के प्रकार्यों, कार्यक्रमों और गतिविधियों, तथा राजस्व या व्यय के प्रयोजन के साथ होता है। सरकारी लेखांकन के लिये विस्तृत बैंकिंग व्यवस्था पायी जाती है। इस इकाई का अध्ययन करने से आप देश में लेखा शास्त्र की प्रणाली के संबंध में अपनी जिज्ञासाओं का उत्तर पाने का प्रयास कर सकते हैं।

20.14 शब्दावली

पूंजी व्यय- किसी संगठन के द्वारा अचल भौतिक परिसम्पतियों का क्रय करने, उनको बनाकर रखने व सुधारने के लिये जो व्यय किया जाता है, उसको पूंजी व्यय कहा जाता है। पूंजी व्यय दीर्घकालिक व्यय होता है जो नित्य-कर्म में नहीं किया जाता है।

प्रोद्भवन लेखांकन- प्रोद्भवन लेखांकन लेखांकन की वह पद्धति है जो व्यय और राजस्व को तभी अभिलेखबद्ध कर लेती है, जब वे किये गये होते हैं/प्राप्त हुये होते हैं चाहे नकद धनराशि का आदान-प्रदान कभी भी हो।

भारित व्यय- भारित व्यय वे व्यय होते हैं जो संचित निधि पर भारित होते हैं और संसद द्वारा उनके संबंध में केवल चर्चा की जाती है, परन्तु कोई मतदान नहीं किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद- 112 (3) के अनुसार निम्नलिखित व्यय भारत की संचित निधि पर भारित व्यय होगा- राष्ट्रपति की उपलब्धियां और भत्ते तथा उसके पद से संबंधित अन्य व्यय; राज्य सभा के सभापति और उपसभापति के तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते; ऐसे ऋण भार, जिनका दायित्व भारत सरकार पर हैं, जिनके अंतर्गत ब्याज, निक्षेप निधि भार और मोचन भार तथा उधार लेने और ऋण सेवा और ऋण मोचन से संबंधित अन्य व्यय हैं; उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को या उनके संबंध में संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन; भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को या उसके संबंध में संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन; किसी न्यायालय या माध्यस्थम् अधिकरण के निर्णय, डिक्री या पंचाट की तुष्टि के लिये अपेक्षित राशियां; और कोई अन्य व्यय जो संविधान द्वारा या संसद द्वारा विधि द्वारा इस प्रकार भारित घोषित किया जाता है।

राजस्व व्यय- किसी संगठन का राजस्व व्यय अल्पकालिक व्यय होता है जो उसके नित्य-कर्म के व्ययों जैसे कि चालू संचालनात्मक लागत, रखरखाव की साधारण लागत को पूरा करने के लिये किया जाता है।

20.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख, **2.** सरकारी लेखा के नकद आधार से अभिप्राय है कि सरकारी लेखा में अंकित लेन-देन किसी वित्तीय वर्ष के दौरान नकद की वास्तविक प्राप्तियों एवं संवितरणों को दर्शाते हैं। **3.** राजस्व एवं पूंजी खण्ड, **4.** असत्य

20.16 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. इंडिया कोड, *The Government of Union Territories Act, 1963*,
2. https://indiacode.nic.in/bitstream/123456789/1546/1/196320.pdf
3. बजट प्रभाग, आर्थिक कार्य विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, (सितम्बर 2010) *Budget Manual* नई दिल्ली।
4. http://indiagovernance.gov.in/files/Budget_Manual_2.pdf

5. भारतीय रिजर्व बैंक, भारत का केन्द्रीय बैंक, (दिसम्बर 22, 2017) प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्न, भारतीय रिजर्व बैंक सरकार के बैंकर के तौर पर, मुम्बई।
6. https://m.rbi.org.in/Scripts/FAQView.aspx?Id=61
7. भारतीय रिजर्व बैंक, भारत का केन्द्रीय बैंक, (1934) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, मुम्बई।
8. https://rbidocs.rbi.org.in/rdocs/Publications/PDFs/RBIAM_230609.pdf
9. महालेखा नियंत्रक, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, (1990) *Government Accounting Rules*, नई दिल्ली।
10. www.cga.nic.in/DownloadPDF.aspx?filenameid=3
11. व्यय विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, (2005) *General Financial Rules*, नई दिल्ली।
12. http://cgda.nic.in/pdf/gfr2005.pdf
13. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

20.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. आर्थिक कार्य विभाग, संयुक्त राष्ट्र संघ, (1951) *Budgetary Structure and Classification of Government Accounts*, न्यूयॉर्क।
2. द्वितीय प्रशासनिक आयोग, भारत सरकार, (अप्रैल 2009) चौदहवां प्रतिवेदनः वित्तीय प्रबंधन प्रणाली को मजबूत बनाना, नई दिल्ली।
3. लाल, जी. एस., (जनवरी 1987) *Public Finance and Financial Administration in India*, एच. पी. जे. कपूर, नई दिल्ली।
4. सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई.पी.ए.-05 वित्तीय प्रशासन, 7- लेखा और लेखा परीक्षण, नई दिल्ली।
5. संयुक्त राष्ट्र संघ, (1952) Government Accounting and Budget Execution, न्यूयॉर्क

20.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत सरकार की लेखा शास्त्र प्रणाली की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
2. भारत में लेखांकन के लिये विद्यमान बैंकिंग व्यवस्था की विवेचना कीजिये।
3. भारत में पूंजी एवं राजस्व लेखा की व्यवस्था को समझाईये।

इकाई- 21 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली

इकाई की संरचना

21.0 प्रस्तावना
21.1 उद्देश्य
21.2 लेखा परीक्षण का अर्थ एवं महत्व
21.3 लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांत
21.4 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली
21.5 लेखा परीक्षण का आयोजन तथा संचालन
21.6 लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन
21.7 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली का मूल्यांकन
21.8 सारांश
21.9 शब्दावली
21.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
21.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
21.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
21.13 निबन्धात्मक प्रश्न

21.0 प्रस्तावना

इस से पिछली की इकाई में आप भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली के बारे में विस्तारपूर्वक परिचित हो चुके हैं। भारत में शासकीय लेखा परीक्षण को संवैधानिक दर्जा प्राप्त है और नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को लेखाओं का लेखा परीक्षण करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। प्रस्तुत इकाई में भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली के संबंध में विवेचना की गयी है।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से लेखा परीक्षण क्या होता है, उसका महत्व क्या होता है, लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांत क्या होते है, भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली किस प्रकार की है, लेखा परीक्षण का आयोजन तथा संचालन कैसे होता है, लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन क्या होता हैं तथा लेखा परीक्षण की प्रणाली के मूल्यांकन के संबंध में आपके चिंतन में गहनता आयेगी।

21.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- समझ सकेंगे कि लेखा परीक्षण का अर्थ एवं महत्व क्या होता है;
- यह जान पायेंगे कि लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांत क्या होते हैं;
- यह ज्ञात कर सकेंगे कि भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली कैसी है;
- यह पता लगा पायेंगे कि लेखा परीक्षण का आयोजन तथा संचालन कैसे होता है; और
- यह बोध कर कर सकेंगे कि लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन क्या होता है।

21.2 लेखा परीक्षण का अर्थ एवं महत्व

वित्तीय प्रशासन में लेखा परीक्षण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है और यह लेखांकन के उपरांत वित्तीय प्रक्रिया का अगला चरण होता है। लेखा परीक्षण से अभिप्राय वित्तीय लेखाओं, लेन-देनों और अभिलेखों का आधिकारिक परीक्षण करना तथा उनका सत्यापन करना होता है। इसका मूल स्वरूप लोक संगठनों के वित्तीय लेन-देनों व लेखाओं का लेखा परीक्षकों के द्वारा एक प्रकार की पोस्ट-मोर्टम जांच-पड़ताल करना होता है। लेखा परीक्षण इसलिये किया जाता है ताकि यह निश्चित किया जा सके कि वित्तीय लेन-देनों को अभिलेखबद्ध करने की उदधृत की गयी प्रणाली का अनुपालन किया गया है और कि वित्तीय विवरण सही एवं यथार्थवादी है। लेखा परीक्षण किसी भी राष्ट्र के वित्तीय हितों की रक्षा करने के लिये प्रहरी की भूमिका निभाता है। इसके कारण वित्तीय अनियमितता, अपव्यय, गबन, घाटा और हानि को सार्वजनिक रूप से उजागर करना संभव होता है।

विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के शासन का यह नैतिक उत्त्रदायित्व बनता है कि वह देश के सभी क्षेत्रों, समाज के सभी पक्षों एवं अर्थव्यवस्था के सभी सेक्टरों के हित के लिये कल्याणकारी व विकासीय कार्यों को करे और ऐसा करते हुये प्रगति को सुनिश्चित करें। यह महाकाय ध्येय केवल तभी प्राप्त किया जाना संभव होगा जब पर्याप्त मात्रा में और सही समय पर सभी प्रकार के संसाधन- मानवीय, वित्तीय एवं भौतिक उपलब्ध हों। यद्यपि प्रत्येक प्रकार का संसाधन अपने आप में महत्वपूर्ण होता है, परन्तु वित्तीय संसाधनों का अपना एक विशिष्ट स्थान इस कारण से होता है कि किसी भी कार्य एवं गतिविधि को करने के लिये वित्त की आवश्यकता अनिवार्य रूप से होती ही है। चूंकि सरकार लोक संसाधनों को एकत्र करने एवं उनका व्यय करने के लिये उत्तरदायी होती है, अतः उनके मामले में उसकी भूमिका संरक्षक वाली होती है। सरकार के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह लोक संसाधनों के कार्यकुशल उपयोग को सुनिश्चित करने के लिये वित्तीय प्रबंधन के विवेकी सिद्धांतों और कार्यप्रणालियों का अनुपालन करें जिसके लिये वित्तीय प्रबंधन की तर्कसंगत प्रणाली की अपेक्षा होगी। वित्तीय प्रबंधन की किसी भी प्रणाली का एक अत्यावश्यक पहलू वित्तीय रिर्पोटिंग की विचारपूर्ण योजना होती है जिसके माध्यम से सरकार लोक संसाधनों की वस्तुस्थिति के बारे में अपने को निरंतर अवगत रखती है।

भारत में समूचे वित्तीय वर्ष, जोकि अप्रैल 01 से आरम्भ होकर मार्च 31 तक रहता है, के दौरान केन्द्रीय सरकार वित्तीय प्रबंधन की योजना की समस्त गतिविधियों का पालन करना सुनिश्चित करती है। देश की वित्तीय प्रबंधन की योजना के तीन मुख्य पहलू बजटन, लेखांकन एवं लेखापरीक्षण होते हैं। इन तीनों पहलुओं में से प्रत्येक पहलू से जुड़ी हुई गतिविधियां वित्तीय प्रबंधन के क्षेत्र में विलक्षणता का द्योतक होती है। लेखापरीक्षण, जिसमें कि लेखाओं का परीक्षण किया जाता हैं, वित्तीय प्रबंधन की प्रणाली में प्रमुख भूमिका निभाता है। लेखापरीक्षण की भूमिका इस प्रकार से समझी जा सकती है कि यह वित्तीय क्षेत्र में जवाबदेही को लेकर आता है, लोक संसाधनों की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है, उनके व्यय की सत्यता को जांचता है, वित्तीय प्रबंधन के प्रति समुचित सतर्कता को बनाकर रखता है तथा जनता के भरोसे को पुष्ट करता है।

21.3 लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांत

लेखा परीक्षण के मापदण्ड किसी भी संगठन के लिये अंकेक्षण के कार्य की गुणवत्ता को बना कर रखने और उसमें निरंतर सुधार लाने के लिये आवश्यक होते हैं। ये मापदण्ड उन मानकों को विहित करते हैं जिनके बारे में लेखा परीक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे अंकेक्षण के कार्य में उनका अनुपालन आवश्यक रूप से करेंगे। ये मापदण्ड लेखा परीक्षकों का मार्गदर्शन करते हैं, अंकेक्षण के कार्य को अधिक सुव्यवस्थित बनाते हैं तथा उसमें सम्मिलित चरणों को स्पष्ट करते हैं। इसी के साथ ये मापदण्ड वे कसौटियां प्रदान करते हैं जिनके सापेक्ष अंकेक्षण के कार्य व उस से उत्पन्न होने वाले परिणामों की गुणवत्ता का आंकलन किया जाता हैं। संक्षिप्त रूप में कहा जाये तो यह कहा

जा सकता हैं कि ये मापदण्ड लेखा परीक्षण के उद्देशयों को भली-भांति पूर्वक प्राप्त करने में अत्यंत निर्णायक भूमिका निभाते हैं। शासकीय लेखा परीक्षण के मामले में यह कहा जा सकता है कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की ओर से जो भी लेखा परीक्षण किया जायेगा वह लेखा परीक्षण के विहित किये गये मापदण्डों के अनुसार होना चाहिये।

शासकीय अंकेक्षण की व्यवस्था में लेखा परीक्षण के जो मापदण्ड हैं उनमें लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियम, 2007 के अनुसार सम्मिलित है- मूलभूत अवधारणायें, सामान्य मापदण्ड, क्षेत्रीय मापदण्ड, और रिपोर्टिंग मापदण्ड। लेखा परीक्षण की मूलभूत अवधारणायें वे मूलभूत आधार वाक्य एवं आवश्यकतायें होते हैं जिनका उपयोग अंकेक्षण के मापदण्डों को विकसित करने तथा लेखा परीक्षकों के कार्य को दिशा-निर्देशित करने में किया जाता है। इन मूलभूत अवधारणाओं में सम्मिलित होते हैं- लेखा परीक्षकों के द्वारा लेखा परीक्षण के मापदण्डों का अनुपालन किया जाना; लेखा परीक्षकों के द्वारा विविध प्रकार की स्थितियों में अपने विवेक का प्रयोग किया जाना; जवाबदेही की प्रभावकारी प्रक्रिया का क्रियाशील स्थिति में होना; वित्तीय रिपोर्टिंग और वित्तीय स्थिति का प्रकटन करने के लिये लेखा परीक्षण के मापदण्डों के प्रख्यापन को सुनिश्चित किया जाना; आंतरिक नियंत्रण की पर्याप्त व्यवस्था का होना; अंकेक्षणीय संगठनों के सहयोग को सुनिश्चित किया जाना; लेखा परीक्षण से संबंधित सभी गतिविधियों का नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के अंकेक्षण के अधिदेश के साथ सुसंगत होना; तथा लेखापरीक्षक एवं अंकेक्षणीय संगठन के मध्य हित के टकराव का न होना। लेखा परीक्षण के सामान्य मापदण्ड लेखापरीक्षक एवं लेखापरीक्षा वाली संस्था की योग्यताओं और विशिष्टिताओं को इंगित करते हैं तथा इनमें आते हैं- लेखापरीक्षक एवं लेखापरीक्षा वाली संस्था की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करना; उनमें व्यावसायिक सामर्थ्य का होना; लेखापरीक्षकों को लेखा परीक्षण के मापदण्डों का अनुपालन करने में यथोचित सतर्कता एवं सावधानी का रखा जाना; लेखापरीक्षकों के द्वारा अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में व्यावसायिक विवेक का प्रयोग किया जाना; तथा लेखापरीक्षा वाली संस्था द्वारा गुणवत्ता नियंत्रण की व्यवस्था को स्थापित किया जाना। क्षेत्रीय मापदण्ड उस समग्र रूपसंरचना को प्रदान करते हैं जोकि लेखा परीक्षण को करने और उसका प्रबंधन करने के लिये आवश्यक होते हैं। क्षेत्रीय मापदण्डों में सम्मिलित होते हैं - लेखा परीक्षक के द्वारा अंकेक्षण के संबंध में वांछित नियोजन को किये जाना; लेखा परीक्षण के कार्य का पर्यवेक्षण व समीक्षा किया जाना; आंतरिक नियंत्रण की व्यवस्था का मूल्यांकन किया जाना; प्रयोज्य विधियों, नियमों और विनियमों का अनुपालन किया जाना; तथा अंकेक्षण से संबंधित साक्ष्यों को प्राप्त किया जाना। रिपोर्टिंग मापदण्ड लेखा परीक्षण के परिणामों की रिपोर्टिंग करने के लिये लेखा परीक्षकों को अपेक्षित दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं। प्रमुख रिपोर्टिंग मापदण्ड हैं- अंकेक्षण के प्रतिवेदनों को पूर्ण, परिशुद्ध, वस्तुनिष्ठ, निश्चयात्मक, विश्वसनीय, स्पष्ट, संक्षिप्त, रचनात्मक और समयोचित होना चाहिये; रिपोर्टिंग करते समय किसी मामले के महत्व पर यथोचित ध्यान दिया जाना चाहिये; अंकेक्षण के दौरान पाये गये नियमों के अपालन व कुप्रयोग की महत्वपूर्ण घटनाओं को रिपोर्ट किया जाना चाहिये; छल-कपट तथा भ्रष्टाचार के होने या होने के संदेह के मामलों की रिपोर्टिंग होनी चाहिये; आंतरिक नियंत्रण की व्यवस्था में अर्थपूर्ण कमियों की रिपोर्टिंग की जानी चाहिये; और वित्तीय मामलों में सुधार लाने संबंधी की गयी सिफारिशों की अनुवर्तन कार्यवाहियों में लेखा परीक्षक को वस्तुनिष्ठता तथा स्वतंत्रता रखनी चाहिये।

21.4 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली

भारत में शासकीय लेखा परीक्षण को संवैधानिक दर्ज़ा प्राप्त है। संविधान द्वारा लेखा परीक्षण करने का जो एकमात्र प्राधिकारी विहित किया गया है, वह है- नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को संघ, राज्यों और संघ राज्य-क्षेत्रों के लेखाओं का लेखा परीक्षण करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है और यह कार्य करना उसका कर्तव्य है। उसके द्वारा जो भी लेखा परीक्षण का कार्य किया जाता है, वह संविधान, नियंत्रक एवं

महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा शर्तें) अधिनियम, 1971, तथा उसके द्वारा जारी किये गये विनियमों, आदेशों और दिशा-निर्देशों के अनुसार होता है। उक्त अधिनियम की अनुच्छेद- 23 के अंतर्गत नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक एकमात्र प्राधिकारी है जो लेखा परीक्षण के कार्य-क्षेत्र व विस्तार को निर्धारित करेगा।
भारत में शासकीय लेखा परीक्षण कुछ व्यापक उद्देश्यों को प्राप्त करने को सुनिश्चित करता है और वे हैं लोक वित्तीय प्रबंधन की वैधता, नियमितता, मितव्ययता, कार्यकुशलता और प्रभावशीलता। इन व्यापक उद्देश्यों को मोटे तौर पर वित्तीय लेखा परीक्षण, अनुपालन लेखा परीक्षण तथा निष्पादन लेखा परीक्षण करने के माध्यम से प्राप्त किया जाता हैं। वित्तीय लेखा परीक्षण का सरोकार हैं यह देखना कि वित्तीय विवरणों को उचित प्रकार से तैयार किया गया है, वे सभी प्रकार से पूर्ण हैं और उन्हें समुचित प्रकटनों के साथ प्रस्तुत किया गया है। अनुपालन लेखा परीक्षण के माध्यम से संविधान के उपबंधों, उनके अंतर्गत बनाये गये विधियों, नियमों तथा विनियमों के प्रावधानों, और सक्षम प्राधिकारी के द्वारा जारी किये गये विविध आदेशों व अनुदेशों के अनुपालन की सीमा को निश्चित किया जाता है। निष्पादन लेखा परीक्षण का संबंध उस सीमा को निर्दिष्ट करना होता है जिस तक कोई गतिविधि, कार्यक्रम, या संगठन मितव्ययी ढंग से, कार्यकुशलतापूर्वक और प्रभावशील तरीके से संचालित हो रही होती/रहा होता है।
देश में लेखा परीक्षण की व्यवस्था की विस्तृत संरचना विद्यमान है। इस व्यवस्था का सबसे अहम भाग है भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग जिस के शीर्ष पर संवैधानिक प्राधिकारी नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक होता है। वर्तमान का भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग वास्तव में एक ब्रिटिश विरासत हैं। यह विभाग वर्ष 1753 में अस्तित्व में आया। इस विभाग में अधिकारी वर्ग लेखा परीक्षा और लेखा सेवा, एक केन्द्रीय सेवा, के अधिकारियों का होता है जो नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के नियंत्रण में कार्य करते हैं। ये अधिकारी केन्द्र तथा राज्य सरकारों एवं सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों के लेखाओं का अंकेक्षण करने व राज्य सरकारों के लेखाओं को बनाकर रखने के लिये उत्तरदायी होते हैं। कुछ अधिकारी नई दिल्ली में स्थित नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कार्यालय, जो उनका मुख्यालय हैं, में कार्य करते हैं। शेष अधिकारी क्षेत्र में कार्य करते हैं और केन्द्र तथा राज्य सरकारों से संबंधित लेखांकन और लेखा परीक्षण के मुद्दों को देखते हैं। मुख्यालय में कार्य कर रहे विभिन्न महत्वपूर्ण अधिकारियों में सम्मिलित हैं नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के सचिव, उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, अतिरिक्त उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, महा निदेशक, प्रधान निदेशक, उप निदेशक, और सहायक निदेशक। उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक प्रशासन एवं स्टाफ, केन्द्रीय राजस्व लेखा परीक्षण, रक्षा, संचार, रेलवे, केन्द्रीय वाणिज्यिक लेखा परीक्षण, सरकारी लेखा, प्रतिवेदन केन्द्रीय एवं स्थानीय निकाय के क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। अतिरिक्त उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक निरीक्षण, पूर्वी प्रदेश, पश्चिमी प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तरी प्रदेश, दक्षिणी प्रदेश, उत्तर-पूर्वी प्रदेश के क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों का उक्त प्रदेशों में समूहीकरण लेखा परीक्षण के कार्य को सुसाध्य बनाने के लिये किया गया है। यह समूहीकरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है-

तालिका में लेखा परीक्षण के प्रयोजनों हेतु राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों का प्रदेशों में समूहीकरण

क्रम संख्या	प्रदेश	राज्य और संघ राज्यक्षेत्र
1.	पूर्वी	पश्चिम बंगाल, ओडिशा, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश
2.	पश्चिमी	राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा
3.	मध्य	बिहार, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़
4.	उत्तरी	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली

5.	दक्षिणी	कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, पुदुचेरी
6.	उत्तरपूर्वी-	आसाम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा, सिक्किम

स्रोतः भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, नई दिल्ली, संगठन चार्ट, *https://www.cag.gov.in/hi/content/organisation-chart*

राज्यों में कार्य कर रहे अधिकारियों में सबसे वरिष्ठ पद प्रधान महालेखाकार/महालेखाकार का होता है। प्रधान महालेखाकार/महालेखाकार केन्द्र में संबंधित उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक/अतिरिक्त उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को रिर्पोट करते हैं। राज्यों में अन्य अधिकारियों में उप महालेखाकार, प्रधान निदेशक और सहायक महालेखाकार सम्मिलित होते हैं। प्रधान महालेखाकार/महालेखाकार के पर्यवेक्षण में उनके कार्यालय के अधिकारियों के द्वारा आमतौर पर राज्य के वित्त विनियोग लेखा एवं वित्त लेखा, सामान्य तथा सामाजिक सेक्टर, आर्थिक सेक्टर, राज्य के सार्वजनिक सेक्टर के उपक्रमों, ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों, शहरी स्थानीय निकायों और पंचायती राज संस्थाओं का लेखा परीक्षण किया जाता है। प्रधान महालेखाकार/ महालेखाकार के द्वारा अपने राज्य से संबंधित लेखाओं के लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन प्रत्येक वर्ष नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को सौंपा जाता है।

उपरोक्त संगठनात्मक संरचना के अतिरिक्त एक लेखा परीक्षा सलाहकार बोर्ड पाया जाता है जो नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की अध्यक्षता में कार्य करता है। इस बोर्ड का प्रमुख दायित्व लेखा परीक्षण से संबंधित सरोकारों पर सलाह प्रदान करना होता है। इस बोर्ड में आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार के सदस्य होते हैं। बाहरी सदस्यों में शासकीय व्यक्तियों के साथ-साथ गैर-शासकीय व्यक्तियों को भी प्रायः सम्मिलित किया जाता है।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा संघ सरकार, राज्य सरकारों व स्थानीय निकायों के लेखाओं का लेखा परीक्षण प्रत्येक वर्ष किया जाता है। उसके द्वारा अनेक सेक्टरों के लेखाओं का अंकेक्षण किया जाता है जिनमें सम्मिलित हैं कर एवं शुल्क; वित्त; परिवहन एवं अवसंरचना; शक्ति एवं ऊर्जा; उद्योग एवं वाणिज्य; विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी; सूचना एवं संचार; पर्यावरण एवं सत्त विकास; कला, संस्कृति एवं खेल; कृषि एवं ग्रामीण विकास; सामाजिक कल्याण; शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण; सामाजिक अवसंरचना; रक्षा एवं राष्ट्रीय सुरक्षा; सामान्य सेक्टर के मंत्रालय एवं संवैधानिक निकाय; तथा स्थानीय निकाय। इसी के साथ उसके द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किया जाता है और इनमें आते हैं- अनुपालन लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन, वित्तीय लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन, और निष्पादन लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन।

21.5 लेखा परीक्षण का आयोजन तथा संचालन

भारत में लेखा परीक्षण के आयोजन और संचालन के संबंध में विस्तृत प्रावधान देश के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा वर्ष 2007 में जारी किये गये 'लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियम' के अध्याय-13- लेखापरीक्षा का आयोजन व अध्याय-14- आडिट नोट्स में किया गया है। विनियमों के उक्त अध्यायों की अनुच्छेद- 174 से 204 लेखा परीक्षण के सुचारू संचालन संबंधी सभी आवश्यक प्रावधान करती है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद- 149 के अनुपालन में संसद द्वारा वर्ष 1971 में अधिनियमित किया गया नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा शर्त्ते) अधिनियम नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को प्राधिकृत करता है कि उसके लेखा परीक्षण के अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले कार्यालयों का वह निरीक्षण करे और उनमें लेखा परीक्षण का आयोजन करे। इस को सुनिश्चित करने के लिये लेखा परीक्षण के दलों को निरीक्षण अधिकारियों की अगुवाई में समय-समय पर उन संगठनों के कार्यालयों में प्रतिनियुक्त किया जाता है जिनका कि

लेखा परीक्षण किया जाना प्रस्तावित है। ये दल उन समस्त स्थानों पर जा सकते है जहां इन संगठनों के प्रासंगिक अभिलेख रखे गये है। ऐसे हर एक संगठन के कार्यालय अध्यक्ष का यह कर्तव्य बनता है कि वह लेखा परीक्षण के दल को शासकीय उपयोग हेतु उपयुक्त एवं युक्तिसंगत कार्यालय स्थान तथा अन्य कार्यालयीन सुविधायें प्रदान करे। यह विभागाध्यक्षों का कर्तव्य है कि वे लेखा परीक्षण कार्यालय को अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले सभी कार्यालयों की सूची प्रत्येक वर्ष के दिसम्बर माह के अंत तक उपलब्ध कराए, जिससे कि वह सूची आगामी वर्ष के जनवरी माह के समाप्त होने से पहले लेखा परीक्षण कार्यालय में पहुंच जाये। लेखा परीक्षण किसी लेखा परीक्षणीय प्राधिकार के उन आंकड़ों, सूचना और प्रलेखों के संदर्भ में भी किया जाता है जो किसी अंकेक्षण कार्यालय या लेखा कार्यालय में उपलब्ध होते हैं। ऐसे लेखा परीक्षण के परिणाम लेखा परीक्षणीय प्राधिकार को अंकेक्षण नोट्स के रूप में सम्प्रेषित किये जाते हैं।

लेखा परीक्षण कार्यालय को लेखा परीक्षण किये जाने वाले कार्यालय के प्रभारी अधिकारी को जहां तक संभव हो तीन सप्ताह की न्यूनतम अवधि की पूर्व सूचना देनी होती है। इस सूचना में लेखा परीक्षण की सम्भावित अवधि बतलायी जाती है और साथ ही में उन सभी मूल अभिलेखों की सूची दी जाती है जिन्हें कि लेखा परीक्षण के दल के आगमन से पहले तैयार करके रखा जाना होता है। प्रभारी अधिकारी को यह सुनिश्चित करना होता है कि लेखा परीक्षण के दल के आगमन से पूर्व चाहे गये सभी मूल अभिलेखों को तैयार रखा गया है। लेखा परीक्षण के कार्य से जुड़े हुये व्यक्तियों के द्वारा आंकड़ों, सूचना या प्रलेखों की मांग लिखित रूप में की जाती है। इस लिखित मांग में उस समय को इंगित किया जाता हैं जिस के दौरान अपेक्षित किये गये आंकड़ों, सूचना या प्रलेखों को उपलब्ध कराया जाना होता है। यह प्रभारी अधिकारी का दायित्व होता है कि वह उपलब्ध कराये जाने वाले सूचना और अभिलेखों से संबंधित अनुरोधों का अनुपालन जितना संभव हो सके उतना पूर्ण रूप में तथा विनिर्दिष्ट की गयी समय सीमा में करे। इसी के साथ ही प्रत्येक विभाग या संगठन को यह सुनिश्चित करना होता है कि सूचना आदि उपलब्ध कराने के लिये किसी उपयुक्त क्रियाविधि को स्थापित और उसको क्रियान्वित किया गया है। यदि अपेक्षित आंकड़ों, सूचना और अभिलेखों को कोई विभाग या संगठन अंकेक्षण कार्यालय को उपलब्ध नहीं कराता है तो परवर्ती ऐसे मामलों को नियंत्रक अधिकारी को और अगर आवश्यक हो तो संबंधित सरकार को उपयुक्त कार्यवाही के लिये रिपोर्ट करता है तथा इन प्राधिकारियों को अंकेक्षण कार्यालय को ऐसी रिपोर्ट प्राप्त होने की तिथि के तीन माह के भीतर की गयी कार्यवाही के बारे में बतलाना होता है। किसी विभाग या संगठन से संबंधित गोपनीय, गुप्त या अत्यंत गुप्त प्रलेख जो लेखा परीक्षकों को उपलब्ध कराये जाते हैं उन पर लेखा परीक्षक वैसी ही कार्यवाही करते है जो ऐसे प्रलेखों के प्रबंधन और संरक्षण के लिये शासन के द्वारा जारी किये गये स्थायी अनुदेशों के अनुसार होती है।

किसी विभाग या संगठन के लेखा परीक्षण का कार्य आरम्भ होने के साथ ही निरीक्षण अधिकारी उसके प्रभारी अधिकारी के साथ एक बैठक करते हैं। लेखा परीक्षण का कार्य चरणबद्ध रीति से आगे बढ़ता है और उसके अंतिम चरण में निरीक्षण अधिकारी अपने हस्ताक्षर से अंकेक्षण ज्ञापनों को जारी करता है। इन ज्ञापनों में विभाग या संगठन के अभिलेखों की स्थिति तथा वित्तीय दशा को निरूपित किया जाता है। यह विभाग या संगठन के प्रभारी अधिकारी को सुनिश्चित करना होता हैं कि अंकेक्षण ज्ञापनों के माध्यम से लेखा परीक्षण से संबंधित जो अभ्युक्तियां की गयी हैं उनके प्रासंगिक व उपयुक्त उत्तर दिये गये हैं। यह उसका कर्तव्य होता है कि वह इस बात के लिये आश्वस्त हो कि अंकेक्षण ज्ञापनों के उत्तरों में जो विवरण दिये गये हैं वे अभिलेखों के संदर्भ में सही है जिससे कि उनसे जुड़े हुये तथ्यों एवं आंकड़ों की यथार्थता विवादों से परे रहे। प्रभारी अधिकारी को अंकेक्षण दल के द्वारा जो अभ्युक्तियां की जाती है उन पर जहां कहीं भी संभव होता है वहां पर उपयुक्त सुधारत्मक कार्यवाही करने के लिये तत्काल कदम उठाने होते हैं जिससे कि जहां तक संभव हो वहां तक लेखा परीक्षण के दौरान ही अधिक से अधिक अंकेक्षण से जुड़े हुये मुद्दों का निपटारा हो जाये। लेखा परीक्षण के पूर्ण होने पर निरीक्षण अधिकारी निरीक्षण का

मसौदा प्रतिवेदन तैयार करता है। लेखा परीक्षण के समाप्त होने पर निरीक्षण अधिकारी और प्रभारी अधिकारी इस प्रतिवेदन पर चर्चा करते हैं। प्रभारी अधिकारी प्रतिवेदन में सम्मिलित किये गये तथ्यों एवं आंकड़ों की पुष्टि करता हैं। यदि असहमति का कोई बिंदु होता है तो उस पर निरीक्षण अधिकारी के साथ चर्चा की जाती है, जिससे कि उसका निराकरण हो जाये। प्रभारी अधिकारी लेखा परीक्षण के निष्कर्षों और सिफारिशों पर अपनी अभियुक्तियां देता है तथा निरीक्षण अधिकारी उन अभियुक्तियों को निरीक्षण प्रतिवेदन में दर्शाता है। निरीक्षण प्रतिवेदन में प्रणालीगत कमियों का निराकरण करने तथा नियंत्रण को सुधारने के लिये सिफारिशें की गयी होती है।

अंकेक्षण कार्यालय लेखा परीक्षणीय प्राधिकारियों को लेखा परीक्षण के परिणामों को अंकेक्षण नोट्स या निरीक्षण प्रतिवेदनों के माध्यम से सम्प्रेषित करता है। विनियमों में यह प्रावधान किया गया है कि अंकेक्षण कार्यालय लेखा परीक्षण के पूर्ण होने की तिथि से छः सप्ताह या विहित की गयी कोई अन्य अवधि के भीतर अंकेक्षण नोट्स या निरीक्षण प्रतिवेदनों को यथासम्भव जारी करेंगे। शासन ऐसी व्यवस्थाओं और क्रियाविधियों को स्थापित तथा क्रियान्वित करता है जो अंकेक्षण नोट्स या निरीक्षण प्रतिवेदनों में की गयी अभियुक्तियों के संबंध में पर्याप्त, रचनात्मक एवं समयोचित कार्यवाहियों को करना सुनिश्चित करते हैं।

किसी लेखा परीक्षणीय विभाग या संगठन को अंकेक्षण नोट या निरीक्षण प्रतिवेदन प्राप्त होने की तिथि से चार सप्ताह के भीतर उसका उत्तर भेजना होता हैं। यदि किसी अंकेक्षण नोट या निरीक्षण प्रतिवेदन में लेखा परीक्षण से संबंधित कोई महत्वपूर्ण अभ्युक्तियां की गयी हैं तो अंकेक्षण कार्यालय उनकी प्रतियां संबंधित विभाग के विभागाध्यक्ष को भेज सकता है। अगर ऐसा होता है तब विभागाध्यक्ष का यह कर्तव्य बनता है कि वह उपयुक्त सुधारात्मक और दोषनिवारक कार्यवाही करने के लिये ऐसे सभी मामलों में अनुवर्ती कार्यवाही करे तथा इंगित की गयी महत्वपूर्ण अभ्युक्तियों के अनुपालन का प्रतिवेदन अंकेक्षण कार्यालय को भेजे।

किसी विभाग या संगठन के लेखाओं का जब लेखा परीक्षण होता है तब उसके द्वारा विगत वर्ष में किये गये वित्तीय लेन-देनों में हुई प्रमुख अनियमिततायें ज्ञात हो जाती है। चूंकि वित्तीय अनियमिततायें वित्तीय संसाधनों के कुप्रबंधन के कारण होती हैं और उनके विघातक परिणाम होते हैं, इसलिये उनके पता लगने की स्थिति में उन पर अविलम्बनीय कार्यवाही किया जाना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। वित्त मंत्रालय द्वारा जारी किये गये लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियमों में इस संबंध में यथोचित प्रावधान किये गये हैं। लेखाओं में लेखा परीक्षण दल के द्वारा प्रमुख वित्तीय अनियमितताओं के ज्ञात होने पर महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को प्रत्येक ऐसे दृष्टांत को, उसके पता लगने के छः सप्ताह के भीतर, विशेष प्रबंधन पत्र के माध्यम से संबंधित विभाग के सचिव को अवगत कराना होता है और उसकी प्रतिलिपि विभागाध्यक्ष को करनी होती है। इसके अतिरिक्त महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को प्रमुख वित्तीय अनियमितता के प्रत्येक दृष्टांत को विहित की गयी रीति के अनुसार नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक को भी सूचित करना होता है। जब संबंधित विभाग को ऐसी सूचना प्राप्त हो जाती है तब शासन को तथ्यों की प्रथमदृष्टया जांच-पड़ताल करनी होती है और सूचना प्राप्त होने के छः सप्ताह के अन्दर महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को एक प्रारम्भिक प्रतिवेदन भेजना होता है जिसमें तथ्यों की या तो पुष्टि की जानी होती है या उनको नकारा जाना होता है। जहां पर प्रारम्भिक प्रतिवेदन में प्रमुख अनियमितता को शासन के द्वारा नकारा नहीं जाता है वहां पर ऐसे प्रतिवेदन को भेजने के तीन माह के अन्दर महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को एक विस्तृत प्रतिवेदन भेजना होता है जिसमें कि यह बतलाना होता है कि ऐसी प्रमुख अनियमितता की पुनरावृत्ति से बचाव करने के लिये क्या सुधारात्मक कार्यवाही की गयी है और उस चूक के लिये उत्तरदायी व्यक्तियों के विरूद्ध क्या कार्यवाही की गयी है।

महालेखाकार (लेखा परीक्षण) प्रत्येक वर्ष के अप्रैल माह के अंत तक संबंधित विभाग के सचिव को एक प्रबंधन पत्र लिखता है जिसमें पिछले वर्ष के दौरान लेखा परीक्षण से निकल कर सामने आये अभ्युक्तियों और निष्कर्षों को

सम्प्रेषित किया जाता है। सचिव ऐसे पत्र प्राप्त होने के तीन माह के भीतर अभ्युक्तियों और निष्कर्षों से जुड़े हुये मामलों पर की गयी कार्यवाही के बारे में महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को सूचित करता है।

प्रत्येक विभागाध्यक्ष को प्रत्येक वर्ष की तिमाही में अपने विभाग से संबंधित अंकेक्षण की लम्बित अभ्युक्तियों के संबंध में एक वार्षिक लोक विवरण बनाना होता है। इस विवरण में विविध महत्वपूर्ण बातों को सम्मिलित किया जाता है। जैसे कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पिछले वर्ष के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन/प्रतिवेदनों में सम्मिलित अंकेक्षण के परिच्छेदों की संख्या और सार; पिछले वर्ष के दौरान महालेखाकार (लेखा परीक्षण) के द्वारा अवगत करायी गयी प्रमुख अनियमितताओं की संख्या और सार; उक्त दोनों के संबंध में विभाग के द्वारा की गयी कार्यवाही; तथा पिछले वर्ष के दौरान जारी किये गये निरीक्षण प्रतिवेदनों में सम्मिलित किये गये अंकेक्षण के परिच्छेदों की संख्या और उन परिच्छेदों का सार जिनमें अधिक धन मूल्य शमिल होता है।

21.6 लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन

भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन, जो अत्यंत विस्तारपूर्ण प्रलेख होते हैं, लोक प्रशासन पर वित्तीय नियंत्रण रखने के बहुत ही प्रभावकारी माध्यम होते हैं। लेखा परीक्षण के द्वारा जो वित्तीय दशाओं का परीक्षण किया जाता है और उस से जो निष्कर्ष निकल कर सामने आते है उनको इन प्रतिवेदनों में सम्मिलित किया जाता है। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन से संबंधित प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 151 संपरीक्षा प्रतिवेदन में किये गये हैं। इस अनुच्छेद के अनुसार- भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के संघ के लेखाओं संबंधी प्रतिवेदनों को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा, जो उनको संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा; भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के किसी राज्य के लेखाओं संबंधी प्रतिवेदनों को उस राज्य के राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा, जो उनको राज्य के विधान-मंडल के समक्ष रखवाएगा। लेखा परीक्षण के प्रतिवेदनों के प्रारूप, अन्तर्वस्तु तथा प्रस्तुतीकरण के समय को नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक निश्चित करता है।

चूंकि लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन बहुत ही महत्वपूर्ण प्रलेख होते हैं और इन प्रतिवेदनों में सम्मिलित निष्कर्षों का शासन के संबंधित मंत्रालयों/ विभागों/लोक संगठनों के द्वारा अनुपालन किया जाना अनिवार्य रूप से आशायित होता है। अतः इन प्रतिवेदनों को तैयार करने, उनको प्रस्तुत करने और उनके अनुपालन के संबंध में विस्तृत अवधान करना आवश्यक हो जाता है। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा जारी किये गये 'लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियम, 2007 के अध्याय-15- लेखापरीक्षा प्रतिवेदन की धारायें 205-215 इन को सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक एवं वांछित विनियमों को समाविष्ट करती है।

भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के समग्र नेतृत्व में लेखा परीक्षण दल के द्वारा किसी मंत्रालय/विभाग/ लोक संगठन के अंकेक्षण के उपरांत उस से संबंधित प्रतिवेदन, पहले ड्राफ्ट रूप में फिर उसके पश्चात् अंतिम रूप में, तैयार किया जाता है। इसी प्रकार से समूचे संघ/राज्य सरकार के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदनों को तैयार किया जाता है। इस संबंध में विनियम यह प्रदान करते हैं कि लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन में किसी मामले को सम्मिलित करने से पूर्व सरकार को अपनी टिप्पणियों, अभियुक्तियों और स्पष्टीकरण को प्रस्तुत करने का अवसर दिया जायेगा। महालेखाकार (लेखा परीक्षण) अंकेक्षण की प्रस्तावित अभियुक्तियों की एक प्रति ड्राफ्ट परिच्छेद के रूप में सरकार के संबंधित सचिव को उसके नाम से भेजता हैं दूसरी प्रति वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग के सचिव को उसके नाम से भेजता है। इसी के साथ-साथ अंकेक्षण की प्रस्तावित अभियुक्तियों की दूसरी प्रति वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग के सचिव को उसके नाम से महालेखाकार (लेखा परीक्षण) के द्वारा भेजी जाती है। संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव को इस पत्र की तिथि के छः सप्ताह या विनिर्दिष्ट की गयी किसी अवधि के अंदर अपनी टिप्पणियों, अभियुक्तियों और स्पष्टीकरण को सम्प्रेषित करना होता है। संबंधित सचिव इस समयावधि का विस्तार

करने के लिये महालेखाकार (लेखा परीक्षण) से कारणों सहित अनुरोध कर सकता है। यदि विनिर्दिष्ट या विस्तार की गयी अवधि के अंदर महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता है तो वह इस पूर्वानुमान से आगे बढ़ता हैं कि इंगित किये गये मामले में सरकार के पास कोई टिप्पणी, अभियुक्ति और स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिये नहीं है। संबंधित सचिव के द्वारा उत्तर भेजने की स्थिति में महालेखाकार (लेखा परीक्षण) उस पर पूरा सोच-विचार करता हैं। इसी के आधार पर यह निर्णय लिया जाता हैं कि ड्राफ्ट परिच्छेद को लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन में संशोधित किया जायेगा या उसे निपटाया जायेगा या सम्मिलित नहीं किया जायेगा। संघ सरकार के मामले में अंतिम रूप दिये गये परिच्छेद की एक प्रति संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव को भेजी जाती है। किसी राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के मामले में अंतिम रूप दिये गये परिच्छेद की एक प्रति संबंधित विभाग के सचिव के साथ-साथ वित्त विभाग के सचिव को भेजी जाती है।

अंकेक्षण के सभी परिच्छेदों को अंतिम रूप दिये गये जाने के उपरांत लेखा परीक्षण का अंतिम प्रतिवेदन नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा तैयार किया जाता है। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा प्राधिकृत किया गया कोई अधिकारी पूर्ववर्ती के द्वारा विधिवत् हस्ताक्षर की गयी लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन की प्रतियों को वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग के सचिव को भिजवाता है। वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग का सचिव अग्रिम कार्यवाही के लिये राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक को इस प्रतिवेदन को प्रस्तुत करने तथा उस को संसद या राज्य विधानमंडल या संघ राज्यक्षेत्र के विधानमंडल में प्रस्तुत करने के लिये तत्पर कार्यवाही करता है। इसी के साथ-साथ लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन की अहस्तारक्षित प्रति राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक के सचिव को भेजी जाती है।

संसद या विधानमंडल में जब लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन प्रस्तुत हो जाता है तब महालेखाकार (लेखा परीक्षण) संबंधित मंत्रालयों/विभागों के सचिवों को इस प्रतिवेदन की प्रतियां भिजवाते हैं। ये सचिव अपने मंत्रालयों/विभागों से संबंधित अंकेक्षण के परिच्छेदों की की गयी कार्यवाहियों की स्वतःबोधक टिप्पणियों को विधायी लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति को प्रस्तुत करने के लिये तैयार करते हैं। उक्त टिप्पणियों की महालेखाकार (लेखा परीक्षण) की समीक्षा के पश्चात् संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव संवीक्षित टिप्पणी की प्रतियां अपेक्षित संख्या में, जैसा कि लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति के द्वारा विहित किया गया होता है, लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति के सचिवालय को भेजते हैं और संवीक्षित टिप्पणी की प्रति वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग तथा महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को अग्रसारित करते है। जब लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति की सिफारिशें प्राप्त हो जाती हैं तब संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव की-गयी-कार्यवाहियों की टिप्पणी तैयार करने संबंधी कार्यवाही आरम्भ करते हैं। यह टिप्पणी समिति की सिफारिशों के प्रति सरकार के प्रत्युतर को दिखाती है।

इस टिप्पणी को उस प्रारूप में बनाया जाता है, जैसा कि लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति के द्वारा विहित किया जाता है तथा समिति के द्वारा विहित की गयी अवधि के अंदर उसको प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु की गयी कार्यवाहियों की टिप्पणी को समिति को प्रस्तुत किये जाने से पूर्व उसे महालेखाकार (लेखा परीक्षण) के पास संवीक्षा हेतु भेजा जाता है। सरकार के द्वारा जो प्रत्युतर समिति को भेजा जाता है, उसमें महालेखाकार (लेखा परीक्षण) की संवीक्षा से संबंधित अभियुक्तियां यथोचित रूप में दर्शायी जाती है। यदि की गयी कार्यवाहियों की टिप्पणी को प्रस्तुत करने में विलम्ब होता है तो महालेखाकार (लेखा परीक्षण) विलम्ब के ऐसे मामलों को संघ सरकार के मामले में वित्त मंत्रालय के सचिव (व्यय) को, राज्य सरकार के मामले में मुख्य सचिव को, तथा विधान सभा वाले संघ राज्य-क्षेत्र के मामले में प्रशासक को रिर्पोट करते हैं। लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन में भी विलम्ब के मामलों पर उपयुक्त प्रकार से अभियुक्ति की जाती है।

21.7 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली का मूल्यांकन

भारत में लेखा परीक्षण की विस्तृत प्रणाली प्रचलित है जिसमें कि विविध प्रकार के मापदण्ड सम्मिलित होते हैं। देश में शासकीय लेखा परीक्षण को संवैधानिक रूप से विहित किया गया है। शासकीय लेखा परीक्षण की व्यवस्था के शीर्ष पर नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक होता है। इस व्यवस्था के माध्यम से विभिन्न व्यापक उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। इस में कोई संदेह नहीं हैं कि लेखा परीक्षण की जो व्यापक व्यवस्था पायी जा रही है, उसी के कारण देश में समय-समय पर अनेक वित्तीय अनियमिततायें प्रकाश में आयी हैं और वित्तीय व्यवस्था को सुधारने के प्रयास किये जा रहे हैं। इसी के साथ-साथ यह भी सच्चाई है कि लेखा परीक्षण की व्यवस्था भी अपने आप में पूर्णतयः त्रुटिहीन नहीं हैं और इसमें भी भ्रष्टाचार का बोलबाला है, जिससे कि लेखा परीक्षण की प्रक्रिया में कमियां पायी जाती हैं जो उसकी उपयुक्तता को सीमित करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन से संबंधित प्रावधान संविधान के कौन से अनुच्छेद में किये गये हैं?
2. भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग वर्ष............ में अस्तित्व में आया।
3. संसद द्वारा कौन से वर्ष में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा शर्त्ते) अधिनियम अधिनियमित किया गया था?

   क. 1970 ख. 1971

   ग. 1972 घ. 1973

21.8 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आप यह सुअवगत हो चुके हैं कि लेखा परीक्षण में लेखाओं, लेन-देनों और अभिलेखों का परीक्षण किया जाता है। इसके कुछ मापदण्ड होते हैं और यह विभिन्न मार्गदर्शी सिद्धांतों का अनुपालन करता है। देश में शासकीय लेखा परीक्षण की संवैधानिक स्थिति है और नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को लेखा परीक्षण का शीर्ष प्राधिकारी विहित किया गया है। यहां पर लेखा परीक्षण की विस्तृत व्यवस्था है, जिसका सबसे अहम भाग भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग हैं। लेखा परीक्षण के आयोजन और संचालन के संबंध में विस्तृत प्रावधान लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियम, 2007 में किये गये हैं। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन वित्तीय नियंत्रण रखने का अत्यंत प्रभावकारी माध्यम होते हैं। इस इकाई का अध्ययन करने से आप भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली के बारे में अपने अपनी सोच में समग्रता ला सकते हैं।

21.9 शब्दावली

मार्गदर्शी सिद्धांत- किसी भी संगठन के लिये मार्गदर्शी सिद्धांत वे दिशा-निर्देश होते हैं जो उसमें कार्य कर रहे व्यक्तियों का सदैव उनके कार्यों में मार्गदर्शन करते हैं।

लेखा परीक्षण- लेखा परीक्षण वित्तीय प्रबंधन की प्रक्रिया का एक अभिन्न पहलू होता है। इसमें वित्तीय लेखाओं, लेन-देनों और अभिलेखों का आधिकारिक रूप से परीक्षण और फिर उनका सत्यापन किया जाता है।

21.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनुच्छेद- 151, **2.** वर्ष 1973, **3.** ख

21.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, ऑडिट रिपोर्ट, नई दिल्ली।
2. https://www.cag.gov.in/hi/hindi-audit-reports
3. भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, (2007) लेखा तथा लेखापरीक्षा विनिमय, नई दिल्ली।
4. http://www.cag.gov.in/sites/default/files/cag_pdf/regulation/regulation2007.pdf
5. भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, संगठन चार्ट, नई दिल्ली। https://www.cag.gov.in/hi/content/organisation-chart
6. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

21.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. द्वितीय प्रशासनिक आयोग, भारत सरकार, (अप्रैल 2009) चौदहवां प्रतिवेदनः वित्तीय प्रबंधन प्रणाली को मजबूत बनाना, नई दिल्ली
2. लाल, जी. एस., (जनवरी 1987) *Public Finance and Financial Administration in India*, एच. पी. जे. कपूर, नई दिल्ली
3. विकीपीडिया, *Indian Audit and Accounts Service*
4. https://en.wikipedia.org/wiki/Indian_Audit_and_Accounts_Service
5. सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई.पी.ए.-05, वित्तीय प्रशासन, 7, लेखा और लेखापरीक्षण, नई दिल्ली।

21.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांतों की विवेचना कीजिये।
2. भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली को समझाईये।
3. भारत में लेखा परीक्षण के आयोजन और संचालन के संबंध में प्रावधानों का वर्णन कीजिये।

इकाई- 22 लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की भूमिका

इकाई की संरचना

22.0 प्रस्तावना
22.1 उद्देश्य
22.2 भारत में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास
22.3 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की नियुक्ति
22.4 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की सेवा-शर्त्तें
22.5 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की स्वतंत्रता
22.6 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां
22.7 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा निभायी जा रही भूमिका का आंकलन
22.8 सारांश
22.9 शब्दावली
22.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
22.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
22.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
22.13 निबन्धात्मक प्रश्न

22.0 प्रस्तावना

इस से पिछली की इकाई में आप भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली के संबंध में अच्छे प्रकार से समझ चुके हैं। लेखापरीक्षण के तंत्र के शीर्षस्थान पर अवस्थित प्राधिकारी को नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक कहा जाता है। प्रस्तुत इकाई में देश में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की वित्तीय प्रशासन में भूमिका को निरूपित किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से भारत में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास किस प्रकार से हुआ, नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की नियुक्ति कौन करता है और कौन उसको शपथ दिलवाता है, उसकी सेवा-शर्त्तें क्या होती हैं, उसकी स्वतंत्रता संविधान द्वारा किस प्रकार से सुनिश्चित की गयी हैं, उसके कर्तव्य एवं शक्तियां क्या हैं और उसकी भूमिका की प्रभावशीलता कितनी रही हैं से संबंधित आपके दृष्टिकोण में व्यापकता आयेगी।

22.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जान पायेंगे कि भारत में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पद का उद्भव कब हुआ एवं उसका विकास किस प्रकार से हुआ; और
- बोध कर पायेंगे कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की नियुक्ति कौन करता है, उसकी सेवा-शर्त्तें क्या होती हैं तथा उसकी स्वतंत्रता किस प्रकार से सुनिश्चित की जाती है।

22.2 भारत में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास

लेखापरीक्षण का कार्य वास्तविकता में दुस्साध्य व अत्यधिक चुनौतीपूर्ण होता है इसलिये इस को करने के लिये लेखापरीक्षण के सुविस्तृत तंत्र का होना अनिवार्य हो जाता है। लेखापरीक्षण के तंत्र के शीर्षस्थान पर जो प्राधिकारी

होता हैं वह भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग नाम से बुलाया जाता है। भारत में उस प्राधिकारी को नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक कहा जाता है।

भारत के अभिशासन में अनेक महत्वपूर्ण पद ब्रिटिश विरासत वाले हैं, जिनमें से एक पद नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक का है। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान लेखापरीक्षक का पद वर्ष 1858 में अस्तित्व में आया, जब भारत सरकार अधिनियम द्वारा देश में ईस्ट इंडिया का शासन समाप्त कर दिया गया और शासकीय शक्तियों का अंतरण ब्रिटिश क्राउन को कर दिया गया। सर एडमन्ड ड्रूमोन्ड देश के प्रथम लेखापरीक्षक के तौर पर वर्ष 1860 में नियुक्त किये गये। ब्रिटिश संसद द्वारा जब वर्ष 1919 में अगला भारत सरकार अधिनियम अधिनियमित किया गया तब उस अधिनियम ने लेखापरीक्षक के पद को संविधिक दर्जा दिया। इस अधिनियम ने देश में स्वतंत्र लेखापरीक्षण का सूत्रपात किया और यह प्रदान किया कि अब से लेखापरीक्षक भारत सरकार से स्वतंत्र रहकर कार्य करेगा, उसकी नियुक्ति सेक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा की जायेगी और वह अपना पद अपने मेजेस्टी के प्रसादपर्यन्त तक धारण करेगा। वर्ष 1935 के अगले भारत सरकार अधिनियम द्वारा लेखापरीक्षक की स्थिति को अधिक सशक्त बनाया गया। इस अधिनियम के प्रावधानों के द्वारा उसकी स्वतंत्र स्थिति को सुदृढ़ बनाया गया। उसे प्रतिषेध किया गया कि वह अपना पद छोड़ने के पश्चात् क्राउन के अधीन कोई पद धारण नहीं करेगा। उसकी स्थिति फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य की गयी और यह प्रदान किया गया कि जिस तरीके से उक्त न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता हैं उसी तरीके से उसको भी अपने पद से हटाया जा सकेगा। ब्रिटिश शासन द्वारा वर्ष 1936 में भारत सरकार (लेखापरीक्षण एवं लेखा) आदेश जारी किया गया जिसमें उसके कर्तव्यों, शक्तियों एवं सेवा शर्तों को विहित किया गया। देश की स्वतंत्रता के उपरांत जब वर्ष 1950 में संविधान प्रभावी हुआ तो लेखापरीक्षक के पद को संवैधानिक दर्जा दिया गया, लेखापरीक्षक के पदनाम को भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के रूप में निर्दिष्ट किया गया और संविधान के भाग V (संघ) के अध्याय V (भारत का नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक) के अनुच्छेदों 148-151 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के संबंध में प्रावधान किये गये। ये अनुच्छेद इस प्रकार से हैं- अनुच्छेद 148- भारत का नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक; अनुच्छेद 149- नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां; अनुच्छेद 150- संघ के और राज्यों के लेखाओं के प्रारूप; अनुच्छेद 151- लेखापरीक्षण के प्रतिवेदन। देश में वर्ष 1860 से वर्ष 1948 तक निम्नलिखित 16 लेखापरीक्षक और उनके निम्नवत कार्यकाल रहे- एडमन्ड ड्रूममोन्डः 1860-1862, आर. पी. हैरिसनः 1862-1867 ई. एफ. हैरिसनः 1867-1879 (सबसे लंबा कार्यकाल), डब्लू. वॉटरफील्डः 1879-1881, जेम्स वेस्टलैण्डः 1881-1889, ई. गेः 1889-1891, एस. जेकॉबः 1891-1898, ए. एफ. कोक्सः 1898-1906, ओ. जे. बारॉः 1906-1910, आर. डब्लयू. गिलानः 1910-1912, सर फ्रेडरिक गौंटलेटः 1912-1914, सर आर. ऐ. गैम्बलः 1914-1918, सर फ्रेडरिक गौंटलेटः 1918-1929 , सर अर्नस्ट बर्डनः 1929-1940 , सर अलेक्जेंडर कैमरामन बन्डोचः 1940-1945, तथा सर बर्टीई स्टैगः 1945-1948

22.3 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की नियुक्ति

नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक भारत का सर्वोच्च लेखापरीक्षण प्राधिकारी होता है। राष्ट्रपति के अनुमोदन पर राष्ट्रपति सचिवालय द्वारा वर्ष 1979 में जारी किये गये भारतीय वरीयता क्रम में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक क्रम संख्या 9 ‘क’ पर है। उसकी नियुक्ति के संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 148 (1) में किया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार भारत का एक नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक होगा, जिसको राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा। स्वतंत्रता के पश्चात् से वर्तमान (वर्ष 2018) तक अनुच्छेद- 148 (1) के प्रावधानुसार निम्नलिखित नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षकों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया गया है जिनके नाम व कार्यकाल निम्नवत हैं- वी. नरहरी रावः 1948-1954, ए. के. चन्दाः 1954-1960, ए. के. रॉयः 1960-1966,

एस. रंगनाथनः 1966-1972, ए. बक्शीः 1972-1978, ज्ञान प्रकाशः 1978-1984, टी. एन. चतुर्वेदीः 1984-1990, सी. जी. सोमैयाः 1990-1996, वी. के. शुंगलूः 1996-2002, वी. एन. कौलः 2002-2008, विनोद रायः 2008-2013, शशि कान्त शर्माः 2013-2017, राजीव महर्षिः 2017 से कार्यरत हैं।

नियुक्त किये गये नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा लिये जाने वाले शपथ या किये जाने वाले प्रतिज्ञान के संबंध में संविधान के अनुच्छेद- 148 (2) में प्रावधान किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक नियुक्त किया जाता है, अपना पद ग्रहण करने से पहले, राष्ट्रपति या उसके द्वारा निमित्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा।

22.4 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की सेवा-शर्त्तें

नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की सेवा-शर्तो के संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 148 (3) में किये गये है। इस अनुच्छेद के अनुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक का वेतन और सेवा की अन्य शर्त्तें ऐसी होंगी जो संसद, विधि द्वारा, अवधारित करे। उक्त प्रावधान को प्रभाव में लाने हेतु संसद ने सर्वप्रथम वर्ष 1953 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक (सेवा की शर्त्तें) अधिनियम को अधिनियमित किया। यह अधिनियम वर्ष 1971 तक प्रभावी बना रहा जब संसद द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम का अधिनियमन किया गया। 1971 के अधिनियम के अध्याय- II (नियंत्रक-महालेखापरीक्षक का वेतन और सेवा की अन्य शर्त्तें) के खण्डों- 3 से 9 तक में उनके वेतन, पदावधि, अवकाश, पेंशन, पेंशन के संराशीकरण, साधारण भविष्य निधि में अंशदान देने के अधिकार, यात्रा भत्ता, किराया मुक्त आवास की सुविधा और ऐसे किराया मुक्त आवास के मूल्य पर आय कर के संदाय से छूट, यातायात सुविधाओं, सत्कारी भत्ता, चिकित्सा सुविधाओं आदि सेवा की शर्त्तें दी गयी हैं। ये सेवा की शर्त्तें, संक्षेप में, निम्नलिखित हैं-

1. खण्ड-3, वेतन- नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर वेतन दिया जायेगा।
2. खण्ड- 4, पदावधि- नियंत्रक-महालेखापरीक्षक उस तारीख जिस तारीख को वह पद ग्रहण करता है, से छह वर्ष की अवधि के लिये पद धारण करेगा। परन्तु जहां वह छह वर्ष की उक्त अवधि के अवसान के पूर्व 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है वहां वह ऐसा पद उस तारीख को रिक्त कर देगा जिसको वह उक्त आयु प्राप्त कर लेता हैं। अग्रेतर वह, किसी भी समय, राष्ट्रपति को संबोधित स्वहस्ताक्षरित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा।
3. खण्ड- 5, अवकाश- किसी व्यक्ति जिसे नियंत्रक-महालेखापरीक्षक नियुक्त किया गया है, को ऐसे नियमों के अनुसार अवकाश की अनुमति दी जा सकती है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा के किसी सदस्य पर तत्समय लागू है। नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के अवकाश को स्वीकृत करने या अस्वीकृत करने और उसके स्वीकृत किये गये अवकाश का प्रतिसंहरण करने या कम करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी।
4. खण्ड- 6, पेंशन- प्रत्येक व्यक्ति जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद ग्रहण करता है, उक्त पद को छोड़ने पर पेंशन का पात्र होगा।
5. खण्ड- 7, पेंशन का संराशीकरण- इस प्रावधान का वर्ष 1987 में लोप कर दिया गया।
6. खण्ड- 8, भविष्य निधि में अंशदान देने का अधिकार- प्रत्येक व्यक्ति जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद धारण कर रहा है, साधारण भविष्य निधि (केन्द्रीय सेवा) में अभिदान करने का पात्र होगा।
7. खण्ड- 9, सेवा की अन्य शर्त्तें- यात्रा भत्ता, किराया मुक्त आवास की सुविधा और ऐसे किराया मुक्त आवास के मूल्य पर आय कर के संदाय से छूट, यातायात सुविधाओं, सत्कारी भत्ता, चिकित्सा

सुविधाओं से संबंधित सेवा की शर्तें जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पर तत्समय लागू हैं, जहां तक हो सके, किसी सेवारत या सेवानिवृत्त नियंत्रक-महालेखापरीक्षक पर लागू होंगी।

22.5 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की स्वतंत्रता

लेखापरीक्षण, जोकि वित्तीय प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है, की प्रभावशीलता को बनाकर रखने हेतु नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की स्थिति का स्वतंत्र होना आवश्यक हो जाता है। उसकी स्वतंत्र स्थिति को संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेदों के द्वारा सुनिश्चित किया गया है-

1. अनुच्छेद- 148 (1)- भारत का एक नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक होगा, जिसको राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा और उसे उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जायेगा, जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।
2. अनुच्छेद- 148 (3)- नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के न तो वेतन में और न ही उसके अनुपस्थिति अवकाश, पेंशन या सेवानिवृत्ति की आयु के संबंध में उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिये अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जायेगा।
3. अनुच्छेद- 148 (4)- नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक अपने पद पर न रह जाने के पश्चात् भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी और पद का पात्र नहीं होगा।
4. अनुच्छेद- 148 (6)- नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कार्यालय के प्रशासनिक व्यय, जिनके अंतर्गत उस कार्यालय में सेवा करने वाले व्यक्तियों को या उनके संबंध में संदेय सभी वेतन, भत्ते और पेंशन सम्मिलित हैं, भारत की संचित निधि पर भारित होंगे।

22.6 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां

नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्य व शक्तियों के संबंध में संविधान का अनुच्छेद- 149 जो प्रावधान करता है वह इस प्रकार से हैं- नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक संघ के और राज्यों के तथा किसी अन्य प्राधिकारी या निकाय के लेखाओं के संबंध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा, जिन्हें संसद द्वारा बनायी गयी विधि द्वारा या उसके अधीन विहित किया जाये और जब तक इस निमित्त इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है, तब तक संघ के और राज्यों के लेखाओं के संबंध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमशः भारत डोमिनियन के और प्रान्तों के लेखाओं के संबंध में भारत के महा-लेखापरीक्षक को प्रदत्त थीं या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य थीं। स्वतंत्रता से पूर्व ब्रिटिश शासकों के द्वारा भारत सरकार (लेखापरीक्षण और लेखा) आदेश वर्ष 1936 में जारी किया गया था, जिसमें कि महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्यों और शक्तियों का उल्लेख किया गया था। यह आदेश वर्ष 1971 तक प्रभावी रहा, जब संसद ने नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) अधिनियम को अधिनियमित किया। वर्ष 1971 के अधिनियम ने वर्ष 1936 के आदेश को निरस्त कर दिया। अधिनियम के अध्याय-III (नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां) के खण्डों- 10-20 में उसके कर्तव्यों एवं शक्तियों को विनिर्दिष्ट किया गया है। ये कर्तव्य एवं शक्तियां व्यापक तौर पर लोक निकायों के लेखाओं का संकलन करने और संकलित किये गये लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के साथ संबंधित हैं। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां, संक्षिप्त में, अधिनियम के खण्डानुसार निम्नलिखित हैं-

- खण्ड- 10, नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा संघ और राज्यों के लेखाओं का संकलन किया जाना;

- खण्ड-11, नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा लेखाओं को तैयार किया जाना और राष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल तथा विधान सभा वाले संघ-राज्यक्षेत्रों के प्रशासकों को प्रस्तुत किया जाना;
- खण्ड-12, नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा संघ और राज्यों को सूचना दिया जाना और सहायता प्रदान किया जाना;
- खण्ड-13, लेखापरीक्षण से संबंधित सामान्य प्रावधान;
- खण्ड-14, संघ या राज्यों के राजस्वों से वस्तुतः वित्त-पोषित निकायों या प्राधिकरणों के आय और व्यय का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-15, अन्य प्राधिकरणों या निकायों को दिये गये अनुदानों या ऋणों के मामले में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कार्य;
- खण्ड- 16, संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-17, भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-18, नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में शक्तियां;
- खण्ड-19, सरकारी कम्पनियों एवं निगमों का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-19 'क', सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखाओं के संबंध में प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किया जाना; तथा
- खण्ड- 20, कतिपय प्राधिकरणों या निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण किया जाना।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम, 1971 में प्रदान किये गये नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्यों एवं शक्तियों का सविस्तार खण्डवार विवरण निम्नवत हैं-

1. खण्ड-10- अधिनियम के खण्ड-10 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा संघ और राज्यों के लेखाओं का संकलन किये जाने संबंधी उसके कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। खण्ड के उपखण्ड (1) के अनुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक संघ के और प्रत्येक राज्य के लेखाओं का संकलन उन प्रारम्भिक और सहायक लेखाओं से करने के लिये उत्तरदायी होगा जो ऐसे लेखाओं को बनाकर रखने के लिये जिम्मेदार कोषागारों, कार्यालयों या विभागों के द्वारा उसके नियंत्रण के अधीन लेखापरीक्षण और लेखा कार्यालयों को दिये गये हैं। इसी के साथ वह उक्त निर्दिष्ट किये गये किन्हीं मामलों में से किसी के संबंध में लेखाओं को बनाकर रखने के लिये भी उत्तरदायी होगा।

   खण्ड-10 का उपखण्ड (1), यह भी प्रावधान करता है कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को संघ के और राज्यों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त किया जा सकता है। इसके संबंध में अधिनियम के अनुसार संघ के मामले में राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे संघ के उपरोक्त लेखाओं (या तो एक ही समय में या धीरे-धीरे विभिन्न आदेशों को जारी करने के द्वारा) या संघ के किन्हीं विशिष्ट सेवाओं या विभागों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है। अधिनियम अग्रेतर यह प्रावधान करता है कि राज्यों के मामले में किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के साथ और नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे राज्य के उपरोक्त लेखाओं (या तो एक ही समय में या धीरे-धीरे विभिन्न आदेशों को जारी करने के द्वारा) या राज्य की किन्हीं विशिष्ट सेवाओं या विभागों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है। खण्ड में आगे यह भी प्रावधान किया गया है कि

राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे किसी विशिष्ट वर्ग या स्वरूप के लेखाओं को बनाकर रखने की जिम्मेदारी से भी अवमुक्त कर सकता है।

2. खण्ड-11- अधिनियम के खण्ड- 11 का सरोकार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा लेखाओं को तैयार किये जाने और राष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल तथा विधान सभा वाले संघ-राज्यक्षेत्रों के प्रशासकों को प्रस्तुत किये जाने के साथ है। प्रावधानुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, अपने द्वारा या सरकार के द्वारा या उस निमित्त जिम्मेदार किसी व्यक्ति के द्वारा संकलित किये गये लेखाओं में से, प्रत्येक वर्ष उन लेखाओं (जिनमें सम्मिलित हैं, उसके अपने द्वारा संकलित किये गये लेखाओं के मामले में, विनियोग लेखा) को तैयार करेगा जो संघ के या प्रत्येक राज्य के या विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्यक्षेत्र के प्रयोजन हेतु विशिष्ट शीर्षों के अंतर्गत वार्षिक प्राप्तियों एवं संवितरणों को दिखा रहे हैं, और ऐसे लेखाओं को राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को ऐसी तिथियों, जिन्हें वह, संबंधित सरकार की सहमति के साथ, निर्धारित करे, को या उनके पूर्व प्रस्तुत करेगा। इस खण्ड में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को उक्त लेखाओं को तैयार करने और उनको प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त किये जाने का प्रावधान भी हैं । संघ या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के प्रयोजन हेतु राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, तथा किसी के प्रयोजन हेतु किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के साथ और नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे उक्त लेखाओं को तैयार करने और उनको प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है।

3. खण्ड-12- अधिनियम के खण्ड- 12 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा संघ और राज्यों को सूचना दिये जाने और सहायता प्रदान किये जाने के संबंध में उसके कर्तव्य का वर्णन किया गया है। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, जहां तक उन लेखाओं के संबंध में जिनका संकलन करने या जिनको बनाकर रखने के लिये वह जिम्मेदार है, संघ सरकार को, राज्य सरकारों को या विधान सभाओं वाले संघ-राज्यक्षेत्रों की सरकारों को, जैसा कि मामला हो, ऐसी सूचना देगा जिसकी आकांक्षा, समय-समय पर, उनको होगी, और उनके वार्षिक वित्तीय विवरणों को तैयार करने में उनको ऐसी सहायता प्रदान करेगा जिसकी वे यथोचित मांग करे।

4. खण्ड-13- अधिनियम के खण्ड-13 में लेखापरीक्षण से संबंधित सामान्य प्रावधान दिये गये हैं जो इस प्रकार से है। यह नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक का कर्तव्य होगा कि वह भारत की और प्रत्येक राज्य की और विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि में से किये गये व्यय का लेखापरीक्षण करे और यह अभिनिश्चित करे कि क्या लेखाओं में वे धनराशियां जो संवितरित की गई दिखायी गयी है, वैध रूप से उपलब्ध थी और उस सेवा या प्रयोजन जिसके लिये उन्हें लागू या प्रभारित किया गया था के लिये वैध रूप से प्रयोज्य थी तथा क्या व्यय उसको शासित करने वाले प्राधिकार के अनुरूप हैं; आकस्मिकता निधियों और लोक लेखाओं से संबंधित संघ के एवं राज्यों के सभी संव्यवहारों का लेखापरीक्षण करे; और संघ के या किसी राज्य के किसी विभाग में रखे गये सभी सकल व्यापार, विनिर्माण, लाभ एवं हानि के लेखाओं तथा तुलन-पत्रों और अन्य सहायक लेखाओं का लेखापरीक्षण करे, और प्रत्येक मामले में उसके द्वारा लेखापरीक्षण किये गये व्यय, संव्यवहारों या लेखाओं के बारे में रिपोर्ट करे।

5. खण्ड-14- अधिनियम का खण्ड- 14 संघ या राज्यों के राजस्वों से वस्तुतः वित्त-पोषित निकायों या प्राधिकरणों के आय और व्यय का लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। इस खण्ड के उपखण्ड (1) में यह प्रावधान किया गया है कि जहां कोई निकाय या प्राधिकरण भारत की या किसी राज्य की और विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि से दिये गये अनुदानों या ऋणों के द्वारा

वस्तुतः वित्त-पोषित है तो नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक का यह कर्तव्य होगा कि वह उस निकाय या प्राधिकरण की सभी प्राप्तियों और व्यय का लेखापरीक्षण करे तथा उसकी रिर्पोट दे। इस खण्ड के उपखण्ड (2) में अग्रेतर यह प्रावधान किया है कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, के पूर्व अनुमोदन के साथ, किसी ऐसे निकाय या प्राधिकरण की सभी प्राप्तियों और व्यय का लेखापरीक्षण कर सकता है, जहां किसी वित्तीय वर्ष में भारत की या किसी राज्य की या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि, जैसा कि मामला हो, से ऐसे निकाय या प्राधिकरण को दिया गया अनुदान या ऋण एक करोंड़ रूपये से कम नहीं है।

6. खण्ड-15- अधिनियम के खण्ड 15 में अन्य प्राधिकरणों या निकायों को दिये गये अनुदानों या ऋणों के मामले में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कार्यों का विवरण दिया गया है। इसके प्रावधानुसार जहां किसी निकाय या प्राधिकरण, जो कोई विदेशी राज्य या अंतर्राष्ट्रीय संगठन नहीं है, को भारत की या किसी राज्य की और विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि से किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिये कोई अनुदान या ऋण दिया गया हैं तो नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक उन क्रियाविधियों की संवीक्षा करेगा जिनके द्वारा संस्वीकृत करने वाला प्राधिकारी उन शर्त्तों की पूर्ति के बारे में अपना समाधान करता है कि जिनके अधीन रहते हुये ऐसे अनुदान या ऋण दिये गये थे और इस प्रयोजन हेतु उस निकाय या प्राधिकरण की बहियों एवं लेखाओं तक, उचित पूर्व नोटिस देने के उपरांत, पहुंच का अधिकार होगा।

7. खण्ड-16- अधिनियम का खण्ड-16 संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। इस खण्ड के अनुसार यह नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक का कर्तव्य होगा कि वह उन सभी प्राप्तियों का लेखापरीक्षण करे जो भारत की और प्रत्येक राज्य की और विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि में संदेय है और अपना समाधान करे कि इस निमित्त नियम एवं क्रियाविधियां राजस्व के आंकलन, संग्रहण और उचित आवंटन पर प्रभावकारी नियंत्रण को प्राप्त करने के लिये बनाये गये हैं और उनका यथायोग्य अनुपालन किया जा रहा है तथा इस प्रयोजन के लिये लेखाओं का ऐसा परीक्षण करे जैसा कि वह उपयुक्त सोचे और उस पर रिपोर्ट दे।

8. खण्ड-17- अधिनियम का खण्ड-17 भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण किये जाने के संबंध में प्रावधान करता है, जिसके अनुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पास संघ के या किसी राज्य के किसी कार्यालय या विभाग में रखे गये भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने और रिर्पोट करने का प्राधिकार होगा।

9. खण्ड-18- अधिनियम के खण्ड- 18 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में शक्तियों को विनिर्दिष्ट किया गया है। इस से संबंधित आवश्यक प्रावधान उपखण्ड (1) में किये गये हैं। उपखण्ड (1) के अनुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पास अपने कर्तव्यों का निष्पादन करने के संबंध में प्राधिकार होगा कि वह संघ के या किसी राज्य के अधीन किसी लेखा कार्यालय जो उसे लेखाओं को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें कोषागार और ऐसे कार्यालय जो प्रारम्भिक या सहायक लेखाओं को बनाकर रखने के लिये उत्तरदायी हैं, का निरीक्षण करे; यह अपेक्षा करे कि किन्हीं लेखाओं, बहियों, लेखापत्रों और अन्य प्रलेखों जो उन संव्यवहारों जिन तक लेखापरीक्षण के संबंध में उसके कर्तव्यों का विस्तार है, के साथ संबंधित है या उनका आधार बनाते हैं या अन्यथा प्रासंगिक हैं को ऐसे स्थान पर भेजा जाये जो वह अपने निरीक्षण के लिये नियत करे; तथा वह कार्यालय के प्रभारी व्यक्ति से ऐसे प्रश्न पूछे या ऐसी टिप्पणी करे जो वह आवश्यक समझे और ऐसी सूचना मांगे जिसकी आकांक्षा उसे हो किसी ऐसे लेखा या प्रतिवेदन को तैयार करने के लिये जिसको तैयार करना उसका कर्तव्य है।

खण्ड-18 के उपखण्ड (2) में कार्यालय के प्रभारी व्यक्ति के लेखापरीक्षण के संबंध में उसके कर्तव्यों का विवरण दिया गया है। इस उपखण्ड के अनुसार किसी कार्यालय या विभाग, जिसके लेखाओं का निरीक्षण और लेखापरीक्षण नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा किया जाना है, का प्रभारी व्यक्ति ऐसे निरीक्षण के लिये सभी सुविधाएं जुटायेगा और सूचना उपलब्ध कराने संबंधी किये गये अनुरोधों का अनुपालन जहां तक संभव हो वहां तक उतने पूर्ण रूप में एवं यथोचित शीघ्रता के साथ करेगा।

10. खण्ड- 19- अधिनियम का खण्ड-19 सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। खण्ड के उपखण्ड (1) व (2) के अनुसार सरकारी कम्पनियों तथा संसद द्वारा या उसके द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अंतर्गत स्थापित निगमों के लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां उसके द्वारा क्रमशः कम्पनी अधिनियम, 1956 व विशिष्ट विधायनों के प्रावधानों के अनुसार सम्पादित और प्रयोग की जायेगी। खण्ड के उपखण्ड (3) में यह प्रावधान किया गया है कि किसी राज्य का राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र का प्रशासक नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक से राज्य या संघ-राज्यक्षेत्र के विधानमण्डल, जैसा कि मामला हो, द्वारा बनायी गयी किसी विधि के द्वारा स्थापित की गयी किसी निगम के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये अनुरोध कर सकता है और जहां पर ऐसा अनुरोध किया गया है, वहां पर नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक ऐसी निगम के लेखाओं का लेखापरीक्षण करेगा तथा उसकी बहियों व लेखाओं तक उसके पास पहुंच का अधिकार होगा।

खण्ड-19 क- अधिनियम के खण्ड-19क का सरोकार सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखाओं के संबंध में प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किये जाने के साथ है। इस अधिनियम के उपखण्डों (1), (2) व (3) के अनुसार किसी सरकारी कम्पनी या किसी निगम के लेखाओं के संबंध में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के प्रतिवेदन संबंधित सरकार या सरकारों को प्रस्तुत किये जायेंगे। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार उनके द्वारा प्राप्त प्रत्येक प्रतिवेदन, उसके प्राप्त होने के उपरांत यथाशीघ्र, को क्रमशः संसद के प्रत्येक सदन और राज्य विधानमण्डल के समक्ष रखवायेंगे।

11. खण्ड-20- अधिनियम का खण्ड- 20 कतिपय प्राधिकरणों या निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण किये जाने से संबंधित है। इस खण्ड के उपखण्ड (1) के अनुसार जहां पर किसी निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण संसद द्वारा बनायी गयी किसी विधि द्वारा या उसके अंतर्गत नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को सौंपा नहीं गया है, वहां पर यदि उस से राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, के द्वारा ऐसा करने का अनुरोध किया गया है तो वह ऐसे निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण ऐसे निबंधनों व शर्त्तों पर करेगा जो उसके और संबंधित सरकार के मध्य सहमत की गयी हो। खण्ड के उपखण्ड (2) में यह प्रावधान किया गया है कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को यह प्रस्तावित कर सकता है कि उसे किसी ऐसे निकाय या प्राधिकरण, जिसके लेखाओं का लेखापरीक्षण करना उसे विधि द्वारा सौंपा नहीं गया है, के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये प्राधिकृत किया जाये यदि उसका अभिमत है कि ऐसा लेखापरीक्षण आवश्यक है, क्योंकि केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के सरकार द्वारा उस निकाय या प्राधिकरण में पर्याप्त धनराशि निवेश की गयी है या उसे उधार दी गयी है और ऐसा अनुरोध किये जाने पर राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक, जैसा कि मामला हो, ऐसे निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये प्राधिकृत किया जा सकता है। खण्ड का उपखण्ड (3) यह प्रदान करता है कि उक्त किसी निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं

का लेखापरीक्षण करने के लिये नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को तभी प्राधिकृत किया जा सकता है। यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को यह समाधान हो गया है कि लोक हित में ऐसा करना समीचीन होगा और ऐसे लेखापरीक्षण के प्रस्ताव के संबंध में अभ्यावेदन करने के लिये संबंधित निकाय या प्राधिकरण को यथोचित अवसर दे दिया गया है।

22.7 नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा निभायी जा रही भूमिका का आंकलन

नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक राष्ट्र के लेखापरीक्षक के रूप में कार्य कर रहा है और उसके कार्य को दिशा-निर्देशित करने वाले मूलभूत मूल्य स्वतंत्रता, वस्तुनिष्ठता, सच्चरित्रता, विश्वसनीयता, व्यावसायिक उत्कृष्टता, पारदर्शिता एवं सकारात्मक दृष्टिकोण हैं। वह शासन के तीनों स्तरों- संघ, राज्य व स्थानीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों; तथा संघ व राज्य सरकारों द्वारा वित्त-पोषित स्वायत्त निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने और सम्बद्ध गतिवधियों को करने के लिये उत्तरदायी है। वह अपने कामों के माध्यम से लेखापरीक्षण संबंधी कार्यों में उत्कृष्टता के तत्व को सुनिश्चित करने और सुशासन की कार्यप्रणालियों का समर्थन करने हेतु प्रयास करता है। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कार्यालय की विस्तृत संगठनात्मक संरचना उसकी सहायता उसके नियत कार्यों को प्रवीणतापूर्वक कर सकने में करती है।

नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की देश की लोकतांत्रिक रूपसंरचना में अपूर्व स्थिति है। वह लोक प्राधिकारियों के संबंध में वित्तीय मामलों में प्रहरी की भूमिका निभाता हैं जिसके द्वारा वह यह सुनिश्चित करता है कि वे संविधान, विधियों एवं नियमों के अधीन रहकर वित्तीय कार्यों को कर रहे है। एक ओर वह लोक प्राधिकारियों की वित्तीय गतिविधियों पर प्रत्यक्ष निरोध रखता है तो दूसरी ओर वह संसद एवं राज्य विधानमण्डलों की सहायता उन पर वित्तीय नियंत्रण रखने में करता है। संसद एवं राज्य विधानमण्डलों की लोक लेखा समिति एवं लोक उपक्रम समिति, जोकि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के लेखापरीक्षण के प्रतिवेदनों का परीक्षण उनके संसद/राज्य विधानमण्डल में प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् करते हैं, का सुचारू कार्यकरण नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की सहायता से ही संभव हो पाता है। यथार्थता में उसे इन समितियों का मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक कहा जाता है।

लोक प्राधिकारियों के वित्तीय मामलों के संबंध में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा किये जा रहे बाह्य लेखापरीक्षण, जिसमें व्यापक तौर पर वित्तीय लेखापरीक्षण, निष्पादन लेखापरीक्षण और अनुपालन लेखापरीक्षण सम्मिलित होते हैं, का विस्तार-क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और उसको निर्धारित करने का अनन्य प्राधिकार उसके पास है। लेखापरीक्षण से संबंधित सभी मामलों में निर्णय लेने का अंतिम प्राधिकार उसके पास होता है। सरकारें लेखापरीक्षण से संबंधित मामलों में उस से अनुरोध तो कर सकती है, परन्तु उसको कोई निर्देश जारी नहीं कर सकती है। लेखापरीक्षण का कार्य पूर्ण होने के उपरांत वह संघ और राज्यों के लेखाओं से संबंधित लेखापरीक्षण के प्रतिवेदनों को संविधान के अनुच्छेद-151 में किये गये प्रावधान के अनुसार क्रमशः राष्ट्रपति एवं राज्यपाल को प्रस्तुत करता है और फिर इन प्रतिवेदनों को क्रमशः संसद व राज्य विधानमण्डलों के समक्ष रखा जाता है। इन प्रतिवेदनों के माध्यम से विगत वर्षों के दौरान अनेक वित्तीय अनियमिततायें तथा घोटाले सामने आये है। यह तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक देश में वित्तीय प्रबंधन की स्थिति को सुधारने में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है, परन्तु कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो लेखापरीक्षण के कार्य को चुनौतीपूर्ण बना रहे हैं। इन मुद्दों में से कुछ मुद्दे हैं, जैसे कि लेखापरीक्षण के निष्कर्षों की अधिक नकारात्मक प्रवृत्ति का होना, वित्तीय अनियमितताओं के घटने और लेखापरीक्षण के माध्यम से उनके पकड़ में आने के बीच समय का काफी अंतराल होना, सरकारों द्वारा लेखापरीक्षण के निष्कर्षों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाना, लेखापरीक्षकों के साथ लोक कार्मिकों का प्रायः कम सहयोगपूर्ण रवैया होना आदि।

अभ्यास प्रश्न-

1. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्ते) अधिनियम के खण्ड..............में संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किये जाने संबंधी उपबंध किये गये हैं।
2. ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान लेखापरीक्षक का पद कब अस्तित्व में आया?
3. स्वतंत्र भारत के प्रथम नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक कौन थे?
4. संविधान के अनुच्छेद- 148 (1) में यह प्रावधान किया गया हैं कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जायेगा जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। सत्य/असत्य
5. भारत सरकार (लेखापरीक्षण और लेखा) आदेश कौन से वर्ष में जारी किया गया था?

   क. 1936 ख. 1938

   ग. 1940 घ. 1942

22.8 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आपको यह ज्ञात हो चुका है कि भारत में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक लेखापरीक्षण के तंत्र का सर्वोच्च प्राधिकारी होता है। इस पद का अस्तित्व ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान हुआ और समय के साथ इस की स्वतंत्र स्थिति सुदृढ़ होती गयी। संविधान के प्रभावी होने के साथ ही यह पद संवैधानिक हो गया। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा वित्तीय मामलों में लोक प्राधिकारियों के संबंध में जो भूमिका निभायी जा रही है, वह एक प्रकार से प्रहरी की तरह होती है। वह लोक लेखा समिति एवं लोक उपक्रम समिति का मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक होता है। उसके प्रतिवेदन समय-समय पर वित्तीय अनियमितताओं तथा घोटालों को प्रकाश में लाते रहे हैं। इस इकाई का अध्ययन करने से आपका मनन नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के बारे गहन हो सकता है।

22.9 शब्दावली

लोक निगम- लोक या संविधिक निगम लोक उद्यम का वह प्रकार होता हैं जो संसद या राज्य विधानमंडल के किसी विशेष अधिनियम के द्वारा स्थापित किया जाता है। लोक निगम की शक्तियां एवं कार्य सुस्पष्ट होते है और उसके कार्यकरण में स्वायत्ता होती है।

सरकारी कम्पनी- कम्पनी अधिनियम, 2013 की अनुच्छेद- 2 (45) के अनुसार सरकारी कम्पनी वह कम्पनी होती है, जिसकी प्रदत्त अंश पूंजी का कम से कम 51 प्रतिशत केन्द्र सरकार के द्वारा, या किसी राज्य सरकार या किन्हीं राज्य सरकारों के द्वारा, या आंशिक रूप से केन्द्र सरकार के द्वारा तथा आंशिक रूप से एक या अधिक राज्य सरकारों के द्वारा धारण किया जाता है और इसमें वह कम्पनी सम्मिलित होती हैं जो ऐसी किसी सरकारी कम्पनी की सहायक कम्पनी होती है।

स्वायत्त निकाय- स्वायत्त निकाय एक प्रकार से स्व-शासी निकाय होता है, जिसके पास अपने नियमों को बनाने व अपने कार्यकलापों का प्रंबधन करने की स्वतंत्रता होती है।

22.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. खण्ड-10, **2.** वर्ष 1858, **3.** वी0 नरहरि राव, **4.** सत्य, **5.** क

22.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी, अमरेश्वर एवं श्रीराम महेश्वरी, (1994) *Public Administration*, बीसवां संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. कारपोरेट कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, (2013) कम्पनी अधिनियम।
3. www.mca.gov.in/Ministry/pdf/CompaniesAct2013.pdf
4. भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, नई दिल्ली, पूर्व नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक।
5. https://www.cag.gov.in/former-cag
6. http://www.cag.gov.in/former-cag?page=1
7. भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, नई दिल्ली, (जनवरी 2014) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम,1971 पर विवरणिका।
8. https://www.cag.gov.in/sites/default/files/cag_pdf/DPC2014new.pdf
9. भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, नई दिल्ली, हमारा मिशन, दृष्टि और मूल्य।
10. https://www.cag.gov.in/hi
11. राष्ट्रपति सचिवालय, राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली, (जुलाई 26, 1979) वरीयता तालिका।
12. https://mha.gov.in/sites/default/files/table_of_precedence.pdf
13. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

22.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) *Indian Public Administration: Institutions and Issues*, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली
2. द्वितीय प्रशासनिक आयोग, भारत सरकार, (अप्रैल 2009) चौदहवां प्रतिवेदनः वित्तीय प्रबंधन प्रणाली को मजबूत बनाना, नई दिल्ली।
3. लाल, जी. एस., (जनवरी 1987) *Public Finance and Financial Administration in India*, एच. पी. जे. कपूर, नई दिल्ली
4. सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई.पी.ए.-05, वित्तीय प्रशासन, 7- लेखा और लेखापरीक्षण, नई दिल्ली।

22.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पद के विकास को समझाईये।
2. नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की सेवा-शर्तो का वर्णन कीजिये।
3. नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्यों एवं शक्तियों की विवेचना कीजिये।

इकाई- 23 सार्वजनिक उपक्रमों का वित्तीय प्रशासन

इकाई की संरचना

23.0 प्रस्तावना
23.1 उद्देश्य
23.2 सार्वजनिक उपक्रम का अर्थ
    23.2.1 सार्वजनिक उपक्रमों की विशेषताएं
23.3 सार्वजनिक उपक्रमों के रूप
23.4 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन
23.5 निष्कर्ष
23.6 सारांश
23.7 शब्दावली
23.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
23.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
23.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
23.11 निबन्धात्मक प्रश्न

23.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन का एक सार्थक गुण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सरकार का आर्थिक क्षेत्र में बढ़ता हुआ हस्तक्षेप है। इस प्रकार के हस्तक्षेप के तीन प्रमुख प्रकार हैं, जैसे- नियोजित अर्थव्यवस्था का शुभारंभ, लोक वित्त में जोड़-तोड़ तथा सार्वजनिक उपक्रमों का प्रशासन। सार्वजनिक उपक्रमों के स्वामित्व, प्रचलन और विनियमन में सरकारी हस्तक्षेप ने सकारात्मक रूप ले लिया है। आज सार्वजनिक सेवाओं का रूप व्यापक और विविध प्रकार का हो गया हैI सार्वजनिक उपक्रमों ने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति में सशक्त भूमिका निभाई है। सार्वजनिक उपक्रम अर्थव्यवस्था के कुछ गंभीर अंतराल को पाटने में सहायक हुए हैं- चाहे वे राज्य उद्यमों के लिए आरक्षित क्षेत्रों में हो अथवा क्षेत्रों में हो जिन में निजी पूंजी या उद्यम आकर्षित नहीं हो सकते। इन सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन की भी अपनी महत्ता होती है। सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबंध में वित्तीय प्रशासन एक महत्वपूर्ण कार्यात्मक क्षेत्र है। सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन का अर्थ होता है सार्वजनिक उपक्रमों के वित्त का प्रबंध। वित्तीय प्रशासन की एक विश्वस्त प्रणाली, सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय नीतियों को प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन करने के लिए आवश्यक होती है।प्रस्तुत अध्याय में सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

23.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सार्वजनिक उपक्रमों के अर्थ को भलीभांति समझ पाएंगे।
- सार्वजनिक उपक्रमों की विशेषताएं एवं उनके विभिन्न रूपों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन के बारे में जान पाएंगे।

23.2 सार्वजनिक उपक्रम का अर्थ

सार्वजनिक उपक्रम भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र गामी विकास की वृद्धि दर के प्रमुख निर्धारक है। पिछले लगभग चार दशकों में इन्होंने सुनियोजित, त्वरित तथा आत्मनिर्भर आर्थिक उन्नति में अहम भूमिका निभाई है। भारत में सार्वजनिक उपक्रमों का संबंध विभिन्न क्रियाकलापों से है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनका संबंध ऋण देने, व्यापार के नियमन, विकास कार्यों के संगठन, भारी मशीनरी, मशीनों के पुर्जो, यंत्रों, विद्युत यंत्रों, रसायनों, औषधियों के निर्माण, खाद्य उर्वरकों के उत्पादन, तेल एवं कच्चे तेल शोधक, इस्पात एवं अन्य धातुओं का निर्माण, दुग्ध उत्पादन एवं वितरण, व्यापार, बाजार, होटल उद्यम आदि से है।

जैसा कि आपको ज्ञात होगा भारत एक मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला देश है जहां सामाजिक-आर्थिक विकास में सरकार के साथ-साथ निजी क्षेत्र का भी योगदान सुनिश्चित किया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में पूर्ण समाजवादी अर्थव्यवस्था अथवा पूर्ण निजी करण का स्पष्ट रास्ता अपनाने की अपेक्षा मध्यम मार्गी नीति धारण करना उचित माना। इस निर्णय के अनुसरण में सरकारी उद्योगों या लोक उपक्रमों की स्थापना एवं प्रसार होने लगा। सन 1954 में तत्कालीन कांग्रेस पार्टी ने समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया, जिसे 42वें संविधान संशोधन(1 976) के माध्यम से संविधान की प्रस्तावना में स्थान दिया गया है। वस्तुतः भारतीय समाजवाद एक विशिष्ट प्रकार का 'प्रजातांत्रिक समाजवाद' है।

संविधान का अनुच्छेद-39 यह प्रावधान करता है कि "राज्य का कर्तव्य है कि वह अपनी नीति इस प्रकार निर्देशित करें कि देश के भौतिक साधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण तथा वितरण में सामान्य हितों का संवर्धन हो और आर्थिक प्रणाली के संचालन के फल स्वरुप जनहित के विरुद्ध संपत्ति एवं उत्पादन के साधनों का केंद्रीकरण नहीं हो।" इसी संदर्भ में उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण कर लोक उपक्रम स्थापित किए जा रहे हैं। सामान्यतया राष्ट्रीयकरण से आंखें उस व्यवस्था से है जिसमें भूमि, संसाधन तथा उद्योग इत्यादि का नियंत्रण तथा स्वामित्व राष्ट्र के हाथों में कर दिया जाता है।

लोक उपक्रम वह सरकारी संगठन या संस्थान होते हैं जो सरकार के सामान्य विभागों से पृथक प्रकृति के होते हैं। सरकार द्वारा संचालित चिकित्सालय या महाविद्यालय लोक उपक्रम नहीं है, बल्कि सरकार द्वारा वस्तु उत्पादन, ऊर्जा उत्पादन, वित्तीय लेनदेन तथा अन्य व्यापारिक गतिविधियों से संलग्न संगठन लोक उपक्रम कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जब सरकार वाणिज्यिक, व्यापारिक, औद्योगिक, कृषि तथा अन्य विशिष्ट सेवाओं का संचालन करती है, तब ऐसे संगठन स्थापित करती है जो सरकारी तंत्र के मूल ढांचे से पृथक रहकर स्वतंत्रता पूर्वक अपना कार्य संपादित करते हैं तो वे लोक उपक्रम कहलाते हैं। इस कार्यप्रणाली को 'Public Sector' के नाम से भी पुकारा जाता है।

"लोक उद्योग" के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे- सार्वजनिक उपक्रम, राजकीय उपक्रम, सार्वजनिक उपक्रम, सरकारी उद्योग, राष्ट्रीयकृत उद्योग आदि।

खेरा ने सार्वजनिक उपक्रम की व्यापक परिभाषा की। उनके अनुसार, "सार्वजनिक उपक्रम से आशय औद्योगिक, व्यापारिक एवं आर्थिक क्रियाओं से है जो केंद्रीय या राज्य सरकारों द्वारा सामूहिक रूप से संपादित की जाती है तथा प्रत्येक मामले में स्वयं या निजी उद्यम के सहयोग से पूर्ण प्रबंध के अधीन होती है।"

ए.एच. हेन्सन के अनुसार, "लोक उद्योग का आशय सरकार के स्वामित्व में संचालित औद्योगिक, कृषि, वित्तीय एवं वाणिज्य तथा व्यापारिक इकाइयों से है।"

एन. एन. माल्या के अनुसार, "लोक उपक्रमों से अभिप्राय सरकारी स्वामित्व में स्थापित तथा नियंत्रित ऐसी स्वायत्तशासी या अर्ध-स्वायत्तशासी कंपनियों तथा निगमों से है जो औद्योगिक तथा वाणिज्य क्रियाओं में संलग्न है।"

लोकसभा सचिवालय के दस्तावेज अनुसार, "लोक उपक्रम का अर्थ ऐसे संगठन से है, जिसका व्यक्तित्व कानून द्वारा निर्धारित हो और जिसकी स्थापना संविधि या उसके किसी प्रावधान के अधीन सरकार की ओर से किसी औद्योगिक, व्यापारिक या आर्थिक प्रतिष्ठान या विशेष सेवा का अधिग्रहण लोकहित में किया गया हो तथा एक बड़ी मात्रा में उसे वित्तीय या प्रशासनिक स्वतंत्रता प्राप्त हो।"

23.2.1 सार्वजनिक उपक्रमों की विशेषताएं

सार्वजनिक उपक्रमों की निम्नांकित विशेषताएं हैं-

1. सार्वजनिक उपक्रम का प्रबंध सरकार अथवा किसी सार्वजनिक सत्ता के द्वारा किया जाता है।
2. लोक उपक्रमों का नियंत्रण भी सरकार या किसी लोकसत्ता द्वारा किया जाता है।
3. लोक उपक्रम या तो सरकार की पूंजी से संचालित होते हैं या कुल पूंजी में सरकार का हिस्सा सर्वाधिक होता है।
4. लोक उपक्रम सरकार के किसी विधान द्वारा स्थापित किए जाते हैं।
5. लोक उपक्रमों का कार्य क्षेत्र व्यापारिक, वाणिज्यिक,वित्तीय, कृषि, औद्योगिक या आर्थिक प्रकृति से संबंधित होता है।
6. सार्वजनिक उपक्रम अपने दैनिक प्रशासनिक कार्यों में सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त रहते हैं।
7. इनकी कार्य प्रकृति में प्रशासनिक तत्वों के बजाय प्रबंध के तत्वों का अधिकतम आवेश रहता है।
8. यह उद्योग व्यापारिक प्रकृति के होते हुए भी मूलतः लाभ कमाने के उद्देश्य से स्थापित नहीं किए जाते हैं, बल्कि जनहित में सरकार के दायित्वों का निर्वहन करते हैं।
9. सार्वजनिक उपक्रमों को वित्तीय एवं कार्य संचालन के अधिकांश मामलों में स्वायत्तता प्राप्त होती है।

इन सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन को विस्तार से समझने से पूर्व आइए सार्वजनिक उपक्रम के विभिन्न रूपों के बारे में भी थोड़ा जान लें।

23.3 सार्वजनिक उपक्रमों के रूप

अपने उद्देश्यों, कार्यों तथा प्रकृति के आधार पर लोक उपक्रम कई प्रकार के हो सकते हैं।
खेरा ने स्वामित्व के आधार पर सार्वजनिक उपक्रमों की समीक्षा की है। उन्होंने उसे चार प्रकारों में विभाजित किया है-

- केंद्रीय शासन के उद्यम, जैसे- हिंदुस्तान स्टील, भारतीय स्टेट बैंक, जीवन बीमा निगम।
- राज्य शासन के उद्यम, जैसे- विद्युत मंडल एवं राज्य यातायात निगम।
- उद्यम जो केंद्रीय एवं राज्य सरकारों के संयुक्त स्वामित्व में हैं, जैसे- दामोदर घाटी निगम एवं भाखरा-नांगल योजना।
- उद्यम जो शासन एवं निजी प्रतिष्ठानों के सहयोग से स्थापित किए जाते हैं, जैसे- सिंगरेनी खदान एवं ऑयल इंडिया लिमिटेड।

विलियम रॉब्सन ने सार्वजनिक उपक्रमों को उनके उद्देश्य प्रकृति की दृष्टि से निम्नलिखित 7 भागों में विभाजित किया है-

- सार्वजनिक उपयोग के उपक्रम- जल, गैस तथा विद्युत संयंत्र इत्यादि।
- यातायात एवं संचार संबंधित- रेलवे, हवाई, जहाजरानी, डाक एवं तार आदि।

- बैंकिंग, साख एवं बीमा संबंधी- जीवन बीमा निगम तथा राष्ट्रीय कृत बैंक।
- बहुउद्देशीय विकास योजनाएं- भारत में दामोदर घाटी निगम तथा अमेरिका में तेनेसी घाटी परियोजना।
- आधारभूत उद्योग- कोयला, खनन, लोहा, स्टील तथा तेल उत्पादन से संबंधित जैसे- कोल इंडिया लिमिटेड, सेल तथा ओ.एन.जी.सी. इत्यादि। ऐसे उद्योग निजी स्वामित्व से लेकर राष्ट्रीय कृत भी किए जाते हैं।
- नवीन उद्योग या सेवाएं- राष्ट्रीय परियोजना निर्माण निगम लिमिटेड, तथा भारतीय खाद्य निगम।
- सांस्कृतिक गतिविधियों संबंधी- भारतीय प्रसारण निगम(प्रसार भारती) तथा राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम इत्यादि।

स्वामित्व के आधार पर भी लोक उपक्रम कई वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं-

- केंद्र सरकार के उपक्रम- भारतीय स्टेट बैंक, हिंदुस्तान मशीन टूल्स तथा राष्ट्रीय खनिज विकास निगम लिमिटेड इत्यादि।
- राज्य सरकार के उपक्रम- राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम, हरियाणा राज्य खनिज विकास निगम तथा उत्तर प्रदेश वित्त निगम आदि।
- केंद्र एवं राज्य के संयुक्त उपक्रम- नाथपा- झाकरी पावर निगम लिमिटेड (केंद्र तथा हिमाचल प्रदेश सरकार का संयुक्त उपक्रम) टिहरी हाइड्रो इलेक्ट्रिक डेवलपमेंट निगम लिमिटेड (केंद्र तथा उत्तर प्रदेश सरकार) तथा स्पंज आयरन लिमिटेड (केंद्र तथा आंध्रप्रदेश सरकार)।
- सरकारी एवं निजी क्षेत्रों के संयुक्त उपक्रम- मारुति उद्योग लिमिटेड (केंद्र सरकार तथा जापान की सुजुकी मोटर कंपनी का संयुक्त उपक्रम) तथा लुब्रिजोल इंडिया लिमिटेड (केंद्र सरकार तथा अमेरिकी कंपनी का संयुक्त उपक्रम)।
- केंद्र, राज्य तथा निजी क्षेत्रों के संयुक्त उपक्रम भी होते हैं।
- राज्य सरकार तथा निजी क्षेत्रों के संयुक्त उपक्रम भी हो सकते हैं।
- दो या अधिक राज्य सरकारों के उपक्रम भी संयुक्त उपक्रम कहलाते हैं।

वस्तुतः यह वर्गीकरण विनियोग तथा स्वामित्व के आधार पर होता है। लोक उपक्रमों में 51प्रतिशत या तुलनात्मक रूप से अधिक पूंजी सरकार अर्थात मुख्य स्वामित्वधारी की होती है।
स्थापना के वैधानिक आधार पर लोक उपक्रम चार प्रकार के होते हैं-

- विभागीय उपक्रम- जो सरकारी विभागों की मूल संरचना के ही एक भाग होते हैं, जैसे- रेलवे, डाक तथा तार इत्यादि।
- निगम- जिनकी स्थापना केंद्र या राज्य विधायिका द्वारा पारित एक विशेष अधिनियम के द्वारा की जाती है, जैसे- दामोदर घाटी निगम तथा भारतीय जीवन बीमा निगम इत्यादि।
- सरकारी कंपनी- जब किसी लोक उपक्रम की स्थापना भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत की जाती है, जैसे- हिंदुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड, तथा हिंदुस्तान कॉपर लिमिटेड इत्यादि।
- सहकारी संस्था- जब किसी लोक उपक्रम की स्थापना सहकारी संगठन के रूप में की जाती है (सभी सहकारी संस्थाएं लोक उपक्रम नहीं होती), जैसे- इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर कोऑपरेटिव, कृषक भारती को-ऑपरेटिव तथा नेशनल हेवी इंजीनियरिंग कोऑपरेटिव लिमिटेड इत्यादि।

कुछ विद्वान लोक उपक्रमों को एक श्रेणी में रखते हैं तथा प्रशासनिक कार्य आधार को विवश करते हैं, जैसे-

- प्रशासनिक विभाग- सरकार के वित्तीय कार्यों (कर एकत्रीकरण), रक्षा कार्य, पुलिस, जेल, विदेश, सामुदायिक सेवा, शिक्षा, चिकित्सा, परिवहन तथा कृषि से संबंधित विभाग में सम्मिलित हैं।
- वाणिज्यिक विभाग- सरकारी स्वामित्व एवं नियंत्रण में लगे उत्पादन या सेवा कार्य के संस्थान, जैसे- रेलवे, संचार, सिंचाई, दूध वितरण, आयुध फैक्ट्री तथा विद्युत मंडल इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं।
- लोक उपक्रम- सरकारी क्षेत्र के वे उपक्रम जो कंपनी अधिनियम या किसी पृथक विधान के अंतर्गत पंजीकृत है। जिनमें सरकार की 51 प्रतिशत या अधिक पूंजी लगी हुई है; जैसे- तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम तथा भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेडI

यद्यपि कार्य, उद्देश्य, क्षेत्र, प्रकृति तथा स्वामित्व के आधार पर लोक उपक्रम कई प्रकार के हो सकते हैं, किंतु संगठनात्मक आधार पर तीन प्रकार के लोक उपक्रम अधिक प्रचलित हैं- विभागीय संगठन, लोक निगम तथा सरकारी कंपनी।

23.4 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन

सार्वजनिक उपक्रमों के अर्थ परिभाषा एवं विभिन्न प्रारूपों को जानने के बाद आइए अब सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन को समझने का प्रयास करते हैं। सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन को विभिन्न विचारधाराओं के द्वारा समझा जा सकता है। परंपरागत दृष्टिकोण की एक विचारधारा के अनुसार सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन का अर्थ होता है उन उपक्रमों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन एकत्रित करना। साधारण शब्दों में इसका अभिप्राय यह है कि सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन को इन उपक्रमों के द्वारा वित्त एकत्र करने के तरीकों एवं साधनों तक ही सीमित मान लिया गया है। आज इस बदलते परिवेश में वित्तीय प्रशासन को यदि वित्त एकत्र करने एवं वित्तीय संसाधनों के समन्वय तक ही सीमित कर दिया जाएगा तो यह उचित नहीं होगा। आज वित्तीय प्रशासन वित्त एकत्र करने के इस कार्य से कहीं आगे निकल चुका हैI दूसरी विचारधारा यह कहती है की सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन केवल नकद प्रबंधन से संबंधित ही होता है। अर्थात यह विचारधारा यह मानकर चलती है कि इन सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा संपादित की जाने वाली ऐसी समस्त गतिविधियां जो इन उपक्रमों में नकद प्रवाह को प्रभावित करती है वह सब इन उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन के अंतर्गत आती हैं। यह विचारधारा सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन के एक व्यापक दृश्य को दर्शाती है। सार्वजनिक उपक्रमों में व्यापक स्तर पर ऐसी गतिविधियां संपादित की जाती है, जिनको नकद प्रबंधन से संबंधित किया जा सकता है। कुछ विचारकों का ऐसा मानना है कि सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन गतिविधियों का एक ऐसा समूह है जो वित्त एकत्र करने, विभिन्न उद्देश्यों के लिए उसके आवंटन एवं उनके वित्तीय निष्पादन की देखरेख से संबंधित होता है।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि अन्य सभी उपक्रमों की भांति सार्वजनिक उपक्रमों में भी वित्तीय प्रशासन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सार्वजनिक उपक्रमों की सफलता के लिए एक अच्छे वित्तीय प्रशासन की महत्ता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। सार्वजनिक उपक्रमों की सफलता ना केवल वित्तीय बल्कि उसके साथ साथ गैर-वित्तीय प्रशासकों के मध्य एक स्वस्थ अंतः क्रिया पर निर्भर करती है। ऐसा एक सामान्य मत है कि सार्वजनिक उपक्रमों में विभिन्न अधिकारियों के द्वारा वित्त का कार्य अधिक पसंद नहीं किया जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम भी लाभांश, ब्याज, कॉर्पोरेट कर, उत्पाद शुल्क आदि के भुगतान के माध्यम से केन्द्र सरकार के संसाधनों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त योगदान दे रहे हैं, से देश के नियोजित विकास के लिए वित्तीय जरूरतों को पूरा करने हेतु धन जुटाने में सहायता मिल रही है।

भारत सरकार ने 1901 सत्र में यह तय कर लिया था कि वित्तपोषण में1:1 का रेंट इक्विटी अनुपात होगा। हार नए प्रॉजेक्ट का आधा निवेश इक्विटी पूंजी में और आधा हिस्सा कर्ज़ में होगा। पूंजीगत व्यय के बारे में निर्णय में कई संगठन शामिल होते हैं- उपक्रम के निदेशक मंडल, प्रशासनिक मंत्रालय, सार्वजनिक निवेश बोर्ड (पी.आई.बी.), योजना आयोग, वित्त मंत्रालय, सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो (बी.पी.ई.), तथा (डी.जी.टी.बी.)

हर पूंजीगत व्यय प्रस्ताव पर पहले संबंधित उद्यम के निदेशक मंडल स्तर पर चर्चा की जाती है। बोर्ड केवल एक मिश्रित राशि तक ही निर्णय ले सकता है। बोर्ड द्वारा अधिक निवेश की आवश्यकता वाले प्रस्तावों की संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय को सिफ़ारिश की जाती है। इसके बाद मंत्रालय में एक उचित अध्ययन के बाद प्रस्ताव को शामिल लागत के आधार पर या तो सार्वजनिक निवेश बोर्ड या परियोजना मूल्यांकन प्रभाग को भेजा जाता है। परियोजना मूल्यांकन प्रभाग रुपये की आवश्यकता वाले प्रस्तावों का मूल्यांकन करता है। इस स्तर पर प्रस्ताव के विभिन्न पहलुओं, जैसे- तकनीकी, वित्तीय, आर्थिक, प्रबंधकीय लाभप्रदता आदि का मूल्यांकन किया जाता है। मंत्रालय स्तर पर जाँच के बाद प्रस्ताव को योजना से संबंधित आयोग की निवेश योजना समिति के पास भेजा जाता है। सलाहकार भी प्रस्ताव की जाँच करते हैं और फिर इसे पाँच वर्षीय योजना में शामिल करने की सिफ़ारिश की जाती है।

वित्त मंत्रालय को विभिन्न योजनाओं के लिए धन जुटाना पड़ता है। वित्त मंत्रालय के तहत व्यय विभाग में नागरिक व यह प्रभाग और सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो सार्वजनिक उद्यमों के प्रस्तावों की जाँच में लगे रहते हैं। जब तक व्यय विभाग के द्वारा मंजूरी नहीं दी जाती है तब तक प्रशासनिक मंत्रालय कोई खर्च नहीं कर सकता है। तकनीकी विकास महानिदेशालय प्रशासनिक मंत्रालयों को तकनीकी सलाह प्रदान करता है। विदेशी सहयोग के मामले में, विदेशी मुद्रा बोर्ड से भी संपर्क किया जाता है। बड़े निवेश निर्णयों के लिए संसद की मंजूरी भी आवश्यक होती है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा उचित बजट प्रणाली का विज्ञापन किया जाता है। वे राजस्व बजट, पूंजीगत व्यय बजट, नकद बजट आदि प्रकार के बजट तैयार करते हैं। राजस्व बजट चालू वर्ष और अगले वर्ष के लिए एक अनुमानित लाभ और हानि का खाता होता है। यह उत्पादन अनुमान, बिक्री अनुमान, उत्पादन बजट की लागत, क्षमता उपलब्धता बजट तथा व्यय अनुमान आदि पर आधारित होता है। पूंजीगत व्यय बजट भविष्य के पूंजीगत व्यय निर्णयों का पूर्वानुमान लगाने के लिए तैयार किया जाता है। भविष्य की अवधि के लिए विस्तार, विविधीकरण योजनाओं आदि का पालन किया जाता है। नकद बजट नकदी पैदा करने और उपयोग करने के अनुमानों पर आधारित होता है। नकद बजट राजस्व बजट में दिखाए गये खर्चों और आय को ध्यान में रखता है। अधिकांश उपक्रम अपने उपयोग के लिए स्वयं बजट तैयार करते हैं। लेकिन रेलवे, एल. आई. सी., ओ. एन. जी. सी. आदि जैसे उपक्रम हर साल संसद में अपना बजट अनुमान प्रस्तुत करते हैं। इस बजट को पहले निदेशक मंडल द्वारा अनुमोदित किया जाता है और फिर प्रशासनिक मंत्रालय के सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो और योजना से संबंधित आयोग को भेजा जाता है।

सार्वजनिक उपक्रमों में बजटीय नियंत्रण प्रणाली का पालन नहीं किया जाता है। एक उचित बजटीय नियंत्रण प्रणाली बजट के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करती है। बजट से किसी भी विचलन की सूचना तुरंत शीर्ष प्रबंधन को दी जाती है। दक्षता सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक उद्यमों में एक व्यवस्थित बजटीय नियंत्रण प्रणाली की आवश्यकता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों द्वारा निर्मित उत्पादों के लिए मूल्य निर्धारण हमेशा से एक समस्या का क्षेत्र ही रहा है। ये इकाइयां पर्याप्त लाभ नहीं कमा रही है और विस्तार आदि के लिए अधिशेष नहीं बनाया गया है। कीमतों के निर्धारण को लेकर हमेशा विवाद रहा है। क्या इन उद्यमों को निजी क्षेत्र की इकाइयों की तरह मुनाफा कमाना चाहिए? क्या उनकी मूल्य संग रचना उपयोगिता अवधारणा का पालन करना चाहिए? सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में प्रशासित मूल्य निर्धारण अर्थात मूल्य, प्रशासन द्वारा निर्धारित किया जाता है ना की माँग और आपूर्ति

की बाजार शक्तियों के द्वारा। मूल्य निर्धारण के कुछ उद्देश्य और सिद्धांत होने चाहिए। यदि कीमतें तर्कसंगत रूप से तैयार नहीं की जाती है तो ये लाभ या हानि का कारण बन सकते हैं। यदि कीमतें बढ़े हुए मुनाफे से अधिक हैं तो इकाई की अक्षमता को छुपाया जाएगा। दूसरी ओर यदि कीमतें कम हैं तो नुकसान हो सकता है और इसके लिए कुशल इकाइयों को दंडित किया जाएगा। कम कीमत इकाइयों को अधिशेष बनाने की अनुमति नहीं देगी जोकि विस्तार और विविधीकरण के आगे वित्तपोषण के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

मूल्य निर्धारण में दो दृष्टिकोण होते हैं, अर्थात सार्वजनिक उपयोगिता दृष्टिकोण और प्रतिफल की दर दृष्टिकोण। सार्वजनिक उपयोगिता दृष्टिकोण 'नो प्रॉफिट नो लॉस' के दृष्टिकोण पर जोर देता है। चूँकि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयां बुनियादी उद्योगों में लगी हुई हैं और उनके उत्पाद अन्य उद्योगों के लिए एक महत्वपूर्ण इनपुट हैं, इसलिए उनकी क़ीमतें कम रखी जानी चाहिए। ऐसी भावना है कि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को कीमतें तय करने में निजी क्षेत्र के पैटर्न का पालन करना चाहिए। हालाँकि, कुछ उपभोक्ताओं या समार्थ के वर्गों के पक्ष में कुछ भेदभाव विचार हो सकते हैं।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों द्वारा क़ीमतें तय करने के लिए कुछ दिशा निर्देश जारी किए, जो इस प्रकार से हैं-

- औद्योगिक और विनिर्माण क्षेत्रों में सार्वजनिक उद्यमों को अधिशेष अर्जित करने का लक्ष्य रखना चाहिए, ताकि वे पूंजी विकास के लिए धन उत्पन्न करने में सक्षम हो।
- कीमतें तय करते समय निजी क्षेत्र की अनुमानित मूल्य और आय नीति को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
- सार्वजनिक उपयोगिता वाली सेवाओं के मामले में उद्देश्य निवेश पर वापसी की दर के बजाय अधिक उत्पादन करना है।
- पी. ई. को अपनी पूरी क्षमता का उपयोग सुनिश्चित करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की लाभप्रदता और दक्षता के बारे में यदि बात की जाए तो ये दोनों एक दूसरे से संबंधित हैं। पिता का सामान ने पैमाना ही लाभप्रदता है। यदि कोई प्रतिष्ठान लाभ अर्जित कर रहा है तो हम उसे लाभदायक कहते हैं और दूसरी ओर यदि कोई लाभ नहीं है तो उसे अकुशल कहा जाएगा। यूनिक उद्यमों के मामले में यह मानदंड लागू नहीं किया जा सकता है। सार्वजनिक उद्यमों का मुख्य उद्देश्य एक सामाजिक कारण की सेवा करना है और लाभप्रदता इसके बाद आती है। इसके अतिरिक्त ये उद्यम उद्योग के विकास के लिए एक बुनियादी ढांचा भी प्रदान कर रहे हैं। इसलिए सामाजिक उद्यमों की दक्षता का आंकलन इसी संदर्भ में किया जाना चाहिए।

लाभ लागत से अधिक अधिशेष है। निजी क्षेत्र में मुख्य उद्देश्य लाभों को अधिकतम करना है। भारत में सार्वजनिक उद्यमों को भी लाभ अर्जित करना चाहिए, क्योंकि उन्हें विकसित देशों की इकाइयों की तुलना में कुछ लाभ मिलते हैं। श्रम लागत जो लागत का एक महत्वपूर्ण तत्व हैं प्रचुर आपूर्ति के कारण भारत में बहुत कम है। सरकार इन उपक्रमों को रियायती धन राशि प्रदान करती है, जिससे उनकी लागत भी कम होनी चाहिए। यहाँ तक की विपणन में भी इन इकाइयों के उत्पादों को सरकारी विभागों द्वारा वरीयता दी जाती है। न केवल उनके विस्तार और विविधीकरण के लिए बल्कि सरकार के योजनागत व्यय के लिए भी पर्याप्त धन राशि के सृजन की तत्काल आवश्यकता है। भारत में सार्वजनिक उद्यम अपनी काम लाभप्रदता के कारण भी आलोचना का शिकार होते हैं। इस काम लाभप्रदता के भी अनेक कारण हैं जो कुछ इस प्रकार से हैं-

1. योजना और क्रियान्वयन चरण के सब मैं प्रारंभिक भारी लागत।
2. सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की लंबी अवधि।

3. बड़ी अप्रयुक्त क्षमता अर्थात स्थापित अक्षमताएं बढ़ी है, लेकिन वास्तविक उपयोग की गई क्षमता बहुत कम है और ओवर हेड खर्च बहुत अधिक है।
4. भारी सामाजिक लागत भी एक कारण है। ये इकाइयां टाउनशिप के निर्माण, कर्मचारियों को शैक्षिक और चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने में भारी मात्रा में खर्च करती है।
5. कम कीमत वाले उत्पाद भी एक कारण है। इन उद्यमों के उत्पादों की कीमतों को जानबूझकर कम रखा जाता है, क्योंकि इनमें से कई उत्पाद अन्य औद्योगिक इकाइयों के लिए इनपुट बन जाते हैं।
6. एक अन्य कारण उच्च व्यय अनुपात भी होता है। इन इकाइयों के खर्चों पर कोई नियंत्रण नहीं है। अन्य क्षेत्रों में भारी नौकरशाही प्रबंधन और अधिक कर्मचारी है।
7. नुकसान प्रबंधन की अक्षमता भी इनके ख़राब प्रदर्शन का कारण माना जाता है।

और इसके अतिरिक्त इन इकाइयों में शीर्ष पदों पर लोक सेवक स्थापित होते हैं। इन संगठनों में पेशी पर लोगों की कमी है। साथ ही इन लोक सेवकों को भी अक्सर स्थानांतरित कर दिया जाता है इसलिए उनकी जवाब देही भी न ही रहती हैं। प्रबंधन की अदक्षता इन इकाइयों में काम लाभप्रदता का एक प्रमुख कारण है।

इन सब तथ्यों के अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में वित्तीय सलाहकार की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका और स्थान होता है। सभी वित्तीय मामलों में उनकी सहमति आवश्यक रही। ये व्यक्ति आम तौर पर अखिल भारतीय लेखा सेवाओं से संबंधित होते थे। इन वित्तीय सलाहकारों की भूमिका हमेशा से विवाद का विषय रही है। यह वित्तीय सलाहकार स्वयं को बाहर का व्यक्ति मानता रहा। पूर्व में इस वित्तीय सलाहकार की नियुक्ति वित् मंत्रालय के द्वारा की जाती थी और निदेशक मंडल का उसमें कोई हाथ नहीं होता था। बुत वित्तीय सलाहकार नियुक्त करने की शक्ति नियंत्रण मंडल के पास है। वह मुख्य कार्यकारी के सलाहकार के रूप में काम करता है। साथ ही वह है उद्यम के सभी वित्तीय मामलों पर सलाह देता है और वह वित् और लेखा विभाग का प्रमुख होता है।

वित्तीय सलाहकार को आम तौर पर निम्नलिखित कार्य सौंपें जाते हैं-

- वित्तीय सहमति प्रदान करना।
- बिलों का भुगतान और उनका लेखा जोखा रखना।
- बिक्री और वाणिज्यिक गतिविधियां।
- लागत लेखांकन, लागत नियंत्रण और प्रबंधन लेखांकन।
- बजट और बजटीय नियंत्रण।
- कर योजना।
- भविष्य निधि उत्पादन निधि आदि के लिए न्यासी।

इसके अतिरिक्त सार्वजनिक उपक्रमों के संबंध में एक इस बात पर भी आम सहमति है कि सरकार को वाणिज्यिक उद्यमों का संचालन नहीं करना चाहिए। इसके कारणों में सार्वजनिक संसाधनों की कमी, मौजूदा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के अक्षम और घाटे में चल रहे संचालन आदि बातें शामिल हैं। उसी के अनुसार, उदारीकरण प्रक्रिया के हिस्से के रूप में, ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सुधार शुरू कर दिए हैं। सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन के संदर्भ में सरकार की नीति के कुछ प्रमुख तत्वों की विवेचना कुछ इस प्रकार से की जा सकती है-

- यदि आवश्यक हो तो सभी गैर-रणनीतिक सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी इक्विटी को 26 प्रतिशत या उससे कम पर लाना।
- संभावित व्यवहार यह सार्वजनिक उपक्रम को प्रतिबंधित और पुनर्जीवित करना।

- कौन सार्वजनिक उपक्रमों को बंद कर देना जिन्हें पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है तथा
- श्रमिकों के हितों की पूरी तरह से रक्षा करना।

23.5 निष्कर्ष

भारत जैसे मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले देश की आर्थिक व्यवस्था में सार्वजनिक उपक्रमों का विशिष्ट स्थान और महत्व है। हमारे संविधान के नीति-सिद्धांतों में सत्ता के विकेंद्रीकरण पर ज़ोर दिया गया है, एकाधिकारी प्रवृति पर रोक लगाने की बात की गई है और आर्थिक नियोजन के लक्ष्यों की प्राप्ति, संतुलित क्षेत्रीय विकास, समाजवादी समाज की रचना, रोजगार के अवसरों में वृद्धि आदि के लिए राज्य को निर्देश दिए गए हैं। इन सब बातों की पूर्ति के लिए, निजी उपक्रम की अकुशलता पर अंकुश लगाने के लिए और सरकारी स्तर पर प्राप्त विदेशी सहायता के समुचित उपयोग के लिए देश में सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना की गई है। सार्वजनिक उद्यम भारत के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में उभरे। सार्वजनिक क्षेत्र हालाँकि सिद्धांत रूप में सही है पर फिर भी उम्मीदों पर खरे नहीं उतरे हैं। इनके उत्पादन की लागत अधिक है, प्रबंधन नौकरशाही है और परंपरा-बाध्य और आयातित तकनीक हमेशा अच्छी तरह से नहीं चुनी जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. सार्वजनिक उपक्रमों के अन्य प्रचलित कोई दो नाम बताइए।
2. विलियम रॉब्सन ने सार्वजनिक उपक्रमों को कितने भागों में विभाजित किया है?
3. क्या सार्वजनिक उपक्रम केंद्र, राज्य तथा निजी क्षेत्रों के संयुक्त उपक्रम भी हो सकते हैं?
4. कंपनी अधिनियम के तहत आने वाले सार्वजनिक उपक्रमों में सरकार की कितनी प्रतिशत पूंजी लगती है?

23.6 सारांश

आजादी से पहले देश के आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की भागीदारी लगभग शून्य थी।1956 की औद्योगिक नीति के बाद ही सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को बढ़ावा मिला। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम वर्तमान में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पिछले कुछ वर्षो में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में निवेश में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम भी लाभांश ब्याज कॉरपोरेट दर उत्पाद शुल्क आदि के भुगतान के माध्यम से केन्द्र सरकार के संसाधनों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त योगदान दे रहे हैं, ताकि देश के नियोजित विकास के लिए वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन जुटाने में सहायता मिले।

23.7 शब्दावली

त्वरित- तीव्र गति वाला, राष्ट्रीयकृत- राष्ट्र का बनाया हुआ, उत्पाद शुल्क- देश में उत्पादित वस्तुओं पर जो शुल्क लगाया जाता है, नियोजित- वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भविष्य की रूपरेखा तैयार करने हेतु आवश्यक क्रियाकलापों के बारे में चिंतन करना नियोजन कहलाता है, अधिशेष- अतिरिक्त, बकाया

23.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लोक उपक्रम और लोक उद्योग, **2.** 7 **3.** हां, **4.** 51 प्रतिशत

23.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी एवं अवस्थी,2016. भारतीय प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी,2014. भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

23.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कटारिया, सुरेंद्र, 2009. भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
2. लेखी, आर. के., 2009 लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

23.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सार्वजनिक उपक्रमों का अर्थ एवं परिभाषाएं स्पष्ट करते हुए सार्वजनिक उपक्रमों के विभिन्न प्रारूपों की विवेचना कीजिए।
2. सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन पर एक निबंध लिखिए।

इकाई- 24 सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय सहायता एवं जवाबदेयता

इकाई की संरचना

24.0 प्रस्तावना

24.1 उद्देश्य

24.2 सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व

24.3 सार्वजनिक उपक्रमों की समस्याएं

24.4 सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा उत्तरदायित्व

- 24.4.1 स्वायत्तता के पहलू
- 24.4.2 पर्याप्त स्वतंत्रता की आवश्यकता
- 24.4.3 उत्तरदायित्व की अवधारणा
- 24.4.4 सार्वजनिक उपक्रमों के उत्तरदायित्व के कारण
- 24.4.5 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करने की पद्धतियां
- 24.4.6 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही की वर्तमान स्थिति

24.5 निष्कर्ष

24.6 सारांश

24.7 शब्दावली

24.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

24.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

24.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

24.11 निबन्धात्मक प्रश्न

24.0 प्रस्तावना

सार्वजनिक क्षेत्र में अथवा सार्वजनिक उद्योगों की निरंतर बढ़ती हुई संख्या, शक्ति, आकार आदि ने उत्तरदायित्व और स्वायत्तता की समस्या को जन्म दिया है। समुचित हिसाब देयता या उत्तरदायित्व और साथ ही पर्याप्त सहायता के अभाव में सार्वजनिक उद्योगों से अपेक्षित सफलता की आशा नहीं की जा सकती है। पर्याप्त सहायता के अभाव में सार्वजनिक उद्योग केवल विभागीय संगठन बनकर रह जाएंगे। ऐसी स्थिति में सार्वजनिक उपक्रमों के निर्माण का मूलभूत उद्देश्य ही विफल हो सकता है। आज सार्वजनिक उद्यमों को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान किए जाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्याय में हम सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय एवं अन्य स्वायत्तता एवं जवाबदेयता के संदर्भ में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

24.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व को समझ पायेंगे।
- सार्वजनिक उपक्रमों की समस्याओं से अवगत हो पायेंगे।
- सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा उत्तरदायित्वों पर अपनी समझ बढा पायेंगे।

24.2 सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व

पिछले अध्याय में आपने सार्वजनिक उपक्रमों के अर्थ, परिभाषाएं एवं प्रकार तथा वित्तीय प्रशासन के बारे में विस्तृत रूप से जाना। सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेयता के बारे में विस्तार से जानने से पूर्व आइए पहले सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व को समझा जाए। यह जानने का प्रयास किया जाए कि सार्वजनिक उपक्रम हमारी आर्थिक व्यवस्था के लिए कितने महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन के बाद ही सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता एवं उत्तरदायित्व की समस्या को समझने में आसानी होगी।

किसी भी देश में उपलब्ध भौतिक एवं तकनीकी संसाधनों का समुचित उपयोग एवं वितरण सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य ऐसी नीतियां प्रतिपादित करें जो जनसाधारण के विकास और कल्याण को गति देते हुए आर्थिक न्याय की भी स्थापना कर सके। इसी संदर्भ में भारत में केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अपने अपने कार्य क्षेत्र में सार्वजनिक उपक्रम स्थापित किए गए हैं। इन उपक्रमों की स्थापना के संदर्भ में जो तर्क प्रस्तुत किए गए हैं वे कुछ इस प्रकार से हैं-

1. **महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सरकार का नियंत्रण-** सामान्य उपयोग में आने वाली कुछ वस्तुएं, जैसे- लोहा, खनिज, कोयला, व इत्यादि निजी उद्योगों के अधीन की जा सकती है। परंतु इसके अतिरिक्त कुछ बहुमूल्य धातु तथा अन्य गंभीर तकनीकी प्रकृति के उद्योगों जैसे रक्षा उपकरण, आणविक संयंत्र, वित्तीय एवं मौद्रिक उत्पादन, गोपनीय दस्तावेज एवं प्रतिभूति आदि पर सरकार का नियंत्रण होना अत्यधिक आवश्यक है। इन उद्योगों को निजी क्षेत्रों को सौंपना सही नहीं होगा। यदि सुरक्षा, अस्त्र शस्त्र तथा मुद्रा इत्यादि के उपयोग निजी हाथों में संचालित होंगे तो किसी भी समय राष्ट्र के समक्ष संकट उत्पन्न हो सकता है। अतः यह उचित होगा कि गंभीर तथा राष्ट्रीय महत्व के उद्यम सरकार द्वारा संचालित किए जाएं जिसके कारण न केवल इन उद्योगों पर सरकार का नियंत्रण रहता है, बल्कि अर्थव्यवस्था को भी एक वांछित दिशा एवं गति दी जा सकती है।
2. **समाजवादी समाज की स्थापना-** स्वतंत्रता के पश्चात भारत में कल्याणकारी एवं प्रशासकीय राज्य की संरचना में सरकारी उद्यमों का स्थान सुनिश्चित हुआ। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक होता है कि उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व बना रहे। कुछ समय के पश्चात सरकार द्वारा समाजवादी समाज की अवधारणा को सरकार के द्वारा अंगीकार किया गया, जिसमें पूंजी एवं संसाधनों का न्यायोचित वितरण एक आवश्यक शर्त मानी जाती है। वर्तमान में अहस्तक्षेपवादी राज्य की अवधारणा को छोड़कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राज्य की भूमिका दिनों दिन बढ़ती जा रही है।
3. **मूल्य नियंत्रण तथा स्वस्थ प्रतिस्पर्धा-** उत्पादन के क्षेत्र में सरकार के हस्तक्षेप का एक और लाभ होता है कि, औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिस्पर्धा को इससे बढ़ावा मिलता है। बिल्कुल इसी प्रकार विशिष्ट सेवाओं, वस्तु तथा उत्पादन पर मूल्य को नियंत्रित करने में सार्वजनिक उपक्रम एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। निधि उपक्रमों का एकमात्र उद्देश्य लाभ कमाना होता है, जबकि सरकारी उद्योगों का उद्देश्य जनहित में सस्ती एवं कुशल सेवाएं प्रदान करना होता है। आयात निर्यात तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहार से संबंधित अन्य वाणिज्यिक गतिविधियां भी सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा संचालित की जा सकती है।
4. **राजनीतिक कार्यक्रमों के पर्याय-** विश्व भर में कार्यरत विभिन्न मान्यताओं वाले राजनीतिक दलों में सरकारी उद्योगों को निरंतर आश्रय प्रदान किया है। भारत, फ्रान्स या ब्रिटेन में ही नहीं, बल्कि अमेरिका जैसे पूंजीवादी देश में भी लोक उपक्रमों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उद्योगों पर सरकारी नियंत्रण बढ़ाने

के लिए उनका राष्ट्रीयकरण करना एक बहुत ही सहज माध्यम माना जाता है। इसी प्रकार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नवीन अधिकारों को सरकार अपने उपक्रमों के माध्यम से जन उपयोगी बनाना चाहती है।

5. **आर्थिक नियोजन एवं राष्ट्रीय विकास-** भारत उन देशों में शामिल है, जिन्होंने नियोजन के माध्यम से आर्थिक सामाजिक विकास की राह चुनी है। आर्थिक क्रियाओं पर सरकार का नियम, संसाधनों का समुचित वितरण, उनका सदुपयोग तथा उनसे समयानुकूल वृद्धि,पूंजी बाजार पर नियंत्रण, आई वितरण में समानता तथा विकास के संपूर्ण क्षेत्रों पर निगरानी रखने के लिए सरकारी उपक्रमों का महत्वपूर्ण योगदान है। इन उपकरणों के माध्यम से रोजगार के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं तथा श्रमिकों से संबंधित कल्याणकारी योजनाओं को मूर्त रूप प्रदान किया जाता है। पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य प्राप्त करने, सामाजिक सेवाओं को आम जनता तक पहुंचाने तथा राष्ट्रीय विकास से लक्ष्यों की प्राप्ति में सार्वजनिक उपक्रम महत्वपूर्ण साबित होते हैं। निर्यात में वृद्धि करने, लघु एवं कुटीर उद्योगों को विकसित करने, औद्योगिक विकास दर को उच्च बनाने, निजी क्षेत्र की कमियों या दोषों से मुक्ति पाने तथा आम उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए सार्वजनिक उपक्रम स्थापित किए जाते हैं।
6. **राज्य की विनियोग क्षमता-** ऐसे सभी उद्योग जिनमें एक साथ बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी और साथ ही साथ अन्य संसाधनों की विनियोग की आवश्यकता होती है, निजी क्षेत्र सरलता से कदम नहीं रख सकता है, जबकि दूसरी तरफ ऐसे क्षेत्रों में विनियोग हेतु सरकार की क्षमताएं बहुत और सीमित और व्यापक होती हैं। अतः लोक महत्व की बड़ी और बहुउद्देशीय परियोजनाओं एवं उनसे संबंधित उद्योगों की स्थापना में सरकार सदैव आगे रहती है। कुछ एक उद्योग इस प्रकार के भी होते हैं, जिनमें लाभ का अंश कम रहता है तथा जोखिम या हानि का प्रतिशत अधिक पाया जाता है। निजी उद्योग इस प्रकार के सभी उद्योगों से बचना चाहते हैं। लेकिन जनहित को देखते हुए सरकार को ऐसे हानि देने वाले उद्योग भी स्थापित करने पड़ते हैं। भारत, रूस, ऑस्ट्रेलिया तथा कनाडा जैसे विशाल भू-भाग वाले देशों में रेलवे का विकास सरकारी प्रयोगों के द्वारा ही संभव हुआ है। इसी प्रकार कृषि, ग्राम विकास, सहकारिता, पशुपालन, कुटीर उद्योग, समाज कल्याण, शिक्षा एवं स्वास्थ्य, भारी उद्योग, परिवहन, संचार, ऊर्जा तथा खनन कार्यों में सरकारी उद्यम अधिक उपयुक्त रहते हैं।
7. **राज्य के वित्तीय साधनों में वृद्धि-** हालांकि लोक उपक्रमों की स्थापना लाभ कमाने के प्राथमिक उद्देश्य को लेकर नहीं की जाती है बल्कि राज्य इन के माध्यम से अपने दायित्वों की पूर्ति करता है, फिर भी सार्वजनिक उपक्रमों के द्वारा नागरिकों का जीवन बेहतर बनाया जा सकता है तथा कुशल प्रबंधन के द्वारा इसके साथ-साथ लाभ भी कमाया जा सकता है। ज्यादातर विकसित देशों के सार्वजनिक उपक्रम सरकार को प्रतिवर्ष वित्तीय लाभ प्रदान करते हैं। इस लाभ को सरकार अन्य नए उपक्रमों एवं सार्वजनिक सेवाओं में विनियोजित करती है। सरकार ऐसे क्षेत्रों में उद्यम स्थापित कर सकती है, जहां कोई निजी उद्यम कतराता है।

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना के मूल में राष्ट्रीय सुरक्षा, संतुलित आर्थिक विकास, सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति, तकनीकी विकास तथा अनेक प्रकार के असंतुलन को समाप्त करने के उद्देश्य निहित रहते हैं।

24.3 सार्वजनिक उपक्रमों की समस्याएं

सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता और उत्तरदायित्व की समस्याओं को विस्तार में जाने से पहले आवश्यक है कि हम सार्वजनिक उपक्रमों की मूलभूत समस्याओं के बारे में एक संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें। सार्वजनिक उपक्रम

अनेक मूलभूत समस्याओं से ग्रस्त हैं, जिनके निराकरण के बिना उनके कुशल कार्य निष्पादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इन समस्याओं को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है- समस्त उपक्रमों की सामान्य समस्याएं, और किसी एक उपक्रम की विशिष्ट समस्याएं।

समझने की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र की समस्याओं का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है-

1. **परियोजना संबंधी समस्याएं-** वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के दायरे में विस्तृत क्षेत्रीय कार्य आ गए हैं और निवेश की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है। सार्वजनिक क्षेत्रों की परियोजनाओं के प्रभावी प्रबंध का बहुत महत्व बढ़ गया है। इससे संबंधित समस्याएं हैं- स्थान का चयन, औचित्य रिपोर्ट की वैधता, समय और लागत का अतिलंघन, भूमि प्राप्त करने की समस्या, तकनीकी ज्ञान की समस्या आदि।
2. **संस्थागत समस्याएं-** किसी भी उनकी सफलता के लिए उसके संस्था के स्वरूप का महत्व बहुत अधिक होता है। 1948 के औद्योगिक नीति संबंधी प्रस्ताव में इस पक्ष पर पर्याप्त चर्चा की गई थी। इस प्रस्ताव में कहा गया कि राज्य क्षेत्र का प्रबंध, नियम पूर्वक सार्वजनिक निगमों के माध्यम से केंद्रीय सरकार के वैधानिक नियंत्रण में होगा। इससे संबंधित समस्याएं हैं- सरकार की अस्पष्ट नीति,उद्देश्यों में विरोधाभास, स्थापना के राजनीतिक कारण, पहल करने की तथा स्वायत्त परिचालन की समस्या।
3. **वित्तीय समस्या-** सार्वजनिक उपक्रमों के सबसे प्रमुख समस्या, वित्तीय समस्या है। इन की वित्तीय स्थिति संतोषजनक नहीं है। अधिक निवेश के बावजूद इन संस्थाओं के असंतोषजनक कार्यों ने राष्ट्रीय परियोजना प्रक्रिया को बहुत कमजोर बनाया है और साथ ही साथ कर के बोझ को भी बढ़ाया है।प्रमुख वित्तीय समस्याएं हैं- वित्तीय जागरूकता की समस्या, वित्तीय अनुशासन, अधिक पूंजी निवेश समस्या, बजट संबंधी समस्या, असंतोषप्रद कार्य, ऋण,कम लाभ, फिजूल खर्च, कार्यकारी पूंजी एवं प्रबंध में लापरवाही आदि।
4. **मूल्य निर्धारण तथा लाभ की समस्या-** उद्यमों की प्रकृति में अंतर के कारण मूल्य निर्धारण एक कठिन समस्या बन गया है। कुछ उपक्रम औद्योगिक तथा व्यापारिक होते हैं, कुछ विकासात्मक तथा उन्नति कारक होते हैं और कुछ अन्य आधारभूत होते हैं। इससे संबंधित समस्याएं हैं- स्पर्धात्मक वातावरण, बचत की क्षमता कम होने, निवेश योग्य संसाधनों की कमी के कारण, ना लाभ हानि के आधार पर संचालन आदि के कारण आयी पद्धति बिगड़ जाती है और आर्थिक विकास के लिए किए गए प्रयासों में बाधा खड़ी हो जाती है।
5. **सेवी वर्ग की समस्या-** सार्वजनिक उपक्रमों की एक यह समस्या भी बहुत महत्वपूर्ण है- नौकरशाही का नियंत्रण, कार्मिक-प्रबंधन के बीच अच्छे संबंध का ना होना, मानव शक्ति का नियोजित ना होना, भर्ती की दोषपूर्ण नीति, प्रवीणता, गुणवत्ता की उपेक्षा, नियुक्ति में राजनीतिक हस्तक्षेप, प्रतिनियुक्तियों की समस्या, वैज्ञानिक प्रशिक्षण का अभाव, निजी क्षेत्रों की तुलना में कम वेतन, अन्य सुविधाओं की कमी, मनोबल की कमी, अनाकर्षक सेवा शर्तें आदि।
6. **उत्पादन की समस्या-** उत्पादन की समस्या का अभिप्राय है कि कम समय और कम लागत में अधिक उत्पादन करना। ऐसा करते समय वस्तु की गुणवत्ता और उत्तम तक ध्यान रखना आवश्यक होता है। इससे संबंधित समस्याएं हैं- ऊर्जा की कमी, पुरानी शक्तिहीन उत्पादन संस्थाएं, उत्पादन क्षमता का उपयोग ना होना, माल की विवरण सूची, प्रबंध की समस्या, हल्की किस्म का कच्चा माल, शोध और विकास क्रियाओं का असंतोषजनक स्तर आदि।
7. **विपणन की समस्या-** सार्वजनिक उपक्रम का यह सबसे कम विकसित क्षेत्र है। इसकी समस्याएं हैं- सार्वजनिक उपक्रमों के पास योग्य विक्रेताओं की कमी, सरकार तथा ऑडिटरओं के कठोर नियंत्रण के

कारण विक्रय कमीशन के रूप में विक्रय प्रोत्साहन का अभाव, घटिया उत्पादित वस्तुओं, प्रतिस्पर्धा क्षमता की कमी आदि।

8. **सामग्री प्रबंधन की समस्या-** इन क्षेत्रों के प्रबंध क्षेत्र में सामग्री का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंध का अभाव पाया जाता है। इससे संबंधित कठिनाइयां हैं- अधिक सामग्री का भंडार, लंबे समय तक अनुत्पादक रूप में धनराशि को बंद रखना हानिकारक होता हैI सामग्री प्राप्त करने में कठिनाई और विलंब, नियम कठोर और अलोचशील, सरकारी हस्तक्षेप, वाणिज्य और व्यापार जैसी प्रवृत्ति का अभाव, आदि।
9. **नियंत्रण और उत्तरदायित्व की समस्या-** सार्वजनिक क्षेत्र में जनता का धन लगा होता है इसलिए इनके नियंत्रण और उत्तरदायित्व का कार्य संसद को सौंप दिया गया है। इससे संबंधित समस्याएं हैं- स्वायत्तता की समस्या, सरकारी नियंत्रण की समस्या, परस्पर विरोधी उद्देश्य संबंधित समस्या, उत्तरदायित्व की समस्या।

सार्वजनिक उपक्रम हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और विकास के महत्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। अतः उनकी समस्याओं का सुधार किया जाना भी अनिवार्य है, जिससे सार्वजनिक उपक्रम राष्ट्र के निर्माण में अपनी अपेक्षित भूमिका निभा सके।

24.4 सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा उत्तरदायित्व की समस्या

स्वायत्तता शब्द का यदि साधारण अर्थ निकाला जाए तो वह होता है निर्णय लेने एवं उसके अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रताI वहीं दूसरी ओर उत्तरदायित्व का अर्थ होता है किसी उच्च सत्ता के समक्ष अपने लेखे-जोखों को प्रस्तुत करनाIसार्वजनिक उपक्रमों को दी जाने वाली वित्तीय स्वायत्तता का अर्थ है कि उन्हें निवेश प्रबंध, निवेश के लिए धन प्राप्त करने एवं सुदृढ़ व्यापारिक सिद्धांतों तथा वित्तीय प्रशासकों की बुद्धिमता पर आधारित निजी उपक्रमों के वित्तीय निष्पादन को नियंत्रित करने के क्षेत्र में अपने आप निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करना।

स्वायत्तता से यहां हमारा आशय मनमानी या स्वतंत्रता से नहीं है, परंतु स्वायत्तता से हमारा अभिप्राय है मर्यादित एवं विशिष्ट सीमाओं के भीतर रहकर अपने तरीके से कार्य करने की स्वतंत्रता। सार्वजनिक उपक्रमों में स्वायत्तता के संदर्भ में इक्फे सेमिनार,1959 में कहा गया था कि, "स्वायत्तता का समर्थन करने का अभिप्राय शासन के उत्तरदाई उच्च अंगों को इस बात के लिए शिक्षित करने की आवश्यकता पर बल देता है कि वे संयम से काम लें और वास्तविक महत्वपूर्ण विषयों में हस्तक्षेप करने तक ही अपने आप को सीमित रखेंI साथ ही यह भी समस्या है कि ऐसी संस्थाओं के मुख्य अधिकारियों को मंत्रियों और सचिवों द्वारा उनको दिए गए परामर्श से भयभीत होने से बचाया जाए।" मार्च,1959 में सार्वजनिक उपक्रमों के राष्ट्रीय सम्मेलन में कहा गया था कि, "स्वायत्तता का अभिप्राय आंतरिक प्रबंध की ऐसी पूर्ण स्वतंत्रता से है जो राजकीय अभिक्रम ओं के दबावों से मुक्त रहते हुए राज्य द्वारा अपनाए गए सामाजिक उद्देश्यों के अधीन होती है।" स्वायत्तता का अर्थ संकुचित अर्थ में किसी उपक्रम को परिचालन स्वायत्तता और वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने से हैं, किंतु विस्तृत अर्थ में इसका आशय यह है कि उपक्रम को उद्देश्यों की प्राप्ति तथा व्यवसाय के कुशल संचालन के लिए संबंधित अधिनियम और संबंधित मंत्रालय के नियंत्रण के अंतर्गत दैनिक कार्यकलापों में हस्तक्षेप से मुक्त रहकर प्रबंध एवं संचालन कार्य करने दिया जाए।

स्वायत्तता और उत्तरदायित्व सार्वजनिक उपक्रम प्रबंध के दो मूल प्रश्न हैं जिन पर चर्चा किया जाना आवश्यक होता है। सार्वजनिक उपक्रमों को पर्याप्त सहायता दी जानी चाहिए जिससे वे अपने लक्ष्यों को कुशलता पूर्वक प्राप्त कर सकें। हमारे देश में सार्वजनिक उपक्रमों में बड़ी मात्रा में पूंजी का विनियोजन होता है और भारतीय अर्थव्यवस्था में यह उद्योग सामूहिक रूप से एक शक्तिशाली निवेशन-शक्ति बन चुके हैं। सार्वजनिक उपक्रम चूँकि जनहित से पूरी तरह से जुड़े हुए हैं, अतः यह महत्वपूर्ण समस्या उत्पन्न हो रही है कि इन सार्वजनिक उपक्रमों पर

पूर्णतया प्रभावशाली नियंत्रण रखा जाए अथवा उन पर समुचित नियंत्रण रखते हुए, पर्याप्त सहायता भी प्रदान की जाए। आज यह प्रश्न अत्यधिक विचारणीय है कि सार्वजनिक उपक्रमों को कितनी स्वायत्तता दी जाए कि वे एक और तो निजी उद्यमों की भांति कुशलता से कार्य कर सकें और दूसरी ओर उनके संसदीय उत्तरदायित्व में भी कमी ना आए।

सार्वजनिक उपक्रमों को निवेश के संबंध में परियोजना को पहचानने, चुनाव करने, उसके विस्तृत प्रतिवेदन का निर्माण करने, मूल्यांकन करने तथा उसके क्रियान्वयन पर नियंत्रण करने की प्राप्त होनी चाहिए। साथ ही उनको इस बात की भी स्वतंत्रता होनी चाहिए अपने दायित्वों के स्तर को वर्तमान परिसंपत्तियों के किसी भी अनुपात पर स्थित करने को स्वतंत्र होने चाहिए। सामान्य काल में सार्वजनिक उपक्रमों को पूंजी की लागत के अनुसार स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। उन्हें विभिन्न रेल भागीदारी प्रस्तावों के मध्य चुनाव करने की स्वतंत्रता भी होनी चाहिए। साथियों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे बैंकों, वित्तीय संस्थाओं तथा उनके पास उपलब्ध कार्यशील पूंजी की आवश्यकता के लिए पूंजी बाजार एवं मुद्रा के माध्यमों का चुनाव कर सकें। सरकार द्वारा लगाए गए सामाजिक प्रतिबंधों के अंतर्गत इन उपक्रमों को वित्तीय प्रतिष्ठा सुनिश्चित करने के लिए निजी क्षेत्र के अंतर्गत किसी भी व्यवसाय फर्म की तरह अपनी स्वयं की लागत एवं कीमत व्यवस्था, लाभदेता के मापदंड एवं नियंत्रण तंत्र का विकास करने की स्वायत्ता भी होनी चाहिए। वित्तीय जवाबदेही का एक पहलू यह भी है कि सार्वजनिक उपक्रमों से अधिकतम अच्छे परिणाम सुनिश्चित कर लेनी चाहिए।

24.4.1 स्वायत्तता के पहलू

संयुक्त राष्ट्र पैम्फलेट के अनुसार स्वायत्तता के प्रमुख पहलू इस प्रकार हैं-

1. उपक्रमों के संचालन- व्ययों के लिए वार्षिक बजट प्रावधानों से स्वतंत्रता;
2. संचालनात्मक राजस्व प्राप्त करने और रखने की आवश्यकता;
3. संचालन व्ययों की पूर्ति के लिए, संचालनात्मक राजस्व के उपयोग की स्वतंत्रता;
4. सामान्य सरकारी प्रतिबंधो, विशेषतया व्यय क्षेत्र के प्रतिबंधों से स्वतंत्रता;
5. सामान्य सरकारी विनियोजन के लेखन की स्वतंत्रता;
6. सामान्य सरकारी अंकेक्षण से स्वतंत्रता;
7. केंद्रीय खरीद तथा अनुरोध-अनिवार्यताओं से स्वतंत्रता;
8. एवं अन्य सम्बद्ध स्वतंत्रताए प्रदान करना, जैसे- ऋण लेने की स्वतंत्रता, नियुक्ति एवं विमुक्ति की स्वतंत्रता, इच्छित वेतन प्रशासन की स्वतंत्रता, दीर्घकालीन नियोजन को नियंत्रित करने की स्वतंत्रता आदि।

साधारण शब्दों में किसी भी संगठन की वित्तीय सहायता से कई बाहरी तत्व भी जुड़े होते हैं। अर्थात सार्वजनिक उपक्रमों की कार्यप्रणाली इस स्वायत्तता को निर्धारित करती है। अतः वित्तीय स्वायत्तता के अपने कुछ स्तर होते हैं या यूं कहें कि यह नियंत्रण स्थापित करने वाली कुछ संस्थाएं होती हैं, जो कुछ इस प्रकार से हैं- संसद, सरकार, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय, जनसंचार माध्यम तथा नागरिक।

यह जितने भी संस्थान होते हैं इनके पास वित्तीय स्वायत्तता के संबंध में एक स्पष्ट नीति उपस्थित होती है। इस नीति के द्वारा यह सार्वजनिक उपक्रमों को प्रभावी एवं कुशलता से कार्य करने के लिए उपलब्ध करा सकते हैं। सार्वजनिक उपक्रम क्योंकि सार्वजनिक संस्थाएं हैं, इसलिए इनके वित्तीय व्यापार के प्रत्येक पहलू पर नियंत्रण रखने के लिए एक स्पष्ट और प्रभावी नीति की आवश्यकता होती है। परंतु सार्वजनिक उपक्रमों को दिन प्रतिदिन के वित्तीय निर्णय निर्माण करने में सहायता प्राप्त होनी चाहिए। जैसे- सामान्य करें, लागत आवंटन, योग्य कीमत संरचना का विकास, वित्त के सही स्त्रोतों का चुनाव आदि। उपरोक्त वर्णित नियंत्रण की यह सभी संस्थाएं वित्तीय

निर्णय निर्माण के नीतिगत पहलुओं में हस्तक्षेप कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि संसद का है तो वह सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय निष्पादन, वित्तीय स्थिति, कीमत व्यवस्था, विदेशी सहयोग के वित्तीय पहलू एवं आंतरिक वित्त इत्यादि पर विचार विमर्श कर सकती है। सरकार एक निश्चित सीमा से अधिक वेतन पाने वाले अधिकारियों की नियुक्ति को स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार अपने पास आरक्षित रख सकती है एवं सार्वजनिक उपक्रमों को कुछ निश्चित सेवाएं वशिष्ठ मूल्यों पर प्रदान करने के निर्देश दे सकती है, चाहे वह किफायती हो या ना हो।

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता को भंग करते हुए यह आदेश-निर्देश देने का अधिकार रखता है कि वे अपने खातों के प्रस्तुतीकरण एवं वित्तीय सूचनाओं की जानकारी देने के लिए एक निश्चित ढांचे को ही अपनाएं। जनसंचार माध्यम एवं नागरिक सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय निर्णय की आलोचना कर सकते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें इस मामले पर पुनर्विचार करना पड़ सकता है जो कि जन आक्रोश को आकर्षित करें। कभी-कभी सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबंधकों द्वारा लिए गए कुछ निर्णयों की सार्वजनिक जांच भी हो सकती है। उदाहरण के लिए 1970 में, सार्वजनिक उपक्रम समिति की सिफारिशों पर एक-एक व्यक्ति आयोग की स्थापना भारतीय तेल निगम द्वारा एक अमरीकी कंपनी को कुछ पाइप लाइन डालने के कार्य का अनुबंध देने की करने के लिए की गई थी।

सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय जवाबदेही मुख्य खाता संबंधी निर्णयों से भी संबंधित होती है। इसमें मूल्य ह्रास में वृद्धि, निविदा प्रक्रिया, तोर मूल्यांकन और प्रतिस्थापन में परिवर्तन आदि शामिल किए जाते हैं। कुछ आंतरिक संगठन संबंधी मामले भी होते हैं। इनमें आंतरिक लेखा-जोखा, माल को मंगवाने की प्रक्रिया, शक्तियों का प्रत्यायोजन, वित्तीय लेनदेन पर निकट पर्यवेक्षण, अनुशासन संबंधी मामलों के प्रावधान इत्यादि शामिल होते हैं। यह सभी मामले उपक्रम के भीतर ही सही रूप से विकसित होने के लिए छोड़ें जा सकते हैं। अर्थात इन सार्वजनिक उपक्रमों को इन मामलों में सहायता प्रदान की जा सकती है। व्यापक वित्तीय नीतियां भी वित्तीय जवाबदेही के मुख्य या मूलभूत पहलुओं में से एक है। इसमें स्व-वित्त से संबंधित मामले,पूंजी विस्तार कार्यक्रमों की रूपरेखा एवं लाभांश की दर, विदेशी धन का प्रत्यावर्तन अथवा परामर्श शुल्क इत्यादि शामिल किए जाते हैं। सार्वजनिक उपक्रम वित्तीय परिणामों, उत्पादकता एवं वृद्धि के संबंध में विभिन्न संस्थाओं के प्रति जवाबदेह हो सकते हैं। समझौता ज्ञापन एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में उभर रहा है, जिसके द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों को एक वित्तीय वर्ष के भीतर अपने उद्देश्य एवं अपेक्षित लक्ष्यों को दर्शाना होता है।

24.4.2 पर्याप्त स्वतंत्रता की आवश्यकता

सार्वजनिक क्षेत्र में अथवा सार्वजनिक उद्योगों की निरंतर बढ़ती हुई संख्या, शक्ति , आकार आदि ने उत्तरदायित्व एवं स्वायत्ता की समस्या को जन्म दिया है। समुचित हिसाबदेयता या उत्तरदायित्व और साथ ही पर्याप्त स्वायत्ता के अभाव में सार्वजनिक उद्योगों से अपेक्षित सफलताओं की आशा नही की जा सकती है। पर्याप्त स्वायत्ता के अभाव में सार्वजनिक उद्योग केवल विभागीय संगठन बनकर ही रह जाएँगे। इस स्थिति में उनके निर्माण का मूलभूत उद्देश्य ही विफल हो सकता है। सार्वजनिक उद्योगों को पर्याप्त सहायता प्रदान करने की आवश्यकता के पक्ष में कुछ तर्क या कारण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो कुछ इस प्रकार से हैं-

1. किसी भी उपक्रम के लिए शीघ्र निर्णय लेना बहुत आवश्यक होता है। स्वायत्तता के अभाव में शीघ्र निर्णय कभी भी किसी भी संगठन द्वारा नहीं लिए जा सकते हैं, ऐसा इसलिए क्योंकि कोई भी निर्णय लेने के लिए समुचित आदेशों और निर्देशों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। निर्णय में विलंब का उपक्रमों की कार्यकुशलता और उनकी विकास गति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उपक्रम स्तर पर लिए गए निर्णय को शीघ्र कार्य भी किया जा सकता है और उपक्रम 'अवसर के लाभ' से भी वंचित नहीं होता है।

2. इसी क्रम में आगे यह कहा जा सकता है कि यदि किसी भी उपक्रम को उसके दैनिक कार्यकलापों के संपादन के लिए भी बार-बार आदेशों की प्रतीक्षा करनी पड़ी तो ऐसी स्थिति में संचालन व्यवस्था बड़ी अकुशल और प्रभावहीन हो जाएगी। कोई भी कार्य समय पर नहीं हो पाएगा। इस कारण से भी उपक्रमों के कुशल संचालन के लिए पर्याप्त सहायता की अत्यधिक आवश्यकता है।
3. वाणिज्यिक और औद्योगिक उपक्रमों में केवल शीघ्र निर्णय लेना ही पर्याप्त नहीं होता है, बल्कि आवश्यकता इस बात की भी होती है कि निर्णय यथासंभव कार्यस्थल के निकट ही लिए जाए। ऐसा तभी संभव है जब कि सार्वजनिक उद्योगों को परिचालन स्वायत्तता प्राप्त हो।
4. यदि सार्वजनिक उपक्रमों को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान नहीं की गई और बार-बार हस्तक्षेप करने तथा आदेश देने की नीति को अपनाया गया तो इससे कर्मचारियों का मनोबल भी गिरता है और उनके कार्य के प्रति नीरसता भी पनपती है। कर्मचारियों के आत्म सम्मान को धक्का पहुंचता है और साथ ही साथ ऐसी स्थिति में वह अपने आप को पराधीन भी समझने लगते हैं। इन सब बातों का परिणाम यह होता है कि उपक्रमों के कार्यो में शिथिलता आ जाती है तथा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती है।
5. स्वायत्तता से ही उत्तरदायित्व का उदय होता है। सार्वजनिक उद्योगों के अधिकारियों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक होता है कि उन्हें निश्चित कार्य करने के लिए पर्याप्त सहायता प्रदान की जाए। यदि कार्य करने की ही स्वायत्तता नहीं होगी तो अधिकारी को कार्य करने के लिए उत्तरदाई भी ठहराना कठिन होगा।
6. स्वायत्तता से उपक्रम के साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग भी संभव होता है। स्वायत्तता उपक्रम के अधिकारियों और कर्मचारियों के मन में उपक्रम के प्रति अपनत्व का भाव पैदा करती है, जिससे उपक्रम के संसाधनों का अधिकतम और श्रेष्ठतम उपयोग संभव हो पाता है।
7. जब सार्वजनिक उपक्रमों को नियमाधीन स्वायत्तता प्रदान कर दी जाती है तो वह निश्चित सीमाओं के भीतर कार्य करने हेतु अधिकृत हो जाता है और उसे अनावश्यक हस्तक्षेप से मुक्ति मिल जाती है। स्वायत्तता हस्तक्षेप की मात्रा को कम करती है। इससे उपक्रम राजनीतिक और प्रशासनिक दबाव से अधिक आतंकित नहीं रहता है।

24.4.3 उत्तरदायित्व की अवधारणा

बिजली की भांति ही, उत्तरदायित्व की परिभाषा देना कठिन है, लेकिन उसमें तत्काल जानकारी प्राप्त करने के कुछ तत्व अवश्य मौजूद होते हैं। एक तार को छूने पर उसमें बिजली की उपस्थिति का आभास तुरंत हो जाता है, उसे परिभाषित करने की आवश्यकता नहीं होती। ठीक उसी प्रकार सरकार में भी उत्तरदायित्व की उपस्थिति का आभास हालांकि बिजली के जैसा तेज नहीं होता फिर भी जानकारी हो जाती हैं। भारतीय प्रशासन में उत्तरदायित्व एक जटिल जाल के समान संसद से लेकर नीचे तक फैला हुआ है। यह उत्तरदायित्व मंत्रिमंडल, विभागों, मंडलों एवं आयोगों आदि सभी में देखने को मिलता है। यह प्रशासनिक इकाइयां नौकरशाही के द्वारा संचालित की जाती है। उत्तरदायित्व का प्रवाह इस प्रशासनिक जाल से ही प्रसारित होता है, परंतु यह हमेशा केंद्रीय नियंत्रण अर्थात मंत्रिमंडल से संबंध बनाए रखता है। उत्तरदायित्व के दो पहलू हैं, जो अलग होते हुए भी आपस में संबंधित होते हैं। पहला मूलतः राजनीतिक और दूसरा प्रशासनिक होता है। पहले अर्थात राजनीतिक पहलू में कार्यपालिका अपने कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदाई होती है। वहीं दूसरी और प्रशासनिक में कार्यपालिका विभागों के प्रशासकों और विभिन्न सार्वजनिक इकाइयों को अपने दायित्व का निर्वहन कैसे करना है इसके प्रति उत्तरदाई होते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और मिलकर दोनों उत्तरदाई सरकार के आधार स्तंभ है।

सामान्य शब्दों में सार्वजनिक उपक्रमों में उत्तरदायित्व का अर्थ है, उनके हिसाब के ब्यौरों की जानकारी जनता को देना। सार्वजनिक उत्तरदायित्व में लोकसभा द्वारा प्रत्यक्ष तथा मंत्रियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष नियंत्रण होता है। इस प्रकार इनका काम प्रबंधकों को मंत्रियों के प्रति और मंत्रियों के माध्यम से इनको लोकसभा के प्रति उत्तरदाई बनाना है। यहां नियंत्रण और उत्तर दायित्व में भेद को स्पष्ट करना आवश्यक है। वास्तव में नियंत्रण एक सक्रिय कार्य है, जबकि उत्तरदायित्व अक्रियाशील कार्य है। नियंत्रण एक सक्रिय, उद्देश्य पूर्ण तथा सकारात्मक कार्य है। इसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति अथवा संस्था को किसी कार्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए निर्देश देना, उनको उनकी सीमा में रखना तथा उत्प्रेरित करना। अधिक स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि नियंत्रण उत्तरदायित्व को सुविधाजनक बनाता है। व्यक्ति, जो उत्तरदाई होता है, के पास नियंत्रण करने की शक्ति होनी चाहिए। जहां तक सार्वजनिक उपक्रमों का संबंध है, यह समझा जाता है कि समस्त कार्य क्षेत्र के हिस्सेदार करदाता होते हैं। जिस प्रकार निजी उद्यमों में हिस्सेदारों को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे उपक्रम की कार्यप्रणाली के संबंध में जानकारी प्राप्त करें। उसी प्रकार लोक सभा को, जो कि करदाताओं की विश्वास पात्र है, यह अधिकार प्राप्त है कि वह सार्वजनिक उपक्रमों पर उचित नियंत्रण स्थापित रखें।

24.4.4 सार्वजनिक उपक्रमों के उत्तरदायित्व के कारण

सार्वजनिक उपक्रमों के उत्तरदायित्व के कुछ प्रमुख कारण होते हैं, जिनको निम्न बिंदुओं में दर्शाया जा सकता है-

1. सार्वजनिक उपक्रमों में जिस धन का निवेश किया जाता है, वह जनता का होता है। अतः सार्वजनिक संस्थाओं को जनता के प्रति उत्तरदाई होना आवश्यक है।
2. आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक आधारों पर भी सार्वजनिक उपक्रमों का उत्तरदाई होना आवश्यक है।
3. सार्वजनिक उपक्रमों को पर्याप्त शक्तियां प्राप्त होती हैं। इसके बदले में उन्हें अपने कार्यों के प्रति उत्तरदाई होना अनिवार्य होता है।
4. भारत जैसे विकासशील देशों में सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना सरकार की नीति के साधन के रूप में की गई है। इस प्रकार उत्तरदायित्व को अन्य रूप में बदला नहीं जा सकता है।
5. सार्वजनिक उपक्रमों को पर्याप्त प्रेरणा उपलब्ध होती है, ताकि वे सभी जोखिमों से बचते हुए एक इकाई के रूप में कार्य कर सकें।

सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना विभिन्न उद्देश्यों को लेकर की जाती है, कुछ विशिष्ट होते हैं और कुछ सामान्य। नियंत्रण तथा उत्तरदायित्व का उद्देश्य यह देखना होता है कि जो लक्ष्य निश्चित किए जा चुके हैं वह उचित ढंग से तथा जनहित में पूरे किए जा रहे हैं या नहीं।

24.4.5 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करने की पद्धतियां

सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए बाहरी एवं आंतरिक पद्धतियों को अपनाया जा सकता है। बाहरी नियंत्रण के तौर पर सरकार सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वतंत्रता से संबंधित विभिन्न अधिनियमों के पहलुओं को स्पष्ट करती है। सरकार अपने समझौता ज्ञापन में कीमत, निवेश एवं लाभदेयता के क्षेत्र में सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता की सीमा को इंगित करती है। सरकार द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वे सार्वजनिक उपक्रमों के दिन प्रतिदिन के मामलों में, जिनमें वित्तीय मामले भी शामिल होते हैं, हस्तक्षेप ना करने का प्रयास करती है। आंतरिक रुप से सार्वजनिक उपक्रम वित्तीय शक्तियों के विकेंद्रीकरण एवं प्रत्यायोजन को विभिन्न स्तरों पर लागू करके इस स्वायत्तता को सुनिश्चित करते हैं। कई सार्वजनिक उपक्रमों में समूह बैठक बुलाने की परंपरा का अनुसरण किया जाता है। इन बैठकों को संचार बैठकों के नाम से भी पुकारा

जाता है। इन बैठकों में सभी विभागाध्यक्ष को आमंत्रित किया जाता है। कर्मचारियों के प्रतिनिधि भी बुलाए जाते हैं। उसके बाद समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता है तथा इन बैठकों में ही निर्णय ले लिए जाते हैं। यह माध्यम अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अधिक मात्रा में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। वित्तीय उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने के तरीकों को व्यापक रूप में दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- सांगठनिक प्रणालियां और बाहरी प्रणालियां।

सांगठनिक प्रणालियां कुछ ऐसी प्रणालियों के रूप में उभर कर सामने आ सकती है जो सार्वजनिक उपक्रमों को मेनका बेहतर वित्तीय हिसाब किताब देने के योग्य बना सकती है। बाहरी माध्यम या प्रणालियां सार्वजनिक उपक्रम के स्वायत्त संगठन का परिणाम हो सकते हैं, जो कि यह सुनिश्चित करें कि प्रबंधक जिनकी संपत्ति नहीं है, संसद के प्रति उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार करते हैं। सांगठनिक तौर पर वित्तीय जवाबदेही के कुछ साधन होते हैं, जैसे- सुस्पष्ट वित्तीय प्रक्रियाएं, कार्य कुशल आंतरिक लेखा जांच, निजी जांचकर्ताओं द्वारा व्यवसायिक लेखों की जांच, उपक्रम का सही आंतरिक संगठन, सरकार द्वारा अथवा सरकार की स्वीकृति द्वारा उपक्रम के वित्तीय सलाहकार की नियुक्ति, सरकारी नियंत्रण सार्वजनिक उपक्रमों के महा निदेशक मंडल के माध्यम से लागू किया जाता है। मुख्य कार्यकारी अधिकारी एवं पूर्णकालिक निदेशक सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। ज्यादातर उपक्रमों में निदेशक मंडल में सरकारी प्रतिनिधि मनोनीत निदेशकों के रूप में उपस्थित होते हैं। वह संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय अथवा वित्त मंत्रालय से होते हैं तथा मंडल में पदेन अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं। कुछ निश्चित वित्तीय मामलों को संघ अधिनियम अथवा सार्वजनिक उपक्रमों को शासित करने वाले अधिनियम के अंतर्गत, सरकारी स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखा जाना भी एक माध्यम होता है। सार्वजनिक उपक्रमों की महालेखा नियंत्रक परीक्षक द्वारा जांच भी वित्तीय जवाब देता का एक साधन ही माना जाता है। सार्वजनिक उपक्रमों में दोहरी लेखा जांच की व्यवस्था पाई जाती है। पहली तो सार्वजनिक उपक्रमों के खातों की लेखा जांच उपक्रम के वैधानिक लेखकों द्वारा की जाती है और फिर इसके निदेशक मंडल के द्वारा अनुमोदित हो जाने के बाद महालेखा नियंत्रक परीक्षक के द्वारा भी पूरक लेखा जांच की जाती है।

24.4.6 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही की वर्तमान स्थिति

सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता का विषय केवल चर्चा मात्र का ही विषय है। सार्वजनिक उपक्रमों पर संसद और प्रशासनिक मंत्रालय अपने आदेशों के द्वारा अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगाते हैं। मंत्री सदैव इन सार्वजनिक उपक्रमों को कुछ ना कुछ औपचारिक निर्देश देता रहता है, क्योंकि उसे ऐसा अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा भी सरकार का सार्वजनिक उपक्रमों के द्वारा निर्धारित की जाने वाली लागतो और कीमतों के संदर्भ में भी हस्तक्षेप करने का आरोप लगता रहता है। संसद का इन सार्वजनिक उपक्रमों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण विद्यमान रहता है। सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा कुछ निश्चित प्रकार के निवेश किए जाने से पूर्व संसद द्वारा पूर्व अनुमति लेना आवश्यक होता है और साथ ही इन उपक्रमों को समय-समय पर संसद के समक्ष अपने कुछ प्रतिवेदन भी प्रस्तुत करने होते हैं। यद्यपि यह नियम नई सेवाओं के लिए लागू होता है, अर्थात ऐसी गतिविधियां जो पहली बार की जाने वाली है उन्हीं पर यह लागू होता है। संसद बजट विवाद एवं प्रश्नकाल के दौरान ही सार्वजनिक उपक्रमों से संबंधित वित्तीय मुद्दों पर बहस कर सकती है। संसद की स्थाई समिति,सार्वजनिक उपक्रम समिति, सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय निष्पादन को देखने के लिए गठित की गई है। यह समिति सार्वजनिक उपक्रमों को अपनी वित्तीय मामलों के संबंध में एक उचित परिप्रेक्ष्य निरंतर आधार पर विकसित करने में मदद प्रदान करती है। सार्वजनिक उपक्रम पर सरकारी नियंत्रण वित्तीय जवाबदेही को एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया बना देता है। सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय पहलुओं पर अनेक प्रतिवेदन और विवरण मासिक, त्रैमासिक एवं वार्षिक प्रकृति के होते हैं। इन उपक्रमों द्वारा यदि किसी भी प्रकार की हानि उठानी पड़ती है तो ऐसी स्थिति में इन्हें अपना राजस्व बजट भी प्रशासनिक मंत्रालय से स्वीकृत

कराना पड़ता है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक इन उपक्रमों के लिए न केवल वित्तीय बल की कार्य क्षमता एवं और सत्यता की जांच भी करते हैं। वार्षिक प्रतिवेदन इन उपक्रमों को निजी क्षेत्र में इनके सम रूपों की तुलना में प्रतिकूल स्थिति में रख देता है।

24.5 निष्कर्ष

प्रजातांत्रिक व्यवस्था में वित्तीय नियंत्रण एक महत्वपूर्ण तथ्य है। परंतु सार्वजनिक उपक्रमों के संबंध में यह नियंत्रण स्वायत्तता और उत्तरदायित्व के उचित समीकरण के आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। इन संस्थाओं पर स्थापित किए जाने वाला नियंत्रण इतना कठोर नहीं होना चाहिए कि वह इन की स्वायत्तता को हानि पहुंचा। यदि यह संस्थाएं स्वायत्त नहीं होंगी तो इनसे सफलतापूर्वक कार्य संचालन और उद्देश्य प्राप्ति की कल्पना करना बेईमानी होगा। इस संदर्भ में यह बात भी सत्य है किन सार्वजनिक उपक्रमों को जितनी भी वित्तीय स्वायत्तता प्रदान की गई है उसका इन उपक्रमों द्वारा उचित उपयोग नहीं किया गया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना की और चेतना के संदर्भ में किन्ही दो तर्कों को प्रस्तुत कीजिए।
2. सार्वजनिक उपक्रमों की किन्ही दो समस्याओं को इंगित कीजिए।
3. सार्वजनिक उपक्रमों के नियंत्रण और उत्तरदायित्व का कार्य किसे सौंपा गया है?
4. सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता से क्या अभिप्राय है?
5. सार्वजनिक उपक्रमों पर वित्तीय नियंत्रण स्थापित करने वाली किन्हीं दो संस्थाओं के नाम बताइए।

24.6 सारांश

सार्वजनिक उपक्रमों के सफल संचालन हेतु वित्तीय स्वायत्तता की अत्यधिक आवश्यकता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया जाए। सार्वजनिक उपक्रमों को यदि सफल बनाना है तो उसके लिए उन्हें पर्याप्त वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने की आवश्यकता है। इन उपक्रमों को सरकार द्वारा जो स्वायत्तता प्रदान की जाए, उसका इन उपक्रमों के द्वारा संगठन के भीतर भी अनुपालन किया जाना चाहिए। अर्थात उपक्रम में काम करने वाले विभिन्न कर्मचारियों या प्रशासनिक स्तरों को भी पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए। सार्वजनिक उपक्रमों का उत्तरदायित्व निश्चित करने के साथ-साथ उन पर नियंत्रण की भी एक समुचित व्यवस्था किए जाने की आवश्यकता है।

24.7 शब्दावली

लाभांश- लाभ का वह भाग जो सरकार अथवा किसी व्यक्ति के द्वारा उस कंपनी के अंश धारी के रूप में प्राप्त किया जाता है।

संघ की धाराएं- यह उन शर्तों का उल्लेख करती है जिस पर अंशधारी इस बात के लिए सहमत होते हैं कि कंपनी का व्यापार किस प्रकार से चलाया जाए।

नियमावली- प्रपत्र, जिसमें विभिन्न गतिविधियों को चलाने हेतु प्रक्रियाओं का विस्तृत विवरण होता है।

24.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सरकार का नियंत्रण और समाजवादी समाज की स्थापना, **2.** परियोजना संबंधी समस्याएं, संस्थागत समस्याएं, **3.** संसद को, **4.** मर्यादित एवं विशिष्ट सीमाओं के भीतर रहकर अपने तरीके से कार्य करने की स्वतंत्रता, **5.** संसद और सरकार

24.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी एवं अवस्थी,2016, भारतीय प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी,2014, भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

24.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कटारिया, सुरेंद्र, 2009भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
2. लेखी, आर. के, 2009 लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

24.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व की विवेचना कीजिए।
2. सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा उत्तरदायित्व की समस्या पर एक निबंध लिखिए।
3. सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने की पद्धतियों की विवेचना कीजिए।

इकाई- 25 शहरी शासन का वित्तीय प्रशासन

इकाई की संरचना

25.0 प्रस्तावना
25.1 उद्देश्य
25.2 स्थानीय शासन का अर्थ
25.2.1 नगरीय/शहरी स्थानीय संस्थाएं
25.2.2 नगरीय शासन की विशेषताएं
25.3 स्थानीय वित्त
25.3.1 आर्थिक विकास में स्थानीय वित्त की भूमिका
25.3.2 स्थानीय वित्त के सिद्धांत
25.4 नगरीय स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन
25.4.1 आय के स्रोत
25.4.1.1 करों से आय
25.4.1.2 करों के अतिरिक्त आय
25.4.2 नगरीय स्थानीय संस्थाओं का बजट
25.4.3 लेखा पालन तथा लेखा परीक्षण
25.5 निष्कर्ष
25.6 सारांश
25.7 शब्दावली
25.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
25.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
25.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
25.11 निबन्धात्मक प्रश्न

25.0 प्रस्तावना

जिस प्रकार राज्य तथा संघ का संबंध है, ठीक उसी प्रकार से राज्य तथा अन्य संस्थाओं के बीच भी संबंध है। स्थानीय संस्थाओं तथा राज्यों के बीच भी साधनों का अलग-अलग बंटवारा कर दिया गया है, जो अपने अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से अपने संसाधनों का संग्रह करते हैं। जिस प्रकार की समस्याएं केंद्र और राज्यों के बीच जन्म लेती हैं, ठीक उसी प्रकार की समस्याएं राज्य तथा स्थानीय संस्थाओं के बीच भी जन्म लेती है। अंतर सिर्फ इतना है कि स्थानीय संस्थाओं का आकार और व्यय का रूप तथा व्यय की तीव्रता राज्यों से कम होती है। संघ और राज्यों के बीच की जो प्रवृत्ति है वही प्रवृत्ति है। कल्याणकारी राज्य का प्रमुख उद्देश्य अपने नागरिकों को अधिकतम सामाजिक लाभ प्रदान करना है। यही उद्देश्य स्थानीय संस्थाओं का भी है। प्रस्तुत अध्याय में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन के संदर्भ में विस्तार से विवेचना करेंगे।

25.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्थानीय शासन का अर्थ, नगरीय स्थानीय शासन संस्थाओं का अर्थ तथा उनकी विशेषताओं के बारे में विस्तार से जान पाएंगे।
- स्थानीय वित्त, आर्थिक विकास में उसकी भूमिका एवं स्थानीय नृत्य के विभिन्न सिद्धांतों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- नगरीय स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन के बारे में विस्तार से जान पाएंगे।

25.2 स्थानीय शासन का अर्थ

शहरी शासन के वित्तीय प्रशासन को जानने से पहले आवश्यक है की यह समझा जाए की इन शहरी संस्थाओं का अस्तित्व कहां से आया? तथा यह शासन केंद्रीय और राज्य सरकारों के शासन से किस प्रकार से भिन्न है?
जैसा कि आप जानते हैं सभी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की मुख्य विशेषता यह होती है कि इनमें जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन की नीतियों, कानूनों और नीतियों में अपनी भूमिका निभाती है। जनता की यह भूमिका कई स्तरों पर हो सकती है। भारत में केंद्र सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय सरकार (पंचायती राज तथा नगरीय संस्थाएं) शासन के तीन स्तर हैं। जिन देशों में संघीय शासन व्यवस्था ना होकर केवल एकात्मक शासन है (जैसे- ब्रिटेन, फ्रांस), वहां केंद्र सरकार के बाद शासन का दूसरा स्तर ग्रामीण तथा नगरीय सरकारों में बांटा रहता है। प्रायः विश्व के सभी देशों में स्थानीय सरकारें दो स्वरूपों, जैसे, ग्रामीण और नगरीय सरकारों की बंटी रहती है। यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि स्थानीय शासन, स्थानीय प्रशासन, स्थानीय संस्थाएं तथा स्थानीय स्वशासन चार ऐसे शब्द है जो समानार्थी ना होते हुए भी पर्यायवाची शब्दों के रूप में इस्तेमाल किए जाने लगे हैं। स्थानीय शासन से तात्पर्य उन नगरीय तथा ग्रामीण संस्थाओं से है जो जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संचालित होती है। वास्तव में यह 'स्थानीय स्वशासन' है। भारत के संविधान में 'स्थानीय शासन' शब्द प्रयुक्त किया गया है।भारत में स्थानीय संस्थाएं दो स्वरूपों में विभक्त की जा सकती हैं- नगरीय तथा ग्रामीण।
शहरों या नगरों में स्थानीय संस्थाओं की उच्च निम्न श्रेणियां अथवा इनका पदसोपान नहीं होता है, बल्कि अधिकार शहरों में आवश्यकतानुसार एक या कई प्रकार की नगरी संस्थाएं होती है। जबकि दूसरी तरफ ग्रामीण क्षेत्रों की पंचायती राज संस्थाओं में क्रमशः उच्च, मध्य तथा निम्न स्तरीय संस्थाएं बनी हुई हैं जो अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग नामों से जानी जाती हैं। प्राय छोटे नगरों में एक ही प्रकार की नगरी संस्था होती है, जबकि बड़े नगरों, जैसे- दिल्ली में दिल्ली नगर निगम, नई दिल्ली नगरपालिका, दिल्ली छावनी बोर्ड तथा दिल्ली विकास प्राधिकरण कार्यरत हैं जो अपने अपने निर्धारित क्षेत्र में कार्य निष्पादित करते हैं।

25.2.1 नगरीय/शहरी स्थानीय संस्थाएं

मानव सभ्यता के विकास को प्रमाणित करने वाली सिंधु घाटी, दजला-फरात, मेसोपोटामिया, चीन तथा मिस्र की प्राचीन सभ्यताएं इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि मानव सभ्यता के आरंभिक चरण में नदियों के किनारे शहरी बस्ती के रूप में रहना अधिक पसंद किया था। इन नगरों में शासन करने वाले राजा को नगर की दैनिक समस्याओं से मुक्त रखने तथा साथ ही नगर के प्रशासन को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए, स्थानीय संस्थाएं या नगरपालिकाएं कार्यरत होती थीं। मेगस्थनीज की 'इंडिका' वे इस बात का वर्णन मिलता है कि तत्कालीन मौर्य वंश के शासन के दौरान पाटलिपुत्र में नगर कोतवाल, अन्य अधिकारियों तथा समितियों द्वारा स्थानीय प्रशासन का संचालन होता थाI प्राचीन भारत में 'समिति' तथा 'सभा' नामक संस्थाएं कई राजाओं के शासनकाल में कार्य करती रही। ऐसी ही व्यवस्था प्राचीन रोम में भी थी।

स्वतंत्रता के उपरांत भारत के संदर्भ में,1961की जनगणना रिपोर्ट में उन स्थानों को नगरीय क्षेत्र परिभाषित किया गया है जहां- एक स्थानीय प्राधिकरण तथा नगर पालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति हो, तथा अन्य सभी स्थान जिनकी जनसंख्या कम से कम 5,000 हो, जिनमें पुरुष जनसंख्या का कम से कम 75 प्रतिशत गैर-कृषि कार्यों में लगा हुआ हो तथा प्रतिवर्ग किलोमीटर जनसंख्या घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति हों।

"उपयुक्त मापदंड के अतिरिक्त राज्य सरकार किसी स्थान को नगरीय क्षेत्र घोषित कर सकती है। यदि नगरीय चिन्ह विशिष्ट तौर पर तथा सुविधाएं विद्यमान हों; जैसे- नए स्थापित औद्योगिक क्षेत्र, विशाल आवासीय बस्तियां तथा पर्यटन महत्व के स्थान।"

आधुनिक प्रकृति की नगरी संस्थाओं का उदय ब्रिटिश काल में प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम 1687 में अंग्रेजों ने मद्रास नगर निगम की स्थापना की। महानगर निगमों की स्थापना चार्टर एक्ट के अधीन 1793 में मद्रास, कोलकाता तथा बम्बई में की गई थी। भारत में सन 1882 में लॉर्ड रिपन के द्वारा स्थानीय स्वशासन के विकास में रुचि लेने तथा गंभीर प्रयासों के कारण भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक भी माना जाता है।

स्वतंत्रता के पश्चात नगरीकरण की तेज प्रक्रिया, नगरीय समस्याओं में निरंतर वृद्धि तथा कार्यों में अप्रत्याशित बढ़ोतरी के कारण नगरी प्रशासन जटिल और कठिन हो गया है। स्वतंत्रता के बाद नगरी सरकारी न केवल नगरीय सेवाओं एवं सुविधाओं, जैसे- जल आपूर्ति, मल-निकास, कचरा प्रबंधन, यातायात, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, मनोरंजन की व्यवस्था बल्कि राष्ट्रीय एवं प्रांतीय विकास कार्यक्रमों का भी संचालन करती है। अब नगरी सरकार से विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्थानीय सहयोग प्राप्त करने की भी आशा की जाती है। नगरीय शासन स्थानीय लोगों के लिए अनिवार्य सेवाएं प्रदान करने के साथ-साथ नगरीय विकास तथा नियोजन का आवश्यक अंग बन गया है। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ मनुष्य की जीवन यापन के लिए आवश्यक न्यूनतम सुविधाओं के संबंध में धारणा बदल गई है। अतः नगरीय शासन का उत्तरदायित्व उन सब सुविधाओं को जिताना है, जो शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को अधिकाधिक अच्छा बनाने के लिए आवश्यक होती हैं। इस प्रकार आजकल लोगों के दैनिक जीवन में नगर शासन का प्रांतीय अथवा केंद्रीय शासन से भी अधिक महत्व है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि भविष्य में नगर शासन के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने की संभावना बढ़ रही है। विलियम ए. रॉब्सन ने उचित ही कहा है, "आज स्थानीय प्राधिकरण को काम करने का पहले से कहीं अधिक सुअवसर उपलब्ध है। यदि केंद्रीय शासन की शक्तियां बढ़ रही हैं तो अन्य निकायों के कार्यों में भी निरंतर वृद्धि हो रही हैं।"

25.2.2 नगरीय शासन की विशेषताएं

नगरी शासन की विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं में दर्शाया जा सकता है-

1. नगरीय शासन का स्वरूप संवैधानिक होता है अर्थात अधिनियम द्वारा इनकी रचना की जाती है।
2. नगरीय शासन अपने क्षेत्राधिकार में रहने वाले लोगों पर कर लगाकर वित्त एकत्र करने का अधिकार रखता है।
3. नगरीय शासन को केंद्रीय नियंत्रण से मुक्त रहकर काम करने का अधिकार होता है।
4. नगरीय शासन का स्वरूप एक उद्देश्य ना होकर सामान्य उद्देश्य हुआ करता है।
5. नगरीय शासन का कार्य क्षेत्र एक निर्दिष्ट सीमा तक होता है।
6. नगरीय शासन राज्य सरकार के अधीन होता है, जिसे इसके ऊपर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण का अधिकार प्राप्त होता है।

इस प्रकार नगरीय स्थानीय प्रशासन को अपने क्षेत्र में अपनी विशिष्ट स्वरूप के साथ कर्तव्यों का कुशलतापूर्वक संपादन करना होता है, जिसके लिए विभिन्न अधिनियमओ के अंतर्गत नगरीय स्थानीय शासन की विभिन्न

संस्थाओं को विधायी, प्रशासकीय, वित्तीय एवं निर्वाचन संबंधी शक्तियां प्रदान की गई हैं। विधायी शक्ति के अंतर्गत नगर निकायों को नियम, उप नियम बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। प्रशासनिक शक्तियों में, अपने अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति, निरीक्षण-परिवीक्षण तथा दंडित करना, दिन प्रतिदिन के प्रशासनिक मामलों पर निर्णय लेना, संविदा की अनुमति देना, करों की वसूली, नियमों का उल्लंघन करने वालों को दंड देना या उनके विरुद्ध कार्यवाही करना आदि अनेक शक्तियां दी गई हैं।

वित्तीय शक्तियों के अंतर्गत करारोपण, फीस वसूल करने, बजट बनाने और धन के व्यय की शक्ति प्राप्त है।

नगरीय स्थानीय स्वशासन से संबंधित संस्थाएं अथवा संगठन अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे- नगर निगम, नगर परिषद व नगर पालिका, नगर पंचायत, कस्बा क्षेत्र समिति, अधिसूचित क्षेत्र समिति, छावनी मंडल, एकल उद्देश्य अभिकरण। 74वें संविधान संशोधन में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के केवल तीन ही प्रकारों- नगर निगम, नगर परिषद तथा नगर पंचायत का वर्णन किया गया है।

नगरीकरण की तेज प्रक्रिया, नगरीय समस्याओं में निरंतर वृद्धि तथा कार्यों में अप्रत्याशित बढ़ोतरी के कारण नगरीय शासन जटिल और कठिन हो गया है।

25.3 स्थानीय वित्त

संघ तथा राज्यों के वित्त की जो प्रवृत्ति है वही प्रवृत्ति स्थानीय वित्त की भी है। पिछले अध्यायों के अध्ययन के आधार पर आप इस बात को तो समझ ही गए होंगे कि कल्याणकारी राज्य का मुख्य उद्देश्य अपने नागरिकों को अधिकतम सामाजिक लाभ प्रदान करना होता है। यही उद्देश्य स्थानीय संस्थाओं का भी है। स्थानीय संस्थाओं का कार्यक्षेत्र भले ही अपने स्थानीय क्षेत्र तक सीमित हो, परंतु उनके दायित्व बहुत अधिक होते हैं। लोग स्थानीय संस्थाओं से तुरंत व पर्याप्त प्रतिपल की आशा करते हैं। यह संस्थाएं आज प्रजातंत्र का मुख्य आधार बन गई है। यह राजनीतिक चेतना को जागृत करने तथा प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था के संचालन का केंद्र बनती जा रही है। श्री जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि, ‘‘स्थानीय प्रशासन प्रजातंत्र की प्रकृति का सच्चा आधार है। हमें ऐसी आदत पड़ गई है कि प्रजातंत्र के बारे में सदैव सबसे ऊपर के स्तर पर सोचते हैं, नीचे के स्तर के बारे में नहीं। ऊपरी स्तर पर प्रजातंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता है, जब तक कि यह नीचे से सुधरी पर आधारित ना हो।’’

25.3.1 आर्थिक विकास में स्थानीय वित्त की भूमिका

स्थानीय संस्थाओं के विषय में, राजनीतिक दृष्टिकोण से, यह काफी पहले से ही स्वीकार किया गया है कि उनका महत्व इस बात को लेकर है कि वे प्रजातंत्र के पनपने के लिए शिक्षा प्रदान करती है। मतदाताओं को यह शिक्षा मिलती है कि आसानी से समझ में आने वाले स्थानीय विषयों पर किस प्रकार मत दिया जाए। इससे उत्तरदायित्व पूर्ण नेतृत्व का विकास होता है, लेकिन आर्थिक विकास के परिपेक्ष्य में स्थानीय संस्थाओं की भूमिका की बात द्वितीय विश्वयुद्ध काल से ही की जाती रही है इसलिए इसे एक नया विकास कहा जाता है।

वित्त के क्षेत्र में स्थानीय संस्थाओं की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण है। स्थानीय संस्थाओं को स्वायत्तता तथा उत्तर दायित्व मिलने पर इस बात की संभावना बढ़ जाती है कि स्थानीय साधनों के माध्यम से होने वाले विनियोग के परिमाण बढ़ जाएंगे। दूसरी बात यह है कि स्थानीय लोक निर्माण कार्यों के लिए अनिवार्य श्रम सेवा में वृद्धि होगी। इस बात के प्रमाण यह है कि स्थानीय संस्थाओं द्वारा किए गए कार्य ना केवल कल्याणकारी रहे हैं, बल्कि उत्पत्ति में वृद्धि करने वाले भी। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि तीव्र आर्थिक विकास से अतिरिक्त आय की सृष्टि होती है। इस आय के एक हिस्से का संग्रह स्थानीय संस्थाओं द्वारा होना चाहिए, अन्यथा मुद्रास्फीति में वृद्धि होगी या भुगतान शेष का असंतुलन काफी बढ़ जाएगा। अल्प विकसित देशों में राजकोषीय नीति द्वारा यह कार्य संभव नहीं है। इसका कारण यह है कि इन देशों में प्रत्यक्ष कर से अनेक प्रकार की आय को छूट मिलती है।

साथ ही बड़ी मात्रा में करों की चोरी होती है। परोक्ष करो का प्रभाव सभी वर्ग के लोगों पर पड़ता है तथा इनका भार प्रतिगामी हो सकता है, जिससे धनी वर्ग पर कर का अपेक्षाकृत कम भार पड़ता है। ऐसे लोगों पर स्थानीय कर प्रभावी ढंग से लगाया जा सकता है।

विकासशील देशों में नगरीय क्षेत्रों के विस्तार के कारण स्थानीय व्यक्ति के महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। शासकीय नगरों के विकास के कारण स्थानीय संस्थाओं की समस्याएं भी बढ़ गई हैं। जहां पहले कोई शहर नहीं था वहां नगरों की स्थापना की जा रही है। इन नगरों में गंदी बस्तियां भी बढ़ती जा रही है जहां स्थानीय सेवाओं का स्तर अत्यधिक निम्न हैं।

25.3.2 स्थानीय वित्त के सिद्धांत

स्थानीय वित्त के कुछ सिद्धांत होते हैं जिनका वर्णन निम्नानुसार है-

1. **अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धांत-** स्थानीय वित्त की समस्याएं राष्ट्रीय वित्त के समान होने के कारण स्थानीय वित्त व्यवस्था का उद्देश्य भी अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करना है। स्थानीय संस्थाओं का हमेशा से यही उद्देश्य रहा है कि वह अपने सीमित साधनों के बावजूद लोगों को अधिक से अधिक सुख सुविधाएं प्रदान करना चाहती हैं। यह संस्थाएं प्रायः ऐसी मदों पर व्यय करती हैं, जिनका लाभ जनसामान्य को मिले,विशेषकर निर्धनों के स्तर को ऊंचा उठाने के हर संभव प्रयत्न किए जाते हैं।
2. **लाभ का सिद्धांत-** स्थानीय संस्थाओं के द्वारा लाभ के सिद्धांतों को अधिक महत्व दिया जाता है। इन संस्थाओं को जो राशि प्राप्त होती है, उस राशि को तुरंत लोगों के हितार्थ खर्च कर देती है। स्थानीय वित्त व्यवस्था " जैसे को तैसा" किस सिद्धांत पर चलती है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ऐसा संभव नहीं होता है। इस संदर्भ में डॉक्टर मिश्रा का कहना है कि, "स्थानीय वित्त राष्ट्रीय वित्त से भिन्न है। स्थानीय वित्त की धारणा मौलिक है। यद्यपि सरकार का कर लगाने का उद्देश्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से करदाताओं को उचित सेवाएं प्रदान करना होता है, तो भी एक व्यक्ति के मामले में अदा किए हुए कर तथा प्राप्त किए गए लाभ के बीच कोई संबंध नहीं होता है। स्थानीय करारोपण में कुछ दशकों में प्राप्त किए गए लाभ को नापना तथा उसका अदा किए गए कर से सह संबंध स्थापित करना संभव होता है।" स्थानीय वित्त का कार्य क्षेत्र सीमित है, इसलिए करदाता को कर से प्राप्त होने वाला लाभ तुरंत मिल जाता है। उदाहरण के लिए, करदाता अपनी नगरपालिका को कर देता है और नगर पालिका उत्तर दाता को प्रतिदिन सफाई, पानी व रोशनी की सुविधा प्रदान करती है, जो कर के भुगतान के बदले उसे प्राप्त होता है।
3. **योग्यता का सिद्धांत-** अर्थशास्त्रियों का मत है कि लाभ का सिद्धांत स्थानीय वित्त में पाया जाता है, जबकि योग्यता का सिद्धांत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में होता है। परंतु कैनन जैसे अर्थशास्त्रियों ने स्थानीय वित्त में योग्यता के सिद्धांत को लागू करने के लिए कहा है। उनका मत है कि किसी स्थान के निवासियों के द्वारा वहां की स्थानीय संस्थाओं को अपनी योग्यता अनुसार कर का भुगतान करना चाहिए; इसलिए स्थानीय संस्थाओं के द्वारा जो कर लगाए जाते हों वे करदान-योग्यता के अनुसार होने चाहिए।
4. **उपयोगी एवं कष्ट कारक सेवाएं-** स्थानीय संस्थाओं के द्वारा कर से प्राप्त आय को व्यय करने के बाद करदाता को करो के त्याग की तुलना में लाभ अधिक मिलता है, तो ऐसी दशा में उनको हम उपयोगी सेवा कहेंगे। यदि व्यय से मिलने वाली उपयोगिता कर भार से कम है तो यह सेवाएं कष्ट कारक कही जाएंगी।

25.4 नगरीय स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन

सामान्य तौर पर बजट आय और व्यय दोनों का पूर्वानुमान होता है। इसी संदर्भ में यदि किसी भी नगरीय स्थानीय शासन की इकाई के वित्तीय प्रशासन को जानना हो तो एकीकृत रूप से उसके बजट के अवलोकन के द्वारा उसको समझा जा सकता है। स्थानीय कार्यों के वित्तीय प्रशासन को स्पष्ट रूप से समझने के लिए इस पूरे अध्ययन को तीन भागों में विभक्त करके भली भांति समझा जा सकता है- आय के स्रोत, बजट का निर्माण और उसमें व्यय की विभिन्न मदें, तथा लेखा पालन तथा लेखा परीक्षण।

25.4.1 आय के स्रोत

भारत के संविधान के द्वारा करारोपण की शक्तियों का विभाजन केंद्रीय सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों के मध्य विभाजित किया गया है। इस विवरण में ऐसे करो का उल्लेख नहीं है जो अन्य रूप से स्थानीय शासन के लिए ही हो। स्थानीय शासन अपनी वित्त व्यवस्था का संचालन राज्य सरकार की सहायता से तथा उसके द्वारा निर्धारित की गई सीमा के अंतर्गत ही करता है। इस प्रकार स्थानीय शासन को प्रभुत्वहीन करके उसे संबंधित राज्य सरकार का एक निकाय या इकाई मात्र बना दिया गया है। राज्य सरकारें स्वयं भी राज्य सूची में वर्णित विषय पर ही कर लगाने हेतु स्वतंत्र होती है। इस प्रकार से राज्य सरकार का स्वयं का वित्तीय क्षेत्र सीमित होने के कारण राज्य की यह नगरीय सरकारें भी वित्त की कमी से प्रभावित होती है।

स्वतंत्रता के पश्चात देश के विकास की सबसे मुख्य समस्या ही शहरीकरण की है। चेहरों के बढ़ते हुए आकार और उन पर जनसंख्या के दबाव ने स्थानीय संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले कार्य और उनकी महत्ता को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया है। यही कारण है कि स्थानीय संस्थाओं को अपनी प्रतिष्ठा बचाने एवं अपने उत्तरदायित्व के कुशलता पूर्वक संचालन के लिए बहुत अधिक साधन जुटाने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है।

नगरीय स्थानीय शासन की इकाइयों के आय के साधनों को भी आगे विभिन्न क्षेत्रों के अंतर्गत विभाजित करके देखा जा सकता है जो कुछ इस प्रकार से हैं- करों से आय तथा करों से अतिरिक्त आय।

25.4.1.1 करों से आय

स्थानीय शासन द्वारा लगाए जाने वाले पर ही उनकी आय का मुख्य स्रोत होते हैं। स्थानीय संस्थाओं की आय का यह स्रोत स्थानीय शासन की राज्य सरकार पर निर्भरता को कम करता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो यह स्थानीय संस्थाएं अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व खोकर राज्य सरकार के एक विभाग मात्र बनकर रह जाएंगी। जिस संस्था के पास करारोपण की शक्तियां अधिक होती है, वह संस्था राजनीतिक दृष्टि से उतनी ही अधिक स्वायत्तता का उपयोग करती है। भारत में नगरीय संस्थाओं द्वारा आरोपित किए जाने वाले करो में कोई एकरूपता दिखाई नहीं देती है। इसके पीछे कुछ कारण हैं- पहला कारण तो यह है कि नगरीय स्थानीय शासन की इकाइयां राज्य सरकारों के नियंत्रण में होती है, अतः सभी राज्य सरकारें इस संबंध में अलग-अलग प्रकार से निर्णय लेती है। दूसरा कारण यह है कि नगरों में पाई जाने वाली इन संस्थाओं की प्रकृति भी एक जैसी नहीं होती है। कहीं पर नगर निगम होता है तो कहीं नगर परिषद और कहीं कहीं अन्य प्रकार की संस्थाएं पाई जाती है। इस प्रकार विभिन्न राज्यों में भिन्न भिन्न प्रकार की इन नगरी संस्थाओं द्वारा लगाए जाने वाले करों में असमानता दिखाई पड़ती है।

स्वतंत्र भारत में निरंतर यह मांग की जाती रही है कि नगरीय संस्थाओं के लिए वित्त की व्यवस्था संविधान के द्वारा ही कर दी जानी चाहिए। जिस प्रकार संविधान द्वारा आय के संसाधनों का केंद्र एवं राज्य सरकारों के बीच विभाजन किया गया है, ठीक उसी प्रकार स्थानीय संस्थाओं के लिए भी संविधान में समुचित अनुमोदन के माध्यम से यह व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अभाव में आज यह स्थानीय संस्थाएं आज राज्यों पर पूर्ण रूप से निर्भर है।

वर्ष 1953-54 के कर जांच आयोग के अनुसार, नगर पालिकाओं की आय का मुख्य स्रोत कर ही था और इससे उन्हें औसतन 63.2 प्रतिशत आय मिली। नगरीय स्थानीय संस्थाओं के द्वारा जो कर आरोपित किए जाते हैं उन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- अनिवार्य कर और विवेकाधीन कर

1. **अनिवार्य कर**- विभिन्न प्रकार के करों की श्रेणी में आने वाले करों के बारे में विस्तृत रूप में जाने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि, स्थानीय शासन राज्य सूची का एक विषय है अर्थात विभिन्न राज्यों में स्थानीय शासन की प्रकृति किस प्रकार की होगी और किस प्रकार के करों को किस श्रेणी में दिया जाएगा यह बात संबंधित राज्य सरकारों पर ही निर्भर करती हैI यही कारण है कि 74 वे संवैधानिक संशोधन अधिनियम के द्वारा की गई व्यवस्थाओं के अतिरिक्त बहुत सारे ऐसे विषय हैं जो राज्य सरकारों की इच्छा पर निर्भर करते हैंI नगरीय स्थानीय संस्थाओं को प्रदान किए जाने वाले कर एवं उनकी प्रकृति भी विभिन्न राज्य सरकारों की इच्छा पर ही निर्भर करती हैI अतः पूरे देश में पाई जाने वाली विभिन्न नगरीय स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन भी अलग-अलग प्रकार का होता हैI परंतु फिर भी सामान्य तौर पर विभिन्न नगर पालिकाओं के द्वारा जो कर लगाए जाते हैं उनमें से प्रमुख कर कुछ इस प्रकार से हैं-

    - संपत्ति पर कर; खाली भूमि सहित भवन एवं भूमि पर कर, सामान्य दर तथा सेवा कर, संपत्ति के हस्तांतरण पर कर।
    - वस्तुओं पर कर; चुंगी तथा सीमा कर।
    - व्यक्ति कर; पेशे, व्यापार,रोज़गार पर कर, संपत्ति पर कर, यात्री कर तथा तीर्थ कर।
    - वाहन तथा जानवर पर परI
    - थिएटर कर।

    उपरोक्त वर्णित करों के अतिरिक्त कुछ राज्यों में नगर पालिकाओं को राज्य के मनोरंजन करते प्राप्त राजस्व में भी कुछ कितना मिलता है। यद्यपि इस प्रकार के करों के बारे में विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा अपने अधिनियम में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के लिए अनिवार्य कर निर्धारित कर दिए जाते हैं, किंतु असल में यह नगरीय स्थानीय संस्थाएं इन कारों का आरोपण नहीं कर सकती। ऐसा इसलिए, क्योंकि इनको लगाने की शक्ति राज्य सरकार में निहित होती है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि इन करों का आरोपण राज्य सरकार के द्वारा किया जाता है और इनकी उगाही या एकत्रीकरण नगरीय स्थानीय संस्थाओं के द्वारा किया जाता है। इन करों की दर तथा करारोपण की तिथि का निर्धारण भी राज्य सरकार द्वारा ही किया जाता हैI अधिनियम में उल्लेखित अनिवार्य कर अनिवार्य की हो ऐसा जरूरी नहीं होता है।

    वर्षों से पूर्ववर्ती संपत्ति कर, जिसे नगरीय निकायों में ग्रहकर के नाम से भी आरोपित किया जा रहा था, विभिन्न कारणों से आलोचना का विषय बना हुआ था। राजस्थान सहित विभिन्न राज्यों की लोकप्रिय सरकारों ने इस कर को या तो समाप्त करने का वादा जनता से कर दिया था या उसे समाप्त की घोषित कर दिया थाI विभिन्न राज्यों में, आरोपित होने के बावजूद यह कर पूरी तरह वसूल भी नहीं किया जा रहा था। इसी संदर्भ में यदि उदाहरण देखा जाए तो राजस्थान सरकार का देखा जा सकता है, जिसने समस्त विसंगतियों एवं आलोचनाओं को दूर करते हुए, अपनी एक अधिसूचना के माध्यम से नया कर लगा दिया और उसके लिए प्रथक से नियम भी जारी कर दिए। इन नियमों में यह कहा गया कि नगरीय विकास कर किसी भी नगरीय निकाय क्षेत्र में राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर जारी की गई अधिसूचना में निर्देश और तारीख से वार्ड के अनुसार ग्रहण किया जाएगा।

2. **विवेकाधीन कर**- संपूर्ण देश की विभिन्न स्थानीय संस्थाएं अपनी संबंधित राज्य सरकार के किन्हीं सामान्य या विशिष्ट आदेशों के अधीन कुछ विवेकाधीन करो का आरोपण भी कर सकती है। जैसे- नगरपालिका के भीतर चलाए जाने वाले यानों पर कर, रोशनी पर कर, सभाओं पर कर, अग्नि कर, स्टांप शुल्क पर कर, तीर्थ यात्रियों और पर्यटकों पर कर, विज्ञापन के लिए होर्डिंग लगाने या किसी अन्य संरचना निर्मित करने हेतु उपयोग में ली गई भूमिया भवन पर कर आदि। क्योंकि इस प्रकार के सभी कर विवेकाधीन होते हैं। अतः निर्वाचित स्थानीय निकाय मतदाताओं की नाराजगी के डर से इन करों के आरोपण में ज्यादा रुचि नहीं रखती हैं। इस कारण इस प्रकार के विवेकाधीन करो का नगरीय स्थानीय निकायों की आय में योगदान नगण्य होता है। प्रथम राज्य वित्त आयोग ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि विवेकाधीन करों सा नगरीय स्थानीय संस्थाओं की आय में केवल 0.5प्रतिशत योगदान है। इसे बढ़ाने के लिए नगरीय निकायों को चाहिए कि वे इन कारों के दायरे में अधिकाधिक स्थानीय निवासियों को लाए। इसके लिए उन्हें कुछ चुने हुए छात्रों पर कर लगाने चाहिए। जैसे- सफाई की समस्या को दूर करने के लिए उन्हें सब्जी मंडियों, निजी अस्पतालों, डिस्पेंसरीयों, नाई की दुकानों, सड़क किनारे स्थापित रेस्टोरेंट्स, भावों तथा उद्योगों पर सफाई कर लगाया जा सकता है। पार्किंग और होर्डिंग कर भी नगरीय निकायों की आय के अच्छे साधन हो सकते हैं।

25.4.1.2 करों के अतिरिक्त आय

करों के अतिरिक्त आय में फीस,शास्तियाँ, भूमि क्रय विक्रय से आय, संपत्तियों से आय, ऋण तथा सहायता को माना जा सकता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से करो के अतिरिक्त आय को दो भागों में बांटा जा सकता है- आंतरिक स्रोत और बाहरी स्रोत।

1. **आंतरिक स्रोत**- नगरीय निकायों की आंतरिक आय के कुछ मुख्य स्रोत होते हैं। जैसे- संपत्ति से आय,भूमि के विक्रय से आय, शास्तियाँ फ़ीस, शुल्क जैसे- होटल, रेस्टोरेंट्स, डेयरी, वर्कशॉप फैक्ट्री आदि पर नगरीय निकायों द्वारा लाइसेंस शुल्क लगाया जाता है। इसके अलावा शहर में एकत्र खाद्य सामग्री के बेचने से प्राप्त आय और कहीं-कहीं नगरीय निकाय द्वारा बनाए गए वाणिज्यिक स्थलों के उपयोग से होने वाली आय, आवास गृहों या विश्राम गृहों के किराए की आय, बाजार की मुख्य दुकानों से बाहर या खुले में सड़क पर अस्थाई वस्तुएं बेचने के लिए लगने वाली दुकानों से आए एवं अनेक प्रकार की फ़ीस जिसमें केरोसिन, ईंधन, सब्जियां, लोहा और इसी प्रकार के अन्य वाणिज्यिक कार्यों के लिए दिए जाने वाले लाइसेंस से नगरीय निकायों को आमदनी होती है। इस मद में फीस और जुर्माने से होने वाली आमदनी भी शामिल होती है। उदाहरण के लिए शहर में लगने वाले विज्ञापन पट्टों को बेचने से नगरीय निकायों को आमदनी होती है। विभिन्न प्रकार के लाइसेंस का नवीनीकरण ना कराने या उस में विलंब होने पर नगरीय निकायों द्वारा उन पर निश्चित दर से जुर्माना आरोपित कर दिया जाता है। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रों में बूचड़खाना को चलाने की अनुमति भी निश्चित फीस लेकर नगरी निकाय भी प्रदान करता है। बड़े किस्म के नगर निकाय कुछ उपयोगी वस्तुओं, जैसे- कुकिंग गैस, विद्युत, दूध वितरण और नगर बस सेवा इत्यादि का कार्य अपने हाथ में ही ले सकते हैं और इस प्रकार इन सुविधाओं के संचालन से यदि कोई बचत होती है तो वह नगरीय निकाय के कोष में आमदनी मानी जाती है।

   अर्थात निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि आमदनी के उपरोक्त स्रोत कुछ ऐसे हैं जो करों से तो भिन्न है, परंतु यह इतने विविध प्रकार के हैं कि प्रत्येक मद में कुछ ना कुछ आमदनी नगर निकाय के कोष का एक महत्वपूर्ण भाग बनती है।

2. **बाहरी स्रोत-** बाहरी स्रोत से आय को मुख्यत: तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है- राज्य सरकार द्वारा आरोपित तथा संग्रहित करो में से हिस्सा; सरकारी अनुदान; तथा ऋण या उधार।

- **राज्य सरकार द्वारा आरोपित तथा संग्रहित करो में से हिस्सा-** ऐसे कर जिन्हें राज्य सरकार आरोपित करती है और राज्य सरकार स्वयं ही एकत्र करती है, उनमें से कुछ भाग राज्य सरकार द्वारा स्थानीय शासन की नगरीय निकायों को दे दिया जाता है। ऐसे करों में प्रायःमनोरंजन कर, वाहन कर और भू-राजस्व को शामिल किया जाता है। मोटर वाहन कर आय के अनुपात में वितरण किया जाता है। इसी प्रकार राज्य सरकार के द्वारा ड्रामा, सर्कस, दौड़ प्रतियोगिता आदि के लिए जो कर संपूर्ण राज्य के लिए लगाया जाता है और उसी के द्वारा एकत्र किया जाता है, उसमें से कुछ राशि स्थानीय निकायों को प्रदान की जाती है। इस मद में राज्य सरकार की आय निरंतर बढ़ रही है। इसीलिए आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु एवं कर्नाटक राज्य में तकनीकी तौर पर इस कर को स्थानीय निकायों को हस्तांतरित कर दिया गया है, लेकिन व्यवहार में यह राज्य दस से साढ़े बारह प्रतिशत राशि नगरीय निकायों को दी जाती हैI परंतु अब स्थिति यह है कि महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा दिल्ली इस कर की संपूर्ण राशि नगरीय निकायों को लौटा देते हैं। आंध्र प्रदेश में यह 90प्रतिशत लौटया जाता है और शेष राशि राज्य सरकार द्वारा अपने पास रख ली जाती है, ताकि इस कर के एकत्रण में उसका भी जो प्रशासनिक व्यय हुआ है उसकी भरपाई की जा सके।
- **सरकारी अनुदान-** स्थानीय संस्थाओं के बढ़ते हुए व्यय और उसकी तुलना में उन्हें प्राप्त करारोपण की शक्तियों के कम होने के कारण स्थानीय संस्थाओं की राज्य सरकार पर वित्तीय निर्भरता बढ़ी है। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को साकार करने की दिशा में स्थानीय संस्थाओं को राज्य द्वारा ज्यादा से ज्यादा दायित्व दिए जा रहे हैं। अतः इन संस्थाओं को सहायक अनुदान देना राज्य सरकार का एक नैतिक कर्तव्य बन जाता है। इसके अलावा राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं को अनुदान देना, इसलिए भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि राज्य सरकार के पास सारे प्रमुख वित्तीय स्रोत होते हैं और इस नाते इन्हें स्थानीय संस्थाओं को हर प्रकार से संरक्षण प्रदान करना आवश्यक होता है। राज्य सरकार के द्वारा स्थानीय नगर शासन को अनुदान देने के मूल में मुख्य उद्देश्य स्थानीय निकायों के साधनों में बढ़ोतरी करना है, ताकि वे अपने उत्तरदायित्व को संतोषप्रद रूप से संपन्न कर सकें। हमारे देश में स्थानीय निकायों की यह एक मुख्य विशेषता रही है कि वे वित्तीय कमी से सदैव प्रभावित रहे हैं। इसके अलावा अनियंत्रित शहरी विकास की समस्या को और बढ़ावा दे रहा है। स्थानीय संस्थाओं पर दायित्व अधिक होने के कारण जय अधिक पड़ता जा रहा है और वह घाटे का शिकार हो रही है। राज्य सरकार द्वारा दिया जाने वाला अनुदान हमेशा दर्द एवं उसके विवेकाधीन होता है तथा इस बात पर निर्भर करता है कि सरकारी कोष में धनराशि है या नहीं? स्थानीय निकायों को अनुदान की राशि निरंतर और निश्चित रूप से मिलती रहे और उसके दिए जाने की प्रक्रिया सरल होनी चाहिए।
- **उधार या ऋण-** जैसा कि आप अब तक के अध्ययन से समझ ही गए होंगे कि स्थानीय निकायों के राजस्व स्रोत नगर में विकास की गतिविधियों को संचालित करने के लिए पर्याप्त नहीं होते। यही कारण है कि उधार या ऋण को भी इन नगरीय स्थानीय निकायों के द्वारा अपनी आय के एक साधन के रूप में गिनना पड़ता है। भारत के स्थानीय निकायों द्वारा ऋण लेने की शक्ति का विनियमन केंद्रीय सरकार द्वारा पारित स्थानीय प्राधिकरण ऋण अधिनियम, 1914 द्वारा होता है। कुछ राज्य सरकारों ने भी इस विषय पर अलग से अधिनियम बना लिए हैं, किंतु वह सब केंद्रीय अधिनियम के नमूने पर ही

आधारित है। इस केंद्रीय अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत स्थानीय निकायों को राज्य सरकार या अन्य किसी स्रोत से ऋण लेने की शक्ति कुछ निर्दिष्ट उद्देश्यों के लिए ही की गई है। जैसे- नगर पालिकाओं के निर्माण कार्य के लिए, भूमि के अधिग्रहण हेतु, अभाव, अकाल के समय सहायता कार्यों के संचालन और उनके विनियमन हेतु, किसी महामारी या खतरनाक रोग की रोकथाम के कार्यक्रम हेतु तथा स्थानीय शासन में सुधार, संकटकालीन कार्यों तथा पुराने ऋण के भुगतान हेतु। इस प्रकार यदि नगरीय निकाय अपने नियमित उसे अपने दायित्वों को पूरा नहीं कर पाता है तो भी उनकी पूर्ति हेतु ऋण भी ले सकते हैं। सभी स्थानीय निकायों को ऋण लेने के लिए राज्य सरकार की अनुमति लेनी होती हैI अधिनियम में यह भी प्रावधान किया गया है की ऋण रकम ₹500000 से और उसे वापस अदा करने की अवधि 30 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि इन दिनों में राज्य स्तर पर कोई परिवर्तन करना आवश्यक समझा जाता है तो इसके लिए केंद्रीय सरकार की स्वीकृति लेनी आवश्यक होगी। नगर निगम चूँकि नगरीय स्थानीय शासन के सर्वोच्च एवं अत्यधिक शक्ति प्राप्त निकाय होते हैं। अतः उन्हें उधार लेने के मामले में अधिक स्वतंत्रता मिली होती है। वे अपनी अचल संपत्ति और करों कि जमानत पर ऋण भी जारी कर सकते हैं। भारतवर्ष में स्थानीय निकायों द्वारा ऋण लेने के प्रावधान का अधिक उपयोग इसलिए नहीं किया जा सका, क्योंकि ना तो केंद्रीय सरकार और ना ही राज्य सरकार स्थानीय निकायों को ऋण लेने के मामले में अधिक स्वतंत्रता प्रदान कर सकती है। वस्तुतः उनके द्वारा ऋण लेने की शक्ति को सरकार द्वारा संदेह की दृष्टि से ही देखा जा सकता है। वैसे भी वह केंद्र सरकार और अधिकांश राज्य सरकारें ऋण भार से इतनी दबी हैं कि वे शासन के तीसरे स्तर की संस्थाओं को ऋण लेने के मामले में कोई उधार दृष्टि प्रस्तुत नहीं कर पायी है।

25.4.2 नगरीय स्थानीय संस्थाओं का बजट

जैसा की आपको विदित है कि बजट वित्तीय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण आयाम माना जाता है। प्रायः सभी नगरीय संस्थाएं अपना बजट तैयार करती है। यह संस्थाएं राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्र में अपना बजट तैयार करती है और उसमें केंद्र तथा राज्य सरकार की भांति ही गत वर्ष की वास्तविक आंकड़े, चालू वर्ष के अनुमानित आंकड़े, उपलब्ध वास्तविक आंकड़े एवं आगामी वर्ष के अनुमानित आंकड़े प्रस्तुत किए जाते हैंI यह बजट वार्षिक होता है और समूची इकाई का एक ही बजट बनता है। समस्त नगरीय संस्थाएं अपना बजट तैयार करके राज्य सरकार के विचारार्थ प्रस्तुत करती है। राज्य सरकार के स्वायत्त शासन निदेशालय और उसके बाद स्वायत शासन विभाग द्वारा इस बजट की जांच की जाती है। राज्य सरकार अपनी इस जांच किया बजट परीक्षा में यह सुनिश्चित करती है कि बजट में ऋणों की अदायगी की व्यवस्था की गई है या नहीं, और बजट को उन सिद्धांतों के अनुरूप और उसी तरह बनाया गया है जिस तरह राज्य सरकार में प्रस्तावित किया हुआ है। जिन संस्थाओं पर ऋण का भार कम होता है या भार नहीं होता है वह बजट निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता का उपयोग कर पाती हैं। किंतु जो संस्थाएं ऋणग्रस्त हैं उन्हें राज्य सरकारों के अधिक कठोर नियंत्रण की प्रक्रिया से गुजरना होता है। नगर निगम को बजट निर्माण में अधिक स्वतंत्रता होती है, उन्हें ना तो बजट पर राज्य सरकार की स्वीकृति प्राप्त करनी होती है और ना ही व्यक्ति राशियों के संबंध में राज्य सरकार के आदेशों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

24.4.3 लेखा पालन तथा लेखा परीक्षण

लेखा पालन की प्रक्रिया के माध्यम से ही किसी संस्थान की वित्तीय स्थिति का सटीक आकलन किया जा सकता है और आसानी से यह भी पता लगाया जा सकता है कि उसके द्वारा आरोपित कर कितनी मात्रा में वसूल किए जा

रहे हैं और कितनी मात्रा में बकाया रह गए हैं? यह सभी राज्यों में जिस अधिनियम के अधीन स्थानीय संस्थाओं की संरचना की जाती है उसी अधिनियम में लेखा पालन से संबंधित प्रावधान भी सम्मिलित किए जाते हैं और स्थानीय इकाइयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे लेखा पालन से संबंधित अपने कर्तव्य का निर्वहन पूरी प्रावधानों के अनुरूप करें। संस्थानों के लेखा पालन से संबंधित नियमों में, लेखक से संबंधित विभिन्न अधिकारियों जैसे लेखाधिकारी, लेखापाल एवं वित्तीय प्रशासन से संबंधित अन्य अधिकारियों के अधिकारों तथा कर्तव्यों की विवेचना की जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है जिससे पूरे राज्य में स्थानीय संस्थाओं के लेखा पालन में एकरूपता स्थापित की जा सके। ऐसा कर दिए जाने से राज्य सरकार और उसकी पर्यवेक्षक इकाईयां राज्य में कार्यरत विभिन्न स्थानीय संस्थानों का केवल तुलनात्मक मूल्यांकन कर सकती है, बल्कि उन पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने में भी सक्षम हो जाती है। लेखा पालन के अपने कर्तव्य के निष्पादन में यह संस्थाएं अपने द्वारा वसूल करो की राशि का ब्यौरेवार विवरण रखती है।

किसी भी प्रशासनिक संस्थान में यह देखना कि धन का व्यय उचित रूप से बजट में निर्धारित उद्देश्यों के लिए ही किया गया है, राज्य सरकार के संदर्भित आदेशों की पूर्णता अनुपालन की गई है, धन का व्यय अधिकृत अधिकारियों द्वारा ही किया गया है, और बजट में स्वीकृत धनराशि बिना स्वीकृति के एक मद से दूसरे मद में व्यय नहीं की गई है, लेखा परीक्षण के आवश्यक उद्देश्य माने जाते हैं। स्थानीय संस्थाओं के लेखा परीक्षण का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर होता है। यही कारण है कि राज्यों में लेखा परीक्षण की प्रक्रिया में कुछ अंतर पाए जा सकते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात प्रायः सभी राज्यों में स्थानीय शासन के लेखा परीक्षण का कार्य स्थानीय निधि लेखा परीक्षक द्वारा किया जाता है। प्रायः हर राज्य में एक स्थानीय निधि लेखा परीक्षक है। वह राज्य सरकार का अधिकारी है और राज्य सरकार के वित्त विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करता है। स्थानीय निधि लेखा परीक्षा के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत राज्य के समस्त स्थानीय संस्थाएं आती हैं। लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन दो भागों में तैयार किया जाता है। इसके प्रथम भाग में प्रशासकीय दृष्टि से की गई वित्तीय अनियमितताओं का वर्णन होता है, जिसे परीक्षण नोट कहते हैं। और दूसरे भाग में ऐसी आपत्तियों का विवरण दिया जाता है जिन पर संस्थागत उत्तर पर प्रशासनिक कार्यवाही अपेक्षित होती है। इस दूसरे भाग को आपत्ति विवरण कहा जाता है। यदि लेखा परीक्षण के दौरान किसी अधिकारी अथवा कर्मचारी की लापरवाही या दायित्व से संस्था को आर्थिक होने का मामला सामने आता है तो ऐसी स्थिति में निधि लेखा परीक्षक को यह अधिकार होता है कि वह संबंधित अधिकारी या कर्मचारी को क्षति पूर्ति के लिए उत्तरदाई ठहराए।

25.5 निष्कर्ष

स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय संरचना तत्वों पर निर्भर करती है, जिनमें प्रमुख हैं- स्थानीय शासन की राजनीतिक संरचना, स्थानीय इकाइयों का स्तर और आकार,उसके द्वारा प्रदत्त सेवाएं और कार्य तथा उन पर सरकार का नियंत्रण। वस्तुतः स्थानीय संस्थाओं के वित्त की संरचना और उसके क्षेत्र को निर्धारित करने में इन समस्त तत्वों का सम्मिलित योगदान होता है। यदि किसी स्थानीय संस्था की वित्तीय स्थिति कमजोर होती है और अपनी आय की तुलना में व्यय अधिक होता है तो इससे उनके कामकाज में केंद्रीय या राज्य सरकार का हस्तक्षेप बनता है जिसके परिणाम स्वरुप उनकी स्थानीय स्वायत्तता संकुचित हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न

1. नगरीय स्थानीय संस्थाओं की आय का मुख्य स्रोत क्या हैं?
2. नगर पालिकाओं के बजट की प्रारंभिक जांच किसके द्वारा होती है?
3. नगरीय स्थानीय संस्थाओं द्वारा ऋण अदायगी की अधिकतम अवधि कितनी होनी चाहिए?

4. नगरीय शासन संस्था की करो के अतिरिक्त आय के कितने स्रोत होते हैं?
5. स्थानीय वित्त के कोई दो सिद्धांत बताइए।

25.6 सारांश

भारतवर्ष में संघीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। यहां संघ तथा राज्य सरकारों के वित्तीय अधिकारों का अलग-अलग उल्लेख किया गया है। दोनों के बीच समन्वय बना रहे, इस बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान में संघ तथा राज्यों के लिए अलग-अलग आय के साधन निश्चित कर दिए गए हैं। जिस प्रकार हम और राज्यों का संबंध है, बिल्कुल उसी प्रकार राज्य तथा स्थानीय संस्थाओं के बीच भी संबंध है। स्थानीय संस्थाओं और राज्यों के बीच भी साधनों का अलग-अलग बंटवारा कर दिया गया है, जो अपने अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से अपने संसाधनों का संग्रह करते हैं। जिस प्रकार की समस्याएं केंद्र और राज्यों के बीच जन्म लेती हैं, ठीक उसी प्रकार की समस्याएं राज्य और स्थानीय संस्थाओं के बीच भी जन्म लेती है। सिर्फ अंतर इतना है कि स्थानीय संस्थाओं का आकार और व्यय का रूप तथा व्यय की तीव्रता राज्यों से कम होती है। इतने पर भी स्थानीय संस्थाओं के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है, क्योंकि अपने क्षेत्र में इन संस्थाओं को अनेक अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने होते हैं।

25.7 शब्दावली

नगरीकरण- गांव से नगर बनने की प्रक्रिया, निर्दिष्ट- निर्देश किया गया, परीवीक्षण- अच्छी तरह देखना, करारोपण- कर लगाना

25.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लगाए जाने वाले कर, **2.** स्वायत्त शासन निदेशालय, **3.** 30 वर्ष, **4.** दो (आंतरिक स्रोत, बाहरी स्रोत), **5.** अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धांत, योग्यता का सिद्धांत

25.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, अशोक.2019, भारत में स्थानीय प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर पब्लिशर्स ,जयपुर।
2. सिंह, एस.के., 2009, लोक वित्त के सिद्धांत तथा भारतीय लोक वित्त; साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
3. पंत,जे.सी.2005, लोक अर्थशास्त्र; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

25.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लेखी, आर.के., 2009, लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना।
2. कटारिया, सुरेंद्र, 2009, भारतीय लोक प्रशासन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

25.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगरीय स्थानीय शासन से आप क्या समझते हैं उसकी विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. स्थानीय को समझाते हुए आर्थिक विकास में स्थानीय वित्त की भूमिका को समझाइए।
3. नगरीय स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

इकाई- 26 ग्रामीण शासन का वित्तीय प्रशासन

इकाई की संरचना

26.0 प्रस्तावना
26.1 उद्देश्य
26.2 भारत में ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की पृष्ठभूमि
26.3 पंचायती राज संस्थाओं के कार्य
26.4 ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन
26.4.1 पंचायती राज संस्थाओं की आय के स्रोत
26.4.1.1 ग्राम पंचायत की आय के स्रोत
26.4.1.2 पंचायत समिति की आय के स्रोत
26.4.1.3 जिला परिषद की आय के स्रोत
26.4.2 पंचायती राज संस्थाओं का बजटन
26.4.3 पंचायती राज संस्थाओं के लेखे एवं अंकेक्षण
26.4.4 वित्तीय प्रशासन संबंधी कमियां/समस्याएं
26.5 निष्कर्ष
26.6 सारांश
26.7 शब्दावली
26.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
26.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
26.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
26.11 निबन्धात्मक प्रश्न

26.0 प्रस्तावना

स्थानीय शासन की संस्थाओं की सफलता उनके पास उपलब्ध वित्तीय स्रोतों एवं सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था पर ही निर्भर करती है। किसी भी अन्य संस्था की भांति ही स्थानीय स्वशासन संस्थाएं भी अपनी मूलभूत दायित्वों का उचित निष्पादन तब तक नहीं कर सकती है, जब तक कि उनके पास सपने इन कार्यों को संपन्न करने के लिए पर्याप्त आर्थिक साधन उपलब्ध ना हो। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को अपनाने के साथ ही लोक प्रशासन से जनसाधारण की अपेक्षाएं और आकांक्षाएं बहुत बढ़ गए हैं। यही कारण है कि भारत में भी स्थानीय निकायों के कार्यों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक हो गया है और लोगों की उनसे अपेक्षाएं भी उसी मात्रा में बढ़ गई है। परंतु वास्तविकता यह है कि इन स्थानीय संस्थाओं के पास अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए उचित मात्रा में वित्तीय संसाधन उपलब्ध नहीं होते हैं। गांवों तथा शहरों की बढ़ती जनसंख्या इन स्थानीय संस्थाओं के पास उपलब्ध वित्तीय संसाधनों को भी अपर्याप्त बना देती है। प्रस्तुत अध्याय में हम ग्रामीण स्थानीय शासन के वित्तीय प्रशासन के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

26.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की पृष्ठभूमि को समझ पाएंगे।

- पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न कार्यों को जान पाएंगे।
- ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन को विस्तार से जान पाएंगे।

26.2 भारत में ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की पृष्ठभूमि

नगरीय स्थानीय संस्थाओं के संदर्भ में अपने पिछले अध्याय में विस्तार से जाना। पिछले अध्याय में भारत में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के विकास के संदर्भ में आपने जाना कि किस प्रकार अंग्रेजो के द्वारा 1687 में मद्रास में नगर पालिका की स्थापना की गई थी। स्थानीय स्वशासन की ग्रामीण इकाइयों के संदर्भ में ग्राम पंचायतों का इतिहास बहुत प्राचीन है, परंतु अंग्रेजों ने इन संस्थाओं को पुनर्गठित और पुनर्जीवित किया। चूँकि भारत में नगरीय स्थानीय संस्थाओं निर्माण तो बहुत पहले ही किया जा चुका था, परंतु 1919 से नगर पालिकाओं का नियंत्रण सरकार के अधीन आ गया और अब ग्राम पंचायतों के बारे में नियम बनाए जाने लगे। 1935 में अनेक राज्यों में अंतरिम सरकार बनी और उन सरकारों के बनते ही ग्राम पंचायतों और स्थानीय संस्थाओं की मांग जोर पकड़ने लगी।

भारत स्वतंत्र हुआ, राष्ट्रीय सरकार बनी और इसके बाद तुरंत पंचायतों के बारे में फिर से सोचा जाने लगा तथा इस दिशा में नियम बनाए जाने लगे। नवीन संविधान बनाया गया, जिसमें ग्राम पंचायतों को 'निर्देशक सिद्धांतों' के अंतर्गत शामिल किया गया। यह व्यवस्था संविधान के अनुच्छेद- 41 में की गई है। आज ग्राम पंचायतें प्रजातंत्र का मुख्य आधार बन चुकी है। नीचे से ऊपर की ओर विकास करने के उद्देश्य से ग्राम पंचायतों के महत्व को स्वीकार किया गया है। ग्राम पंचायतों का महत्व आज प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में बहुत बढ़ गया है। ग्राम पंचायत के अंतर्गत एक या एक से अधिक गांव आते हैं पर्वतीय क्षेत्र को छोड़कर पंचायतों का गठन जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। इस संस्था का मुखिया प्रधान या सभापति होता है, तथा प्रत्येक गांव से या गांव के मोहल्लों से अन्य सदस्यों का निर्वाचन प्रजातांत्रिक आधार पर किया जाता है। यह चुनाव कभी-कभी निर्विरोध भी हो सकता है। चुने गए सदस्य तथा सभापति सब मिलकर गांव की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हैं तथा गांव के लिए नीतियों का निर्धारण करते हैं।

1993 में पंचायती राज या ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन के संबंध में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग, भाग- 9 तथा एक अनुसूची, 11वीं अनुसूची जोड़ी गई है और 'पंचायत राज व्यवस्था' को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। यह अधिनियम 25 अप्रैल,1993 को लागू हो गया। अधिनियम में प्राथमिक स्तर पर ग्राम सभा की व्यवस्था की गई है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की प्रत्यक्ष लोकतंत्र संस्था है। इस अधिनियम में ग्राम सभा के अतिरिक्त त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं की व्यवस्था की गई है- ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत, विकास खंड पर खंड समिति या पंचायत समिति, और जिला स्तर पर जिला परिषद।

स्थानीय स्वायत्त शासन प्रणाली का औचित्य वित्तीय संघवाद के सिद्धांत से प्रारंभ होता है। कुछ सेवाएं जैसे सुरक्षा, संचार का केंद्रीय सरकार के पास होना आवश्यक है। परंतु कुछ कार्य ऐसे हैं जो स्थानीय सरकार के लिए ही उचित है, क्योंकि स्थानीय स्वायत्त शासन के स्तर पर घनिष्ट संबंध स्थापित किया जा सकता है और यह कार्य बदली हुई परिस्थितियों में भली प्रकार से पूरे किए जा सकते हैं। कई बार एक स्थान से दूसरे स्थान पर समन्वय तथा भिन्नता होती है। स्थानीय करों को, लाभों के सौहार्दपूर्ण मिश्रण से प्राप्त सिद्धांत, सेवा पर लागत के सिद्धांत तथा कर देयता की क्षमता के सिद्धांत पर आधारित करना आसान है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर की सरकार की तुलना में, स्थानीय स्तर पर संबंधित कर देयता क्षमता निर्धारित करने में सहायक होती है। इस समय हमारे देश में ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं को को एकत्रित करने के लिए कर लगाने के अधिकारों के अनुसार तीन भागों में

वर्गीकृत किया जा सकता है- ग्राम पंचायतें, पंचायत समितियां एवं जिला परिषदें। इस संदर्भ में नगरीय संस्थाओं का अध्ययन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं।

26.3 पंचायती राज संस्थाओं के कार्य

जैसा कि आपने उपरोक्त अध्ययन में जाना कि भारत में 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के बाद तीन प्रकार की पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया-ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद। इन पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन को विस्तार से जानने से पूर्व आइए एक नजर में ग्रामीण या पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों का उत्तरदायित्व पर ही डालें। ग्रामीण स्तर की इन तीनों संस्थाओं को संबंधित स्थानीय क्षेत्रों के विकास का उत्तर दायित्व सौंपा गया। इन तीनों संस्थाओं को अपने-अपने क्षेत्रों में अनिवार्य एवं एच्छिक दोनों प्रकार के कार्यों का संपादन करना होता है। ग्राम पंचायतों को देश के अधिकतम भागों में स्थापित किया गया है। ग्राम पंचायत स्थानीय प्रशासन की आधारभूत तथा आरंभिक इकाई है। एक गांव में प्रायः एक पंचायत होती है। परंतु इस संबंध में कोई स्थाई नियम नहीं है। कई बार इसका अधिकार क्षेत्र दो या इससे अधिक गांवों तक बढ़ाया जा सकता है, यदि गांव की जनसंख्या न्यूनतम हो। कई बार जनसंख्या एवं राजस्व के आधार पर पंचायतों को कुछ श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। उच्च श्रेणी की पंचायतें कर लगाने की अधिक शक्तियां रखती हैं।

ग्राम पंचायतों के कार्यों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- अनिवार्य कार्य, एच्छिक कार्य। ग्राम पंचायतों द्वारा किए जाने वाले कार्य एक प्रांत से दूसरे प्रांत में भिन्न होते हैं। एक पंचायत द्वारा मुख्य के नगरीय कार्य किए जाते हैं, जैसे- जल पूर्ति का प्रबंध, सफाई, सड़क रोशनी, सड़कों की संभाल, जन्म मृत्यु संबंधी आंकड़े एकत्रित करना। इसके अलावा पंचायतें और भी कई प्रकार के कार्य करती हैं। जैसे- न्यायिक, पुलिस, आर्थिक एवं सामाजिक कार्यI बहुत से प्रांतों में छोटे-मोटे झगड़े पंचायतों द्वारा सुलझाएं जाते हैं। इसके एच्छिक कार्यों के अंतर्गत कई प्रांतों में ग्राम विकास से संबंधित कार्य भी ग्राम पंचायतों के द्वारा संपन्न किए जाते हैं। ग्राम पंचायतें अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए गलियों एवं सड़कों के किनारे वृक्ष लगाती हैं। ग्राम पंचायत द्वारा पशुओं की सुधरी हुई नस्ल,उनका उपचार तथा उन्हें संक्रमण रोगों से बचाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाते हैं। सहकारी संस्थाओं का विकास, सार्वजनिक पुस्तकालय की देख रेख, प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम, सामाजिक सामंजस्य की परियोजनाओं का प्रबंधन आदि भी ग्राम पंचायतों के द्वारा संपन्न किए जाते हैं।

खंड स्तर पर पंचायत समिति का गठन किया जाता है। पंचायत समिति शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सफाई जैसे कार्य सामाजिक सेवा के रूप में करती है। उसके साथ ही विकास से संबंधित कार्य व्यक्ति कृषि तथा पशु, सिंचाई, सहकारिता का विकास, लघु उद्योगों तथा कुटीर उद्योगों का विकास आदि के साथ-साथ राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर प्रदान किए जाने वाले कार्यों का भी संपादन करती है। इन सब कार्यों के अतिरिक्त पंचायत समिति ग्राम पंचायतों के कार्यों की निगरानी भी करती है। ग्राम पंचायत के बजट की जांच परख भी करती है। कई राज्यों में तो यह ग्राम पंचायतों के बजट को स्वीकृति भी देती है।

जिला परिषद के कार्य भी अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार के होते हैं। कई राज्यों में यह समन्वय पैदा करने वाली संस्था के रूप में जानी जाती है, जो पंचायत समितियों के कार्यों की निगरानी करती है। यह विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के संबंध में सरकार को परामर्श भी देती है। इन कर्तव्यों के कुछ राज्यों में जिला परिषद के कुछ वैज्ञानिक कार्यकारी होते हैं। जिला परिषद माध्यमिक व्यवसायिक तकनीकी स्कूलों की स्थापना, संभाल एवं विस्तार के कर्तव्य भी निभाती है। इन सबके अलावा भी जिला परिषद के कार्यों की सूची भी अत्यधिक लंबी है।

यहां इन सब पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों की सूची को जानने का अभिप्राय यही है कि इतने सारे कार्य को संपन्न करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन का मूल्यांकन करने में आसानी होगी।

26.4 ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन

स्वतंत्रता के बाद जब हमारे देश में संविधान का प्रवर्तन हुआ उस समय स्थानीय शासन संविधान द्वारा सृजित सोपान नहीं था। संविधान में किए गए 73वें संवैधानिक संशोधन के परिणाम स्वरूप पंचायती राज संविधान का हिस्सा बन गया है। परंतु इस स्थिति के बाद भी संविधान द्वारा इन पंचायती राज संस्थाओं की आय के लिए कोई प्रथक से स्रोत नहीं बताए गए हैं, जिसके कारण शासन की इस तीसरी इकाई को करारोपण, आय और व्यय के स्रोत और वित्तीय प्रबंध के कोई स्पष्ट अधिकार नहीं मिल सके हैं। संविधान संशोधन के बाद इस दिशा में एक सकारात्मक कदम उठाया गया है कि केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों के विनियमन के लिए जिस तरह वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया हुआ है, ठीक उसी प्रकार से राज्य सरकारों और दोनों प्रकार की स्थानीय संस्था अर्थात ग्रामीण एवं नगरीय के मध्य वित्तीय संबंधों के विनियमन और संबंधित पक्षों पर सुझाव देने के लिए राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान कर दिया गया है। अब पंचायती राज संस्थाएं करारोपण आदि के संदर्भ में राज्य वित्त आयोग की अनुशंसाओं के अनुरूप राज्य सरकार द्वारा दिए गए दिशा निर्देशों के अनुसार काम करती हैं। यह संस्थाएं जो भी नए कर अपने क्षेत्र में आरोपित करना चाहेंगे, इसके लिए उन्हें राज्य वित्त आयोग के मार्गदर्शक ओं को ध्यान में रखने के अलावा राज्य सरकार की पूर्व अनुमति भी लेनी होगी।

वित्तीय प्रशासन के संचालन के लिए ग्राम पंचायत के स्तर पर कोई अलग से तंत्र या कार्मिक वर्ग उपलब्ध नहीं कराया गया है। पहले यह कार्य सरपंच के द्वारा निष्पादित किया जाता था। अब यह कार्य सरपंच के निर्देशन में ग्राम पंचायत के समूह सचिव के द्वारा निष्पादित किया जाता है। पंचायत समिति स्तर पर यह दायित्व विकास अधिकारी अपने कार्यालय स्टाफ की मदद से करता है। इसी तरीके से जिला परिषद में मुख्य कार्यकारी अधिकारी अपने अधीनस्थ लेखा कर्मचारियों की सहायता से वित्तीय प्रशासन का संचालन करता है।

पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन को आसानी से समझने के लिए इसको दो भागों में विभक्त करके समझा जा सकता हैं- विभिन्न संस्थाओं की आय के स्रोत जिसमें करारोपण की शक्तियां भी शामिल है, और विभिन्न संस्थाओं की निर्माण एवं लेखा प्रणाली तथा अंकेक्षण की प्रणाली के द्वारा।

26.4.1 पंचायती राज संस्थाओं की आय के स्रोत

इस अध्याय के अगले कुछ पृष्ठों में हम विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं जैसे- ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद के वित्तीय प्रशासन के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

सन 1957 में बलवंत राय मेहता कमेटी ने सुझाव दिया था कि स्थानीय स्वायत्त शासन के लिए साधनों की खोज के प्रयत्न किए जाने चाहिए। श्री मेहता के सुझावों के अनुसार ग्राम पंचायतों के लिए साधनों का मुख्य स्रोत केंद्रीय सरकार है। गृह-कर, मंडियों एवं वाहनों पर कर, चुंगी अथवा सीमावर्ती कर, संरक्षण कर, जल तथा बिजली कर, पशुओं के तालाब से आय, बेचे गए पशुओं के पंजीकरण से शुल्क, पंचायत समितियों से अनुदान और प्रांतीय सरकार से अनुदान ग्राम पंचायतों के आय के साधनों के अन्य स्रोत हैं। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि ग्राम पंचायत का प्रयोग भूमि कर एकत्रित करने वाली एजेंसी के रूप में किया जाए तथा ग्राम पंचायत को इसके लिए कमीशन भी दिया जाए। परंतु पंचायतें दक्षता के एक न्यूनतम स्तर को संतुष्ट करें। ग्राम पंचायतों को पंचायत समितियों से कानूनी रूप में निर्धारित शुद्ध भूमि राजस्व का 75 प्रतिशत भाग प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, ग्राम पंचायत का बजट, पंचायत समिति द्वारा निरीक्षण तथा स्वीकृति पर आधारित होना चाहिए।

पंचायती राज संस्थाओं पर अध्ययन करने वाले दल ने सुझाव दिया कि ग्राम पंचायत की आय के साधन गृह कर, व्यवसायिक कर तथा वाहन पर अनिवार्य करों के रूप में होने चाहिए तथा इनके अंतिम सीमा दर भी निर्धारित होनी चाहिए। चुंगी कर को अन्य प्रगतिशील करों- जैसे पशुओं पर कर, श्रम कर, राजस्व पर विशेष कर, कुछ विशेष विकास परियोजनाओं को पूरा करने के लिए ग्रह कर आदि से बदल देना चाहिए। इस दल का यह भी सुझाव था कि प्रांतीय सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों से इकट्ठा किया मनोरंजन कर का भाग पंचायत के साथ बांटना चाहिए। स्टांप मुद्रांक पर सरचार्ज लगाया जाए तथा उसके प्राप्त आय पंचायतों एवं समितियों में बांटी जाए। आर्थिक यात्रा-कर पंचायत समिति व जिला परिषद द्वारा लगाई जाए तथा उससे प्राप्त कुल आय का कुछ भाग पंचायतों को दिया जाए। पंचायत समिति एवं जिला परिषद की शुद्ध आय का एक निश्चित भाग पंचायतों को दिया जाए। अध्ययन दल ने यह सुझाव भी दिया कि ₹1 प्रति व्यक्ति के हिसाब से न्यूनतम अनुदान प्रत्येक पंचायत को अनुरक्षण अनुदान के रूप में दिया जाए तथा इसके लिए वित्त प्रांत एवं केंद्रीय सरकारों द्वारा एक सामान बांटा जाए।

26.4.1.1 ग्राम पंचायत की आय के स्रोत

ग्राम पंचायत की आय के साधनों को मोटे तौर पर निम्न तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है- 1. करों एवं शुल्कों से आय, 2. सरकार से प्राप्त अनुदान से आय तथा 3. ऋण,उधार या दान से आय।

1. **करों एवं शुल्कों से आय-** कुछ राज्यों में ग्राम पंचायतों को स्वयं के स्त्रोतों से आय होती है, उसे करों एवं करों से अतिरिक्त आय के अंतर्गत देखा जा सकता है।
   - **करों से आय-** राजस्थान समेत कई राज्यों में ग्राम पंचायतें निजी भवनों पर कर, तीर्थयात्री कर, पेयजल के प्रदान करने की व्यवस्था के लिए कर, वाणिज्यिक फसलों पर कर, पंचायत सर्कल के भीतर उसमें उपभोग के लिए लाए गए पशु या माल पर चुंगी आदि जैसे कर लगा सकती है। इस प्रकार लगाए जाने वाले सभी कर राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार ही लगाए एवं संग्रहित किए जाते हैं।
   - **करों के अतिरिक्त आय-** ग्राम पंचायतों को करों के अलावा कुछ अन्य साधनों जैसे कि फीस एवं शास्ति तथा जन सहयोग और भूमि विक्रय थे जो आय होती है उसे इसके अंतर्गत रखा जा सकता है।
2. **केंद्र/ राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान से आय-** ग्राम पंचायतों को सरकार द्वारा मिलने वाला अनुदान भी उनकी आय का एक स्रोत माना जाता है। ग्राम पंचायतों के लिए राजस्थान में ही व्यवस्था की गई है कि अब सामान्य अनुदान की राशि के रूप में प्रति व्यक्ति ₹11 प्रति वर्ष प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ स्कूल भवनों, सड़कों और दूसरी ग्रामीण संपत्तियों के रखरखाव के लिए भी ₹5000 वार्षिक की एक राशि एकमुश्त अनुदान के रूप में निर्धारित की गई है। इसके अलावा अपनी स्वयं की आय बढ़ाने वाली तथा उत्कृष्ट सेवा करने वाली तीन ग्राम पंचायतों का चयन कर प्रत्येक ज़िला स्तर पर उन्हें क्रमशः ₹200000,100000 एवं ₹50000 के तीन प्रोत्साहन पुरस्कार भी अनुदान के रूप में दिए जाने का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार अन्य राज्यों में भी सरकार द्वारा ग्राम पंचायतों को अनुदान की राशि विभिन्न मदों में प्रदान की जाती है जो उनके वित्तीय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण भाग होता है।
3. **ऋण, उधार या दान से आय-** विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्था अपने निर्धारित उद्देश्यों और योजनाओं की क्रियाविधि के लिए सरकार से या उसकी स्वीकृति से बैंकों या अन्य वित्तीय संस्थाओं से धन भी उधार ले सकती है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सादिक अली ने अपने प्रतिवेदन में यह अनुशंसा की थी कि पंचायती राज संस्थाओं के लिए छोटे उद्योग-धंधों और कार्यों को हाथ में लेने की ना केवल अनुमति देनी चाहिए, बल्कि इस हेतु ऋणों की व्यवस्था किया जाना भी उचित होगा। जहां तक ग्राम पंचायतों की वास्तविक आर्थिक स्थिति का संबंध है प्रायः यह अनुभव किया गया है कि उनकी

आय के स्रोत, उनसे अपेक्षित कार्यों की तुलना में बहुत कम होते हैं। अतः उनकी आर्थिक स्थिति को अतिरिक्त आय स्रोतों के विकास द्वारा उन्नत बनाए जाने की आवश्यकता है।

26.4.1.2 पंचायत समिति की आय के स्रोत

भारत के अधिकतर राज्यों में 'पंचायत समिति' पंचायती राज व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। खंड स्तर पर स्थित यह इकाई राज्य सरकार की अभिकर्ता के रूप में कार्य करती है और एक रूप में उसे बेहतर कार्य करने पड़ते है। जिन्हें राज्य सरकार समय-समय पर विशिष्ट रूप से उन्हें सौंपती है। पंचायत समिति अपने क्षेत्र के अंतर्गत स्थित ग्राम पंचायतों के कार्यों का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करती है। वह पंचायतों को आवश्यक तकनीकी और वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराती है। इन सब कारणों से पंचायती राज पर बने सभी अध्ययन दलों ने यह सिफारिश की थी कि सभी प्रमुख वित्तीय स्रोत पंचायत समिति को स्थानांतरित कर दिए जाने चाहिए। अधिकांश राज्यों ने इन सिफारिशों पर सकारात्मक प्रतिक्रिया भी की। इसी पृष्ठभूमि में ग्राम पंचायतों की भांति ही पंचायत समिति के आय के स्त्रोतों को भी मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है- 1.पंचायत समिति द्वारा लगाए जाने वाले करों से आय, 2. सरकार से प्राप्त अनुदान से आय और तथा 3. ऋण,उधार या दान से आय।

1. **पंचायत समिति द्वारा लगाए जाने वाले करों से आय-** भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 276 के उपबंधों और राज्य सरकार के किन्हीं साधारण या विशेष आदेशों के अधीन पंचायत समिति निम्नलिखित में से सभी या किन्हीं करों को लगा सकती है एवं लगाकर उनकी वसूली भी कर सकती है- व्यापार, आजीविकाओं,व्यवसायों या उद्योगों पर कर, प्राथमिक शिक्षा पर उपकर तथा पंचायत समिति क्षेत्र में आयोजित मेलों पर कर। राज्य सरकारें अपने अधिनियमों के माध्यम से अपने राज्य की विभिन्न पंचायत समितियों को विभिन्न करो को आरोपित करने एवं उनसे संबंधित आय को अपने पास रखने का प्रावधान करती हैं।
2. **करों के अतिरिक्त आय-** कुछ राज्यों में पंचायत समितियों को करेतर संसाधनों से जो आए होती है, उनका उल्लेख कुछ इस प्रकार से किया जा सकता है- चल व अचल संपत्ति पर कर, हांड्डियों के ठेकों से आय तथा ग्राम पंचायत के निर्णय की अपील पर शुल्क।
3. **सरकार से प्राप्त अनुदान से आय**- विभिन्न कार्यों के संपादन के लिए पंचायत समितियों को राज्य सरकार के द्वारा अनुदान दिया जाता है। सामान्य अनुदान के रूप में प्रत्येक पंचायत समिति को कार्यालय तथा इससे संबंधित अन्य कार्यों के लिए अनुदान दिया जाना होता है। वर्ष 1995 से पंचायत समितियों के मंत्रालयिक और तकनीकी कर्मचारियों में वृद्धि के साथ उसी वर्ष से इन्हें संस्थापन अनुदान दिया जाने लगा है। पंचायत समितियों को प्रतिवर्ष ₹10000 इसके स्वामित्व के भवनों के रखरखाव के लिए दिए जाने लगे हैं। पंचायत समितियों को मैचिंग अनुदान भी दिया जाता है। निर्माण कार्यों या अन्य किसी विशेष सेवा कार्य हेतु पंचायत समिति द्वारा स्वयं के साधन जुटा लेने पर उतनी ही राशि मैचिंग अनुदान के रूप में देने का प्रावधान कर रखा है।
4. **ऋण या उधार या दान से आय**- विभिन्न राज्यों में पंचायत समितियां पंचायती राज अधिनियम के माध्यम से अपने द्वारा बनाई गई योजनाओं और उनके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार से किया उनकी पूर्व स्वीकृति से बैंकों या अन्य संस्थाओं से धन उधार ले सकती है।

26.4.1.3 जिला परिषद की आय के स्रोत

जिला परिषद की आय के साधन, जिला परिषद को सौपे गए कार्यो के आधार पर निर्भर करते हैं। यह सब कार्य विभिन्न प्रांतों में भिन्न भिन्न होते हैं। उन प्रांतों में जहां इसके कार्य समन्वय संस्था के रूप में होते हैं वहां के साधन सीमित होते हैं। इसके प्रतिकूल जहां जिला परिषद के कार्य कार्यकारी होते हैं, वहां पर साधनों की बड़ी सीमा तक

आवश्यकता होती है। जैसे कि आंध्रप्रदेश और महाराष्ट्र में है। पंचायती राज व्यवस्था की अन्य दो संस्थाओं की भांति ही जिला परिषद की आय के स्रोतों को भी निर्णय तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है- 1. जिला परिषद द्वारा लगाए जाने वाले करों से आय, 2. सरकार से प्राप्त अनुदान से आय और 3. ऋण,उधार या दान से आय।

1. **जिला परिषद द्वारा लगाए जाने वाले करों से आय-** विभिन्न राज्यों में जिला परिषदों को संबंधित अधिनियम के द्वारा कुछ कर आरोपित एवं एकत्रित करने का अधिकार प्रदान किया जाता है। यह कर विभिन्न राज्यों में अलग अलग हो सकते हैं। जैसे- किसी मेले की अनुज्ञप्ति के लिए फीस, जल दर, व्यवसायिक व्यापार व्यापारों पर कर, सार्वजनिक मनोरंजन कर, भूमि तथा भवनों पर कर, जिला परिषद मंडी शुल्क, दलालों पर लाइसेंस शुल्क, आढ़तियों, तोलने तथा मापने वालों पर शुल्क तथा बाजार में बिक्री के लिए वस्तुएं प्रदर्शित करने पर मंडी शुल्क आदि होते हैं।
2. **सरकार से प्राप्त अनुदान से आय-** जिला परिषद की आय का एक बड़ा भाग प्रांतीय सरकार के अनुदानों से प्राप्त होता है। जिला परिषद की पर्यवेक्षक की स्थिति को देखते हुए राजस्थान में प्रथम राज्य वित्त आयोग ने जिला परिषदों को दिए जाने वाले अनुदानों को सामान्य, संधारण या रखरखाव अनुदान तथा प्रोत्साहन अनुदान के रूप में विभक्त किया। इन अनु संस्थाओं से पहले जिला परिषदों को राजस्थान राज्य सरकार से कोई अनुदान प्राप्त नहीं होता था, बल्कि उन्हें अपने कार्यों के संचालन के लिए अधीनस्थ पंचायत समितियों के अंशदान पर निर्भर रहना पड़ता था।
3. **ऋण,उधार या दान से आय-** जिला परिषद अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों की पूर्ति के लिए राज्य सरकार से या सरकार की पूर्व अनुमति से किसी बैंक से या अन्य किसी अन्य वित्तीय संस्थाओं से धन उधार ले सकती है।

देश के विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं के उपलब्ध आंकड़ों का आकलन करने से यह सिद्ध होता है कि पूरे देश भर में पंचायती राज संस्थाओं की स्वयं की आय कम हो गई है, विशेषकर ग्राम पंचायतों की स्वयं की आय का प्रतिशत बहुत अधिक गिरा है जिसका प्रमुख कारण, राज्य सरकार द्वारा चुंगी और ग्रह कर समाप्त कर दिया जाना है। अन्य कर लगाने से यह संस्थाएं स्वयं कतराती है। राज्य सरकार द्वारा प्रदत अनुदान पर निर्भरता इन संस्थाओं की स्वतंत्रता और प्रशासनिक कुशलता की दृष्टि से ठीक नहीं कही जा सकती है। जब से राज्य वित्त आयोग का गठन हुआ है पूरे भारत में पंचायती राज संस्थाओं की कुल आय में वृद्धि दर्ज की गई है, लेकिन इन संस्थाओं की कुल आय आवश्यकताओं से अभी भी कम ही है। जब तक इन संस्थाओं की स्वयं की आय समुचित नहीं हो जाए प्रशासनिक स्थिति ठीक नहीं हो सकती है।

26.4.2 पंचायती राज संस्थाओं का बजटन

पंचायती राज संस्थाएं यद्यपि संविधान द्वारा निर्मित स्वायत्तशासी संस्थाएं हैं, फिर भी अन्य सरकारी संस्थाओं की तरह ही इनमें बजट निर्माण, लेखा संधारण और अंकेक्षण की व्यवस्था पाई जाती है। इन संस्थाओं द्वारा अपने बजट का निर्माण करके संबंधित संस्था के सम्मुख स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। संबंधित संस्था द्वारा उसके पास किए जाने के पश्चात उच्च स्तर पर बजट समवीक्षार्थ भेजा जाता है। अधिकांश राज्यों में ग्राम पंचायत का बजट पास करके ग्राम सभा के सम्मुख विचार-विमर्श हेतु प्रस्तुत किया जाता है। ग्राम सभा के सुझावों, टीका टिप्पणी और आलोचना समालोचना पर, विचार करते हुए ग्राम पंचायत द्वारा पुनः बजट पर विचार करके उसे स्वरूप प्रदान करके आगे संबंधित अधिकारी के पास भेजा जाता है। ग्राम सभा के सुझाव ग्राम पंचायत के लिए मानना बाध्यकारी नहीं है। पंचायत समिति द्वारा पारित बजट समवीक्षार्थ जिला परिषद के मुख्य कार्यपालक अधिकारी को और जिला परिषद का बजट निदेशक, पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास को प्रेषित किया जाता है। विकास

अधिकारी, मुख्य कार्यपालक अधिकारी और निदेशक पंचायती राज द्वारा ऐसे बजट अनुमानों की समीक्षा की जाती है और संवीक्षा के पश्चात ग्राम पंचायत का बजट पंचायत समिति को, पंचायत समिति का बजट जिला परिषद को और जिला परिषद के बजट को निदेशक, पंचायती राज के मंजूरी के लिए प्रेषित किया जाता है।

बजट अनुमान प्राप्त होने पर मंजूरी अधिकारी बजट को मंजूरी प्रदान कर सकता है या उपांतरण के सुझाव एवं उपांतरण के संबंध में अपनी टिप्पणियों के साथ संबंधित पंचायती राज संस्थाओं को लौटा सकता हैI मंजूरी अधिकारी को बजट अनुमान निर्धारित समयावधि के भीतर वापस करना होता हैI यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है तो संबंधित पंचायती राज संस्था को यह अधिकार होता है कि वह- प्रतिबद्ध मदों पर अपने स्रोत जुटा ले, और उनके क्रियान्वयन पर व्यय उपगत कर ले।

लेकिन पंचायती राज संस्था द्वारा व्यय की ऐसी किसी भी मद पर,जिसके लिए मैचिंग ग्रांट प्राप्त करनी है, कोई भी व्यय उस समय तक नहीं करें, जब तक कि बजट को मंजूरी प्राधिकारी द्वारा लौटा नहीं दिया जाता है। वित्तीय वर्ष के दौरान बजट में फेरबदल का भी प्रावधान है। बजट में कोई भी परिवर्तन, उसकी प्राप्ति हो या इस अधिनियम के प्रयोजनार्थ व्यय की जाने वाली रकम के वितरण के संबंध में करना आवश्यक समझे तो बजट संबंधी उपरोक्त रीति से ही कोई अनुपूरक या पुर्नरीक्षित बजट विचारित,पारित, प्रस्तुत और उपांतरित किया जा सकता है।

26.4.3 पंचायती राज संस्थाओं के लेखे एवं अंकेक्षण

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-273 'अ' में यह प्रावधान है कि समय-समय पर पंचायती राज संस्थाओं के लेखों की जांच एवं अंकेक्षण किया जाएगा। इस संबंध में राज्य विधान मंडलों को अधिकृत किया गया है। पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों पर लेखे संबंधी नियम राज्य सरकार ने बनाकर इनके लिए प्रारूप निर्धारित कर रखे हैं। उन्हीं प्रारूपों पर है तरीके से लेखे रखे जाते हैं। पंचायती राज संस्थाओं के अंकेक्षण के लिए स्थानीय निधि-अंकेक्षण निदेशालय अलग से गठित हैं जो एक निदेशक के अधीन कार्यरत हैं। स्थानीय संस्थाओं के लेखा परीक्षण के उद्देश्य से राजस्थान राज्य में तो एक स्थानीय निधि अंकेक्षण, (संपरीक्षा अधिनियम), 1954 प्रभावी है। यह निदेशालय पंचायती राज संस्थाओं का लगभग नियमित रूप से शत-प्रतिशत अंकेक्षण करता है। इन संस्थाओं का सांकेतिक अंकेक्षण का कार्य भारत का नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक करता है। संविधान के अनुच्छेद- 273 'अ' में यह प्रावधान है कि, समय-समय पर पंचायती राज संस्थाओं के लेखों का अंकेक्षण किया जाएगा तथा इस संबंध में राज्य विधानमंडल व्यवस्था करेगा। पंचायत समिति और जिला परिषद के मुख्यालय पर स्थानीय निधि अंकेक्षण निदेशालय की टीम जाकर लेखा परीक्षण के लिए संबंधित मुख्यालय पर बुला लिया जाता है, पंचायत सचिव संपूर्ण दस्तावेज लेकर निर्धारित तिथि को पंचायत समिति पहुंचकर इस कार्य में सहयोग करने के लिए उत्तरदाई होता है। दस्तावेजों की जांच के कुछ समय पश्चात अंकेक्षण प्रतिवेदन तैयार करके संबंधित संस्था अपने से ऊपर की संस्था को एक-एक प्रति भेज देती है। प्रतिवेदन के प्राप्त होने के 2 माह की अवधि के अंदर अनुपालना प्रतिवेदन भेजा जाना चाहिए।

26.4.4 वित्तीय प्रशासन संबंधी कमियां/समस्याएं

वित्तीय प्रशासन संबंधी कमियों या समस्याओं का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से करते हैं-

1. **करों को लगाने की इच्छा शक्ति का अभाव-** पूरी भारतीय राजनीति, चाहे वह राज्य स्तरीय हो या फिर स्थानीय, इस समस्या से ग्रस्त है कि सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा जिन करो से आय बढ़ाई जा सकती है, उसे प्रभावी रूप से लागू करने की इच्छाशक्ति की जनप्रतिनिधियों में कमी पाई जाती है। फिर पंचायती राज संस्थाएं मतदाताओं से भौगोलिक रूप से अत्यंत गरीब भी होती हैं,इस कारण भी संस्थाएं कर लगाने से ज्यादा कतराती हैं। जनप्रतिनिधि कर लगाकर अपने मतदाताओं का रोष मोल लेना नहीं चाहते हैं,

बल्कि स्थिति यह है कि जो भी कर या फीस लगा रखी होती है, उसे और समाप्त करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। गृह कर और चुंगी इसके ज्वलंत उदाहरण है। यदि पंचायती राज संस्थाएं कर और फीस लगाएंगी ही नहीं तो इनकी स्वयं की आय पर्याप्त नहीं हो सकती है।

2. **करों और फीस की वसूली का अभाव-** पंचायती राज संस्थाओं की एक और बड़ी समस्या यह भी है कि जो कर या पीस लगा भी रखी होती है, उसे समय पर पूर्ण रूप से उगाहने के प्रति गंभीरता इन संस्थाओं में नहीं पायी जाती है। कर और फीस वसूली में कुछ तो इनके कार्मिक ढिलाई बरतते हैं और कुछ जनप्रतिनिधियों की शह से इस काम में और ढ़िलाई होती है।
3. **अव्यावहारिक कर प्रणाली-** इन संस्थाओं की कर प्रणाली कुछ और व्यवहारिक सी प्रतीत होती है। जैसे वाहन कर।पंचायतों द्वारा कृषि कार्यों के अलावा अन्य वाहनों पर कर लगाने का प्रावधान होता है। भारतीय ग्रामीण पर्यावरण में यह एक अव्यावहारिक प्रावधान नजर आता है। गांव में कृषि के कार्यों के अलावा निजी वाहनों की सुविधा कितने लोगों के पास है, बहुत कम ही लोग होंगे जिनके पास ऐसे वाहनों की सुविधा है। इस प्रकार दूरदराज के क्षेत्रों में तीर्थयात्री कर लगाया जाना भी अव्यवहारिक सा प्रतीत होता है।
4. **अनुदान की अपर्याप्तता एवं उसका समय पर ना मिल पाना-** जिस अनुपात में इन संस्थाओं के कार्य, उत्तरदायित्व एवं चुनौतियां बढ़ रही हैं, उस अनुपात में अनुदान नहीं बढ़ रहा है। राज्य द्वारा दिया जाने वाला अनुदान इन संस्थाओं के बढ़ते हुए दायित्वों के निर्वहन के लिए ना काफी होता है। इसके अलावा एक समस्या यह भी होती है कि जो भी अनुदान इन संस्थाओं को दिया जाता है, वह सरकार द्वारा समय रहते उपलब्ध भी नहीं कराया जाता है। देर से प्राप्त होने वाली राशि को जैसे-तैसे इन संस्थाओं के द्वारा मार्च की समाप्ति से पहले खत्म करना होता है। अतः ऐसे में नियम और कायदों की अवहेलना होती है और धन का सदुपयोग नहीं हो पाता है।
5. **पर्याप्त वित्तीय स्रोतों के हस्तांतरण का अभाव-** संविधान में बताए गए 29 विषयों में से 18 से 20 विषय अधिकांश राज्यों द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित करने की घोषणा कर दी गई थी, कभी इन विषयों में कुछ विषय और जोड़ दिए जाते हैं तो कभी कुछ घटा दिए जाते हैं। प्रायः यह शिकायत सामने आती है कि इन संस्थाओं को विषयों के सौंपे जाने की घोषणा मात्र की जाती है, उनको कुशलतापूर्वक करने के लिए ना तो इन संस्थाओं को कर्मचारी ही प्रदान किए जाते हैं और ना वित्तीय एवं अन्य संसाधन उपलब्ध कराए जाते हैं। ऐसे में इन पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा अपने दायित्वों का सफलता से निर्वहन करने की समस्या खड़ी हो जाती है।
6. **पर्याप्त स्वायत्तता और स्वतंत्रता का अभाव-** संविधान संशोधन के पश्चात इन संस्थाओं को केंद्र तथा राज्य सरकार के द्वारा विशिष्ट कार्यक्रमों और योजनाओं के लिए राशि उपलब्ध कराई जाती है, जिसके साथ अनेक शर्तें और पाबंदियां भी रहती है। इन संस्थाओं को निर्धारित शर्तों और पाबंदियों के साथ कार्यक्रम विशेष पर ही राशि व्यय करनी होती है। पंचायती राज संस्थाओं को समुचित स्वतंत्रता तथा स्वायत्तता प्राप्त नहीं होने के कारण उस पैसे का उपयोग अन्य किसी कार्य में नहीं किया जा सकता है।
7. **राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को लागू करने की बाध्यता का ना होना-** राज्य वित्त आयोग की प्रति 5 वर्षों में नियुक्ति की संवैधानिक बाध्यता होने से इनकी नियुक्ति राज्य सरकारों द्वारा कर दी जाती है, लेकिन इन आयोगों की सिफारिशें लागू करने संबंधी कानूनी बाध्यता इन राज्य सरकारों पर नहीं होती। इस कारण इन वित्त आयोग की सिफारिशों को भी गंभीरता से नहीं लिया जाता है। कुछ सिफारिशों को लागू करने से इंकार कर दिया जाता है तो कुछ को आगे पीछे लागू कर देते हैं, तो कुछ की दर में परिवर्तन कर दिया जाता है। साथ ही एक शिकायत यह भी रहती है कि वित्त आयोग को राज्य सरकार

द्वारा समुचित वित्तीय और कार्मिक सेवा उपलब्ध नहीं कराई जाती है, जिससे आयोग का कार्य विपरीत रूप से प्रभावित होता है।

8. **नैतिकता की कमी एवं प्रशासनिक अनियमितताएं-** पंचायती राज संस्थाओं में चुनाव लड़ने वाले व्यक्तियों में प्रायः नैतिक सोच सही नहीं होती है। इन संस्थाओं में बहुत से लोग तो इनमें अपना कैरियर तलाशते हैं। चुनाव में सभी पदों पर धन बहुत व्यय तो नैतिक और अनैतिक तरीक़े से उस पैसे को जल्दी से जल्दी वसूल करने की प्रवृति भी पायी जाती है। नैतिक और अनैतिक तरीके से उस पैसे को जल्दी से जल्दी वसूल करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। जनप्रतिनिधि और इन में कार्यरत कार्मिक मिलकर धन का दोहन करने में लगे रहते हैं। भ्रष्ट तरीके से पैसा बनाने के फेर में जो कुछ भी पैसा है, इन संस्थाओं के पास उसकी लीकेज और दुरुपयोग आम है। इन संस्थाओं में प्रत्येक कार्य के लिए जनप्रतिनिधि और कार्मिक गण अपना हिस्सा प्राप्त करने में ही लगे रहते हैं। कार्यों की गुणवत्ता से समझौता करके लोग पैसा बनाते हैं।

26.5 निष्कर्ष

वित्त को प्रशासन रूपी वाहन का ईंधन माना जाता है। जिस प्रकार ईंधन के बिना वाहन नहीं चल सकता उसी प्रकार वित्त के अभाव में प्रशासन का पत्ता भी नहीं हिलता। किसी भी प्रशासनिक इकाई की तरह पंचायती राज संस्थाओं की कुशलता और प्रभावीपन वित्तीय प्रशासन पर निर्भर करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के लिए संविधान में कौन सा संशोधन लाया गया है?
2. ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की आय के क्या-क्या स्रोत होते हैं?

26.6 सारांश

स्थानीय शासन की संस्थाओं की सफलता एक निर्णायक सीमा तक उनके पर्याप्त वित्तीय स्रोतों एवं सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। कोई भी संस्था या संगठन अपनी मूलभूत दायित्वों का उचित निष्पादन तब तक नहीं कर सकता, जब तक कि उन कार्यों को संपन्न करने के लिए उसके पास पर्याप्त आर्थिक साधन उपलब्ध ना हो। स्थानीय शासन की संस्थाओं को वित्त के अभाव में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। संविधान के प्रवर्तन के समय तो स्थानीय शासन संविधान द्वारा सृजित सोपान ही नहीं था। संविधान में किए गए 73वें संशोधन के परिणाम स्वरूप पंचायती राज अप संविधान का हिस्सा बन गया है। किंतु इस स्थिति के पश्चात भी संविधान द्वारा पंचायती राज संस्थाओं की आय के कोई प्रथम स्रोत चिन्हित नहीं किए गए हैं। फलतः शासन की यह तीसरी इकाई को करारोपण, आय या व्यय के स्रोत और वित्तीय प्रबंध के कोई स्पष्ट अधिकार नहीं मिल सके हैं। संविधान संशोधन के बाद इस दिशा में एक सकारात्मक कदम यह उठाया गया है कि केंद्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों को विनियमन के लिए जिस तरह वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया हुआ है, उसी तर्ज पर राज्य सरकारों व दोनों प्रकार की स्थानीय संस्थाओं (ग्रामीण तथा नगरीय) के मध्य वित्तीय संबंधों के विनियमन और संबंधित पक्षों पर सुझाव देने के लिए राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान कर दिया गया है। अब पंचायती राज संस्थाएं करारोपण इत्यादि के संदर्भ में राज्य वित्त आयोग की अनुशंसा ओं के अनुरूप राज्य सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार काम करती है। यह संस्थाएं जो भी नए क्षेत्र में आरोपित करना चाहती हैं, उसके लिए उन्हें राज्य वित्त आयोग के मार्गदर्शक ओं का ध्यान रखने के राज्य सरकार की पूर्व अनुमति लेनी होगी।

26.7 शब्दावली

स्वायत्तता- निर्णय लेने की स्वतंत्रता, करारोपण- कर लगाना

26.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम, **2.** करों से प्राप्त आय, सरकारी अनुदान और ऋण

26.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, अशोक, 2019, भारत में स्थानीय प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर पब्लिशर्स,जयपुर।
2. सिंह, एस.के., 2009, लोक वित्त के सिद्धांत तथा भारतीय लोक वित्त; साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
3. पंत,जे.सी., 2005. लोक अर्थशास्त्र; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
4. शर्मा, रविंद्र, 2010, भारत में स्थानीय प्रशासन; पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

26.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लेखी, आर.के., 2009, लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना।
2. कटारिया, सुरेंद्र, 2009, भारतीय लोक प्रशासन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

26.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में पंचायती राज संस्थाओं के उद्भव पर एक लेख लिखिए।
2. ग्राम पंचायतों के कार्य तथा वित्तीय प्रशासन पर एक निबंध लिखिए।
3. ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन तथा उनकी समस्या पर एक निबंध लिखिए।